इन्हीं हथियारों से

भाग –2

28

जीवन की घटनाओं में संयोग या दुर्योग की भूमिका कुछ-न-कुछ होती ही है, परतन्त्र देशों की गरीब, अशिक्षित और अन्धविश्वासी जनता पर इसका भारी असर रहता है, जिन्हें वह सौभाग्य अथवा दुर्भाग्य समझती है। इसीलिए वह अपनी स्थिति को बदलने के लिए संघर्ष करने को तैयार नहीं होती। उन्हें न रास्ता मालूम रहता है और न कोई रास्ता दिखानेवाला मिलता है।

कुछ ही दिनों में अपनी पत्नी और परिवारजनों को निश्चिन्त और आश्वस्त करके दामोदर प्रसाद गन्धर्व विवाह का वास्तविक नाटक खेलने को पूरी तरह स्वतन्त्र हो गया। दीपावली के बाद पाँचवें दिन रात में करीब दस बजे वह उस गली में पहुँचा। हल्की-हल्की सर्दी पड़ रही थी। चारों ओर घोर अन्धकार। सुत्ता पड़ गया था और गली सन-सन-सन-सन कर रही थी, जिसमें अपने दिल की तेज धड़कनें उसे स्पष्ट सुनाई दे रही थीं। उसने बड़े विश्वास से और नाजुक अदा से एक उँगली मोड़कर दरवाजे को तीन-बार ठक-ठक-ठक बजाया।

उसे दो मिनट इन्तजार करना पड़ा। इतनी देर ? एक क्षण के लिए उसकी नाक पर गुस्ता तो सबकुछ उसी के हाथ में है। इतना खर्च कर रहा है वह। पूरे घर की सफाई-दफाई, चूनाकती, झलक आया, जिसका उसे अधिकार है, इस खयाल से उसकी गर्दन भी कुछ टेढ़ी हो गई। हाँ, अब सबके लिए नए कपड़े, भगजोगिनी के लिए विशेष साड़ियाँ, चोली, सलूका, रंगीन पेटीकोट, पाउडर,

क्रीम, वैसलीन। उसे अपने पर बड़ा गर्व हुआ ! क्या खाकर बाबू सूरज प्रसाद रईस बनेंगे। यहाँ आकर देखें कि रईसी किसे कहते हैं। इस बार तो वह कहेगा उनसे, नाटक-वाटक उनके बूते का नाहीं. डायरेक्टरी का काम उसे दे दें, इस बार वह वास्तविक जीवन में स्वयं दुष्यन्त बनकर नाटक कर ही रहा है. शहर में भी तम्बू-कनात से घिरे मंच पर लैला-मजन, राजा हरिश्चन्द्र के स्थान पर 'शकुन्तला' नाटक खेलकर शहर का सारा पिछला रेकॉर्ड तोड़ देगा।

उसने शान से गर्दन पीछे मोडकर, गली के पार उस वकील के पक्के मकान की ओर देखा, जिसके बीमार बुढे पिता अचानक खाँसने लगे थे। लेकिन उसने फौरन अपने को रोका। जब भाग्य की देवी स्वयं सोने की थाली में परोसकर जीवन का सुख देनेवाली हो. उस समय ऐसी नादानी क्यों ? उसने मुस्कुराकर एक बार और ठक-ठक किया।

धोती. मोटी रेशम का कुर्ता और जैकेट पहने हुए था वह। गले में ही रेशम का दुपट्टा । उसके कपडे से इत्र की सुगन्ध निकलकर उसके चारों ओर हवा में घुलमिल गई थी। खिजाब लगे उसके माँग कढे बाल उस समय और स्थान के अन्धकार से भी अधिक काले होने के कारण अपने अस्तित्व का रहस्यमय एहसास करा रहे थे। होंठों के ऊपर काली मँछों की एक चौडी. गझिन पटटी एकदम सीधी रेखा में सुशोभित थी, जो छोटे मुँह की टेढी, कुटिल रेखाओं को समन्वित करके उसके व्यक्तित्व को प्रभावशाली बना रही थी। वह पान की सिट्ठी को मुँह के अन्दर उलट-पुलटकर उससे निकलते ज़र्दे की खुशबू से स्वयं मस्त हो रहा था।

दरवाजा धीरे-से खुला और उसके फॉफर से मुँह निकालकर भगजोगिनी की सास ने झाँका। उसने सगे दामाद की तरह खूब गम्भीर होकर और सिर झुकाकर अन्दर प्रवेश किया। दरवाजा बन्द करके पीछे-पीछे तेजी से आती भगजोगिनी की सास से उसने व्यंग्य मुस्कान के साथ पूछा:

" नींद लग गई थी क्या ?"

"अरे, नहीं बाबू, देर से ध्यान दरवाजे की ओर ही है। छोकरा को दूध पिला रही थी। हाँ, तो लोटा में पानी देती हूँ, जल्दी से हाथ-पैर धोकर पूरब की ओर मुँह करके खड़े हो जाओ, रोरी का तिलक लगा देती हूँ। इसके बिना सुभ काम कहाँ होता है ?"

दामोदर प्रसाद मन-ही-मन खीझ उठा। कितनी शातिर है यह बुढ़िया। फौरन हर तरह के बन्धन में मजबूती से बाँध देना चाहती है! लेकिन ऊपर से चिकनी मुस्कुराहट के साथ मजाकिया ढंग से बोला :

"अरे, चाची, जब दुष्यन्त और शकुन्तला ने गन्धर्व विवाह किया था तो दुष्यन्त को कहाँ तिलक लगाया गया था ?"

"अरे बाबू, ऐसी बात मुँह से न निकालो। यह सुभ समय है। सुना है, जब दुष्यन्त ने शकुन्तला का हाथ पकड़ा तो सर्ग से देवताओं और उसकी माई मेनका ने फूल बरसाए थे। ऐसे में हर प्राणी कुछ-न-कुछ करता ही है। सुभ में टोका-टाकी नहीं की जाती। हाँ, ए बाबू, एक बात कहना चाहती

"हाँ-हाँ, शीख को बता दो, आंटी।"

"ए बाबू, हमारे परिवार में तुम्हारा रिश्ता हो गया है, अब तुम मुझे 'चाची' न कहकर 'अम्माजी' कहते...." उसने शरमाकर अपने माथे पर आँचल कुछ आगे खींच लिया।

दामोदर प्रसाद के होंठों पर फैलती हँसी कुछ क्षणों के लिए एक एक जगह ठिठकी रह गई। उसकी छोटी-छोटी आँखों की पलकें जल्दी-जल्दी खुलने झपकने लगीं। गझिन मूँछों के बाल जैसे खड़े हो गए।

"चाची." उसने गम्भीर होकर कहा, "जल्दबाजी ठीक नहीं होती। सबकुछ समय से होता है। एक जमाना था, जब रमापति चाचा के रुतबे की हर जगह चर्चा होती थी। फिर समय खराब आया

तो खराब होता गया। दाने-दाने की मोहताजी आती गई। लेकिन नहीं, मेरे जैसा दयावान आदमी था, तुम लोगों को घबराने की जरूरत नहीं थी। अब भी नहीं है. आगे भी नहीं रहेगी। मुझे क्या कमी है चाची? घर में पैसा बरस रहा है. पैसे से जो चाहूँ, खरीद सकता है। मगर नहीं में एक सच्चा इनसान हैं, दरिद्र-दुखियों के लिए दिल में दया माया है, प्रभु ने मुझसे कह दिया था कि उस परिवार की मदद करो, इस बदनसीब स्त्री का हाथ थामकर उसे सहारा दो नहीं तो मैं अपने घर नहीं बैठा रहता... तुम अपने घर खुश, मैं अपने घर खुश..."

उसने पहले क्रूर तीक्ष्ण दष्टि से भगजोगिनी की सास को देखा. जिसका मुख उल्लास से हीन होकर बेचारगी से खुल गया। इससे दामोदर प्रसाद को बड़ा सन्तोष मिला। फिर वह अचानक हो-हो हँसने के बाद आगे झुककर कृत्रिम मृदु स्वर में बोला :

"चाची, पहले ही कह चुका है, अभी भभ्भड ठीक नहीं है। अभी चुपचाप यही चलने दो, जो चल रहा है। फिर तो कुछ दिनों बाद मैं तुम्हें भी गहनों से लाद दूँगा। जो चाहोगी, वही कहूँगा-अम्मा, माई, देवी, कुछ भी। मैं तो तुम्हारा बड़ा एहसानमन्द हूँ, तुम सहारा न देतीं तो मुझे तुम लोगों की सेवा करने का अवसर न मिलता। तुम्हें यह सुख न दे पाता। तुम होशियार हो, तजुर्बेकार हो, कोई अनाड़ी होता तो सब काम बिगाड़ देता। सचमुच तुम मेरे लिए एक देवी हो, तुम्हारी दुआ चाहिए, दुआ दो कि मेरे सभी अरमान पूरे हों। लो, मुझे आशीर्वाद दो..."

वह अन्धकार में नीचे झुककर अजीब दुष्टता और काइयाँपन से भरकर उसके दोनों पाँव सहलाने लगा। भगजोगिनी की सास ने अपने पैर फौरन पीछे करके कहा:

"यह क्या करते हो, बाबू, क्यों मुझे नरक में ठेलते हो? मुझे गहना-गुरिया, कुछ नहीं चाहिए। मेरा तो सबकुछ लुट गया, अब मुझे क्या चाहिए? मैं तो यही चाहती हूँ तुम लोग सुखी रहो। जो कुछ देना हो, अपनी 'शकुन्तला' को देओ। मैंने उसे समझा दिया है, वह तुम्हारा मन से स्वागत करेगी। तुमको सुख देगी, तुम्हारी सेवा करेगी। वह तुम्हारी स्त्री है, पत्नी है। तुम उसके पुरुष हो, मर्द हो, मैं जानती हूँ तुम भी उसे मान-इज्जत दोगे, प्यार दोगे, यह स्त्री के लिए गहने से भी बढ़कर है..."

"अरे तो चाची, यह भी कहने की बात है? अच्छा चलो, थोड़ा-सा रोरी लगा दो।"

जब वह कमरे के अन्दर पहुँचा तो दरवाजे के पास एक स्टूल पर रखी पुरानी लालटेन जल रही थी। उसने दरवाजा भीतर से बन्द कर दिया और घूमकर बड़े आत्मविश्वास और इत्मीनान से मुस्कुराते हुए आगे बढ़ा। कमरे में आधे घंटा पहले जलाए गए धूप-दशांग की सुगन्ध फैली हुई थी, जिसने उसके सुख को और बढ़ा दिया। एक अजीब-सी मानसिक स्थिति हो गई थी उसकी। कामाग्नि में जलता और धड़कता दशांग के हल्के धुएँ से आप्लावित जैसे एक रहस्यमय लोक में वह पहुँच गया हो। किसी अप्सरा के निमन्त्रण पर नन्दन वन पहुँचा है अथवा कण्व ऋषि का आश्रम ही है यह ? नरम-नरम हरी दूब घास का गलीचा और शकुन्तला के मुख-कमल पर मँडराते भँवरे !

वह धीरे-धीरे आगे बढ़कर उस पलंग के पास खड़ा हो गया, जिस पर भगजोगिनी पहले ही से रेशमी साड़ी पहने, घूँघट काढ़े बैठी थी।

उसने अपनी आवाज में कर्कशता को यथासम्भव चिकना करते हुए कहा : "उठो शकुन्तला, उठकर मेरे गले में गजरा डाल दो..."

पकड़कर सिसकती हुई बोली भगजोगिनी अचानक हड़बड़ाकर उठी और नीचे उतरकर फर्श पर बैठ गई और उसके पैरों को

"मुझे कुछ नहीं, बस आपके चरणों में थोड़ी-सी जगह चाहिए।"

दामोदर प्रसाद पहले तो हक्का-बक्का रह गया। फिर खीझ उठा। अब वह नखरा, वह घमंड कहाँ गया। कितना सताया था इस औरत ने ? देखते ही नाक-भौं सिकोड़ लेती थी. मुँह घृणा से

दूसरी ओर फेर लेती। अगर शुरू में ही एक बार भी इसने उसे देखकर मुस्कुरा दिया होता तो उसका जीवन धन्य हो गया होता। इसके लिए इतना तड़पना न होता। और इस समय जय यह इसके लिए आवर है, प्यार में लावा की तरह खौलता, छटपटाता अपना दिल खोलकर इसे दिखा देना चाहता है. यह सती-सावित्री का पार्ट करती हई उसके अरमानों पर बर्फीला पानी डालने को उतारू है। घर में भी पतिव्रता और उससे ऊबकर उससे बचने के लिए जब यहाँ आया है तो उसके टुकड़ों पर नेवाली यह 'रखेल' भी शकुन्तला बनने के भ्रम में और भी पतिव्रता होने का ढोंग कर रही है। छह प्रतिहिंसा से जलने लगा। वह कुचल देगा इसे, इसके हस्र को बरबाद कर देगा। वह इसे गडेरी की तरह चूसकर फेंक देगा सड़क पर । वह समझती क्या है अपने को ?

सहसा उसकी दृष्टि छोटे-से घूँघट की तरफ गई, जिसने उसके माथे को करीब-करीब ढक लिया था और शेष मुख उस लालटेन की रोशनी में भी दमकता हुआ लगा उसे, बादल से निकले तीन चौथाई पूर्णमासी के चाँद की तरह। आँखों की कटीली खूबसूरती को उसकी भारी-भारी अधर्मेंदी एनके के हुए थी, जिनके नीचे से किसी सरिता की क्षीण उद्गम धारा के समान आँसू बहकर पोलों के शीर्ष से उतरते ही कई धाराओं में विभक्त होकर नीचे चला गया था। उसके होंठ भीग गए थे और उनके ऊपर तथा नाक के नीचे वह छोटी-सी सुन्दर घाटी भी। उसे यह दिन याद आया, जब पहली बार भगजोगिनी को उसने बनवारी की शादी में देखा था। पेड़ पर पके सेब और अंगूर का सौन्दर्य और ताजगी। बाद में भी जब-जब उसने देखा, उसके चेहरे का बॉकपन, बेहद चंचल आँखें और व्यवहार में धीरता एवं गम्भीरता उसके दिल को छलनी-छलनी कर देता और तब से वह भगजोगिनी को एक दिन के लिए भी भूल नहीं सका था।

अपने तुच्छ विचारों के लिए वह अपने को धिक्कारने लगा। उसने सहसा प्यार-भरी कोमलता से भगजोगिनी को पँखरों के नीचे बाँहों को पकड़कर उठाया और खड़ा किया और स्वयं किसी पारसी थिएटर के ऐतिहासिक नायक की तरह नीचे घुटनों के बल बैठकर भगजोगिनी के दोनों हाथों को पकड़कर अपने माथे, आँखों और होंठों पर लगाते हुए कहा :

"तुम्हारी पहली झलक मिलते ही मैं तुम्हारी याद में पागल की तरह न मालूम क्या-क्या सोचता, कहाँ-कहाँ घूमता और क्या-क्या करता रहा हूँ। मैं एक बहुत ही नीच और घटिया इनसान हूँ। मैं आज तक प्यार के लिए न मालूम कहाँ-कहाँ भटकता रहा हूँ, लेकिन आज तक मुझे वह न मिला, जो चाहता हूँ। क्या चाहता हूँ मैं? मैं ऐसा जानवर नहीं हूँ कि सिर्फ स्त्री का शरीर ही चाहिए मुझे। मुझे साफ-सुथरी, सुन्दर, समझदार, तन्दरुस्त स्त्री चाहिए, उसका शरीर चाहिए और भावना भी। मुझे उसका प्यार चाहिए और उसका गुस्सा भी, अगर गुस्से की कोई बात हो तो। मुझे ठंडी, उत्तान स्त्री नहीं चाहिए, जिसमें प्यार की भावना की हरकत न हो। सती-सावित्री, पतिव्रता, ढोंगी, चरणदासी, धार्मिक, आध्यात्मिक, देवी किस्म की स्त्रियों से मुझे सख्त नफरत है। मुझे अपने घर में ऐसी ही स्त्री मिली, जिससे मेरी गिरावट थम न सकी। मुझे सबकुछ मिला, प्यार न मिला। यही प्यार मैं तुमसे चाहता हूँ। मुझमें कोई काबिलियत नहीं है, फिर भी अगर तुम्हारा प्यार मिला तो मैं अपने को सुधारने की कोशिश करूँगा...।"

भगजोगिनी कैसे अपनी चंचल आँखों को स्थिर करके उसे देख रही थी। उसमें अनुराग की चमक थी। क्या सचमुच ? उसके हृदय में एक तूफान उठ खड़ा हुआ है. यह दामोदर को विश्वास हीन हुआ। तेज धडकनों से उसका हृदय थरथराने लगा। होंठ काँपने लगे। उसका चेहरा फक पड़ गया, जैसे शरीर में रक्त ही न हो।

उसने बड़ी कठिनाई से जैकेट की जेब में से पत्ते में लिपटे पुष्प-हार निकाले. जिनमें से एक भगजोगिनी को देकर दूसरा स्वयं ले लिया। दोनों ने एक-दूसरे को हार पहनाया। फिर उसने एक छोटी-सी डिबिया में से सोने की अँगूठी भी निकालकर भगजोगिनी को पहना दी।

गन्धर्व विवाह की एक मामूली-सी रस्म पूरी करके वे आलिंगन से वैध गए। फिर मसहरी गिराकर पति-पत्नी की तरह सो गए।

दोनों के जीवन में एक नए किस्म का आनन्द आ गया। रंगमंच का अनुभव दामोदर के बहुत काम आया। वह हर भौके को नाटकीय अनुनय विनय की ओर मोड देता। मिलन के पूर्व पुराने कर्ड रटे अथवा याद किए हुए संवादों का अत्यधिक भावुक रूपान्तरण। कभी-कभी वह जोकरी के संवाद बोलकर भगजोगिनी को हँसाने लगता। वह हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाती। दामोदर ने उसे भावनात्मक रूप से बहत ऊँचा उठा दिया। जब दामोदर नहीं रहता तो उसका मन सदा दामोदर में ही रहता। वह एक-एक क्षण उसका इन्तजार करती रहती कि यह कब आए और अपनी वालों से उसके हृदय को असंख्य तरंगों से भर दे।

दामोदर बड़ी होशियारी और कुशलता से किसी तार पर चल रहा था जैसे कोई नट। एक और उसका भरा-पूरा घर-परिवार और दूसरी ओर भगजोगिनी का आकर्षण और प्यार। उसकी हालत थी ताड़ के वृक्ष की ऊँचाई पर लबनी में रिसते रस को छककर पीनेवाले किसी उन्मत्त कौए दी तरह। इस उन्मत्तता की दशा में वह हर व्यक्ति को कौए के समान ही तिरछे देखता, सन्देह से कटिलता से. चालाकी से और घमंड से। इस आनन्द-भरे दर्प में यह सबको बहुत तुच्छ समझता। लेकिन बमपुलिस गली के दुष्यन्त राजा का खेल एक वर्ष से अधिक न चला।

29

बदली हुई परिस्थिति का लाभ उठाकर चालबाजी, धोखाधड़ी और षड्यन्त्रों के द्वारा दामोदर ने जो सफलता हासिल की थी, उसे वह अपनी घोर तपस्या का परिणाम समझने लगा। ईश्वरीय अनुकूलता के बाद उसके प्रेम की विजय। हाँ, भगजोगिनी को देखकर उसके मन में जो-जो विचार आए, जैसी इच्छा उत्पन्न हुई, ईश्वर की कृपा से वही घटित होने लगा अन्तिम लक्ष्य की ओर, उसकी सिद्धि में सहायक। सचमुच उसने चाहा था कि अपने पिता की तरह बनवारी भी चला जाए और वह रास्ते से

हटा लिया गया। उसने यह भी चाहा था कि भगजोगिनी उसको स्वीकार करने के लिए मजबूर हो जाए और आज वह उसके आगोश में है।

परन्तु सबसे आश्चर्य की बात यह है कि प्रथम आलिंगन ने ही उसे भीतर से थरथरा दिया। जब तक वह नहीं मिली थी, उसको किसी तरह भी प्राप्त करने के लिए बेचैन रहा लेकिन आज मिलने पर यह सोचकर वह काँप गया कि एक सरल, निर्दोष, सुखी और खूबसूरत स्त्री को उसने नष्ट और बरबाद कर दिया। हाँ, यदि बनवारी के अहित के सम्बन्ध में उसने न सोचा होता और मन्दिर में प्रार्थना न की होती, तो उसे शक नहीं कि आज बनवारी जीवित रहता। उस जैसे कुटिल पुरुष को प्यार करने का क्या हक है? और यदि हक हो भी और किसी तरह वह हासिल हो भी गई है तो क्या भगजोगिनी उसे पूरे दिल से प्यार कर सकती है जबकि शुरू से ही वह उसकी इच्छा, उसकी हरकतों को अँखियानती और समझती रही है?

इस तरह के सोच ने दामोदर को दुःख और निराशा से बेहद आहत कर दिया। भगजोगिनी को अपने हृदय से चिपटाकर वह उसके भोले-भाले प्यारे चेहरे को आँखें फाड़कर पागल की तरह देखने लगा। नहीं, वह इस स्त्री को दिल से चाहता है, जीवन से भी बढ़कर, उसके पास जो कुछ है सबको सहसा प्रेम के भावावेश में काँपते हुए वह धीमी, उच्छ्वसित आवाज में बोला :

मैं नहीं जानता कि कितना चाहता हूँ तुमको। तुम्हारा बाँका तराशा हुआ चेहरा कितना प्यारा है। तुम्हारे चंचल नैन, नाक, गाल, ठुड्डी, सफेद गर्दन, बाँह खूबसूरत पाँव-सबकुछ जानता है

तुम्हारे जज्बात, खयालात, तुम्हारी आत्मा में कोई गन्दगी नहीं है। सिर्फ मैं ही तुम्हारे लायक नहीं है। मैं एक बहुत गिरा हुआ इनसान है। माँ-बाप का इकलौता लड़का होने के कारण मैं बिगड़ गया। मुझे किसी ने कुछ नहीं सिखाया। लाइ-प्यार में मेरी गलतियों को छिपाया गया और जब बिगड़ गया

तो सभी सिखाने लगे। बचपन में मेरी शादी की गई, मैं दूसरे रास्ते पर था, फिर पत्नी भी नासमझ थी। वह मुझे अपनी ओर मोड न सकी, एकदम अनाड़ी। मैं पढ़ न सका, गलत साथ-संग ने मुझे चौपट कर दिया। आज तक मुझे प्यार नहीं मिला. न पत्नी से न किसी और से। और आज किस्मत ने मुझे तुम्हारे पास पहुंचाया है और मैं तुम्हारा सच्चा प्यार चाहता हूँ तो अब अपनी असलियत तुमसे छिपा नहीं सकता। सचमुच नैं बहुत ओछा हैं, तुमने भी कभी प्यार नहीं किया मुझसे, तुम

अब भी चाहो तो मेरे प्यार को ठुकरा सकती हो। तुम्हारी एक जवान पर मैं यहाँ से चला जाऊँगा ।" यह कैसी उदारता थी उसकी ? क्या प्राप्ति की खुशी? लेकिन भगजोगिनी ने उसके शक्तिशाली आलिंगन से अपने को मुक्त करके कोहनी मोडकर आधी बाँह को खड़ा किया और ऊपर हथेली पर सिर टिकाकर भाव-विभोर होकर नथुने फुलाते हुए उसके मुँह को बाएँ हाथ से सहलाते हुए कहा

"नाहीं, ऐसा न कहो। अब हमारा कौन है तुम्हरे छोड़। मैं सबकुछ दूँगी तुम्हें जो कहोगे। कौन कहता है तुम ओछे हो। तुम्हें पति मान चुकी हूँ। तुम मेरे लिए सबकुछ हो। मैं तुम्हारी शकुन्तला हूँ, शकुन्तली हूँ, रानी हूँ, दिलवरजानी हूँ-चाहे जो समझो मैं तुम्हें तन दूँगी, मन दूँगी, प्यार दूँगी, हजार चुम्मी दूँगी, तुम जो पसन्द करो। बनाकर खिलाऊँगी, तुम्हारी सेवा करूँगी। तुम मेरे राजा दुष्यन्त हो..."

इससे भी अधिक कोई पत्नी अपने पति के लिए क्या कर सकती है? हाँ, अब पत्नी तो थी ही वह गन्धर्व विवाह करने के बाद। लेकिन चित होकर ऊपर धरन की ओर देख रहा था दामोदर सुन्न-सा। ये ऐसे शब्द थे, जिनकी उसने कल्पना भी न की थी। अनेक नाटकों में भी भाग लिया या उसने, मगर ऐसा संवाद सुनने या कहने का अवसर नहीं आया था। वह उन शब्दों को-एक-एक शब्द को महसूस करने की कोशिश कर रहा था, इसलिए बार-बार उसका चेहरा अपनी ओर करने के भगजोगिनी के प्रयास का तत्काल उस पर कोई प्रभाव नहीं हुआ।

"अच्छा जाओ, मुझसे अब न बोलना..." भगजोगिनी ने रूठकर कहा और किहुनी गिराकर चित लेट गई। दोनों के बीच में कुछ फासला हो गया। दामोदर का ध्यान भंग हुआ। अब प्यार उसका दूने वेग से लौटा। उसने अपना हाथ जब बढ़ाया तो बचने के लिए उल्टी खाकर पाटी के किनारे इस तरह शरीर को मोड़ लिया भगजोगिनी ने कि उसके दोनों हाथ आगे की तरफ किहुनियों पर अवलम्बित, सिर उन्हीं के पास नीचे झुका, पैर पीछे की ओर मुड़े और फैले घुटनों के बल कूल्हे सबसे ऊपर उठे।

दामोदर एक पीड़ा-भरे उच्छ्वास से चालित चुपचाप बैठ गया और मुग्ध होकर इस भव्य आकार में उसके शरीर को देखने लगा। मसहरी के अन्दर छनकर आती लालटेन की धुँधली रोशनी में भी उसका श्वेत शरीर दैदीप्यमान था। तब उसे शीत ऋतु में, बलिया से गई एक दोस्त की उस बरात की याद आई, जो शिमला में ही बस गए, भोजपुरी लड़कीवालों के यहाँ गई थी। हिमपात में उन्हीं दिनों देखे गए इस हिमाच्छादित पर्वत शिखर की तरह इस समय दिख रही थी भगजोगिनी, जिसके नीचे दोनों ओर सफेद ढलान चले गए थे। मुग्ध, अभिभूत और आप्लावित प्यार की ऐसी भावना से जिसकी बुलन्दी को नापने में स्वयं असमर्थ था, वह अशक्त होकर आगे झुका और भगजोगिनी के काले बालों पर अपना सिर रखकर अत्यधिक क्षीण उच्छ्वसित आवाज में बोला- 152 "मेरे दिल की मलिका, तुम जाड़ा खा जाओगी।" दामोदर ने हल्के-से उसे अपनी ओर खींचा और वह आसानी से आ गई तथा वृक्ष पर चढी लता की तरह उसके गले में अपनी दोनों चिकनी

लहराती बाँहें डालकर उसकी बालों-भरी विस्तृत छाती पर अपना सिर धुनती हुई रुदन के वीच बुदबुदाने लगी, "मुझे छोड़ दो... मुझे छोड़ दो..."

दामोदर ने भगजोगिनी के अस्त-व्यस्त बालों में अपना मुँह छिपाकर आँखें मूँद लीं। उसकी बलिष्ठ बाँहों ने फूल की कोमलता से उसे अपने घेरे में बाँध लिया था। उसका शरीर, दिल यानी वह जैसे अपने से भी बेखबर एक छोटे, हल्के तिनके की तरह एहसास के समुद्र में ऊपर-नीचे तरंगों के झूले में झूल रहा था... ऐसी स्थिति कुछ क्षणों की ही थी, पर उस लघुकाल ही में उसने जैसे साक्षात्कार कर लिया अपने

सच्चे प्यार का, उसके दिव्य सुख का, उसके स्वाद का। शायद मिलन गत्यावरोध पैदा करके लघु बनाता हो, लेकिन उसके पूर्व बिताए गए ऊर्ध्वमान सच्चाई की और बढ़ते क्षण क्या महान और अविस्मरणीय नहीं होते-फिर ऐसी परिस्थिति में क्या यह कहा जा सकता है कि जो कुछ घटित हो रहा था, वह दामोदर का झूठा नाटक है ?

निश्चय ही, परिस्थितियों का मारा वह, एक ऐसा मनुष्य था, जो सच्चाई के अभाव में झूठ को अपनाकर झूठ को ही सच्चाई समझने लगा। लेकिन जिस दिन उसने पहली बार भगजोगिनी को देखा, वह एक अनजान दर्द से चौंक उठा, उसके अन्दर एक ऐसी आँधी चलने लगी, जिसे वह नियन्त्रित नहीं कर सका। और एक रात को एक ख्वाब में, उसके हृदय की अतल गहराई में छिपे, उपेक्षित, औंधे मुँह पड़े, कृशकाय अदृश्य-से सत्य पर कोई तेज रोशनी फेंक रहा था-क्या है वह ? क्या आँधी ? क्या बवंडर ? सबकुछ उलट-पुलट गया उसके अन्दर। असहनीय दर्द से वह रोने लगा। खूब रोया वह, फूट-फूटकर रोया। जैसे कोई ऐसी चीज देख ली हो जिससे वह लम्बे अरसे से विछड़ा हो। महीनों से या वर्षों से अथवा सदियों से ? वह चीखने लगा और उसी समय उसकी नींद टूट गई। उसने चौंककर देखा। वह पसीने से लथपथ था। घबराया हुआ। वह सिर पर हाथ रखकर सबकुछ सोचने की कोशिश करने लगा, लेकिन कुछ भी समझ में नहीं आया।

उस समय से वह एक अनजान बेकरारी के साथ अपना एक-एक दिन गुजारने लगा। ऊपर मे उसका जीवन पहले की तरह ही बीत रहा था, हँसी-खुशी, ड्रामा, पाखंड, झूठ, धोखाधड़ी, लेकिन भीतर उसका दिल कहीं टीस रहा था, कोई कोना दुख रहा था। न मालूम कितने दिनों तक उसकी यह स्थिति बनी रही, मगर एक दिन जब वह बनवारी के यहाँ पहुँचा तो उसने अचानक भगजोगिनी को देख लिया। वह आँगन में एक बोरे पर घूँघट काढ़कर बैठी चावल बीन रही थी। थाली में उसके गतिशील हाथ की अंगुलियों ने उसके हृदय में अनोखी कौंध और जगमगाहट भर दी, जिसमें उसके बाँके मुख का दप-दप रूप दिखाई पड़ गया और दिल का टीसता उसका कोना तेज धड़कने लगा। विद्युत गति से उस रात के ख्वाब का अर्थ समझ में आ गया, जिसे जानने के लिए वह इतने दिनों से व्याकुल था-ऐसा बिन्दु सिर्फ जहाँ उसके प्राण धड़क रहे थे। भगजोगिनी उसके पद की आहट और कंठ की आवाज सुनकर घूँघट और लम्बा कर आँगन से भाग गई थी। वह ठगा-सा सुन्न वहाँ से चला आया था और पता नहीं किस प्रेरणा- असम्भाव्य कम-से-कम उसके लिए-से विचारहीन अवस्था में सीधे कम्पनी गार्डन में चला गया, जहाँ एकान्त जगह पर वृक्षों के झुरमुट और लतरों की छाया में रखी एक बेंच पर बैठते ही उसकी इच्छा साकार और मुखर हो उठी, "तुम मेरी हो, तुम मेरी हो... मेरी तमन्ना हो तुम... मेरा लक्ष्य, मेरा सत्य...।"

उस सत्य को प्राप्त करने के लिए वह शीघ्र ही इतना व्याकुल हो गया कि उसका दिमाग दिन-रात कारगर योजनाएँ, जरूरी कूटनीति और रणनीति बनाने में व्यस्त रहने लगा। उसके पास रचनात्मक योजना कोई नहीं थी। गुण उसमें शायद ही कोई बचे हों और अपने गुणों द्वारा त्याग और कुर्बानी की हद तक जाकर किसी को प्रभावित करने या उसे होने का अवसर देने में उसका विश्वास ही नहीं था।

वह एक दुलरुआ जिद्दी बेटा था, उसने जिद में अपनी हर इच्छा प्राप्त की अथवा करने की कोशिश की थी। उसके पास अतृप्त तन व मन तथा झूठ, छल-कपट, पाखंड,

धोखाधड़ी के अलावा कुछ भी नहीं था और इन हथियारों से वह सत्य पर विजय करने उस तक पहुँचने और उसे हस्तगत करने की कोशिश करने लगा।

और आश्चर्य है कि इन्हीं उपायों से उसने अपने सत्य को प्राप्त भी कर लिया पूर्ण विजय । इस उपलब्धि से वह खुश होकर उदार और महान बन गया था। उसके लिए वह जान भी कुर्यान करने के लिए तैयार था। प्यार से सराबोर उसका हृदय उसकी हथेलियों, उँगलियों, उसके होंठों में आ बसा था. जिनसे सत्य को उलट-पुलट, सहला और चूमकर वह अपने को अभिव्यक्त कर रहा था। एक लम्बे निष्फल और क्षत-विक्षत जीवन के बाद उसे अभिव्यक्ति का अवसर और उसकी पूर्ण स्वतन्त्रता मिली थी और सत्य से एकाकार होकर वह भीगी हुई बुलबुल और सुग्गे की तरह फूल गया. आत्म-गौरव और दर्प से भरा और उन लोगों से घृणा करता हुआ जो उससे ऊँचे और

सुखी थे। विदाई के क्षणों में भगजोगिनी रोकर ऐसी बेचारगी से दामोदर को देखने लगी, जैसे वह उसे के गुण जागृत थे। भगजोगिनी ने उसे जो अकल्पनीय सुख प्रदान किया था, उसके लिए यह अपनी प्रेमिका-पत्नी के प्रति कृतज्ञता से गद्‌गद था। इसीलिए उसका रुदन देखकर दुःख से छटपटा गया यह। उसके अनु-भीगे मुख-पुष्प को अपने दोनों हाथ में लेकर अत्यन्त लाड़ से पूछा उसने- "क्या चाहिए तुम्हें ?

तुम्हारा रोना मुझे बरदाश्त नहीं..." "कुछ नहीं..." वह आँसुओं के बीच से एकटक देख रही थी दामोदर को।

"तुम एक बार बता दो, तुम जो कहोगी वही मैं तुम्हारे कदमों के पास लाकर रख दूँगा।"

"नहीं, कुछ नहीं।"

"गहना कोई भी जो पसन्द करो...।"

"नहीं...।"

"अच्छा, तुम्हें खाना में क्या पसन्द है-कलिया मछरी, कबाब, बिरियानी, मिठाई, रबड़ी, मलाई... जो कुछ अच्छा लगता है तुमको, बता दो... रोज तुम्हारे सामने हाजिर कर दूँगा...।"

यह हँसने लगी जिससे उसके कपोलों से बहते हुए नमकीन आँसू खुले भीगे होंठों के बीच से होकर उसके मुँह के अन्दर चले गए। फिर गम्भीर होकर पहले ही की तरह दामोदर की आँखों में देखती हुई किंचित होंठ बिचकाकर कहा उसने-

"रूखा-चिकना, जो भी शिवजी दें, वही मुझे पसन्द है। किसी चीज के लिए तरसती नहीं। सवेरे से संझा तक काम करना पड़ता है, जब खूब जोर की भूख लगती है तो उस समय सूखी रोटी और आलू का चोखा भी बहुत अच्छा लगता है," उसने मजा आने की तरह सिर तिरछे हिलाकर अपनी आँखें ऊपर की तरफ चमकाई, फिर गम्भीर होकर बोली, "यह समझ लो, तुम्हें छोड़कर मुझे और कुछ भी नहीं चाहिए, तुम्हीं मेरे लिए गहना, साड़ी, महँगी-से-महँगी चीज हो। तुम्हारी खुशी ही मेरी सबसे बड़ी खुशी है...।"

दामोदर उसके मुख को अपनी हथेलियों से मुक्त कर बेहद गम्भीर होकर दूसरी तरफ देखते हुए कुछ सोचने लगा। फिर धीरे-धीरे बोला वह :

"मेरी प्राणप्यारी, तुमने अपने प्यार और कोमल बर्ताव से मुझे इन्सानियत की ऐसी ऊँची जगह पर बिठा दिया है कि अपने तजुर्बे का निचोड तुम्हारे सामने रखने को मजबूर हैं। अपने दःखों के क्षणों में मैंने यह सब सोचा है. मगर उन सबका हल मेरे पास नहीं था और है भी नहीं। सामने कोई रोशनी नहीं थी इसीलिए मैं अँधेरे में चलने के अलावा कुछ नहीं कर सका। मुझे बहुत सी चीजों से नफरत है, बगावत की भावना है. लेकिन वह बगावत सफल होगी. इस पर मुझे विश्वास नहीं था। आज भी नहीं है। मेरा यह तुम्हें कोई उपदेश नहीं है। उपदेश मैं क्या दे सकता हैं, वह

भी तुम्हारी जैसी स्त्री को मैं एक बरबाद इनसान हैं. इस समय मैं सोच जरूर रहा हूँ कि तुम्हारे असर से मैं अपने को सुधार लूँगा, मगर कल मैं क्या करूँगा इसका कोई ठिकाना नहीं। तुम्हारा प्यार पाकर मझे अनुभव हो रहा है कि मेरे अन्दर स्वर्ग भी है कहीं. मगर मेरे अन्दर जो नरक है यह उससे भी भयंकर है। इन दोनों के बीच में बुरी तरह फँस गया हूँ...।"

इतना काप्ते-कहते उसका स्वर काँप गया। भगजोगिनी ने डरकर उसका हाथ पकड़ लिया। मगर दामोदर का ध्यान कहीं और था, उसने उसी री में फिर कहना शुरू किया:

"मैं आज तुमसे अपना तजर्या कहूँगा। मेरी माँ भावनाओं वाली सीधी-सादी स्त्री थीं. मोहल्ला टोला से लेकर घर के एक-एक आदमी का खयाल रखतीं। दिन-रात काम करती रहतीं. सबको खिला-पिला, सफाई-दफाई करने के बाद एक कोने में बैठकर और सिर झुकाकर चुपचाप धीरे-धीरे खाना खातीं। मेरे

पिताजी लम्बे-चौड़े थे, बहुत जहीन, खूबसूरत। दाढ़ी-मूँछ सफाचट । बहुत शौकीन, कानूनी बहस में तेज फौजदारी के दो-तीन मशहूर वकीलों में एक। लेकिन उनकी भी वही आदत थी जो इस शहर के रईसों की है। हो सकता है, मेरी माँ उनके लायक न हों, वैसी खूबसूरत

न हों, उनके जोड़-पार की न हों...।" उसकी आवाज अवरुद्ध हो गई। भगजोगिनी ने अब अपने दोनों हाथों से उसके हाथ को जोर से पकड़कर अपनी आतंकित स्याह आँखों से उसे देखती हुई धीमे स्वर में आजिजी से बोली, "नहीं, न कहो, मैं समझ गई तुम क्या कहने जा रहे हो..."

"मुझे कहने दो भगजोगिनी ! पता नहीं कैसे इस समय सारी बातें मेरी नजर में साफ-साफ आ रही हैं। मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह अनजान में किए गए मेरे तजुर्बो का हिस्सा है। खुले तौर पर मैंने कभी सोचा ही नहीं इनके बारे में। इनके नजदीक जाने की मेरे पास हिम्मत नहीं थी। मुझे डर होता, अफसोस होता, घृणा होती, इनसे बचने के लिए मैंने बरबादी का रास्ता पकड़ लिया।

"मैं बता सकता हूँ आज क्यों ऐसा हुआ। मेरे पिता दिन में खूब पैसा कमाते और रात में करीब आठ या नौ बजे बढ़िया इस्तरी किए हुए पोशाक में, चमाचम जूते पहने और छड़ी घुमाते निकल जाते बाहर। उनके कपड़ों से इत्र और मुँह से पान की जर्दे वाली खुशबू निकलती रहती। मैं ग्यारह या बारह साल का था। पहले से ही यह सब देखता रहा था, मगर अब कुछ-कुछ समझ में भी आ रहा था। अम्मा बारह बजे, साढ़े बारह बजे तक उनका इन्तजार करतीं, कभी-कभी नीचे बैठकर चुपचाप आँसू बहाती रहतीं। बीच में नींद टूटने पर मैं रोज ही या अक्सर यह दृश्य देखता। मुझ पर इसका बड़ा बुरा असर होता। बहुत कुछ समझ में न आने पर भी मुझे अपने पिताजी पर बड़ा गुस्सा आता। वापस आने पर बहाने बनाते या माँ को ही उनकी जहालत के लिए डाँटने लगते। एक दिन..."

भगजोगिनी ने उसके मुँह पर हाथ रख दिया और रोते हुए कहा, "बस अब आगे न कहो, मुझसे यह सब सुना नहीं जाता, बड़ा डर लगता है। होंगी ये बातें, मुझे सुनाकर क्या करोगे ? सब बीत गया, गड़ा मुर्दा उखाड़ने से क्या मिलेगा ?"

दामोदर ने नाराज होकर उसका हाथ अपने मुँह पर से झटक दिया। कुछ क्षणों तक घूरकर देखने के बाद हँसते हुए उसकी ठुड्डी छूकर बोला, "गड़ा मुर्दा नहीं है मेरी जान ! इसका मतलब सबसे है, मुझसे और तुमसे भी। मैंने आज तक ऐसी बातें किसी से नहीं कीं, अपने से भी नहीं। मैं सोचता था, मेरे अन्दर आत्मा नहीं है, आत्मा की जरूरत भी नहीं थी मुझे, मगर आज, इस समय लगता है, यह मेरी आत्मा की आवाज है। न भी हो और चाहे जो भी हो, तुम्हें चुपचाप मेरी बात सुननी पड़ेगी। सुनोगी ?"

"सुनाओ..." भगजोगिनी मुँह फुलाकर दूसरी ओर देख रही थी।

"हाँ, ऐसी बातों के लिए मुझ पर लानत है, सी बार लानत है, मगर मैं कहूँगा जरूर। आज इतवार

था। छुट्टी का दिन करीब दो-तीन बजे थे। बरामदे में वकील साहब लेटे थे। थोड़ी ही दूरी पर एक कमरे में हम माँ-बेटे थे। माँ लेटकर ऊँघ रही थी एक तखत पर और मैं पास ही बैठा सिर झकाए एक किताब पढ़ रहा था। मैं पढने में बुरा नहीं था। चारों ओर सन्नाटा था, जैसे घर में कोई नहीं हो। अचानक मेरी नजर बरामदे में पड़ी।

"पहले एक छाया-सी मालूम हुई, फिर उधर आँखें उठ गईं। वह पड़ोस की एक भले घर की औरत थी, एकदम जवान। उसकी शादी एक बूढ़े अमीर से हुई थी। वह चुपके से आई और बरामदे में ही खड़ी हो गई। फिर उसने चारों ओर नजर घुमाने के बाद वकील साहब की तरफ मुस्कुराकर देखा। और मुझे काटो तो खून नहीं-वकील साहब पता नहीं कैसे उसके पास आ पहुँचे और उससे...गुस्से से मेरे मुँह से जोर से आवाज निकली, "माँ, उठो...।" मेरा स्वर सन्नाटे में गूंज उठा। वह सुनते ही उस औरत ने वकील साहब को धक्का दिया और उनसे मुक्त होकर, 'बहिनजी, बहिनजी' कहती हुई आँगन में उतरकर कमरे में आ गई।

"माँ की नींद खुल गई। उसने पड़ोसिन को अपने पास बिठाया। और पड़ोसिन एक झूठी कहानी गढ़कर डरी-डरी आँखों से बीच-बीच में मुझे देख लेती थी। नफरत और गुस्से से मैं पागल होकर तेजी से उठ खड़ा हुआ और उसको घूरता हुआ पैर पटकता उस कमरे से बाहर निकल गया। बरामदे में वकील साहब नहीं दिखाई पड़े, शायद किसी कमरे में घुसकर छिप गए थे। माँ की वह जवान पड़ोसिन जल्दी ही मेरे घर से निकलकर तुलबुल चाल से अपने घर की तरफ चली गई, जिसके बाद अपने घर के उसी कमरे में फिर पहुँचकर मैं यहाँ पड़े एक-एक सामान को उठा-उठाकर भड़-भड़ पटकने लगा। मकान आवाजों से गूंज उठा। अम्मा दौड़ी-दौड़ी आईं, कारण पूछने पर मैंने चिल्लाकर कहा, 'पूछो उनसे और अपनी प्यारी सहेली से।' माँ को पहले से ही शक था, अब सबकुछ समझ गई और दौड़कर कमरे में जाकर वकील साहब से लड़ने लगीं। वह अपनी सफाई में मिमिया रहे ये। इस बीच मैं भी यह ऐलान करते हुए कि 'रहो तुम लोग इस घर में' वहाँ से भागकर बाहर निकल गया...।" क़ग़ ऊकि चाऊ प

अब भगजोगिनी दोनों हाथों में अपना मुँह छिपाकर उसकी बातें सुन रही थी, गोया आँखें खोलने से कोई भयावह चीज दिख जाएगी। बहुत कुछ देख और भोग चुकी थी वह जिन्दगी में, अब वैसा कुछ भी देखना, सुनना नहीं चाहती थी। गा

अचानक दामोदर की आवाज सैंध गई थी जिसमें से ही रुदन-भरी हल्की-सी कराह निकल गई। भगजोगिनी ने अपने चेहरे पर से झट हाथ हटाकर किसी शिकारी के चौकन्नेपन से देखा। सचमुच दामोदर रोते हुए भी अपने को नियन्त्रित करने की भरसक कोशिश कर रहा था, जिससे उसका सिर झुक गया, मुट्ठियाँ बँध गई, होंठ भिंच गए और रुदन की विकृत लकीरों में भी तनाव दृष्टिगोचर हुआ। अब यह नहीं कहा जा सकता कि भगजोगिनी ने आगे बढ़कर, घुटनों के बल उचककर और अपनी बाई बाँह उसके गले में डालकर, उसकी छाती पर लगभग सवार-सी, दाहिने हाथ के आँचल से पहले उसके

आँसू पोंछे अथवा उसके दिमाग में यह खयाल आया कि आज तक किसी भी मर्द को इस तरह रोते हुए नहीं देखा उसने, यहाँ तक कि बनवारी को भी, जिसने जिन्दगी का क्रूर-से क्रूर बर्ताव सहा।

इस क्रिया के दौरान उसके सुडौल, खूबसूरत स्तनों के बीच दामोदर का मुँह इस तरह दब गया कि साँस लेने में कठिनाई महसूस होने लगी उसे। प्यार भरी करुणा की उत्तेजना तथा इस शारीरिक वर्जिश की वजह से भगजोगिनी फिर पसीनिया गई थी, जिसमें वह मुग्धकारी स्फूर्तिदायी सुगन्ध न होकर दीर्घकालीन परिश्रम का बासी और तेजाबी तीखापन था। दामोदर ने उसकी चिपचिपी काँखों में हाथ डालकर जबरदस्ती उठाकर उसे विस्तरे पर बिठा दिया और कुछ देर तक अपनी पकड़ को दबाए रखा जिससे वह स्थिर बैठी रहे। भगजोगिनी तिरछी दृष्टि से उसे नाराजी से देखने लगी।

दामोदर अचानक विद्रूप-भरी तल्खी से हँस पड़ा और मुँह सिकोड़कर बोला-"मुझे तुम्हारा प्यार चाहिए, दया और करुणा नहीं। दया, करुणा ये सब बनावटी चीजें हैं, किसी भी हालत में मैं बरदाश्त नहीं कर सकता, चाहे कोई भी हो...।"

दामोदर एकटक देखने लगा उसे भगजोगिनी इस बीच साडी से अपने माये और शरीर को अच्छी तरह ढककर और पालथी मार, मुस्तैदी से बैठ गई थी जैसे वह उसका मुकाबला करने को तैयार हो । इस समय दामोदर उसके शारीरिक गन्धों के अन्तर को नापकर मुग्ध हो रहा था- गुण और समय का फासला. जिस मध्य संक्षिप्त मृदु सम्भाषण, इनकार का चकमा और स्वीकार की आकस्मिकता तथा परस्पर दान-प्रतिदान की अनेक अकल्पनीय म्छवियाँ जगमगा रही थीं। यह ऐसे गहरे अपनत्व से भर उठा, जो आकर्षण और विकर्षण के गारे-मिटटी की तरह परस्पर मिलकर प्यार को और स्वाभाविक तथा मजबूत बनाने से सम्भव है।

उसने विचलित होकर, आगे बढ़कर भगजोगिनी का हाथ पकड़ लिया। लेकिन उसने झटक दिया। फिर पालथी के आसन में भीतर से निकले दाहिने पाँव के अँगूठे को उसने स्पर्श करना चाहा मगर भगजोगिनी हाथों के सहारे कुछ पीछे सरक गई। इसके पश्चात दामोदर सीथा होकर उसे चुपचाप निहारने लगा, जैसे अखाड़े में कुश्ती का एक प्रतियोगी दूसरे को आजमाता है। फिर धीरे से बोला यह-

"तुमको बताने के लिए ही मैं बचपन का किस्सा सुना रहा था। उस दिन मेरे दिल व दिमाग पर, रोशनी से भरी जिन्दगी की ठीक उल्टी तस्वीर का ठप्पा लगा दिया गया। आशा से भरा और खूब पढ़-लिखकर किसी ऊँचे ओहदे पर पहुँचने का ख्वाब देखनेवाला में ठीक उल्टी दिशा में चल पड़ा। मेरे लिए अब वैसे सपनों का कोई मतलब नहीं था। मेरा अपमान किया गया, मुझे सताया गया और मैं उसका बदला लेने के लिए बेचैन हो गया। कैसे ? अपने को बरबाद करके, वह सबकुछ करके, जो उनकी उम्मीदों का ठीक उल्टा हो और मैंने वह सब किया। मुझे घर काट रहा था। बहुत कम समय के लिए घर आता। जब पढ़-लिखकर और मर्द होकर कोई इतना क्रूर हो सकता है तो बेपढ़ा मैं क्या उससे अधिक क्रूर नहीं हो सकता? मुझे सिखाया गया, उपदेश दिए गए, पुचकारा गया, रुपए-पैसे दिए गए।

मगर मेरी गिरावट जारी रही। मेरे अन्दर जो भी अच्छा रहा, सब खत्म हो गया। मेरी शादी की गई। एक बज्र गँवार बेवकूफ। हौसला अरमान, लूर-शऊर कुछ नहीं। मैंने अपनी माँ का अपमान इसलिए किया कि क्यों उसने इतना अन्याय सहा ? मैंने अपनी पत्नी के साथ वही सलूक किया, जो वकील साहब ने मेरी माँ से किया था...।"

वह चुप हो गया। भगजोगिनी भी उससे आँखें नहीं मिला पा रही थी और अपनी हथेली पर सिर टिकाकर उदासी के साथ नीचे देख रही थी। लेकिन दामोदर अधिक देर तक चुप नहीं रहा और पस्त-सी आवाज में बोलागी पर को

"मैं अब तुमसे आखिरी बात करूँगा। मैंने यह सब इसलिए नहीं सुनाया कि मैं बहुत अच्छा हूँ और मेरी बरबादी की जिम्मेदारी दूसरों पर है। मैं किसी को दोष नहीं देता। इसमें कोई शक नहीं कि मुझमें अनेक बुराइयाँ हैं। मैं चाहूँ तो भी अपने को सुधार नहीं सकता। मेरे दिल में कभी-कभी आग लग जाती है, शोले दहकते हैं, लपटें उठती हैं। अपनी हीनता के एहसास की लपटें नहीं हैं ये, जो सारी दुनिया और खुद को जला देना चाहती हैं? हो सकता है ऐसा हो। तुम्हारे पास आकर मुझे शान्ति मिली है, सुकून मिला है। तुम्हारे आलिंगन ने जैसे कराएल से तैयार किया गया वह मलहम लगा दिया है मेरे दिल पर जो जलन के फफोलों और जख्मों को बेहद ठंडक पहुँचाता है। तुम्हारे पास आकर एक ही रात में अपने को कुछ-कुछ समझ सका हूँ, तुम्हारे सरल, कुदरती, जिन्दादिल प्यार के चुम्बनों से अनगिनत जलते हुए चिरागों की रोशनी मिली है मुझे, जिसमें मैं अपने तजुबों को खयालात की अँगड़ाइयाँ लेते देख रहा हूँ। तुम मुझे गलत न समझना..."

यह सहसा चुप हो गया और उसके मुख पर एक धीर-गम्भीर पुरुपोचित सौन्दर्य उभर आया, जिसे भगजोगिनी चकित और ठगी मुग्धता से देखने लगी। उसके होंठ भाव-विभोरता में कुछ कहने को आतुर होकर फड़फड़ा उठे और सुन्दर नथुने फूलने-पचकने लगे। परन्तु इससे आगे बढ़ने की हिम्मत नहीं हुई। वह गाँव की एक साधारण सरल स्त्री थी. दामोदर उसके लिए जो भाषा इस्तेमाल कर रहा था. उससे वह आन्तरिक आलोक से भरकर स्वयं जैसे घी के दीये की लौ बन गई।

निश्चय ही घुमक्कड़ी, कई तरह के पापड़ बेलने और नाटकों में भाग लेने की वजह से दामोदर के पास मुखरता, वाचालता, लफ्फाजी, भावुक उतार-चढ़ाववाली भाषा तथा अदायगी भी थी परन्तु रंगमंच पर भी कोई भी प्रभावशाली अभिनय सम्बन्धित पात्र की भावनाओं का गहराई से अनुभव किए बगैर नहीं हो सकता। और यहाँ वास्तविक जीवन के रंगमंच पर तो दामोदर पात्र भी था और उसका अभिनेता भी. उसके अभिनय में कोई खोट और बनावटीपन हो ही नहीं सकता। उसका प्यार, खुशी, उसकी पीडा और त्रासदी अपने थे, इतने सच्चे और विडम्बनापूर्ण कि उनकी अभिव्यक्ति में वह स्वयं किसी नाटक का पात्र बन गया और उसकी बातों ने उसके प्यार, व्यवहार, दुःख और निराशा ने भी भगजोगिनी को वह नहीं रहने दिया जो वह थी, बल्कि उससे अलग करके और ऊँचा उठाकर उसे भी

उसी नाटक का पात्र बना दिया, जो उसकी नायिका, प्रेमिका और पत्नी के रूप में जैसे सक्रिय सहभागिनी का अभिनय करने को सहर्ष तैयार हो।

"मैं तुम्हें यही बताना चाहता था कि मुझे चरणदासी, त्यागी, बेमतलब सबकुछ कुर्बान करके हीन-दीन बनी रहनेवाली औरतों को देखकर बेहद चिढ़ होती है। वे तो जानतीं ही नहीं कि प्यार क्या होता है। वे प्यार न देना जानती हैं और न लेना। वे अपने को स्त्री नहीं, सिर्फ शरीर समझती हैं जिसका काम सिर्फ सन्तान पैदा करना है। मैं तो कहूँगा कि वे अपने को बिस्तरा समझती हैं मर्दों का..."

"ऐ, इस तरह बात न करो औरत के बारे में। मुझे अच्छा नहीं लगता। औरत के मन को तुम क्या जानो ? तुम अपनी बात कहो, हाँ, औरत की बुराई मैं नहीं सुन सकती, यह समझ लो..." भगजोगिनी की नाक-भौं नाराजी से सिकुड़ गई और वह दूसरी ओर देखने लगी। दामोदर को विश्वास नहीं था कि भगजोगिनी जरूरी बात काट देगी। कुछ हतप्रभ-सा होने के बाद उसने हँसकर अपनी बात स्पष्ट की:

"तुम मेरी पूरी बात तो सुनो। मैं औरत की बुराई कहाँ कर रहा हूँ। मैं तो वह बता रहा हूँ जो है। मेरे घर में मेरी माँ ऐसी ही औरत थी और मेरी पत्नी भी है। दूसरे घरों में भी, अपने रिश्तेदारों के यहाँ और दोस्तों के यहाँ ऐसी औरतें देखी हैं मैंने। इस शहर में और दूसरे शहरों में और हिन्दुस्तान में हर कौम में ऐसी औरतों की भरमार है। वे अपने बारे में कुछ नहीं सोचतीं। अपनी भावनाओं के बारे में, अपनी तन्दुरुस्ती के बारे में, अपने पहनावे के बारे में। अपने हक के बारे में भी नहीं। क्या ऐसी बात नहीं ?"

"मैं यह सब नहीं जानती। मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता..."

"क्यों, तुमने भी तो वैसी ही बात कही ?"

"क्या कहा मैंने ?" चौंककर अपनी चमकती आँखों से देखा भगजोगिनी ने।

"इतनी जल्दी भूल गई ? तुमने कहा था कि 'मुझे गहना, साड़ी, कुछ भी नहीं चाहिए। और यह भी कि मैं ही तुम्हारा गहना और साड़ी हूँ। मुझे ऐसी बातों से सख्त चिढ़ है। वे औरतें मुझे पसन्द हैं जो हबककर खाती हैं। बढ़िया से बढ़िया पहनती हैं। किसी का अन्याय बरदाश्त नहीं करती हैं। अपने हक के लिए लड़ती हैं। मैं वह मर्द नहीं हूँ जो औरत को जलील करते हैं। मैं तुम्हारे पास हूँ तो तुम्हें मुझसे खूब साड़ी-गहना लेना चाहिए। अच्छी-से-अच्छी चीजें खानी चाहिए। इससे मुझे खुशी होगी...."

भगजोगिनी ने कुछ देर तक हँसने के बाद कहा, "मेरी बात भी सुन लो। दनिया में कहाँ क्या हो रहा है. किसके साथ क्या हुआ, मुझे कोई मतलब नहीं। मेरे साथ क्या गुजरी, यह भी मैं मूल गई हैं। मैं अब सिर्फ तुमको जानती हैं। तुम्हारे प्यार को सिर्फ तुमको प्यार करती हैं। औरत कोई भी हो. प्यार उसे सिखाना नहीं पड़ता। प्यार से ही तो वह बनी है। अपने प्यार को जताने का उसका अपना तरीका

होता है। वह प्यार देती है. लेती है और प्यार को बचाती भी है। प्यार न मिलने पर, चकनाचूर होकर भी वह प्यार किए जाती है। मर्द यह नहीं कर सकता। मर्द शरीर से ही औरत को समझता है. और सिर्फ शरीर ही औरत नहीं है। औरत के लिए खाना-पीना, गहना, साड़ी जरूरी है, उसको बेहद पसन्द है, हाँ, ये भी प्यार से बढ़कर नहीं हैं उसके लिए..."

वह चुप हो गई। एक संक्षिप्त दार्शनिक-सी मुस्कान के साथ सहज भाव से दामोदर को देख रही थी वह। दामोदर के चेहरे की रोशनी क्षीण हो गई। वह आगे बोल नहीं सका और वगलें झाँकने लगा। फिर अचानक मसहरी से निकलकर वह खड़ा हो गया, "अच्छा, मैं चलता हूँ, देर हो गई है..."

भगजोगिनी दरवाजे तक उसे छोड़ने गई। पता नहीं क्यों, यह उखड़ा-उखड़ा लगा। भगजोगिनी दरवाजे की आड़ में आलिंगन करने के लिए उसकी गर्दन में बाँहें डालकर एड़िएँ उठाकर उसके लम्बे शरीर से टैंग-सी गई और दाहिने हाथ से उसका सिर नीचा करके जल्दी-जल्दी में होंठों के बजाए उसकी मूँछ का ही चुम्बन ले पाई। दामोदर खुश होकर हँसा और उसके दोनों हाथ को अपनी हथेलियों के बीच दबाकर अपनी आँखों और होंठों पर लगाने के बाद उसे मुक्त कर बाहर निकल गया ठंडी रात के बजते हुए सन्नाटे में।

30

दामोदर को अच्छी नहीं लगी थीं भगजोगिनी की बातें। चलते-चलाते उसने सारा मजा किरकिरा कर दिया। रुपया-पैसा, कपड़ा-पोशाक, खाना-खुराक, शरीर-सुख, संरक्षण जैसे असाधारण उपकारों का कोई लेहाज नहीं किया उसने और उसकी बात काटकर लगी बहस करने। वस्तुतः गन्धर्व विवाह का नाटक करने और बेहद चाहने के बावजूद, वह उसे मन-ही-मन पत्नी के बजाय एक खूबसूरत रखैल ही मानता था, जो पत्नी की तरह रह सकती है, पत्नी बन नहीं सकती। उसका तो काम है प्यार के साथ हर तरह का शारीरिक सुख प्राप्त करना जबकि भगजोगिनी ऐसी स्त्री थी जो पलीत्व के बिना शरीर अर्पित नहीं करती और उसके साथ ही पति की गलत सोच के विरुद्ध आगाह करते हुए अच्छी सलाह भी देती है। बनवारी को कितना प्यार दिया था उसने, साथ-ही-साथ काम-धाम में हिम्मत, सलाह और सहयोग भी। और आज की रात्रिकालीन मिलन बेला में दामोदर के प्रति वैसे ही प्यार और विश्वास से भरकर वह पतिव्रता पत्नी की भूमिका में फिर आ गई थी।

दामोदर यद्यपि बाहरी दरवाजे पर उससे विदा लेते समय हँसा था, तथापि बाहर निकलने पर भी उसकी भींहें सिकुड़ी रह गई थीं। गली में सन्नाटा था, बाद में दूर से एक कुत्ते के खाँसने की आवाज आने लगी। जब यह सड़क पर आया तो उसके अन्दर नामालूम कैसी गुदगुदी होने लगी जैसे वह खिलखिलाकर हँस पड़ेगा। सहसा उसके दिल और दिमाग में एक ऊष्मा फैल गई, धुंध के छँटने पर धूप की तरह। उसे अब महसूस हुआ कि उसके अन्दर सुख का एक गहरा समुद्र लहरा रहा है मृदु तरंगों के साथ। मगर समुद्र भी क्या ठहरेगा इस लवालब सुख के सामने ? और इस प्राप्ति के एहसास के साथ ही भगजोगिनी के लिए उसका प्यार और भी बढ़ गया अतृप्ति और वियोग की तड़पन के साथ। क्या वह रो देगा इस प्यारी, चहेती, भोली-भाली स्त्री की याद की पीड़ा में ?

यह तेजी से सड़क पर अपने घर की ओर बढ़ रहा था। निश्चय ही देर हो गई थी यानी बारह के ऊपर। हवा में हल्की-सी ठंड स्टेशन पर किरिपा हलवाई और बीरबरण पनहेरी भी अपनी दकानें निश्चिन्त भी था कि उसकी पत्नी उसका स्वागत ही करेगी। सचमुच उसकी पत्नी में इधर अनोखा बढ़ा रहे थे। आगे उसका दिमाग तेजी से एक कहानी गढ़ने लगा, हर बहानेबाज की तरह वैसे यह परिवर्तन भी हो रहा था। पूजा-पाठ का उसका कार्यक्रम वैसा नहीं रहा। ठाकरजी को जगाना, सुलाना, भोग लगाना बन्द हो गया। गंगा नहाना छूट गया। पता नहीं दामोदर ने उसके साथ कैसा व्यवहार किया था. या कर रहा था कि उसकी होशियार पडोसिनें भी मुस्की काटकर मजाक करने नगी थीं. ऐ बहिन भाई साहब ने कौन-सा 'चित्तबदला' खिला दिया है

चाहे रात में कितनी भी देर हो जाए वह कुछ न बोलती, बल्कि नई चहकते रंग की साड़ी में सजी-धजी उसका इन्तजार करती रहती और जब वह आता तो उसे प्यार से तिरछी दृष्टि से देखती हई मुस्कुराने लगती। दामोदर थका होता. मन-ही-मन जल-भुन जाता। अगर इसी तरह पहले भी बते दिल से स्वागत किया होता तो क्या वह बरबादी के रास्ते पर चला होता? वह गौर से देखने लगता उसके चेहरे को जिस पर पहले मनहूस गम्भीरता, दयनीयता, तुच्छता, मूर्ख जिददीपन, उजड्ड प्रनारीपन और गुस्सा के भाव कभी बारी-बारी से और कभी एक साथ ही दिखाई दे जाते थे। उमे आश्चर्य होता कि चेहरे पर उनका अवशेष भी नहीं है। अब चिकना चिकना पाउडर, लिपस्टिक लगा, माये पर टिकुली, माँग में सिन्दूर की चौड़ी रेखा, बहका आँचल यहाँ तक कि उसके निचले होंठ के नीचे दाईं तरफ वह छोटा-सा तिल भी उभरकर चेहरे को चमकाने लगा किसी कूड़े के भाग्य की

वह सहसा हँसने लगता। पता नहीं इस हँसी में खुशी थी या किसी प्रकार का सन्तोष। फिर वह उसको बाँहों में लेकर गुदगुदाने लगता। अब पत्नी को खुश रखने के लिए अधिक प्रयास करने की जरूरत भी नहीं थी दामोदर को। वह तो स्वयं ही पति को हर हालत में खुश रखने की कोशिश कर रही थी। ऐसी स्थिति में जो भी मिल जाता पति से, उसे वह बहुत अधिक समझती। और दामोदर भी उसे असन्तुष्ट नहीं रहने देना चाहता था ताकि कोई बवाल खड़ा न होने पाए। तब वह पति द्वारा स्वाभाविकता बनाए रखने के चक्कर में उपहार, खेलकटई, चुम्बन आदि से भी अधिक पा जाती। ताकि

दामोदर एक दलदल में धँसता गया। पहले निश्चिन्तता यह थी कि पत्नी बज्र पुजारिन बनकर उससे अलग-थलग होती गई और वह अपनी लापरवाहियों और कुमार्गगमन को न्यायोचित सिद्ध करने के लिए हर जगह रोता रहता कि उसके साथ घोर अन्याय हुआ है। निश्चय ही, भगजोगिनी के मिल जाने से वह बहुत प्रसन्न हुआ। तब उसके दिमाग में एक बार भी यह खयाल न आया कि उसकी बच्चियों का क्या होगा और उसकी पत्नी का भी ! वह झूठ-पर-झूठ बोलता और षड्यन्त्र-पर-षड्यन्त्र करता गया उस बेहद सुन्दर और बेसहारा स्त्री को प्राप्त करने के लिए जिसके लिए वह दिन-रात छटपटा रहा था।

उसके हृदय को जलाती महत्त्वाकांक्षाओं ने ही उसे मंजिल पर भी पहुँचा दिया लेकिन भगजोगिनी की सास द्वारा बार-बार संकेत करने पर भी कि गन्धर्व विवाह हिन्दू विवाह की एक पद्धति है और वह उसे पत्नी की तरह स्वीकार कर ले, उसकी हिप्मत जवाब दे गई। तब उसे गर्व के साथ अपने उच्च परिवार की प्रतिष्ठा की याद आई. जिसके एक पुरुखे अवध के नवाब के यहाँ एक फौज अधिकारी थे और जिस दिन उसकी पत्नी ने अरुन्धती के लिए घर-बार देखने का आग्रह करते हुए उसकी करतूतों का पर्दाफाश किया तो वह अपनी तेजी से बढ़ती सुन्दर, बुद्धिमान और स्वाभिमानी लड़कियों के बारे में पहली बार सोचकर हक्का-बक्का रह गया। तभी उसने मन-ही-मन संकल्प किया कि अपनी लड़कियों की ऐसी शादी करेगा कि अडोस-पड़ोस देखता रह जाएगा।

आश्चर्य तो यह है कि इन परस्पर विरोधी विचारों के बीच भगजोगिनी भी पागल-सी हो गई थी उसके प्यार में। यह सदा उसकी याद की माला जपती रहती, उसकी सलामती के लिए ईश्वर से प्रार्थना करती और यह भी कि उसका मन कभी न बदले और उसका प्यार हमेशा एक समान रहे। पता नहीं निरुपाय परिस्थिति विशेष से अथवा दामोदर के नाटकीय वात-धवहार और गहन प्यार के अनुभवों से उसकी प्रतिभा मौलिकता की सीमा तक उत्तेजित हो जाती और उसका हर मिलन एक नया मिलन होता- शरीर, पहनावा, सज्जा, दृष्टि, अन्दाज, प्रस्तुति और सक्रियता भी। आशा-शिखर के चापलूसी-भरे अनुरोध को यह अप्रत्याशित निर्ममता से तिरस्कृत कर देती एक अन्तहीन 'ना' - सा। और जब वह नाराज होकर कठोर वचन के तीर चलाकर मुँह फुला लेता. वहाँ तक चली जाती यह जहाँ एक शायर के अनुसार, दिल के प्यार की रोशनी जलती है। था।
"तुम कैसे कभी कली बन जाती हो और कभी फल ?" दामोदर ने एक बार लाड़ से पूठा

"तोहरे खातिर-तोहरे प्यार के खातिर।" भगजोगिनी ने मुस्कुराकर सरल भाव से कहा था। "अपने खातिर नहीं ? अपने प्यार के खातिर नहीं ?"

"यह अच्छा नहीं लगता, स्त्री सिर्फ अपने लिए ही कुछ बने... तब वह कुछ बन भी नहीं सकती। यह प्यार कैसा जो सिर्फ लेना ही जानता हो...।"

दामोदर ने बात आगे नहीं बढ़ाई इस डर से कि वह कोई ऐसी बात न करने लगे जो उसे अप्रिय हो। वह थक चुका था और उसने आँखें मूँद लीं। भगजोगिनी आगे झुककर उसके माये को हल्के-हल्के दबाने लगी चुपचाप ।

दामोदर जब भगजोगिनी से दूर होता, उसके साथ बिताए समय के अनुभवों को बटोरने की कोशिश करता। कितने मोती? और प्रत्येक मोती का क्या मूल्य ? लेकिन अनेक पुरुषों की तरह यह उसके बूते की बात नहीं थी। हर अनुभव के आनन्द की याद उसे विजय-गर्व, तुच्छ घमंड' और उन सभी लोगों के प्रति घृणा एवं प्रतिहिंसा से भर देती जो मामूली गेमटीचर, छिछोर, लंठ और लफंगा समझकर उसका मजाक उड़ाते रहे थे। विशेष रूप से वह सूरज प्रसाद रईस के प्रति अकारण ही जबरदस्त क्रोध से भर

उठा, जिन्होंने वकालत में असफलता की क्षतिपूर्ति नाटक निर्देशन से कर ती थी और अपने नाटकों में दामोदर को खलनायिकाओं और लाठी सवार जोकर के सिवाय और कोई अच्छा पार्ट नहीं दिया।

एक दिन जब अगले नाटक 'दानवीर कर्ण' के पात्रों के चुनाव के सम्बन्ध में पुराने अनुभवी अभिनेताओं और कुछ नवसिखुआ नौजवानों की सभा सूरज प्रसाद के घर में हो रही थी, दामोदर प्रसाद ने बीच में उठकर टेढ़ी गर्दन और कड़वा मुँह बनाकर कहा:

"वकील साहब, 'दानवीर कर्ण' तो पहले भी हो चुका है। 'सुल्ताना डाकू', 'कुणाल' भी यो बारे खेला जा चुका है। पुरानी चीजों को घसीटने से क्या फायदा? पब्लिक को कुछ नया नाटक दिखाइए न..."

"लाठी सवार जोकर तीन बार बन चुके हो तुम, इसका मतलब है कि इस सीन को निकालकर तुम्हारी भी छुट्टी कर दी जाए..." सूरज प्रसाद एक प्रतिष्ठित वकील थे, जो साठ की ओर कदम बढ़ा रहे थे और एक जूनियर फिसड्डी जोकरुल्लू की बात उन्हें बरदाश्त नहीं हुई।

"आप नाहक नाराज हो रहे हैं। मैं तो कह रहा था, पुरानी लकीर पीटने से कोई फायदा नहीं, शकुन्तला जैसा नाटक दिखाओ तो स्टैंडर्ड ऊँचा हो। मुझे पार्ट दो आप दुष्यन्त का तो में दिखा हूँ कि नायक का पार्ट कैसे किया जाता है। इस नाटक का नायक और डायरेक्टर में बनूँगा। मैं खुद राजा दुष्यन्त की तरह लम्बा-तगड़ा और जवान हूँ। रोबीला चेहरा है मेरा। अभी तक जो-जो पार्ट

दो..." जिए हैं मैंने सभी याद करते हैं आज तक। आप इस्तीफा देकर नए लोगों के लिए जगह खाली

कर 'आप' और 'तुम' के मिश्रित सम्बोधनों के साथ दिए गए नेक सुझायों पर सूरज प्रसाद रईस दीर्य और मनुष्यता सभी घास चरने चली जाती हैं। यह नामक उस जिला प्रसिद्ध नाट्य निर्देशक की हालत ऐसी हो गई जिसमें कला संवेदना, तर्कवृद्धि,

क्रोध से लाल होकर काँपते हुए चीख पड़े। पोट आउट, यू फूल। जाकड़ी कनस्टर! नाटक में तो तुम पर्दा उठाने और गिराने लायक भी नहीं हो। नाटक की पब्लिक के बीच बैठने लायक भी नहीं। उजड्ड, उचक्का। निकालो इसको फिर आने न पावे यहाँ..."

उसके बाद तो हल्ला मच गया। लोग उठ खड़े हुए जिसमें कुछ देखना और सुनना असम्भव था। अन्त में दर्शकों के पल्ले इतना ही पड़ा दृश्य के रूप में कि कई लोग दामोदर प्रसाद को पकड़कर बाहर घसीट रहे हैं और वह हवा में हाथ फेंकने की कोशिश

करते हुए चिल्ला रहा है: "मैं अगर इस बहरुपिया को बोरा ओढाकर नहीं पिटवाया स्टुडेंटों से तो असल बाप का बेटा नहीं। जानता नहीं कि मैं विजयीपुर का रहनेवाला हूँ...।"

यह सही है कि दामोदर प्रसाद विजयीपुर का नहीं था. लेकिन उसका मकान उस गाँवनुमा स्थान से बिल्कुल समीप था, जो व्यावहारिक रूप से शहर का ही हिस्सा था और जहाँ के लोग पहलवानी, कुश्ती दंगल, लठैती, साहस-दुस्साहस के लिए मशहूर थे। लडाई-झगड़े में हारता या मार छाता व्यक्ति अक्सर चुनौती फेंकता सुना जाता 'विजयीपुर के लठैतों से तेरा भुर्ता न बनवाया तो मेरा नाम नहीं...।'

यद्यपि गाली-गलौज के साथ दामोदर पर एक-दो हाथ भी पड़ गए थे, फिर भी इस कांड से वह बेहद सन्तुष्ट हुआ, जैसे किसी प्रतिभाशाली नौजवान अभिनेता ने किसी अयोग्य, भ्रष्ट सीनियर नाट्य अधिकारी को उसकी हैसियत बता दी हो। इसका यह भी परिणाम निकला कि उस रात गन्धर्व विवाह से प्राप्त रखैलनुमा उपपत्नी तथा सात फेरे से मिली शुद्ध पत्नी दोनों को ही नाट्य राजनीति के बारे में उसका लम्बा और घोर आत्मप्रशंसा-भरा कर्कश स्वर का उबाऊ वृत्तान्त सुनना पड़ा, जिसमें स्वयं के कलात्मक अभिनय के अनोखे अभिनीत उदाहरणों के साथ सूरज प्रसाद को कात्पनिक चरित्र हनन द्वारा घटिया कलाकार के साथ घटिया इनसान भी सिद्ध किया गया था। दोनों ही विवादास्पद पत्नियाँ यह नहीं समझ सकीं कि पति के प्यार के हित में ऐसे महत्त्वपूर्ण अवसर पर हँसना उचित है या दुःखी होना, फिर भी दोनों ने ही लम्बी प्रतीक्षा के अन्त पर अपने-अपने तरीके से सहानुभूति प्रकट की थी, जिनमें से एक के इस कथन पर दामोदर को अपार हर्ष हुआ, "मेरे सामने आया हरामजादा तो बोरसी-भर आग से उसका मुँह झींस दूँगी।"

भगजोगिनी ने उसके माथे और गाल को प्यार से सहलाते हुए पुचकारती आवाज में कहा था, "तुम ऐसी जगह अकेले न जाया करो। अच्छा तो यही है ऐसे बुरे लोगों का साथ-संग हमेशा के तिए छोड़ दो। हाँ, ड्रामा-नाटक की अपनी दुकान खोल लोगे तो जैसा चाहते हो, मैं तुम्हारे साथ शकुन्तला जरूर बनूँगी...हाय राम, कैसा लगेगा...।" अन्त में वह हँसने लगी।

दामोदर दबे स्वर में चीख-सा उठा और फिर एक हाथ से भगजोगिनी को कमर से उठाकर तया दूसरे हाथ की मुट्ठी के बाहर निकले अँगूठे को सिर पर रखकर घुमरी-परइया का नाच करने लगा, "हाय मेरी बुलबुल, मेरी कबूतरी, मेरी घाघरेवाली ! कितनी अच्छी हो तुम..."

भगजोगिनी उस रात पहली शादी के समय का घाघरा पहनकर एकदम नई सज्जा के साथ प्रस्तुत हुई थी। अपने प्रिय के इस खेल से वह लहालोट हो गई। वह अतिशय आन्तरिक खुशी से

जैसे गुब्बारे की तरह हल्की होकर आकाश में उडी जा रही हो दामोदर के साथ। समय बीत रहा था-दिन और महीने। इस बीच उसने कई लोगों से झगडा मोल लिया नाहक

ही। वह खूब फैशन से निकलता और सभी से ऐसी ऊँचाई से बोलता, जिससे उसके कई मित्र भी नाराज रहने लगे। घमंड ईर्ष्या, घृणा से वह अपने प्यार को महसूस करके भगजोगिनी से और भी

व्याकुल उत्तेजना से मिलता और वहाँ जो सन्तोष देता और प्राप्त करता उससे आत्मगौरव की उसकी कलगी और ऊँची हो जाती। एक नसेडी जैसी हालत हो गई थी उसकी। वह हमेशा भगजोगिनी के प्यार की उत्तेजना में रहना चाहता जो उसे बहुत ऊँचा उठा देती, लेकिन समस्या यह थी कि उसको अपने घर पर पत्नी को भी प्रसन्न रखना पड़ता। रतजगी और थकान उसे दिन में एक अजीब उदासी के एकान्त में ढकेल देते। और, दिन उसके लिए प्रतीक्षा की उम्मीद बन जाता-प्रतीक्षा किसी को 'अपमानित करने' अथवा किसी से शाब्दिक युद्ध करने की। वह कभी अबे-तवे पर उतर जाता और कभी नाटकीय दार्शनिक तुच्छताओं व व्यर्थताओं के बाण चलाने लगता।

उसका रोम-रोम हर्षित, कृतज्ञ और गद्गद था कि जाड़े-भर उसकी आत्मा को भगजोगिनी से सुखद गर्मी मिली और गर्मी में आह्लादकारी शीतलता और मूसलधार बरसात की एक रात में वह उसके लिए इतना व्याकुल हुआ कि हेडमास्टर द्वारा बुलाई गई एक जरूरी मीटिंग का झूठा बहाना करके एक पुराने, जर्जर, सींक निकले किंचित खैखरे छाते की निष्फल छाया में भीगता, धोती कठाकर पानी-कीचड़ में छपकता और क्षुद्र नदी की तरह उतराई गली को हेलता हुआ जब पहुँचा और भीगे हुए मुँह को हाथ से पोंछते हुए शर्मीली मुस्की काटते हुए धीरे से बोला 'मैं तुलसीदास हूँ.. तो दरवाजा खोलने आई हुई भगजोगिनी हक्का-बक्का रह गई।

दामोदर प्रसाद एक घंटे पहले आया यानी लगभग साढ़े आठ बजे थे। पानी लगातार पीट रहा था। गनीमत की बात यह थी कि सभी मकुनी-चोखा खाकर सो गए थे और भगजोगिनी भी उसके आगमन की नाउम्मीदी के कारण इस इच्छा के साथ ऊँघ रही थी कि इस समय उससे मिलने में कितना अच्छा लगता ! लेकिन उसे देखकर वह डर गई।

वह हाथ पकड़कर उसे कमरे में ले गई। पहले बदन पोंछने के लिए अँगोछा दिया, उसके बाद पहनने के लिए अपनी एक साड़ी और अन्त में ओढ़ने के लिए एक शॉल। जब आइना-कंवा पेश किए गए तो बाल झाड़ते हुए वह मुस्कुराने लगा एक शहीदाना मुस्कुराहट, जैसे देश के लिए अपार कष्ट सहने के बाद एक राष्ट्रभक्त स्वागत के लिए एकत्रित अपार भीड़ के सामने पहुँचा हो।

भगजोगिनी ने तांजेब का उसका कुर्ता, धोती और बनियाइन बाहर चौड़े बरामदे की अलगनी पर टाँग दिए। कमरा सिरहानेवाले छोर पर टप-टप चू रहा था, इसलिए पलंग विपरीत छोर की तरफ सरका दिया गया था, जिसके बीच में पाटी पर टाँगें लटकाकर बैठा दामोदर बन्दर की तरह इधर-उधर मुँह घुमाकर घूर रहा था, जिधर भगजोगिनी विचरण कर रही थी गम्भीरता के साथ उसकी ओर बिना देखे ही। काम समाप्त कर वह उससे कुछ हटकर पलंग के किनारे ही बैठती हुई बोली: "तुलसीदास कौन ? अभी तक तुम दुष्यन्त थे..."

दामोदर ने उसे अपने पास खींचने के लिए अपना हाथ बढ़ाया, लेकिन उसके पहले ही वह और हट गई।

"तुलसीदास को तुम नहीं जानती ? तुलसीदास ने रामायण लिखी थी...।"

"वही पोथी ? मेरे बाबू रामायणजी कहते हैं। फिर ?"

"अरे, तुलसीदास की कहानी नहीं जानती हो ? वह अपनी पत्नी रत्नावली को बहुत प्यार करते थे, एक रात उससे मिलने उसके मायके पहुँच गए घनघोर बारिश में। वह इतने उतावले थे कि दीवार पर चिपटे लम्बे विषधर साँप को रस्सी समझकर उसके सहारे ऊपर चढ़कर खिड़की के रास्ते रत्नावती के कमरे में दाखिल हो गए..."

"फिर क्या हुआ ?"

"अगर नहीं जानती हो तो इसके बाद की कहानी नहीं बताऊँगा.

"हाँ, अब याद आया। किसी ने मुझे बताया था। वैसे तो मैं नहीं कहूँगी। चाहती भी नहीं कि तुम मुझे छोडकर जाओ। जब तुम नहीं आए थे. मैं तुम्हारी ही याद में तड़प रही थी। अब इस तुम्हारी तन्दुरुस्ती के लिए सोचकर मरी जा रही हूँ... तुम तो जानते हो कि मेरा खानदान वरयाद हालत में देखकर मैं नाराज हैं तुमसे । तुलसीदास होंगे अपने घर के लिए, दुनिया के लिए, मैं तो हो गया, शिवजी न करें तुम्हें कुछ हो, मैं तो खाँसी बुखार के नाम से ही काँप जाती हैं। सर्दी-भर मैं तो तुम्हारी हैं हमेशा के लिए, कहीं चली तो नहीं जाती, पानी रुकने पर आ जाते तो क्या फर्क में करती रही, तुम मेरे पीछे अपने पहनने ओढने, खाने-पीने, संयम-नियम का ध्यान नहीं रखते थे।

दामोदर सहसा उठ खड़ा हुआ । त्यौरियाँ चढ़ गई उसकी भौंहें सिकुड़ गईं। आँखें निकल आईं। पड़ता।"

यह होंठ सिकोडकर फुसफुसाई आवाज में बोला:

"अच्छा तो ये बात है ! तुमने एक खुशनुमा वक्त में प्यार के जज्बात और उसके तजुर्बे के यादगार क्षणों के बारे में नहीं सोचा और उस मनहूस, बेवकूफ रत्नावली की तरह मुझे उपदेश देने पर उतर आई। मेरी समझ में नहीं आता कि स्त्री क्यों समझती है दुनिया को सुधारने का जिम्मा उसी पर है! उसको क्यों मुगालता है कि दुनिया का सारा दुःख, सारा अन्याय वही झेलती है। कितनी निष्ठुर, कठोर हो तुम। मेरे प्यार की बेकदी करके अपने से मुझे दूर करना चाहती हो. आज मैं अच्छी तरह समझ गया। और उसका कारण भी मैं आज ही जान सका है। वह फली गॅटईवाला आज भी तुम्हारी यादों में बसता है। रात में तुम प्यार का नाटक करके मुझसे मिलती हो, और दिन उसके नाम की माला जपती हो ! वह चाहे जिस स्वर्ग में बैठा हो, उसका जाना तुम्हारी और तुम्हारे खानदान की बरबादी हो गई और मेरा इतना जान देना, अपने परिवार को कुर्बान करना, तुम्हें प्राणों से बढ़कर मानना-यह सब कुछ न हुआ। काश! तुमने मुझे इतना न सताया होता! खैर, मैं तुमसे विदा लेता हूँ..."

अन्त में दामोदर का स्वर रुआँसा हो गया और वह बरामदे से अपने गीले कपड़े ले आकर पहनने लगा। इस बीच भगजोगिनी रोई-चिल्लाई, उसके पैरों पर गिरकर कसमें खाई, बार-बार विश्वास दिलाया, उससे चिपटने की कोशिश की, लेकिन दामोदर हर कोशिश को ठुकराकर चुपचाप अपना दुटहा छाता लिए हुए बाहर का दरवाजा खोलकर निकल गया।दीन

अभी दस भी नहीं बजे थे, जब दामोदर अपने मकान में दाखिल हुआ। अरुन्धती को छोड़कर, जो ऊपरी मंजिल वाले कमरे में पढ़ रही थी, शेष बहनें वहीं खा-पीकर सो गई थीं। बारिश हल्की होकर झींसी बन गई थी।

"अरे आप तो भीग गए हैं, पहले झटपट कपड़े बदल लीजिए..."

दामोदर कुछ नहीं बोला और एक कुर्सी पर बैठकर पत्नी का इन्तजार करने लगा जो फौरन उसके कपड़े लाने चली गई थी।

चुपचाप ही उसने कपड़े भी बदले।

"बीच में कहीं रुक जाते...।" उसकी पत्नी ने दबी आवाज में पूछा।

"रुका था, मीटिंग तो जल्दी ही खत्म हो गई। बेकार ही बुलाया था ! नहीं तो और भी पहले ही चला आता...।" दामोदर ने हँसने की कोशिश की, मगर हँसी होंठों में ही ऐंठकर तिरोहित हो गई।

पत्नी को इस समय दामोदर पर बड़ा लाड आ रहा था। अभी तक तो वह उसकी घड़की. नाराजी, बहानेबाजी, नाटकीयता, जोकरी-भरी वाचालता ही देखती आ रही थी-किसी बच्चे की

मासूम उदासी तो कभी नहीं देखी उसके चेहरे पर। उसके दिल में कुछ कौंध गया और अचानक आगे बढ़कर उसके गले में बाँहें डालकर तथा अनाड़ी की तरह उसके गाल पर चुम्बन की बेढंगी आवाज पैदा करती हुई बोली, "मेरे राजा, आज क्यों उदास हैं !"

दामोदर ने अचम्भे के साथ उसकी ओर देखा। पहले का समय होता तो ऐसे असामयिक वाम हरकत, चुम्बन और सम्बोधन पर बिगडकर उसे बुरी तरह फटकार दिया होता, यद्यपि पहली बार ही उसके साथ ऐसा व्यवहार कर रही थी यह। दामोदर के मुख पर एक अनजान मुस्कुराहट उपर आई। उसने अब अपने दुःख और अपमान से अलग हटकर उसे गौर से देखा। उसका कुतूहल काफी बढ़ गया। फिर उसने ऊपर से नीचे कई बार और भी ध्यान से उसे निहारा।

वह शरमाकर दूसरी ओर देखने लगी। फिर मुस्कुराकर धीमे स्वर में बोली, "पूरकर क्या देख रहे हैं ? क्या मैं किसी बेस्वा-पतुरिया से कम सुन्दर हूँ, हाँ, वैसे बनावटी नखरे मुझे नहीं आते..." दामोदर चमकती आँखों से उसे देखने लगा एकटक। फिर उसके गाल को धीरे से सहलाते हुए कहा, "ऐसी बात न करो। तुम बहुतों से अच्छी हो..."

"कैसे?" पत्नी ने तिरछी दृष्टि से देखते हुए पूछा, "धन्य भाग्य मेरे, मुँह से आखिर निकला तो यह...।"
"अच्छा, पहले खाना ले आओ, उसके बाद सबकुछ बताऊँगा। क्या बनाया है...।"

बरसात में कुछ अधिक बनाया नहीं-तहरी, बैंगन का तीखा चोखा, उड़द के दहीबड़े, खोआ की बर्फी-वही वाली बर्फी, जो आपको कभी सुन्दर जवान पड़ोसिन के हाथ की बनाई हुई बहुत पसन्द आई थी। मैं तो वैसी तारीफ के लिए तरस ही गई।""

वह व्यस्त होकर और कुछ इतराकर कल्पना की आँखों से अपने पति को देखती हुई तेजी से चली गई, जैसे हवा में उड़ रही हो।

दामोदर हैरत से उसे जाते हुए दिलचस्पी से देखता रहा। पत्नी के अधिकार से मजाक-भरा व्यंग्य करना कब से सीख लिया इसने ? कहाँ था वह अब तक ? भगजोगिनी में क्या इतना खोया था कि अपनी पत्नी पर उसका ध्यान ही नहीं गया कि उसमें क्या परिवर्तन हो रहे हैं ? जबकि रोज घर भी आता रहा, उसको देखता रहा, उसको प्यार भी देता रहा। यह कैसे सम्भव है कि इस बीच उसकी पत्नी का स्वास्थ्य इतना अच्छा हो गया और वह उससे अनभिज्ञ रहा। वह तो कुछ मोटी होकर गलगुथनी बन गई हैं। होंठ भरे और लाल, आँखों में चमक, नितम्ब और उरोज भारी। ऐसा तो कभी नहीं था।

क्या लम्बे अरसे तक कष्ट और उपेक्षा सहते, कठोर परिश्रम करते, खाने-पीने में अपने शरीर से अन्याय करते और पाँच बच्चों का लालन-पालन करते उसके शरीर की हड्डियाँ टेढ़ी हो गई थीं, जिसको मुटापे ने और भी उभार दिया है? यह सोचकर दामोदर को उस पर दया आई। तब याद आया कि जब चलती है तो बाईं तरफ का उसका कूल्हा अधिक ऊपर उठता है। कुल मिलाकर उसका शरीर पहले से अधिक बेडौल नजर आ रहा है, फिर भी साड़ी में बुरी नहीं, अच्छी लग रही है। और...

अचानक दामोदर का चेहरा खिल उठा। वह सिर झुकाकर धीरे-धीरे हँसने लगा। हाँ, उसके बालों को तो वह छोड़े जा रहा है। वह आज टेढ़ी माँग काढ़े हुए है ! इसके पहले टेढ़ी माँग काढ़नेवालियों को वह वेश्या की उपाधि देती रही थी। उसके विचार से सीधी, सच्ची, त्यागी, पतिव्रता स्त्री के लिए सीधी माँग का ही तरीका बनाया गया है। यह विचार उसका कहाँ गया ?

यह सब सोचते हुए उसे जवानी के दिनों की एक घटना याद आई। यह एक शादी की दावत में गया था, जहाँ एक-से-एक बढ़िया मिठाइयाँ रखी थीं, अन्न की, खोआ की, छेने की, मलाई की। और उनके साथ लेकिन कुछ अलग, एक पात्र में पुराने ढंग की अकबरी नामक एक सादी-सी मिठाई

रखी थी, चौकोर वर्गाकार-सी, बालूशाही की उपेक्षित संगिनी। बात यह कि बाजार में 'रसगुल्ला बम' जैसी हर किस्म, स्वाद और नाम की नई फैशनेबल मिठाइयाँ आ गई थीं, जिनके बीच 'अकबरी' पुरानी और फिसड्डी समझी जाने लगी और तेजी से बाजार और दावतों से लुप्त हो गई। उसे यह मिठाई बचपन से ही बहुत पसन्द थी. और बहुत दिनों बाद उसे दावत में देखकर उसका मन ललच

गया। और उसने सभी उम्दा मिठाइयाँ छोडकर उस दावत में 'अकबरी' मन से खाई। 'क्या लुत्फ दिया था उस रोज बेचारी मिठाई ने'- यह सोचते ही दामोदर के दिमाग में यह भी खयाल आया- 'क्या उसकी पत्नी 'अकबरी' नहीं है जो आज आकर्षित कर रही है ?'

यह सोचते ही वह बेतहाशा हँसने लगा और जब हँसते-हँसते आँखों में आँसू भर आए तो अचानक गम्भीर हो गया, उस शब्दहीन लट्टू की तरह जिसके तीव्र नृत्य काल का शीघ्र ही अन्त हो जाता है। और तब उसे अचम्भा हुआ यह अनुभव करके कि इस समय उसके अन्दर विगत लम्बे दाम्पत्य जीवन की तरह अपनी पत्नी के लिए दमित व्यंग्य, उपहास, उपेक्षा. तिरस्कार, रोष का कोर्ड भी भाव शेष नहीं रह गया है-बल्कि एक तीव्र इच्छा पैदा हो गई है उसके लिए...

* इसी समय वह आई सिर झुकाकर जल्दी-जल्दी खाने की थाली के साथ। सामने स्टूल यह पहले ही खिसका गई थी, जिस पर थाली रखते समय तक दामोदर उसे एकटक देखता रहा। तत्पश्चात यह सीधी खड़ी हो गई और पति की ओर हवाई नजर फेंकती हुई बोली :

"अदरक-हरी मिर्च का अचार ले आऊँ ?"

"इस साड़ी में हरी मिर्च तो तुम खुद ही बनी हुई हो..." दामोदर ने उसे छेड़ने की कोशिश की, उस अकड़ें, दम्भी व्यक्ति की तरह, जो अपने मुख से मेल-मुहब्बत, उदारता, सहानुभूति और संवेदना की बातें बड़ी कठिनाई और बेढंगेपन से निकाल पाता है।

पत्नी पहले से ही गम्भीर होकर उसकी तरफ नहीं देख रही थी। उसकी नजर झुकी थी और गर्दन किसी शानियर व्यक्ति की तरह टेढ़ी। पति की बात का उसने कोई जवाब नहीं दिया बल्कि धीमे स्वर में 'पानी लाती हूँ' कहकर तेजी से कमरे से बाहर निकल गई। लौटने के बाद पानी रखकर जब खड़ी हुई तो दामोदर ने धीमे से मृदु स्वर में कहा:

"आज बहुत सुन्दर लग रही हो... क्या नाराज हो ?"

दामोदर की बात का उसने फौरन उत्तर नहीं दिया, बल्कि तेजी से सिर घुमाकर उसकी तरफ देखा। फिर नजर को यथापूर्व लौटाकर अपने शरीर को तिरछा किया, और दाई बाँह को आधा ऊपर उठाकर और किहुनी को बाएँ हाथ से छूकर गर्दन तानती हुई तटस्थ स्वर में बोली :

" बदन में बहुत दर्द है..लग

"अच्छा !" दामोदर इस अप्रत्याशित उत्तर से हतप्रभ होकर बोला, फिर सिर झुकाकर खाने लगा।

"तुम्हें कोई दवा ले लेनी चाहिए थी," एक मिनट बाद सिर झुकाए ही उसने सहानुभूति प्रकट की।

"ठीक हो जाएगा" वह मन-ही-मन मुस्कुराई।

वह कुर्सी खींचकर पास में बैठ गई, लेकिन उनके बीच ऐसी चुप्पी उभर आई, जो एक हद तक हास्यास्पद भी थी। दामोदर ने सोचा था कि पत्नी उसके आमन्त्रण को खुशी से कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार कर लेगी. लेकिन ऐसा न होने पर वह गुस्सा गया कि उसे सताने के लिए बहाना कर रही है। निश्चय ही उसकी पत्नी के तत्काल मूड के लिए कारण और भी हैं। लेकिन अधिकांश ओढा हुआ था। पुरुष-आँखों की भाषा फौरन कौन स्त्री नहीं पढ़ लेती, और आज जब शुरू में ही ताड़ गई कि अर्थ दूसरा है तो वह अगरान से भरती गई। स्वाभिमान ? गरिमा ? घमंड ? पहली बार

गुणग्राही मिलने पर लम्बे समय तक कुड़े में उपेक्षित पड़े हीरे की कीमत बढ़ गई तो मोल-तोल क्यों न हो ? यह अपनी ही नजर में कुछ ही क्षणों में ऊँचा उठ गई और अब सस्ते में नहीं हिलने वाली। हाँ, दुःख भी था और कुछ रोष भी कि दाम्पत्य जीवन के बाईस तेईस वर्षों में, यदि आज की

बात छोड़ दें तो उसके मर्द ने उसे कभी अपनी आँखों से नहीं बुलाया। एक बार भी कामना-तप्त हाथ से नहीं छुआ, जिससे शरीर नीचे से ऊपर तक झनझना जाए, असहा आतुरता के साथ भीतर आँधी चलने और बिजली कौंधने लगे। सच्ची मीठी प्यार की बातें छोड़ भी दें तो झूठी, छलिया बातों से भी तो उसका दिल जीतने की कोशिश नहीं की उसके पति ने। अपनी तबीयत से कोई बढ़िया उपहार लाकर नहीं दिया और कोई साड़ी-सूड़ी लाने पर बाहर से किसी के हाथ भेजवा दी।

उसकी शादी क्या सिर्फ किसी सिकुड़ी भींह या निर्दयी और लापरवाह मूँछ से ही हुई थी ? उसके बच्चे क्या उनकी भूख-प्यास से नहीं जन्मे हैं? स्वयं उसकी बेगारी की सन्तानें ? यह सोचते ही उसका हृदय हाहाकार कर उठा और अपनी बच्चियों के लिए प्यार से भरकर वह मन-ही-मन छटपटाने लगी। इच्छा हुई कि उसी समय जोर-जोर से चिल्लाने लगे। वह अपनी बच्चियों को कहाँ से क्या लाकर दे दे जिससे वे अपने को हीन न समझें ?

परन्तु क्या सोच रही है वह ? जल्दी ही अपने को धिक्कारने लगी। उसकी बच्चियाँ वैसी नहीं हैं जो वह सोच रही है। सभी स्वाभिमानी हैं। कितना धीरज है उनमें। किसी चीज के लिए जिद्द नहीं करतीं और जो मिल जाता है, उसी पर सब्र बाँधे रहती हैं और अरुन्धती ? उसने तो सारा घर ही सँभाल लिया है।

अरुन्धती की एक बात ने तो उसके जीवन का ढर्रा ही बदल दिया है। क्या वह फिर उसी पुरानी जिन्दगी को ही अपनाने जा रही है, जो छोड़ चुकी है ?

गृहपलायन की धमकी देकर घर से दामोदर के जाने के कुछ दिन पहले की बात है, जब अरुन्धती ने अपनी माँ से गम्भीरतापूर्वक कहा था

"तुम हमेशा गम्भीर क्यों रहती हो? बाबूजी आते हैं तो तुम्हारा चेहरा और बिगड़ जाता है। तुम हमेशा तनी रहती हो, किसी की ओर देखती भी नहीं। आज तो वह बिना खाए ही चले गए। भक्तिन बन गई हो, फिर तुम्हारा चेहरा हमेशा गुस्सैल क्यों बना रहता है ? पड़ोसिनों से भी गुस्से में बोलती हो। अपनी बच्चियों पर चिल्लाती हो। अपने पर ही गुस्सा उतारती हो। ठीक से खाती नहीं, नाश्ता नहीं करती, जब देखो, उपवास करने बैठ जाती हो..."

"तो क्या करूँ ? पाल-पोसकर बड़ा कर दिया तो जबान चलाने लगी? तुम क्या जानो, मैंने कितना सहा है..." ठाय़ ञति

"अम्मा, तुम समझती क्यों नहीं? मैं जबान थोड़े ही लड़ा रही हूँ। तुमने सहा है, इससे दूसरों को क्या मतलब ? तुम कमजोर, दीन-हीन बनोगी तो लोग और भी सताएँगे, और भी दुःख पाओगी। फिर हम लोगों का क्या होगा ? यह पूजा-पाठ, उपवास, कंठी, माला, घंटी सब छोड़ दो। भगवान का एक बार नाम लेना काफी है। अपनी तन्दुरुस्ती पर ध्यान दो, ठीक से खाओ-पीओ, ढंग से पहनो-ओढ़ो, गेरुआ रंग की साड़ियाँ छोड़ दो हमेशा के लिए। बाबूजी पर ध्यान दो, पता नहीं क्यों उनको देखकर तुम्हारा चेहरा खूब गम्भीर हो जाता है। बताओ, बाबूजी को कुछ हो गया तो हमें कौन पूछेगा ?"

"तुम्हें डर है कि तुम्हारी शादी कैसी होगी! यही न ागत दिक चाय़

"तुम हर बात का उल्टा ही अर्थ लगाती हो। गलत ढंग से न सोचो। यह सोचो कि बाबूजी क्यों घर से कटे रहते हैं। एक दिन सुभद्रा पूछ रही थी, दीदी, बाबूजी-अम्मा एक साथ बैठकर बात क्यों नहीं करते?

"अच्छा, जाओ, तुम अपना काम देखो.

सह लेकिन जिस दिन दामोदर अचानक उठकर चला गया तो उसे अरुन्धती की बात याद आई

और वह घबराकर सोचने लगी कि उसका पति जरूर ही रेल से कटने गया है। और जब दामोदर वापस आ गया तो उसने संकल्प कर लिया कि वह अपने को जरूर बदलेगी. चाहे पति का जो भी दृष्टिकोण हो, जिसमें अरुन्धती पग-पग पर सहायक सिद्ध हुई।

जब यह नहाने के बाद आदत या संकोच से पुराने ढंग की साड़ी पहने जाती तो अरुन्धती चुपचाप आती और उसके बक्से से नई किस्म की साड़ी लाकर उसके सामने रख देती और पुरानी साही उठाकर कहीं छिपा देती। नाश्ते के साथ वह उसके सामने दूध और दो बादाम जरूर रख देती । खाने के समय दाल में घी जरूर डालती। अपने हाथ से खूब सफाई और करीने से थाली सजाकर उसके सामने रखती। गर्म, ताजा खाना समय से सलाद, मिर्च, नींबू, मूली के साथ। न कुटाइम छछन्दरी नाश्ता और न ही वैसा खाना। सिंघाड़े और कुटी के आटे, शकरकन्द, सुथनी, गन्ने की गडेरी, कलाकन्द, बेसन के लड्डू और बैरागी रंग के कपड़ों को पूरी तरह घर से बहिष्कृत कर दिया

गया। एक दिन वह पडोस की अपनी सहेली और उसकी माँ के साथ बाजार जाकर पाउडर, लिपिस्टिक, सेंट आदि सभी प्रसाधन सामग्री ले आई और अपनी माँ के सामने रख दी। पहले तो

यह सब देखकर खूब बिगडी थ "क्यात मुझे बेस्या बनाकर शहर में नचाना चाहती है ?"

अरुन्धती का चेहरा गम्भीर हो गया। वह बिना कुछ बोले कमरे से निकल गई थी। जब तीन दिन तक वह नहीं बोली तो उसकी माँ ने अपनी गलती स्वीकार करके उसे मनाया और उन प्रसाधन सामग्रियों का धीरे-धीरे इस्तेमाल शुरू किया।

उसे छोटी बुद्धि की अरुन्धती पर अचम्भा होता। यह सब कहाँ सीखा उसने ? उसकी माँ क्यों नहीं हुई अरुन्धती, जो शादी के पहले उसे सबकुछ सिखाकर पति के घर भेजती ! हो सकता है कि किसी जन्म में वह उसकी माँ ही रही हो !

"हाय मेरी बच्ची ! इस कच्ची उम्र में तू यह सब कैसे जानती है ? मैं तो आज तक यह सब जान नहीं पाई थी ? क्या तू यह कहना चाहती है कि गृहस्थी की गाड़ी ठीक से चलाने के लिए स्त्री को भी अपने को बदलना पड़ेगा ? नए ढंग सीखने पड़ेंगे? क्या पढ़ने-लिखने से ऐसा हुआ है या तू अपने माँ-बाप के लिए अधिक चिन्ता करती है ?" वह कभी रोकर बुदबुदाने लगती। बहरहाल, आत्म-दया और आत्म-हनन की आदतें छूट जाने से उसमें रहन-सहन और सोचने का एक सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित होता गया। पति को लेकर उसके मन पर बना दबाव भी हट गया और वह हल्का महसूस करने लगी। अब उसको खुलकर भूख लगने लगी। उसका शरीर यह सबकुछ माँगने लगा जिससे वह अपने को वंचित करती रही थी। डटकर खाने-पीने पर भी उसको सन्तुष्टि होती नहीं थी। रसोई या नाश्ता बनाते समय ही उसे बरदाश्त नहीं होता तो वह कभी दूध की मलाई निकालकर खा जाती। कभी दाल निकालकर पी जाती, कभी अधकच्ची सब्जी निकालकर ही चख लेती।

एक दिन तीसरे पहर उसे इतनी जोर की भूख लग आई कि वह चुपके से रसोईघर में घुस गई और बची हुई दो रोटियाँ एक तश्तरी में लेकर उसमें घी और चीनी डालने के बाद उसका मलीदा बनाकर चाव से खाने लगी। लेकिन छोटी बच्ची को नींद नहीं आई थी और वह भी माँ का पीछा करती

रसोईघर के पास जाकर खड़ी हो गई। कुछ देर माँ को निहारने के बाद वह चिल्लाई "दीदी, देखो, अम्मा चोरी से रोटी, घी, चीनी खा रही हैं...

यह शर्म से कट गई। पहले तो गुस्से में लपककर छोटी बच्ची के गाल पर एक तमाचा जड़ दिया और उसके रुदन के बीच जोर से बोली. "बडी झूठी है, खड़-फड़ हो रहा था तो मैं यह देखने आई थी कि बिल्ली तो नहीं है।তিষ্টি কাউন

अरुन्धती को भी नींद नहीं आई थी, मगर अपनी माँ की हालत उससे छिपी नहीं थी। उसने लेटे-लेटे ही छोटी बहन को पास बुलाया और उसे चुप कराके समझाया :

"जानती हो. माँ को डॉक्टर ने कई बार खाने को कहा है। तुम्हें चोरी-छिपे जाकर नहीं देखना चाहिए। किसी से कहना भी नहीं-हाँ ?"

खाने-पीने से वह स्वस्थ होकर इतनी मोटी ओटी हो गई कि कई पड़ोसिनों ने टोका, "आप किस चक्की का आटा खा रही हैं बहिन आजकल ?" दूध, घी, बादाम और मलाई ने अतिरिक्त रंग दिखाया था।

दामोदर के भोजन समाप्त करने तक वह सँभल गई थी। जब दामोदर ने पानी पीने के वाद सिर उठाकर डकारा तो उसने मोहक मुस्कान और तिरछी चमकती दृष्टि से उसका स्वागत करते हुए पूछा, "मेरा बनाया खाना तो पसन्द नहीं आया होगा ?"

दामोदर ने सूत्र तो पकड़ लिया, लेकिन खाने की तारीफ करते न बनी। दूसरी ओर देखते हुए हल्के-फुल्के ढंग से कहा, "तुम भी जल्दी खा लो, देर हो रही है..." " आप सोइए..." मन-ही-मन कुढ़कर उसने कहा।

दामोदर को नींद नहीं आई। भगजोगिनी के यहाँ बुरी तरह आहत होकर सुन्न हो गया था वह, जिसके बारे में अब कुछ भी नहीं सोचना चाहता था। और घर पर आकर उसे एक राह दिखाई दी-वह एक दार्शनिक की तरह सोचने लगा कि व्यर्थ है यह प्रेम, जिसका अन्त धोखा के सिवाय कुछ नहीं, सबसे अच्छा है परिवार, जहाँ कोई छल-कपट नहीं, जहाँ पवित्रता है, सच्चाई है, गहरा लगाव है। ऐसे ही खयालात से भरा वह अपनी पत्नी का बेसब्री से इन्तजार कर रहा था, जो अपनी कीमत को और भी बढ़ाने के लिए जोरदार तैयारी करती हुई जानबूझकर भी विलम्ब कर रही थी।

घर-गृहस्थी के काम-धाम में खटती, खाना बनाती, फींचती-कचारती, बच्चों पर चिल्लाती बहुत ही मामूली दीखती एक औरत रात के सन्नाटे में पति की अटारी की ओर रवानगी के पूर्व जल्दी-जल्दी में ही बालों पर कंधे के दो हाथ चलाकर, होंठों पर लिपिस्टिक एक-दो बाद फेरकर तथा कुछ अन्य छोटी-छोटी कोशिशों से ही सुन्दर, रहस्यमयी और बेधक बन जाती है कामनाओं के पुष्प-बाण की तरह।

लेकिन सम्भवतः आत्मविश्वास की कमी की वजह से दामोदर की पत्नी ने सिंगार-पटार में अधिक समय लगा दिया। जब पति उतावले बने क्रोध से भुनभुनाते हुए धैर्य की सीमा के निकट पहुँच गए, उसी समय वह नई सज्जा में मह-मह महकती हुई आई। यहाँ भी मोल-तोल में कमी नहीं हुई यानी अपने अस्वास्थ्य के मामले और दूसरियों के बनाए की तारीफ कर-करके शौक से खाने तथा पत्नी के बनाए अधिक जायकेदार व्यंजन मुचुराकर खाने एवं उसकी प्रशंसा न करने को लेकर। गहनों को लेकर भी उसकी शिकायतों की सूची छोटी नहीं, और इस मामले में भी वह विजय प्राप्त करने में सफल हुई अर्थात एक ही महीने के भीतर नए डिजाइन का स्वर्णहार बनवाने का वादा कराके विपननी माछ च

319 रातें सफ़ के निशां निक के लिए करफन फ़िरोज़ फ़ा फ़ीस्टी सी इंटू भिक्षे सती थान

लगातार तीन दिनों तक परिवार में बड़ा उत्साह रहा। पाँचों लड़कियों और उनकी माँ की खुशी का अन्त नहीं था। एक दिन तो इतवार था तथा सोमवार और मंगलवार दामोदर ने छुट्टी ले ली। सुबह बाजार से ही नाश्ता आता। कभी कचौड़ी, सब्जी, हलवा, कभी गर्मागम रसदार जलेबी और दही। कभी दूसरी चीजें। भोजन में भी बदलाव। दामोदर प्रसाद की नाटकीयता और वाचालता खत्म हो गई थी। वह भीतर से गम्भीर और उदास जरूर था, लेकिन ऊपर हँसता रहता। सबकी बातें वह

282 / इन्हीं हथियारों से

उत्तेजित थी. जैसे उसकी शादी अभी कुछ दिन पहले ही हुई और यह हनीमून के लिए पति के साथ ध्यान से सुनता और कोई बात कहनी होती तो संक्षेप में। उसकी पत्नी तो बेहद उत्साहित और आई हो।

पति के व्यवहार से सचमुच वह बुलबुल हो गई थी। ऐसा तो कभी नहीं था। उसे पक्का विश्वास हो गया था कि उसके दिन लौट आए हैं। दामोदर बोलता कम था, लेकिन सुनता अधिक। इससे उत्साहित होकर हर तरह की बातें दामोदर से कर रही थी. यहाँ तक कि विस्तार से अरुन्धती की शादी के बारे में भी उसने अपने विचार बताए थे-यानी कैसा वर चाहिए, कौन-कौन-से गहने अभी से बनवाने चाहिए और लड़की के लिए कैसी साड़ियाँ चाहिए और देने के लिए भी।

घरटी बीतते-बीतते अपनी पत्नी के प्रति दामोदर का प्रतिक्रियात्मक लगाव और उत्साह भी समाप्त हो गया। तब वास्तविकता का और भी गहराई से अनुभव हुआ उसे और उसका हृदय जोगिनी की याद में कराह उठा। कैसे वह तीन दिनों तक उससे जुदा होकर उसके खयाल के बिना रह सका? क्यों उसे ऊँचाई से गहरी अँधेरी खाई में ढकेल दिया गया है. जहाँ घायलावस्था में उसे किसी करवट भी चैन नहीं मिल रहा है। शान्ति और सुकून के लिए वह भगजोगिनी की ओर दौड़ा, लेकिन उसके प्यार में भी पूर्ण अधिकार और अनुभव की इच्छा की तड़पन है-या अहं का तकाजा ? यह कैसे सम्भव है कि भगजोगिनी की चाह में असह्य जलन है और उस जलन को ठंडक पहुँचाने का उपचार भी ? उसकी व्याकुलता और भी बढ़ गई जब उसे याद आया कि पत्नी का शरीर अचानक काँटों की तरह गड़ने लगा है।

शाम को वह अपने को रोक नहीं सका और हल्का खाने के बाद यह कहते हुए कि 'रात में अधिक देर हो सकती है, तुम लोग खा-पीकर सो जाना', बाहर निकल गया। बादल घिरे थे, हवा बन्द और एक-एक, दो-दो बूँदें बेतरतीबी से गिरने लगी थीं। जब वह पहुँचा तो दस बजे थे। दरवाजे पर भंगजोगिनी की सास मिली।

"अरे, कहाँ थे मेरे बाबू तीन दिन। दुल्हन तो घबरा गई थी कि तुम नाराज होकर चले गए। उसी दिन से रोते-रोते जान दे रही है। मैंने कितना समझाया, घर के दामाद हैं, आ जाएँगे, ऐसे नहीं हैं। जी ठीक था न ?"

"कोई जरूरी काम आ गया था..."- दामोदर ने उसकी ओर देखे बिना उत्तर दिया और कमरे की तरफ बढ़ गया।

भगजोगिनी ने आवाज सुन ली थी। चौकन्नी होकर खड़ी हो गई थी कमरे के बीच में। आँखें सूजी थीं उसकी। मुँह लटका था। आँखों के सामने झाई छा गई, सिर चकराने लगा, जैसे शरीर में खून न हो। दोनों मुट्ठियाँ और होंठ भींचकर अपने को सँभालने लगी।

तत्काल दामोदर भीतर प्रवेश कर खड़ा हो गया। आन्तरिक दर्द की स्याही उसके मुख पर फैली थी। वह एकटक भगजोगिनी को देख रहा था और उसकी आँखों से कोई ज्योति निकल रही थी। प्यार की ? भगजोगिनी को साँस लेने में कठिनाई महसूस होने लगी। वह चीख-चिल्लाकर उससे लिपटकर अपनी गलती की माफी माँगना चाहती थी, मगर उसकी आवाज जैसे भीतर रुक गई और पाँव फर्श से चिपक गए।

दामोदर उसके एकदम निकट आकर बेजान स्वर में बोला, "मेरी प्यारी, तुम कुछ बोलो नहीं। मेरे अन्दर शोला दहक रहा है। मेरा दिल छटपटा रहा है गरई मछली की तरह। मुझे शीतलता चाहिए, भगजोगिनी, जो तुम्हीं दे सकती हो। मुझे और कुछ भी नहीं चाहिए, बस मुझे अपने हृदय से लगा लो, मैं तुम्हारे आगोश में हमेशा के लिए सो जाना चाहता हूँ..."

भगजोगिनी अपने को रोक न सकी। उसकी आँखें पहले से ही आँसुओं में डूबी थीं, जो नीचे बहने लगे। वह काँपते हाथों से उसकी बाँह पकड़कर उसे पलंग के पास ले जाकर बिठाने के बाद

हाथों के कोमल दबाव से लेटा दिया। उसने अपने शरीर को छोड़ दिया था और इसकी भी परवाह नहीं कि टाँगें और सिर कहाँ और किस तरह पड़ रहे हैं, लेकिन भगजोगिनी ने तकिया सिर के नीचे सरका दिया और टाँगों को घुटनों से थोड़ा मोड़कर, दाहिनी को आगे और बार्ड को कुछ पीने कर दिया, फिर जाकर दरवाजे को भीतर से बन्द किया, वहीं कुछ क्षण खड़ी रहकर आँचल में आँसुओं को पोंछा और अन्त में आगे बढ़कर पलंग पर चढ़ती हई बगल में लेटकर उसे अपने हृदय से लगा लिया।

दामोदर ने आँखें मूँद ली थीं। उसका मुँह थोड़ा खुला था और होंठ मुंड़ गए थे नीचे की तरफ रुदन की शक्ल में। भगजोगिनी कुछ कठिनाई में थी। सदा आलिंगनबद्ध होने की अभ्यस्त वह अपने लम्बे-चौड़े निश्चेष्ट गन्धर्व-पति को बाँधने में असफल अपनी बाँह को उसके पार पीठ के नीचे तक ले जाने के लिए ऊपर कुछ चढ़ी हुई थी। अन्त में हारकर उसकी बाँह उठाकर अपनी पीठ की तरफ कर दी, जो आसानी से उठकर भी निश्चेष्ट रही। फिर भी कठिनाई काफी हद तक दूर हो गई और वह उसे अपने दिल की रोशनी तक खींच लाने में सफल हो गई।

"मैं कमजोर हो गया हूँ, भगजोगिनी।" बहुत देर बाद दामोदर के मुँह से धीमी आवाज निकली।

"काहे ?" वह प्यार से फुसफुसाई।

"कुछ समझ में नहीं आता..."

"मर्द होकर ऐसी बात क्यों करते हो ? तुम्हारी हिम्मत से ही कितने लोगों की हिम्मत है, तुम्हीं हिम्मत छोड़ दोगे तो और लोगों का क्या होगा ? नियम से खाओ-पीओ, आराम करो..." "हाँ, ठीक कहती हो..." वह धीरे से हँसा।

दूसरे दिन से उसकी प्रफुल्लता लौट आई। पहले जैसा ही वह बन गया-वाचाल, नाटकीय, ईर्ष्यालु, मजाकिया और झगड़ालू। कुछ दिनों तक प्रेम-व्यापार तेजी से चला और वह रंग-राल में आकंठ डूबा रहा, लेकिन आवेग कम होने पर उस पर एक अजीब सुस्ती छा जाती। उसे उत्साह और उत्तेजना के लिए पत्नी की याद आ जाती परिवर्तनकामी ताजगी के साथ। कमी-कमी भगजोगिनी के प्रति कुढ़न से भर जाता। उसे लगता कि वह उससे दूर हटकर अपने मृत पति की याद में और अपने बच्चों के प्यार में मग्न है। ऐसी मनःस्थिति में उनकी बातचीत और भी कहीं-न-कहीं उलझ जाती और वे बहस और कुतर्क करने लगते।

"बच्चे खूब दूध पी रहे हैं न" दामोदर ने एक बार बेतुका-सा सवाल पूछ लिया।

भगजोगिनी उसकी बात का अर्थ समझ नहीं पाई। पहले चौंककर देखा, फिर मुस्कुराकर बोली, "हाँ, बच्ची को जबरदस्ती पिलाना पड़ता है..."

"असली सुख तो तुम्हें दिन ही में मिलता होगा मुझसे दूर..."

"क्या कह रहे हो..." भगजोगिनी उठकर बैठ गई और अनिश्चित नाराजी से देखने लगी। "हाँ, ठीक कह रहा हूँ। तुम्हारे प्यार में वह गर्मजोशी नहीं है। बातचीत भी ढीली-ढाली, वैसी चुस्ती नहीं। जब देखो तब ऊँघने लगती हो। हो भी कैसे, मन तो कहीं दूसरी जगह है..."

"क्या चाहते हो ? मैं भी चाहूँ तो दस बातें कह सकती हूँ। तुमको तो बस वही सूझती है-मैं कोई मशीन नहीं हूँ। मर्द का मतलब यही है क्या? मर्द-औरत के पास और भी आपस के काम होते हैं। घर-गृहस्थी की बातें होती हैं। आगे क्या होगा, आगे की जिन्दगी कैसे कटेगी ? तुमने तो मेरे बारे में भी नहीं सोचा। क्या मैं इसी तरह रहूँगी ! मेरा शरीर क्या हमेशा इसी तरह टाँठ रहेगा..."

"अच्छा ! रानी बनाकर रखा है तब भी असन्तोष है? अच्छा तो हटाओ दीवार पर से इन चित्रों को। तुम मेरी हो, इन चित्रों की यहाँ कोई जरूरत नहीं। ये चित्र मुझे चिढ़ाते हैं, ताने देते हैं, हिकारत से देखते हैं मुझे इनसे षड्यन्त्र की बू आती है। मैं जा रहा हूँ, आइंदा ये तस्वीरें नजर

न आएँ"

दामोदर उठकर कमरे में खड़ा हो गया। वह चिल्ला रहा था। सहसा आँखें भी बाहर निकल आई। भगजोगिनी डरकर रोने लगी। गिड़गिड़ाती हुई बोली:

"देखो. बात सुनो, तुम मेरे मनसेधू, पति-भतार हो, तुमसे झूठ नहीं बोलूँगी। जो चला गया वह चला गया, अब तो तुम्हीं मेरे सबकुछ हो । सिर्फ तुम्हारी ही चिन्ता मेरे दिल में, दिमाग में हमेशा बनी रहती है। जान-प्राण तुम्हीं हो मेरे लिए, मुझ मछरी, मुझ बेल के लिए तुम पानी हो। जो इस दुनिया में नहीं हैं उन्हें वहीं रहने दो इज्जत से, जहाँ यह हैं। हमारा वे कुछ नहीं बिगाड़ेंगे, हमें आशीर्वाद ही देंगे..."

"चुप रहो, मुझसे दगाबाजी की बात न करो। उस काइयाँ की सिफारिश करती हो ? कितनी बेईमानी की गई मेरे साथ ? मेरा पैसा ड्बा दिया, सूद का सारा पैसा भी हजम कर लिया गया तुमसे उम्मीद थी कि मेरी भावनाओं की कद्र करोगी, मगर तुम तो उल्टे ही मुझ पर लांछन लगा ही हो। मैंने कह दिया है आखिरी बार, ये मनहूस तस्वीरें यहाँ नहीं रहनी चाहिए जब मैं अगली घार आऊँ...।"

घार भगजोगिनी रो-रोकर अनुरोध करने लगी, "इस तरह नाराज होकर न जाओ। मैं तुम्हारी हूँ और तुम मेरे हो, मैं सबकुछ वही करूँगी जो तुम कहोगे। तुम्हारी नाराजी सह नहीं सकूँगी...." दामोदर नहीं रुका और जब भगजोगिनी ने दौड़कर उसे पकड़ना चाहा तो झटके से अपने को

अलग करके वहाँ से निकल गया। बाहर सड़कों के कुछ देर तक चक्कर लगाता रहा वह। बूँदा-बाँदी खत्म हो गई थी। पुरुवा हवा तेज चल रही थी और आसमान पर काले-काले हल्के बादल भाग रहे थे। बनवारी को लेकर पता नहीं क्यों उसके सिर पर भूत सवार हो जाता है, जबकि पहले वह उसकी कितनी तारीफ किया करता था। उसने शीतल हवा के झकोरों के बीच सिर झटक-झटककर समस्या के केन्द्र में पहुँचने की कोशिश की, पर उसे कुछ भी समझ में नहीं आया। उसका दिमाग कुन्द बना रहा, जिसके बीच न कोई विचार बन रहा था और न तर्क। उसे बार-बार अपनी पत्नी भी याद आ रही थी,

जैसे कह रही हो, 'कहाँ भटक रहे हो तुम ? मेरे पास आओ, यहीं तुम्हें प्यार, शान्ति और सुकून मिलेगा।' और वह घर की तरफ चल पड़ा।

भगजोगिनी रोती-बिलखती चुप हो गई थी। उसकी सास ने पूछा था कि कमरे से चिल्लाहट क्यों आ रही थी और दामोदर पहले ही क्यों चला गया था, मगर भगजोगिनी ने इच्छा होते हुए भी कुछ नहीं बताया, यह सोचकर कि वह दामोदर से अब कोई बहस नहीं करेगी और अपने प्यार से उसे सदा के लिए जीत लेगी।

परन्तु इस उम्मीद के बावजूद वह बेहद भयभीत और आतंकित थी। एक अन्धकार छाया था उसके अन्दर, जिसके भीतर भटकती और लड़खड़ाती वह रोशनी की तलाश कर रही थी-रोशनी दामोदर के प्यार की, जिसने उसे उन्मत्त कर दिया था, ऊँचा उठाकर एक गरिमा दी थी, एक गरीब बेसहारा विधवा को पत्नी का दर्जा दिया था, प्रेमिका की तरह। बनवारी तो उसके जीवन से जाकर आसमान का एक धुँधला सितारा बन गया था परन्तु दामोदर तो हकीकत था, अब तो वही लोक था और परलोक भी।

रात-भर उसके शरीर में दर्द था और ऊँघती, सोती और जागती वह अनोखे सपने देखती रही। इसी बीच एक अजीब खयाल आया उसके दिमाग में- यदि बनवारी और दामोदर दोनों उसके सामने आ जाएँ तो वह किसको चनेगी? और इसी सम्बन्ध में एक ख्वाब भी आया उसे। वह आसमान में उड़कर सितारों की दुनिया को पार करती हई स्वर्ग में पहुँचती है तो बनवारी और दामोदर खड़े मिलते हैं दो विपरीत छोरों पर। बनवारी का चेहरा बँधलाया है. जिसे वह कठिनाई से पहचान पाती है। दामोदर का चेहरा चमक रहा है। दोनों उसकी ओर दोनों हाथ फैलाकर उसे बुला रहे हैं। वह

कंठ में आवाज घुट जाती है... परेशान हो उठती है कि किधर जाए... अनिश्चय की स्थिति में यह चिल्लाने लगती है, लेकिन उसके

उसकी नींद खुल गई थी। उसने चौंककर देखा, मगर चारों ओर सन्नाटा था। बाहर पानी तेज बरस रहा था। डर के मारे उसका दिल तेजी से धड़क रहा था। क्या हो गया है उसको ? क्या होनेवाला है उसका इस जिन्दगी में ? उसने अपने गाल पर दो-तीन थप्पड़ लगाए, बालों को नोचा और बिस्तर में सिर गाड़कर बिलखने लगी।

घर पहुंचकर दामोदर ने पत्नी के प्यार में अपने को भूलने की कोशिश की। चार-पाँच दिनों तक फिर उत्साह, चह-चह, चायें-चायें। खाना-पीना और रतजगा। मगर उसकी पत्नी और भी अनुभवी और आक्रामक हो गई इस बीच उसके विकासशील स्वास्थ्य तथा पति के खयाल-चात ने उसकी हर तरह की भूख जगाकर उसे मंगन, सेविका और शिकायती भी बना दिया था, जैसे इतने वर्षों की रिक्ति को एक ही साथ भर लेना चाहती हो।

इतने वर्षों के अलगाय, उपेक्षा, कटुता, संन्यासिनी-काल के आत्महनन के पश्चात नवविवाहिता जैसी बोली-वचन से दामोदर खुश हो जाता। उसमें उसकी दिलचस्पी बढ़ जाती। वह उसे कई तरह से छेड़ता और खूब हँसता, फिर भी उसे ऐसे अनोखे प्यार का नया स्वाद मिलता, जिसमें तड़पन-जलन बिल्कुल नहीं थी बल्कि जो एकरेखीय और शान्तिदायी था। तब यह अधिकारपूर्वक खोलती थी फरमाइशों और घर-बाहर के लोगों की शिकायतों की मिश्रित पोटली।

और अन्त में उसका सेविका रूप प्रकट होता, जब वह आँवला या गुलरोगन का तेल लाती। पहले वह दाहिने हाथ की अंजुरी में तेल लेती और चाँद पर चाँतकर सिर को कई बार दबाती। उतना-सा तेल पता नहीं कहाँ सूख जाता लेकिन आँखों में रोशनी और दिल में ताकत पहुँच जाती। दामोदर आँखें मूंद लेता। फिर सिर के चारों ओर पाँचों अंगुलियों की दुलकी के बाद, हाथ, पैर, छाती, पीठ, पाँव सबकी समानुपातिक शक्ति एवं कोमलता के साथ चँपाई होती और दामोदर मिले गुदगुद आराम से अवश होकर घनी, सुखद निद्रा के आगोश में लुढ़क जाता।

परन्तु एक दिन पत्नी ने एक ऐसी उलाहना दे दी कि दामोदर बेहद क्षुब्ध हो उठा। पति के बाहुपाश में दबी वह, अत्यन्त असन्तुलित उत्साह में बिना सोचे-समझे बोल उठी :

"बीच-बीच में क्या हो जाता है आपको। एकदम खोए-खोए-से हो जाते हैं। अब भी मेरी कोई सौत रह गई है क्या-आज साफ-साफ बता दीजिए मुझको, कहे देती हूँ..."

"क्या फालतू बात करती हो ?" दामोदर बिगड़कर बोला। तेजी से उभरती एक अधेड़ पली से उसे ऐसी बेवकूफी और उजड्डुपन की उम्मीद नहीं थी। जल-भुनकर वह मन-ही-मन बोला, 'वाह रे भोथरा, प्यार जो उस पर थोपा जा रहा है। एकदम थपुआ।'

उसे भगजोगिनी की याद आई और वह उसके लिए तड़पने लगा। पढ़ी-लिखी तो वह भी नहीं है, लेकिन हमेशा समझदारी की बात करती है। कभी भी इस तरह का गँवारपन नहीं। आज तक उसके घर-परिवार को लेकर कोई ताना नहीं मारा। कोई भी बेतुकी फरमाइश नहीं की, भले ही वह स्वयं अपने मन से बढ़िया उपहार लाकर उसे देता रहा हो। उसमें कोई घमंड नहीं है। पाखंड, दिखावा, आत्मश्लाघा और प्रपंच कुछ भी नहीं, फिर भी उसकी सरलता में कितनी गहराई है। रोज नई, ताजी और स्फूर्तिदायिनी।

और शाम को फिर वह भगजोगिनी के यहाँ पहुँच गया जो उस दिन से रोज ही उसका इन्तजार कर रही थी, नई आशा और आत्मविश्वास के साथ। उसने दीवार पर टँगी दोनों तस्वीरें हटाकर भीतर के कमरे में टाँग दी थीं। घर को भी और अच्छे ढंग से सजाया था। मगर दामोदर को पिछली बातों का स्मरण नहीं था। भगजोगिनी ने भी कुछ नहीं कहा उससे बल्कि और गर्मजोशी तथा जीवन्तता से उसको अँकवार में लेकर स्वागत किया।

दोनों ही बिना शिकवा शिकायत के एक-दूसरे के प्यार में डूब गए, जैसे जीवन में नई बहार चहक तथा बोल-बतिया रहा था, एक रात भगजोगिनी ने अपना आँचल उसके सामने फैलाकर आ गई हो। भगजोगिनी ने उसे सुख से सराबोर कर दिया। और जब वह बहुत खुश था और खूब

गिडगिडाते स्वर में कहा: "मैं तुमसे एक भीख माँग रही हैं...।"

"क्या ?" - दामोदर ने कुछ न समझकर हँसते हुए पूछा।

"मेरी गोद में अपना एक बच्चा दे दो..."

दामोदर अवाक होकर उसे देखने लगा। फिर कुछ देर खूब हँसा । अन्त में गम्भीर होकर बोला:

"टो बच्चे तो पहले से ही हैं तुम्हारे। बच्चों की मशीन क्यों बनना चाहती हो ? इस देश में, हर घर में एक-एक मर्द-स्त्री के एक-एक डेढ़-डेढ़ दर्जन बच्चे हैं। वे पाल-पोस नहीं पाते, पढ़ा-लिखा नहीं पाते, फिर भी और बच्चों के लिए तरसते रहते हैं।"

"मुझे तुम्हारा बच्चा चाहिए... तुम्हारी निशानी ।"

"इससे क्या होगा ? होगा तो यह बच्चा ही. जो अपने साथ अनेक समस्याएँ ले आएगा। क्या यह सुख काफी नहीं है, जो हम एक-दूसरे को दे रहे हैं। भगजोगिनी, मेरी पत्नी बुरी नहीं है, दिल की बहुत अच्छी है। तुम तो जानती हो, उससे मेरा रिश्ता कैसा रहा क्यों हुआ ऐसा ? और रिश्ता न के बराबर रहते भी पाँच बच्चियाँ हो गईं। उन्हें बड़ा करना, पढ़ाना-लिखाना और..."

"तो मुझे ले चलो न अपने घर। कायदे से तो मुझे वहीं रहना चाहिए। मैं सबकी सेवा करूँगी..."

"भगजोगिनी, ऐसी बात सोचना भी नहीं। तुम्हारा सिर्फ मुझसे रिश्ता है, मेरे घर के किसी और से नहीं। मैंने तुम्हें प्यार किया है। बड़ी कोशिश से मैंने तुम्हें पाया है। बहुत-सी कुंठाएँ हैं मेरे अन्दर। अभिशापों का मारा हूँ मैं। तुम्हारे पास आकर मेरी सभी कुंठाएँ दूर हो जाती हैं। तुम मेरी जिन्दगी की जरूरी खुराक हो। तुम मेरी अकेली अच्छी आदत हो। मेरे-तुम्हारे बीच किसी और का आना बरदाश्त नहीं है मुझे। तुम्हारा बच्चा, चाहे मुझसे ही क्यों न हो उसे भी मैं सह नहीं सकता-यह साफ-साफ कह देना चाहता हूँ।"

भगजोगिनी चुपचाप उसको देखती रही गुस्से से। उसकी चंचल बड़ी आँखें बाहर निकल आईं। फिर आहत स्वर में बोली :

"छिः, बच्चों के लिए ऐसी भाषा निकालना अच्छी बात नहीं। तुम क्या जानो, कितना प्यार करती हूँ मैं तुम्हें। तुम्हें अधिक-से-अधिक प्यार देकर सुखी रखना चाहती हूँ। इससे मुझे कितना सुख मिलता है ! इसी प्यार की निशानी चाहती हूँ तो तुमने ऐसी बात कह दी। क्यों? तो तुम आज मेरी बात भी सुन लो। तुमको अपना ही सुख प्यारा है और अपना दुःख। दूसरों के अरमान क्या हैं, दूसरों के सुख-दुःख, इनसे कोई मतलब नहीं तुम्हें। दुनिया में बहुत-सी चीजें हैं, खराब बातें हैं, गलत लोग हैं, तो क्या इनसान उनसे भागता है ? लोग उनका सामना करते हैं। तुम तो हर चीज से भागते हो। मनमाफिक कोई बात न हो तो भाग चलते हो। उसका सामना ही नहीं करते। यह समझ लो, मैं कोई बंधुआ रखेल रहीं हैं, मैं तुम्हारी पत्नी हूँ, तुमसे बच्चा माँग रही हूँ तो कौन-सा पाप कर रही हूँ? औरत के हक की बात तो बहुत करते हो, माँगने पर बहानाबाजी क्यों करते हो ?"

इस अप्रत्याशित प्रहार से दामोदर का चेहरा क्रोध और अपमान से लाल हो गया। उसने मुँह बिगाडकर व्यंग्य किया, " वाह रे, हक वाली !"

"हाँ. क्यों नहीं." भगजोगिनी पर जैसे कोई भूत सवार हो, "तुम्हीं तो बार-बार उसकी बात करते हो। पता नहीं इधर क्यों मुझ पर कुढ़ने लगे हो। किसी के बारे में कोई बात करती हैं, नाराज

हो जाते हो। झूठे लांछन लगते हो। मैं हँसती हैं, खुश होती हैं किसी चीज पर, तो ईर्ष्या से जल-मुन जाते हो। तुम्हें शक हो जाता है कि मुझे तुम्हारी फिक्र नहीं..."

"तो क्या मैं यहाँ न आया करूँ ?"

"यह मैं कहाँ कह रही हैं? तब तो मुझसे बरी किस्मत वाली कोई भी न होगी। मुझसे नाराज न हो. मेरी बात पर खयाल करो। उस पर सोचो। मैं तो चाहती हैं कि दुनिया के दूसरे स्त्री-मर्द जैसे मिल-जुलकर सुख-दुःख काटते हैं, हमको तुमको भी वैसे ही रहना चाहिए...।"

"छोड़ो इन बातों को। मैं ऐसी बातें नहीं सुनना चाहता। उपदेशों से मुझे चिढ़ है। मैं अपने मन का राजा है। जो मुझे अच्छा लगता है. वही में करता है। ठीक है. मैं बुरा हैं। पहले ही दिन मैंने तुमसे कह दिया था और आज भी कह दोगी तो मैं कभी नहीं आऊँगा...।"

भगजोगिनी ने उसके गले में बाँहें डाल दीं, "ऐसा न कहो। सोचो, में स्त्री हूँ। स्त्री की भी कुछ इच्छा होती है। मैं अपनी इच्छा तुम्हीं से तो कहूँगी। मेरी हर इच्छा तुम्हीं से तो पूरी होगी। मेरी बातों का बुरा न मानो..."

वह अपनी कटु बातों के लिए उससे क्षमा माँगती रही। उसके बालों पर हाथ फेरती रही अपने प्यार की कसमें खाती हुई। वह एक दुःख-भरी दार्शनिक-सी मुस्कुराहट से उसकी बातें चुपचाप सुनता रहा।

निश्चय ही वह उसे बेहद प्यार करता रहा है लेकिन इस समय उसके मन में एक अनोखी इज्जत पैदा हो गई है उसके लिए शायद इसलिए कि उसने साहस के साथ और अपने हक पर जोर देते हुए सच्ची और खरी बातें उसके समक्ष रख दी थीं। क्या भगजोगिनी का यह मतलब है कि वह बचपन से ही पलायन करता रहा है, घर से, पढ़ाई-लिखाई से, बीवी और बच्चों से और अन्य समस्याओं से ? उनका सामना नहीं किया, हिम्मत और परिश्रम से कोई समाधान नहीं ढूँढा और सिर्फ अपने स्वार्थ और सुख के लिए इधर से उधर भटकता रहा ?

सच्चाई तो यह है कि वह उसे मामूली, नासमझ, गरीब और मजबूर औरत समझता रहा और इस समझ के साथ उसे प्यार करता रहा कि जब उसकी ताकत कम हो जाएगी और वह भी ढीली-ढाली पड़ जाएगी तो यह सम्बन्ध अपने-आप ही टूट जाएगा। क्या भगजोगिनी यह कहना चाहती है कि समस्याओं से न भागकर वह अब भी उनका सामना करते हुए हिम्मत से न्यायपूर्ण फैसला करे। पूर्व पति का जिक्र करके बेवफाई का हवाई आरोप नहीं लगा सकता है दामोदर अब। वह एक वास्तविकता है, जवान, मजबूत, प्यार, साहस, स्वाभिमान, समझदारी और रचनात्मक पारिवारिक दृष्टि के साथ वह प्रस्तुत है, या तो वह उसे स्वीकार करे अथवा अस्वीकार।

क्या दामोदर ऐसा कर सकता है ? एक घबराहट के साथ उसे बड़ा कष्ट हुआ इस खयाल ते कि दोनों ही नहीं कर सकता वह भगजोगिनी को न तो छोड़ सकता है और न ही उसे परिवार में वह दर्जा दे सकता है, जो वह चाहती है।

इस अनिश्चय की स्थिति में जैसे किसी तिनका का सहारा लेने के लिए उसने भगजोगिनी को जोर से अपनी छाती से चिपका लिया और उसे बेतहाशा चूमने लगा। वह उससे इस तरह मिल रहा था जैसे अन्तिम मिलन हो वह।

जब बाहर निकला तो वह चिन्ता के भारी बोझ से दबा था, जिसे उठाने में अपने को असमर्थ पा रहा था। सचमुच वह इस बीच कमजोर हो गया था-शरीर और मन से भी। भगजोगिनी की बातों से तो और भी। क्या प्यार और कर्त्तव्य दोनों एक साथ नहीं चल सकते ? कैसे ? वह प्रश्नों से घिर गया।

घर पहुँचकर बेसब्री से प्रतीक्षा करती पत्नी से उसने कहा : "मैं अब बाहर घूमने नहीं जाऊँगा"

"क्यों?"

"इच्छा नहीं करती। अब तुम्हीं लोगों के साथ रहूँगा ।"

"तबीयत तो ठीक है ?" - चिन्ता से पूछा पत्नी ने ।

"ऐसी बात नहीं है। मैं ठीक हैं। क्या मेरा रहना अच्छा नहीं लगेगा तुम लोगों को ?"

"अच्छा, हाथ-मुँह धो लीजिए। आप तो आज खाना खाकर भी नहीं गए थे। एक खुशखबरी

"क्या ?"

"खा-पी लीजिए..."

खाने-पीने के बाद पत्नी मोल-भाव से बाज नहीं आई। वह खूब खुश थी और बेमतलब खिलखिला रही थी। दामोदर ने अनुनय-विनय की हद कर दी। अनेक उपलब्धियों के बाद पत्नी ने बड़ी कठिनाई से बताया :

"मैं डॉक्टर के यहाँ गई थी। उसने चार महीने का बताया है..."

दामोदर चौंककर उछल गया। और उसने गर्दन को पिस्तौल की तरह घुमाकर एक अस्पष्ट

विस्फोटक आवाज निकाली :

"क्या कह रही हो?"

"हाँ, पाँचवाँ महीना चल रहा है। डॉक्टर ने अपने मुँह से बताया।"

दामोदर तकिया पर सिर गिराकर सीधा लेट गया। उसका चेहरा सुन्न-सा हो गया और शरीर निश्चेष्ट। वह भावहीन आँखों से छत को निहारने लगा।

"ऐसे क्यों हो रहे हैं? खुशी नहीं है आपको ?"

"चुप रहो, सोने दो। जोर की नींद लग रही है।" उसने विपरीत दिशा में करवट बदल ली।

नींद का नाटक करते हुए वह देर तक जगा रहा। उसके दिल को जैसे कोई मुट्ठी में लेकर ऐंठ रहा हो। यह सब क्या हो रहा है? उसके विरुद्ध कैसा षड्यन्त्र हो रहा है ? उसे महसूस हुआ जैसे वह ऐसी इमारत हो, जिसे हथौड़े से मार-मारकर गिराया जा रहा हो। यह कैसी विडम्बना है कि जो चाह रहा है उसे मिल नहीं रहा है और जिसे बहुत मिला हुआ है उसे बिना माँगे और मिल रहा है। अगर फिर लड़की हुई तो ?

वह आगे न सोच सका और उसका दिमाग भन्न भन्न करने लगा। सोचने के लिए उसके पास अब क्या था ? वह घबराकर दूसरे दिन फिर भगजोगिनी के पास पहुँच गया और उसके प्यार में अपने को भूलने की कोशिश करने लगा। डाकी

और चार दिन बाद उसके प्यार के नाटक का अन्तिम दृश्य उपस्थित हुआ। जब अरुन्धती स्कूल से आई तो उसने अपनी माँ से गम्भीरता से पूछा :

"अम्मा, बनवारी फल वाले थे न ?"

"हाँ-हाँ, क्या बात है ?"

"उनसे हम लोगों की रिश्तेदारी है क्या ?"

"अरे, कैसी बेवकूफी की बात करती हो ? वे लोग दूसरी जाति के हैं, रिश्तेदारी कैसे हो सकती है? हाँ, वे लोग तुम्हारे गाँव के हैं। बात क्या है, साफ बताती क्यों नहीं।"

"एक मेरी सहेली है, जो बमपुलिस गली में रहती है। वही पूछ रही थी कि उनके यहाँ रिश्तेदारी है क्या ? कह रही थी कि बाबूजी रोज रात में वहाँ जाते हैं।" अरुन्धती रुआँसी होकर वहाँ से चली गई।

उसकी माँ छाती पर हाथ रखकर बोल उठी, "हाय राम, यह क्या सुन रही हूँ मैं! सुना था कि उस फलवाले की बीवी बड़ी चोखी है। अच्छा तो, मेरे साथ यह धोखा हो रहा है!" वह खूब गम्भीर हो गई। उसके दिल पर कोई हथौड़े से मार रहा था। दिन-भर उसने इन्तजार

किया। शाम को दामोदर स्कूल से आया तो वह बड़े प्रेम से पेश आई। और जब उसका पति रात में करीब नौ बजे फैशन बनाकर घर से निकला तो यह भी एक चादर ओढकर और आगे कुछ घूँघट निकालकर उसके पीछे लग गई।

मौसम साफ था। आकाश में चटक तारे निकले थे। दामोदर झूमता हुआ चल रहा था। लम्बे-लम्बे डग। जब वह किसी वजह से रुकता या ठिठकता तो भारी पैर और स्फीत उदर के साथ तुलबुल चाल से पीछा करती हई उसकी पत्नी रुक जाती। फिर वह तेजी से चल देती जैसे भागता हुआ बवंडर। वे जिधर जाते, उसी दिशा में तारे भी चल रहे थे।

करीब दस बजे जब दामोदर पतली गली वाले मकान के अन्दर घुसा, उसके कुछ ही मिनट बाद उसी मकान के बरामदे से दरवाजे को भड़भड़ाने और चायें-चायें चिल्लाने की आवाजें मुहल्ले के आकाश में गूंजने लगीं। दामोदर की पत्नी उस पिछड़े शहर के हिसाब से भोजपुरी में 'तें' और 'हटे' तथा कुछ अपेक्षाकृत सभ्य गालियों को जोड़कर अपनी समझ में आधुनिक भाषा का इस्तेमाल

कर रही थी: "अरे, दरवाजा खोल रे चोट्टी, छिनार। दूसरे मर्द से गुलछर्रे उड़ावती हटे। तोर शरीर गले। कोढ़ निकले, कीड़ा पड़े। तैं हराम की कमाई खात हटे ! ऐ महल्ला के लोगो, जागीं सभे, आकर देखीं, फैसला करीं। अपना मर्द मारके अब हमरे मर्द के पीछे पड़ी हटे..."

दामोदर की पत्नी होश में नहीं थी, उसके मुँह में जो भी आ रहा था, बक रही थी। इतने में दरवाजा खुला और भगजोगिनी की सास दौड़ती हुई आई और अपनी टाँगें दोनों ओर फैला और आगे हाथों को नचाती हुई चिल्लाने लगी :

"अरे, तू कौन है हरामजादी, मेरे दरवाजे पर आकर रंगरेजी सुलझा रही है! कैंची जैसी बात करोगे तो कैंची से जीभ काट लोगे, फिर 'आये-आये' करती घर लौटोगी। पता नहीं किसका बच्चा आधी रात को शहर में नाच रहा है। अगर आदमी न पूछे तो सुनो, तेरे पति ने मेरी बहू से शादी की है, गांधार ने उससे शादी की है, गांधार ने उससे शादी की है।"

वह नाच रही थी आगे-पीछे हिलकर। दामोदर की पत्नी भी खूब उग्र हो गई थी। दोनों आवाजें आपस में लड़कर एक विचित्र अर्थहीनता में बदल गई थीं।

मोहल्ले के लोग जग गए थे। कुछ शरीफ लोग अपनी-अपनी लालटेन के साथ आ गए थे। आवाजें रमाशंकर के घर तक पहुँचीं तो वह भी खटपटी पहन लुंगी-बनियान में ही पहुँच गए। भगजोगिनी तो नहीं निकली, वह भीतर ही कमरे में विलाप कर रही थी। लेकिन दामोदर बाहर आकर चुपचाप सिर झुकाकर खड़ा हो गया। लेकिन जब उसने देखा कि भगजोगिनी की सास हद से बढ़कर उसकी बीवी और उसके परिवार के विरुद्ध, जिसका एक पुरुखा अवध के नवाब का सिपहसालार तक रह चुका था, विषवमन कर रही है तो उसने कड़ाई से रोका :

"ऐ, यह सब मत बको..."

"आओ पाहुन, यहाँ पंचों को साफ-साफ बता दो, हमार भगजोगिनी के साथ गन्धर विवाह किया है !"

"क्या बकती हो। मैंने कोई विवाह नहीं किया है। बनवारी मेरे गाँव के थे, हम मिल-जुलकर धन्धा भी करते थे। उनके जाने के बाद मैं फर्ज समझकर इन लोगों का हाल-चाल लेने के लिए आता हूँ..."

"अच्छा तो पंचों के सामने शिवजी की, गंगा मैया, कालीजी की कसम खाकर कह दो कि तुमने भगजोगिनी देवी से गन्धर विवाह नहीं किया है।किछ

नाते तुम लोगों की मदद जरूर की है..." "नहीं किया है. नहीं किया है। मेरा कोई भी रिश्ता तुम लोगों से नहीं है। हाँ, इन्सानियत के

अब तो भगजोगिनी की सास हाथ फेंक फेंककर सरापने लगी। रमाशंकर ने आगे बढ़कर उसे चुप कराया और दामोदर से दृढ़ स्वर में कहा

"दामोदर प्रसाद, हम आपको जानते हैं। देश को आजाद होने दीजिए तब हम सभी उन गददारों और पुलिस दलालों को कड़ा-से-कड़ा दंड दिलाएँगे, जिन्होंने देश और जनता के साथ विश्वासघात किया है। आप अब यहाँ से तशरीफ ले जाइए। ध्यान रहे. इस गली में आप मूल से भी न आएँ। बस जाइए। कभी आपको इधर देख लिया गया तो शहर कांग्रेस कमेटी इसे बरदाश्त नहीं करेगी..."

** दामोदर तड़के अँधेरे में ही एक बहुत जरूरी काम से यानी अरुन्धती की शादी के लिए खेत-जमीन से इन्तजाम करने हेतु गाँव के लिए प्रस्थान कर गया। यह अन्य दृष्टिकोणों से भी हितकर सिद्ध हुआ, क्योंकि सूरज निकलते ही चर्चाएँ और किस्से तेजी से कई आकारों में, छेड़े गए कुद्ध एवं उन्मत्त तितैयों की तरह एक जगह से दूसरी जगह जाने लगे थे। गाँव का मौसम भी खुशनुमा था-आकाश साफ और पुरुवा झकझोरता हुआ।

वह जिस काम के लिए गाँव आया था, उसके सम्बन्ध में बातचीत भी बहुत कम हुई। हाँ, वह पूरे पन्द्रह दिनों तक खूब सोया। जब नींद नहीं आती तो चुपचाप बैठा रहता, जैसे किसी ऊँचे स्थान से गिरने के बाद उसका शरीर सुन्न हो गया हो। हाँ, उसके बाहर भी शून्य था और भीतर भी।

उसकी छुट्टी समाप्त होने में सिर्फ एक दिन रह गया तो उसे अपने पट्टीदार के घर एक पजावा समारोह में शामिल होने के लिए बार-बार आग्रह करने पर जाना ही पड़ा। ईंटें पाथ-पाथकर सूखने के बाद एक खेत में सजाई गई थीं। अन्दर जगह-जगह सूखी लकड़ियाँ तथा अन्य ज्वलनशील सामग्रियाँ रख दी गई थीं। चारों ओर से मिट्टी के आवरण से ढकने के बाद एक टीला बन गया जिसमें एक मुँह खोल दिया गया था।

पजावा को मुखाग्नि देने का समारोह था। गाँव के स्त्री, पुरुष, बच्चे इकट्ठे थे। ढोलक बज रहा था तथा औरतें गा रही थीं। दामोदर सुस्त-सा भीड़ से अलग हटकर देख रहा था। जब चांडाल से लेकर, पट्टीदार ने पजावा के मुँह में अग्नि ज्वलनशील लकड़ियों आदि के मध्य में रखी और धुएँ के साथ लपटें उठने लगीं तो औरतों ने गाना शुरू किया :

"पको, ओ ईंट पको!"

जैसे दो पत्नियों को एक पति मिल गया हो।

वहाँ एकत्रित भीड़ में से कई लोग हँस पड़े। दामोदर के तो काटो तो खून नहीं। यह चुपके से, वहाँ से खिसककर अपने कमरे में आया और एक आइना उठाकर अपना चेहरा देखने लगा। उसकी आँखें निकल

आईं। चेहरे पर लकीरें-ही-लकीरें। संवेदना, भावना और विचार से शून्य उसका चेहरा सचमुच उसे एक सख्त, पकी हुई ईंट की तरह लग रहा था।

32

कैसा अनजाना-सा दिन है सन बयालीस का दस अगस्त। क्रान्ति आगमन की कोई सुबह शायद ही ऐसी मामूली और बेजान होती हो। पिछले दिन की बारिश के पश्चात काले घने बादल जलहीन होकर फैले हैं। खैखरी बनाई वाली सस्ती सफेद चादर की तरह बिछे। हवा किसी बिल-साख में

घुस गई है। पेड़-पौधे स्थिर, मीन और स्तब्ध। सुबह-सुबह, हल्के अँधेरे में, यलिया के हर मोहल्ले यानी स्टेशन रोड, मालगोदाम, जापलिनगंज, भृगुआश्रम, मिड्ढी, गुदड़ी बाजार, विश्नीपुर, विजयीपुर, बहेरी, काजीपुरा आदि सभी जगहों पर बाहर दरवाजों के सामने, घरों के आँगनों में या छतों पर भीषण उमस भरी गर्मी में सोते, ऊँघते या छटपटाते लोगों को एक भोंपू-गर्जना सुनाई रड़ती है।

"बलिया के वीर निवासियो ! अब यह सोने का समय नहीं है। बम्बई में अंग्रेज सरकार ने हमारे प्यारे नेताओं गांधीजी, नेहरूजी, सरदार पटेल, मौलाना आजाद को जेल के सींकचों में बन्द कर दिया है। गांधीजी ने आजादी का बिगुल बजा दिया है। उन्होंने अंग्रेजों से कहा कि वे भारत छोड़कर चले जाएँ और देशवासियों से 'करो या मरो' की अपील की है। आजादी की लड़ाई में बलिया कभी भी पीछे नहीं रहा। आज से बलिया में अपनी पवित्र, प्यारी मातृभूमि को आजाद कराने के लिए 'करो या मरो' की जंग शुरू होती है। हम जिला और शहर कांग्रेस समिति की ओर से सभी दुकानदारों, कचहरिया और दफ्तरिया लोगों और बहादुर छात्रों तथा माताओं-बहनों से अनुरोध करते हैं कि वे आज से पूरी हड़ताल करने और इस अन्यायी अंग्रेज सरकार को आखिरी धक्का देने के लिए बाहर मैदान में आ जाएँ। सभी ग्यारह बजे दिन तक चौक में एकत्रित हो जाएँ और वहाँ से निकलनेवाले जुलूस में शामिल होकर कचहरी पर जिला प्रशासन के खिलाफ प्रदर्शन करें।

"इन्कलाब जिन्दाबाद !

अंग्रेजो, भारत छोड़ो।

महात्मा गांधी की जय !

भारत माता की जय !"

सुबह-सुबह लोगों को नींद से जगानेवाला किशोर राममूरत ही है, जो साइकिल पर आता है, नीचे उतरकर हाथ के भोंपू को मुँह से लगाकर ऐलान करता है और फिर बैठकर तेजी से पैडल मारता हुआ

दूसरे मोहल्ले की तरफ सर-सर रवाना हो जाता है। हड्डीदार, ठुमका शरीर है राममूरत का-आश्चर्य है कि ऐसे मामूली ढाँचे के अन्दर देशप्रेम का ऐसा क्रान्तिकारी उत्साह कहाँ से कैसे आया ! उसकी घाँटी तो फूट गई है, मगर आवाज में कुछ पतलापन बरकरार है, जिसकी क्षतिपूर्ति भोंपू से हो जाती है कुछ हद तक। जब वह बोलता है तो जोश से उसकी गर्दन तन जाती है, नाक फूल जाती है, गले की नसें उभर आती हैं और आँखें चमकने लगती हैं। शहर कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष रमाशंकर के क्रान्तिकारी आदेश का पालन करके वह खुश और सन्तुष्ट है।

एक मामूली आदमी नहीं जानता कि वह कभी, कोई क्रान्तिकारी कार्य कर सकता है। वह अपने काम-धन्धे, ईर्ष्या-द्वेष, सुख-दुःख, छोटी-छोटी चालाकियों में लिप्त रहकर फूंक-फूंककर आत्मरक्षात्मक कदम आगे बढ़ाता है, तब आश्चर्य होता है कि कैसे यही लोग किसी संकटकालीन ऐतिहासिक मौके पर उठ खड़े होते हैं और मिलजुलकर जोर-जुल्म, अन्याय, गुलामी का विरोध करने के लिए घरों से बाहर निकल आते हैं। राममूरत का ऐलान और आह्वान सुनकर भी उन पर तत्काल कुछ खास प्रभाव नहीं पड़ा। गर्मी से बेहाल, मुर्झाए-मुर्झाए-से वे उठ खड़े हुए। उन्होंने कुछ सोचने की कोशिश की, लेकिन कोई स्पष्ट भाव और जोश उनके अन्दर नहीं उत्पन्न हुआ। लेकिन दिशा-मैदान, स्नान-ध्यान और नाश्ता-पानी के बाद वे कुछ चैतन्य हुए। तब वे बाहर निकल पड़े और छोटे-छोटे दल बनाकर खुसुर-पुसुर बतियाने लगे। एक-दूसरे के दिल और दिमाग में राख के अन्दर दबी चिनगारी को हवा देते हुए।

"अब तो अंग्रेजों का पत्ता साफ समझो। पहले की तरह नहीं कि गांधीजी मान जाएँगे।"

"अरे, बम्बई की जनता तो बगावत में उठ खड़ी हुई है। आज के अखबार में तो बम्बई की खबर एक कोने में मामूली ढंग से दी गई है। जब इतनी बड़ी घटना का यह हाल है, तो वहाँ आँधी-तूफान की खबर को सेंसर नहीं किया गया है, यह कैसे कह सकते हैं..."

"बम्बई की ही बात नहीं, देश-भर में विद्रोह की लपटें उठ रही हैं...।"

"क्रान्तिकारी भी इस बार बम-पिस्तौल से पूरी तरह लैस हैं..."

"उधर सुभाष बाबू जर्मन-जापानियों की मदद से पूरी फौज के साथ देश में प्रवेश करनेवाले हैं। उन्होंने महात्मा गांधी को आजाद हिन्दुस्तान का अगला राष्ट्रपति घोषित कर दिया है..."

"देश के भीतर भारतीय फौज और पुलिस विद्रोह करने का मौका देख रही है..."

"अंग्रेजी फौज हर मोर्चे पर पूँछ दबाकर भाग रही है।"

"बलिया के लोगों को कम समझते हैं? इस बार तो यहाँ की जनता अंग्रेजों को ऐसा मजा चखाएगी कि उनको नानी याद आ जाएगी।"

"यहाँ के विद्यार्थी भी पूरी तरह तैयार हैं क्रान्ति के लिए।"

"यह मामूली आँधी नहीं, गांधी की आँधी है!"

"आपकी तैयारी है न?" किसी ने हँसकर पूछा।

चलेंगे।" "अरे लीजिए, यह भी कोई पूछने की बात है? आप आगे रहेंगे तो पीछे-पीछे हम भी न चले

इस जवाब पर हँसी हुई। फिर कोई आगे बढ़कर बन्दर की तरह खौखियाकर बोला, "कैसी बातें करते हैं जी ! आपके शरीर में यहाँ के अन्न-जल, हवा-पानी से बना खून नहीं दौड़ता ? भैया, सच कहता हूँ, अंग्रेजों की यह सरकार अब तो एक दिन के लिए भी बरदाश्त नहीं है। इस बार यहाँ की जनता इस सरकार के किले की ईंट से ईंट बजा देगी। मैं सीने पर गोली खाने को तैयार हूँ-मैं, मेरे दोनों जवान बेटे, मेरी औरत !"

सूरज निकलने के बाद जब वृक्ष-शिखरों को एक फीकी, बेजान धूप ने स्पर्श कर लिया, वीरेश चुपके-से अपने घर से निकलकर सड़क के रास्ते मालगोदाम की तरफ बढ़ चला। इस समय वह सिर्फ दो उद्देश्यों के लिए ही जी रहा है-एक तो यही कि खूब मेहनत करके इस वर्ष हाई स्कूल की बोर्ड परीक्षा में पहला स्थान प्राप्त करना समूचे प्रदेश में। दूसरा वही है, जो आजकल लगभग हर नौजवान का है कि किस तरह आजादी की लड़ाई में आगे बढ़कर भाग लेकर इस देश से विदेशी सरकार को समाप्त कर दें। दरअसल वह अपना कर्त्तव्य समझता है कि नीलेश के न रहने पर वह सभी कार्य सम्पन्न करे जो उसके बड़े भाई को जान से भी अधिक प्रिय हैं।

वीरेश इन दिनों और लम्बा हो गया है-अपने बड़े भाई नीलेश से भी। वह सवेरे-शाम नियमित रूप से कसरत कर रहा है-दंड बैठक और उसकी छाती आगे की तरफ निकल आई है। वह बीच-बीच में गर्दन को बाईं ओर झटका देकर दाहिने हाथ से सिर के बालों को सँवारता है जैसे उसके कन्धों पर राष्ट्र की बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ गई हो। और एक तरह से यह सही भी है। उसने राममूरत का ऐलान सुना है और अब देशप्रेम के उत्साह से भरा इस उद्देश्य से अपने कुछ साथियों से मिलने जा रहा है कि कैसे अपने स्कूल में हड़ताल कराके शहर और जिले के छात्रों के सामने एक आदर्श प्रस्तुत करे।

मालगोदाम के सामने पहुँचकर वह दाहिनी सड़क पर मुड़कर कुछ और तेजी से चलने लगता है। उमस वैसी ही है और धूप एक अजीब मनहूसियत फैला रही है। इस सड़क पर लोगों और वाहेनों का आवागमन कम होता है, इसलिए वह साफ-सुथरी दिखाई देती है, छोटी सरयू नदी की तरफ जाती हुई। कहीं-कहीं सड़क या उसके अगल-बगल बने छोटे गड्ढों में बारिश का पानी भरा है, जिससे बचते

हुए जब वह अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचा तो उसका सहपाठी जगदम्बिका घर के अन्दर से एक हाथ में गिलास पकड़े बाहर निकला ही था।

"क्या बात है ?" जगदम्बिका ने उसकी तरफ अचम्भे से देखा।

"मैं तुमसे एक खास बात करना चाहता हूँ। गिलास लेकर कहाँ जा रहे हो?" तो ट्रा

"यार, नदी के किनारे एक ग्वाला है, उसके यहाँ जाकर दो गिलास धारोष्ण दूध पीता हूँ। तुम्हारे लिए भी एक गिलास लाता हूँ..."

"अरे नहीं, मैं इस समय दूध नहीं पीता... दो मिनट की बात है, फिर तुम चले जाना... "अरे, चलो न मेरे साथ। यह क्या नदी दिखाई देती है, वहीं बैठकर इत्मीनान से बात करेंगे। बात यह है कि पहले ही देर हो चुकी है, वह दूध तो जरूर मिलेगा, मगर धारोष्ण नहीं..."

नदी वहाँ से एक फर्लांग भी नहीं है। खपड़ैल वाला बिरजू ग्वाला का मकान अब कगार पर किसी चमत्कार की वजह से ही बचा खड़ा है। वह बड़ी बेसब्री से जगदम्बिका की प्रतीक्षा कर रहा था, जिसे देखते ही वह बोला:

"इतनी देर मैं रुक नहीं सकता, बार-बार कहा समय से दो मिनट पहले आकर खड़े हो जाइए। लाइए गिलास, भैंसें दुही जा चुकी हैं, आपके ही लिए गाय को रोके हुए हूँ..."

गिलास लेकर वह गाय के पास चला गया। मकान के बाहर की कीचड़ और गोबर वाले स्थान पर तीन भैंसें और एक गाय अपने-अपने नाद के सामने खड़ी थीं। बिरजू ने खूँटे में बँधे बछड़े को खोल दिया, जो दौड़कर अपनी माँ का दूध पीने लगा। कुछ ही देर बाद पुनः बछड़े को खूँटे में बाँधकर स्वयं बाल्टी लेकर दूध दुहने बैठ गया। जब दूध की धार बाल्टी में गिरनी शुरू हुई तो खन-खन जैसी मधुर ध्वनि आने लगी। फिर उसने बगल में रखा हुआ गिलास धार के नीचे लगा दिया और भरने पर पास खिसक आए जगदम्बिका के हाथ में बिना उसकी ओर देखे थमा दिया। मीठा, ऊष्ण दूध जगदम्बिका ने बड़े ही चाव से ग्रहण किया जैसे अमृत पी रहा हो। एक और गिलास दुबारा ग्रहण कर वह पीछे खड़े अपने सहपाठी वीरेश के पास लौटकर तृप्ति की मुस्कान के साथ बोला : "आओ, यहाँ कुछ देर तक लकड़ी पर बैठकर बात करते हैं..."

बिरजू के मकान के सामने कुछ ही दूरी पर पेड़ों की कटी हुई लकड़ी के मोटे-मोटे बोटे गिराए गए थे, जो गीले थे। एक लम्बे मोटे बोटे पर, उसको हाथ से झाड़कर बैठ गए वे। सामने छोटी सरयू और गंगा मिलकर समुद्र बन गई थीं। सरयू तट पर निर्मित वह मजबूत, गोला और विशाल स्तम्भ भी लगभग डूब गया है, सिर्फ उसका चबूतरानुमा शिखर ही दिखाई दे रहा है। सीमाहीन मटमैले जल के छोर का

कहीं अता-पता नहीं, जो उच्छवसित होकर गहरी साँस लेते हुए धुँधली-सी धूप में चमक रहा है। गंगा तेजी से बलिया जनपद को काटती जा रही है, इसीलिए उत्तर की ओर से प्रबल लहरों के प्रहार को विफल करने के लिए नदी के किनारे अनेक स्तम्भ खड़े किए गए हैं। पहले ही दो बलिया शहर नदी के पेटे में चले गए हैं और सन् 1916 की भयंकर बाढ़ को लोग आज भी याद करते हैं, जब पानी शहर के बीच गड़हे में लगातार कई दिनों तक गिरता रहा था।

"क्या पहलवानी करने का इरादा है ?" वीरेश ने बैठते हुए मुस्कुराकर पूछा था। "यार, शरीर बनाने की यही उम्र है। कमजोर मरियल रहो तो मच्छर-छछुन्दर भी परेशान करते हैं, अब तो कोई भी पास आने की हिम्मत नहीं कर सकता। करेगा तो फौरन मसल दिया जाएगा।" वह हँसने लगा, फिर गम्भीर होकर बोला, "बात यह है कि थानेदारी के इम्तहान में बैठने के लिए मैं शरीर बना रहा हूँ, जब थानेदार बन जाऊँगा तो इन कांग्रेसियों की इतनी पिटाई करूँगा कि आन्दोलन हमेशा के लिए भूल जाएँगे..."

"अरे, यह क्या कह रहे हो? जिसके लिए मैं तुमसे सहायता लेने आया हूँ, उसी की निन्दा कर रहे हो ! क्या तुम इस देश के नौजवान नहीं हो? ठीक है, मैं जाता हूँ...।"

वीरेश के गुस्सैल चेहरे के साथ उठ खड़े होने पर जगदम्बिका भी गम्भीर होकर उठ खड़ा हुआ और उसके कन्धे पर हाथ रखते हुए बोला, "यार, तुम तो नाराज हो गए। मैं तो मजाक कर रहा था। तुम साफ-साफ कहो, क्या बात है। तुम्हारा किसी ने अपमान किया है, तुमको किसी ने कुछ कहा है तो बताओ, वह कोई भी हो, मैंने उसको पटक-पटककर न मारा तो कहना...।"

"अपमान हुआ है, जगदम्बिका मेरा ही नहीं, तुम्हारा भी। एक-एक हिन्दुस्तानी का। बम्बई में महात्मा गांधी. जवाहरलाल नेहरू मौलाना आजाद, सरदार पटेल सभी गिरफ्तार कर लिए गए हैं। गांधीजी ने देश के हर आदमी से कहा है, अंग्रेज सरकार को इस देश से हटाने के लिए वह सरकार से असहयोग करे. उसके विरुद्ध प्रदर्शन करे। क्या तुम देश की आजादी की लड़ाई में गांधीजी का साथ देने को तैयार हो ?"

"देखो वीरेश, मुझे ये बड़ी-बड़ी बातें समझ में नहीं आतीं। तुम लोग पढ़ाकू लड़के हो, मैं तो अखबार भी नहीं पढ़ता। मेरे पिताजी पुलिस महकमे में क्लर्क हैं और मुझे थानेदार बनाना चाहते हैं। लेकिन मैं कहता है न कि जो भी कहोगे तुम, उसमें तुम्हारा साथ देंगा मैं "

"मेरी वजह से क्यों साथ दोगे तुम ? तुम्हारा दिल नहीं कहता तो तुम साथ न दो. मैं तुम पर जोर नहीं दूंगा। यह देश केवल मेरा ही नहीं है। तुम्हारा भी है। केवल मेरा ही फर्ज नहीं है तुम्हारा भी फर्ज बनता है कि इस देश की आजादी के लिए कुछ करो। विदेशी गुलामी से तुम्हारा अपमान नहीं होता, उससे तुम खुश हो, तो कोई बात नहीं, तुम्हें इस लडाई में शामिल होने की जरूरत नहीं..."

जगदम्बिका कुछ क्षणों तक मौन होकर सोचता रहा। यह दोपुँछटा की धोती और बनियान पहने था। पैरों में चप्पल-जूता कुछ भी नहीं। इधर कुछ लड़कों ने, जो बचपन में कमजोर, दुबले-पतले और मरियल थे, अचानक लम्बे और दंड-बैठक एवं दूध-घी के सेवन द्वारा तगड़े होकर, आत्मविश्वास प्राप्त करके दोपुँछटे की धोती पहननी शुरू कर दी थी। इस प्रकार का पहनावा उस एकपुँछटे की ढोली धोती के मुकाबले आधुनिक समझा गया, जिसके बीच से विलैया फाँद जाने का मजाक तोकप्रिय हो चला था। उक्त पहनावा, प्राचीन युग के धनुर्धर वीरों का आत्मानुभव कराता था और खेत-कूद तथा मारपीट करके भागने में भी बड़ा सुविधाजनक था।

"नहीं वीरेश, आजादी की इस लड़ाई में मैं तुम्हारे साथ हूँ। बताओ, क्या करना है?" जगदम्बिका ने गम्भीर होकर किंचित आवेश में कहा तो उसकी आँखों में चमक आ गई।

"आज गांधीजी, नेहरूजी, सरदार पटेल, मौलाना आजाद आदि नेताओं की गिरफ्तारी के विरोध में शहर में पूरी हड़ताल होगी और जुलूस निकलेगा। हमें अपने स्कूल में हड़ताल कराके दूसरे स्कूलों में हड़ताल करानी है. और फिर जुलूस में शामिल होकर कचहरी में प्रदर्शन करना होगा। बोलो, तुम इस काम में आगे बढ़ोगे ? तुम लम्बे, तगड़े हो, सीनियर विद्यार्थी हो, तुम रहोगे तो सबको बल मिलेगा..."

"जहाँ तुम हो, जहाँ देश है, वहाँ मैं भी हूँ यार! मैं जान की बाजी लगा दूँगा..." "वाह, तब तो ठीक ही है। चलो नफीस, शम्भु वगैरह से भी कह दें..."

"हाँ, चलो, जरा मैं कमीज और चप्पल पहन लूँ..."

जव अन्य मोहल्लों में राममूरत स्वतन्त्रता का उदघोष कर रहा था. रमाशंकर अपने भोंपे से ओकडनगंज पुलिस चौकी के आस-पास और चौक क्षेत्र में घूम-घूमकर, 'अंग्रेजो, भारत छोडो'. 'इन्कलाब जिन्दाबाद', 'भारत माता की जै' के नारे लगा रहा था। इस समय ओकडनगंज पुलिस चौकी के सिपाही निश्चिन्त होकर नित्यकर्म में या तो लिप्त थे या उसकी तैयारी कर रहे थे। पुलिस कान्स्टेबल केदार पांडे और तजम्मूल रात की गश्त से लौटकर एक बेंच पर बैठे ऊँघ रहे थे। दो अन्य कान में जनेऊ चढ़ाए हाथ में लोटा ले-लेकर बाहर निकलकर पीछे की गली के शौचालय की तरफ हिरन हो गए। लेकिन दीवान रामअँजोर तिवारी. जो पहले ही निपटकर अब लँगोट पहनकर दंड पेल रहा था, चौंककर बोला:

"अरे तजम्मुल, यह कौन हरामी इस समय चिल्ला रहा है ! टाँग घसीटकर ले आओ तो उसे मुर्गा बनाकर पाँच ईंट रख दो उसके चूतड़ पर।"

और "अच्छा साहेब अभी लाता हूँ..." तजम्मुल चींकर उठ खड़ा हुआ, फिर अपनी लाठी उठाकर सड़क की तरफ धीरे-धीरे चल पड़ा।

लेकिन जब चौक की तरफ जानेवाली सड़क पर पहुँचा तो रमाशंकर नारे लगाकर वहाँ से रफूचक्कर हो चुका था। नींद में माता तजम्मुल किसी अज्ञात, काल्पनिक अपराधी को गाली देता हुआ लौटकर बोला :

"अरे साहब, भूतनी का एक पागल है, जो दो-तीन रोज से शहर का चक्कर लगा रहा है। मैंने टाँग में एक डंडा मारकर उसे भगा दिया है..."

रमाशंकर नारे लगाने के बाद कन्या पाठशाला की दुलारी देवी तथा कुछ और स्त्री-पुरुषों से मिलने के बाद घर लौट रहा था कि गली में भगजोगिनी की सास अपनी पौत्री के साथ अपने मकान के बरामदे पर चढ़ती हुई नजर आई। यह चौका-बासन करके लौट रही थी। "काम से निबट आई, चाची ?"

भगजोगिनी की सास ऊपर बरामदे में ठिठककर खड़ी हो गई। फिर गली की तरफ पीछे मुँह मोड़कर बोली :

"हाँ, ए बाबू...कहाँ से आ रहे हो? हाँ ए बाबू, तुमसे एक बात..." "अच्छा, क्या बात है चाची..." रमाशंकर जल्दी से बरामदे के किनारें जाकर खड़ा होकर धीमे उत्सुक स्वर में बोला :

"बाबू, सवेरे-सवेरे मैंने कुछ कह दिया था, बुरा न मानना। मैं काम कर रही थी तो तुम्हारे बारे में ही सोच रही थी। तुमने, नम्रता बिटिया ने मिलकर चार घर काम पकड़ा दिया है, नहीं तो हम तो भूखे मर जाते... मुझे तो अपनी बहू को देखकर रुलाई आती है बाबू ! अब मेरा ही कुसूर है, पहले ही उस मरकिलौना को झाड़ू मारकर निकाल बाहर किया होता तो ये दिन देखने न पड़ते। पूरी उम्र पड़ी है उसकी। कितना कोमल चेहरा है उसका। मगर बड़ी नेक, हिम्मती है। मेरा तो कलेजा फटता है, जब जी हल्का करने के लिए रोने लगती हूँ तो वह मुझे समझाने बैठ जाती है ! जवान औरत है, निकलने नहीं देती हूँ बाहर... लोगों का दिल काला है, बेसहारा समझकर..."

"देखो चाची, अपने को रो-धोकर कमजोर करोगी तो बहू और बच्चे भी हिम्मत छोड़ देंगे। जो वीत गया है, यह भूल जाओ। जैसा समय आए, वैसा करना चाहिए... यह हिम्मत का समय है, मेहनत का समय है... आगे अच्छा जमाना भी आएगा। हम सब इसीलिए तो लड़ रहे हैं। गांधीजी क्यों जेल गए हैं ? नेहरूजी क्यों जेल में हैं? यह समझ लो, जब देश को आजादी मिलेगी तो गरीबों का राज होगा। हिम्मत से काम लो। खैर, तुम कुछ कहना चाहती थीं ?"

"हाँ, ए बाबू, मैं अपनी बहू का दिल थोड़ा नहीं करूँगी, मैं उसे जुलूस में जाने दूँगी। मैं भी चलूँगी उसके साथ। बच्चे भी चलेंगे..." भगजोगिनी की सास ने आँचल से आँखें पोंछते हुए कहा। रमाशंकर आँखें फाड़कर और मुँह बाकर उसकी तरफ देखता रह गया। फिर उत्साहपूर्वक बोला :

"अरे चाची, कोई दिक्कत हो तो रहने दो और चलने की इच्छा है तो शौक से चलो। यह बड़ा पवित्र काम है, चाची! देश के लिए जान देने से अधिक पुण्य काम तो कुछ है नहीं। हाँ, बच्चों को साथ न ले चलो... दोनों को मेरे घर पर छोड़ दो, वहाँ मेरे घर के बच्चों के साथ खेलेंगे, खाएँगे-पीएँगे, कोई तकलीफ न होगी। हाँ, ग्यारह बजे के करीब चौक में पहुँच जाना, जितनी दूर जुलूस में चल सको, चलना, थक जाने पर लौट आना। मैं ही या किसी और से तुम लोगों को घर पहुँचा दूँगा। इस समय आराम से नहाओ-धोओ, पकाओ-खाओ, ठीक साढ़े दस बजे चल देना।"

भगजोगिनी नहा-धोकर, आँगन में बोरा बिछाकर चरखा कात रही थी। जब बाहर से किसी से बात करने की उसकी सास की आवाज अन्दर आने लगी. उसने उठकर धीरे-से दरवाजा खोला और उसके फॉफर से झाँककर देखा कि किससे बात हो रही है। वह चुपचाप पूरी बात सुनती रही और जब रमाशंकर चला गया तो दरवाजा पूरी तरह खोलकर बाहर आ गई।

"आज देर हो गई..." भगजोगिनी इस तरह बोली, जैसे रमाशंकर की बात उसने सुनी न हो। "अरे हाँ, नकलनबीसिन हमेशा ठकठेन करती हैं। मैंने भी जी भरकर सुना दिया। यह भी कह दिया, अपने मन की कोई दूसरी मिले तो रख लो। तब लगीं गिड़गिड़ाने। मन की खराव नहीं हैं, बस बहुत बड़बड़ाती हैं। झोला में यह कुछ सामान दिया है, रख लो, संझा को झोला लौटाना पड़ेगा... अरे हाँ, दुल्हिन, रमाशंकर फिर आए थे, कहने लगे आजादी मिलने पर गरीबों का राज होगा तो मैंने भी कह दिया कि हमारी बहू भी जुलूस में जाएगी और मैं भी उसके साथ चलूँगी। अब तो खुश हो तुम...।"

"अम्माजी, आप भी चलेंगी? काम-धाम करके आई हैं, थकी होंगी, घर पर आराम कीजिए..."

"अरे नहीं, कैसी बात करती हो बहुरिया ! क्या मैं तुमको अकेले छोड़ सकती हूँ ? बच्चे रमाशंकर बाबू के यहाँ रहेंगे, वह अपने मुँह से कह गए हैं..."

भगजोगिनी कुछ और कहना चाहकर भी चुप रही इस डर से कि अगर बात बढ़ने से सास बिगड़ गई तो उसका जाना रुक भी सकता है। अतः बच्ची का हाथ पकड़कर तथा दूसरे हाथ में सास का दिया हुआं झोला लेकर चुपचाप भीतर चली गई।

वह मन-ही-मन प्रसन्न थी। एक गुदगुदी-सी हो रही थी उसके अन्दर। यद्यपि उसका कारण ठीक-ठीक नहीं समझ पा रही थी। आजादी क्या होती है? गरीबों का राज क्या होता है? बस वह इतना ही जानती है कि तन-मन का इतना सुख देकर दामोदर ने कभी आजादी की बात उससे नहीं कही और अन्त में निर्मम होकर विश्वासघात करके यहाँ से चला गया तो देश को आजादी मिलने और गरीबों का राज होने पर कम-से-कम यह तो होगा ही कि सभी एक-दूसरे पर विश्वास करेंगे और कोई किसी से

धोखा नहीं करेगा और लोग रमाशंकर तथा नम्रता की तरह गरीबों और बेसहाय लोगों की मदद करेंगे !

उसके मकान के भीतर आँगन मजे का बड़ा था जिसके पीछे एक कुआँ और उससे कुछ ही दूरी पर खुड्डी वाला शौचालय था। पहले पानी भरने के लिए घर के बाहर सड़क पर हरिजी के गोले के पक्के कुएँ का ही सहारा था, क्योंकि सामने वकील के अहाते में बने कुएँ से पानी भरने की इजाजत किसी बाहरी व्यक्ति को नहीं थी। शौच के लिए भी मर्द, औरत, बच्चों सबको निकटवर्ती बमपुलिस तक जाना होता। भगजोगिनी का ससुर यानी बनवारी का बाप रमापति बड़ा ही उद्यमी, अपने हर परिवारजन के आराम का खयाल रखनेवाला मेहनती, शौकीन और स्वाभिमानी था। एक बार पड़ोसी वकील के व्यवहार से अपमानित होकर ताव में आ गया और अपने आँगन में खड़ा होकर 'रईसों की ऐसी की तैसी' कहते हुए अपने मकान के अन्दर कुआँ खोदवाने और शौचालय बनवाने के संकल्प की उद्घोषणा कर दी। और दूसरे दिन से इन दोनों ही कामों के लिए मजदूरों को लगा दिया गया।

भगजोगिनी ने अपने ससुर रमापति को नहीं देखा था, ससुराल आने पर उनकी केवल तस्वीर देखने को मिली थी। मगर कुआँ खोदवाने और शौचालय बनवाने के लिए वह उनका सदा कृतज्ञ रहती है-अन्यथा उसकी और घर के लोगों की क्या दुर्गति होती! कुआँ दूर था, जहाँ सदा भीड़ इकट्ठी रहती थी और देर तक इन्तजार करना पड़ता था। कमर या सिर पर गगरा भर-भरकर पानी ढोना एक कमरतोड़ एवं दुःखदायी कसरत थी। ऊपर से, यदि पानी भरनेवाली जवान औरत या

लड़की हुई तो उसे अश्लील छींटाकशी के बीच यह उबाऊ कृत्य सम्पन्न करना होता था। यह ससुर की याद करके अपने आँचल के बीच दोनों हाथ जोड़कर सिर नयाती थी।

वह जवान, तगड़ी, नेकदिल, स्नेही और दयालु थी, इसलिए उसे अपने और दूसरों के लिए भी काम करने में आनन्द आता। शुरू से ही वह सभी कमरे, वरामदे, पूरा आँगन, और दरवाजा चमानम साफ रखती। उसने छोटे बच्चे को भी उठाया और दोनों को कुछ खिला-खिलाकर उन्हें नहलाया-धुलाया और उनके कपड़े बदले। फिर सास को कलेवा कराकर नहलाया। अन्त में स्वयं नहा-धोकर खाना बनाने बैठी तो लकड़ी की लाल आँच का प्रतिविम्ब उसके चेहरे पर दमकने लगा। जब चूल्हे पर बटलोई बिठाकर उसमें पानी से साफ की हुई दाल डालकर उसके मुँह को एक फूल की तश्तरी से ढक दिया उसने, तो यह सोचकर उसका कलेजा धक कर गया कि उसकी जिन्दगी में क्या हो गया और क्या हो रहा है और अब क्या होने जा रहा है और तब अजीब-अजीव खयाल आने लगे उसके दिमाग में रोशनी के सभी रंगों की तरह।

उसे अपने बचपन के दिनों की याद आने लगी। उसने प्यार के रंगों में रँगा दिल पाया था। गुस्सा, दुःख, चिल्लाना उसे अच्छा नहीं लगता। जो भी उससे प्यार से बोलता, उसकी गुलाम हो जाती यह। और मामूली डाँट उसे बरदाश्त नहीं होती। पिता से खूब प्यार मिला उसे, उसका उदास मुँह उन्हें बरदाश्त

नहीं होता था। वह उसकी हर जिद पूरी करते और जिसने उसका दिल दुखाया हो, उसको कड़ी डॉट-फटकार लगाते। उसे फूल पसन्द थे और सभी बच्चे भी, चाहे वे आदमी के हों या जानवर के।

ऐसे ही प्यारे दिल के साथ वह ससुराल आई और बनवारी का प्यार पाकर निहाल हो गई। उसने बनवारी में पिता, माता, भाइयों, बहनों तथा अन्य परिवारजनों के प्यार का प्रतिरूप तो देखा ही, उसमें अपना स्वामी और परमात्मा भी पाया। वह तन और मन से उसको खुश रखती, उसकी सेवा करती। वह खूबसूरत नहीं था, उससे नाटा भी था, तब भी वह उसे बाँहों में लेकर सोती तो उसे स्वर्ग का सुख मिलता प्रतीत होता। उसके तन, मन की प्यास और ज्वाला शान्त होती और वह फूल की किसी पंखुरी की तरह हल्की तथा कोमल होकर अनजान मधुर सपनों की दुनिया में खो जाती। और जब बनवारी उससे रूठकर चला गया और लम्बा, हट्टा-कट्टा दामोदर अपने समस्त छल-कपट, काइयाँपन के बावजूद उसके जीवन में आकर और उस पर छाकर उसे प्यार से सराबोर कर गया, तब उसकी लम्बी-लम्बी बाँहों के बीच में उससे चिपटकर सोने में जो सुख मिला यह भी अद्वितीय था और बनवारी से मिले सुख से कम नहीं। यह सोचते-सोचते पता नहीं क्यों और कहाँ से उसकी आँखों में आँसू आ गए और वह दोनों उठे घुटनों में मुँह छिपाकर सुबकने लगी।

रसोईघर के एकान्त में और फफकती हुई दाल के हिलते ढकने के संगीत के बीच उसने अपनी आँखें पोंछकर सिर को सीधा किया तो उसके मुँह से गहरा उच्छ्वास निकल गया। उन दोनों मर्दों को अपना सर्वस्व मानकर उसने इसलिए जान से बढ़कर प्यार किया था कि वे बड़े बहादुर, हिम्मती थे और उसे बेहद प्यार करते थे। वे प्यार के अपने-अपने तरीकों से उसे ऊपर उठाकर आसमान पर चढ़ा देते। वह स्त्री की गरिमा से भर जाती। दोनों ही पूरे मर्द थे, क्योंकि वे स्त्री को प्यार से खुश रखना जानते थे। दोनों के तरीके कितने भिन्न थे-एक में कर्मठ हिम्मती जीवन के बीच मौन अभिव्यक्ति, मौन समझदारी तथा अनोखी आह्लादकारी सक्रियता और दूसरे में झूठ, छल-प्रपंच, लम्पटता के बावजूद उच्च कोटि की नाटकीय मुखरता, वाचालता एवं नित नूतन, मृदुल एवं अप्रत्याशित खेलकटई द्वारा अपने अथाह प्यार की सच्चाई की अभिव्यक्ति का सदाबहार उत्साह।

बनवारी को तो ईश्वर ही उठा ले गए, इसमें न उसका दोष था और न किसी अन्य का ही। यह दुःख तो वह बरदाश्त कर गई। लेकिन दामोदर उसे छोड़कर जाते समय जब उसके प्यार तया उससे हुए गन्धर्व विवाह को सबके सामने नकार गया तो उसके लिए जैसे दुनिया ही उलट गई।

उसके दिल को ऐसा गहरा आघात लगा कि शुरू-शुरू में उसको पीडा ही नहीं महसूस हुई। दिल जैसे पत्थर हो गया। वह न चिल्लाई और न उसकी आँखों से आँस ही गिरे। वह सब काम-धाम करते हुए खाली आँखों से सबको देखती रहती। पहली बार चिल्लाई उस समय, जब उसकी सास दो दिन बाद उसके पास बैठकर बोली :

"ऐ दुल्हन, तुम क्यों ऐसी हो रही हो? सारा दोष तो हमारा है। मैंने ही उस मुँहझौंसे को अपने घर में घुसने दिया। पहले ही फटकार दिया होता तो यह दिन देखने को न मिलता। अपने आराम, अपने स्वारथ के लिए तुम्हारा हाथ उसे थमा दिया। मैं मेहनत से घबरा गई। सभी कुछ बरबाद होने पर भी मुझमें यह घमंड था कि जब तुम्हारे ससुर के जमाने में घर से बाहर नहीं निकली तो क्या अब घर-घर जाकर मजदूरी करूँ। मेरे लड़के, मेरे बाबू ने भी मुझे कोई काम करने न दिया। मैंने बाबू का नाम लेकर भी झूठ कहा। मेरे बाबू ने यह तो कहा था, भगजोगिनी का हाथ किसी को दे देना... उन्होंने उस मरकिलीने का नाम कभी नहीं लिया। मैंने सबसे दगा किया, अपने से किया, अपने बाबू से, तुम्हारे से भी किया। शिवजी, मुझे नरक दें, मेरा शरीर सड़-सड़कर गिरे..."

वह अपने सिर को दीवार से पटकने लगी। भगजोगिनी अब चीखकर रोती हुई बोली : "अरे यह क्या करती हैं, ऐ मैया! आप जान दे देंगी तो हमारा क्या होगा, इन बच्चों का क्या होगा ? आपका दोष कुछ नहीं है, मैं ही मनहूस हूँ। मैं ही अपने मर्द को खा गई। और दूसरा धोखाधड़ी से मिला भी तो मुझे अपने प्यार से आसमान पर चढ़ाकर दगा दे गया। आसमान से गिरकर मेरा अंजर-पंजर छितरा गया है अम्माजी! मेरे दिल के टुकड़े-टुकड़े हो गए हैं। मेरी इच्छा होती है, आग लगाकर अपनी इस पापी देह को भस्म कर दूँ। इन बच्चों की खातिर यह सब मैं नहीं करूँगी। मैं अपने को जोड़ेंगी, मैं ही घर-घर जाकर मजूरी करूँगी। आप सबका पालन-पोषण करूँगी। उस दगाबाज के सामने हीन-दीन नहीं बनूँगी। किसी के आगे हाथ नहीं पसारूँगी।"

उसने अपनी सास का हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचा, जिससे वह भगजोगिनी की गोद में आकर गिरी। फिर तो दोनों-सास-बहू-एक-दूसरे के गले लगकर फूट-फूटकर रोने लगीं। जब रुदन का वेग कमजोर होकर असमर्थ हो गया तो उसकी सास ने कहा :

"अरे, यह क्या कहती हो दुल्हन ! मैं जब तक जिन्दा हूँ, तुम्हें बाहर नहीं निकलने दूँगी। मैं घर-घर काम करूँगी, मेहनत-मजूरी करूँगी। पुरानी हड्डी है मेरी। अपने मर्द, अपने बाबू के समय में खूब खाया-पीया है, आराम किया है, दूध-घी, कलिया-मछरी, अंडा-मुर्गा कुछ भी नहीं छूटा है। उसी आराम ने मुझे आलसी बना दिया था, मेरी हिम्मत तोड़ दी थी। अब मैं चेत गई हूँ, अब कोई आँखें निकालकर देखे तो उसका क्या नतीजा करती हूँ! तुम जरा भी दुःख न करो। हाँ, रमाशंकर बाबू दो दिन से आ रहे हैं, तुम्हारा हाल जानकर चले जाते हैं। उन्होंने चौका-बासन करने के लिए दो घरों में बात कर ली है। दो-तीन और घर मिल जाएँ, इसकी कोशिश कर रहे हैं। कहा है-दुपहरी बाद तीन-चार के बीच में सामने सड़क के ठाकुर मुख्तार के घर जाकर उनकी बिटिया नमरता से मिलने को, पक्की कंगरेसिया है, चरखा चलाती है, वही काम बताएगी..."

दो दिन बाद दोनों सास-बहू नम्रता से मिली थीं। साड़ी के ऊपर सफेद चादर सिर से ओढ़कर और आगे उसका घूँघट निकालकर। चनाका धूप निकली थी। सड़क लगभग वीरान। उस रात की घटना के दूसरे दिन ही उसकी सूचना विभिन्न आकार-प्रकार की अफवाहों के रूप में घर-घर पहुँच चुकी थी। लेकिन रमाशंकर ने भयंकर बीमारी और गरीबी के परिणाम तथा दामोदर की दुष्टता का विवरण देकर नम्रता

का संशय दूर कर दिया था, जिससे उसने अपनी माँ को आश्वस्त करके दो और घरों में चौका-बासन का काम खोजने में सफलता प्राप्त कर ली थी। अपने नए देशभक्तिपूर्ण विचारों की वजह से उसके अन्दर गरीब-दुखिया के प्रति पहले ही पर्याप्त संवेदना थी, एक निर्दोष और बेसहारा स्त्री के दैहिक शोषण की कहानी सुनकर वह क्रोध से आगबबूला हो गई। और एक

अनोखा, उत्सुकता-भरा अतिरिक्त लगाय एवं सहानुभूति का भाव भी था उस स्त्री के प्रति क्योंकि उसे अचानक अपने बचपन की याद आ गई, जब आँखमिचौली के खेल में यह और नीलेश अक्सर उस गली वाले मकान के सुनसान बरामदे में जा छिपते थे।

भगजोगिनी को अपनी सास के साथ देखकर नम्रता चकित रह गई थी। इतनी खूबसूरत स्त्री को इतना दुःख भोगना पड़ा-यह सोचकर उसे समझ में ही नहीं आया कि कैसे सांत्वना दे। क्या करे उसके लिए। पता नहीं क्यों उसे रुलाई आने लगी। बाहर के अपने कमरे में बिठाकर वह यह कहकर वहाँ से खिसक गई:

"मैं अभी पाँच मिनट में आती हूँ.... आप लोग बैठी रहो।"

वह घर के अन्दर जाकर अपने बाथरूम में घुस गई और आँखों पर आँचल रखकर रोने लगी। बार-बार उसके दिमाग में यह खयाल क्यों आ रहा है कि यह भगजोगिनी भी अपने बचपन में आँखमिचौली खेलती होगी और अपने किसी साथी के साथ कहीं छिप जाती होगी। अवश्य उसका कोई बचपन का साथी रहा होगा, और बड़े होने पर वे दोनों एक-दूसरे को पसन्द करते होंगे और तब अचानक अपने साथी से बिछुड़कर वह ससुराल यह सब भोगने के लिए आ गई होगी। क्या यह भी नीलेश से बिछड़ जाएगी? यह खयाल आते ही उसकी रुलाई और तेज हो गई। यह फफक-फफककर रोने लगी। उसने अपने को उनमुक्त छोड़ दिया जी-भर रोने के लिए और जव रुलाई का वेग कम हुआ तो वह अपने को धिक्कारने लगी अपनी ऐसी दुर्बलता के लिए। अपना जी कड़ा किया उसने, अपनी आँखों पर बार-बार पानी के छींटे दिए और जब सुस्थिर हो गई तो जल्दी-जल्दी बाहर के कमरे में पहुँचकर मुस्कुराती हुई बोली :

"माफ कीजिए, देर हो गई। एक जरूरी काम आ गया था। दो और घरों में मैंने बातें कर ली हैं। दो घर पहले ही रमाशंकर भैया तै कर चुके हैं। मैं एक चरखा देती हूँ, रूई भी दूँगी, आप दो घंटे रोज चरखा कातिए। महीने-दो-महीने में जितना सूत इकट्ठा होगा, उसे खादी भंडार में बेचकर पैसा या कपड़ा मिल जाएगा। और भी काम मैं बताऊँगी। यह दुःख मनाने का समय नहीं है। औरत को हिम्मती बनना चाहिए। कमजोर औरत को सताने के लिए सभी तैयार रहते हैं। कोई भी जरूरत पड़े तो आकर जरूर बताइए। महात्मा गांधी कहते हैं कि स्त्री को शिक्षित होना चाहिए, अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए। आप रोज चार बजे हमारे यहाँ आ जाइए, मैं धनेसरी देवी को पढ़ाती हूँ, आप भी अपना एक घंटा

समय यहाँ दीजिए, तब मैं और भी कई बातें बताऊँगी। चलिए मैं दोनों घरों में आपको ले जाकर काम पकड़ा देती हूँ..."

ठीक नौ बजे गवर्नमेंट स्कूल के अगले-पिछले फाटकों, दोनों बड़े मैदानों को घेरे तारों के बीच-बीच में पिकेटिंग शुरू हो गई थी। शहर में कोई नेता तो था नहीं, लड़कों ने ही आन्दोलन का नेतृत्व सँभाल लिया। मुख्य फाटक पर जगदम्बिका, शम्भू, नफीस, वीरेश तथा कुछ अन्य लड़के सबको अन्दर जाने से रोक रहे थे। पिछवाड़े पिलपिली, चेंगन, हीरा वगैरह का जमावड़ा था। लड़कों के बीच कोई खास राजनीतिक कार्य न होने पर भी देखते-देखते जबरदस्त एका कायम हो गया। गर्मी और उमस की वजह से चेहरों की जोश-भरी पसीनियाई तमतमाहट में चमक नहीं थी। पिलपिली का उत्साह तो देखने लायक था, जो एक अवसर पर तो इतना बढ़ गया कि वह पता नहीं कब फाटक के निकटस्थ एक पेड़ पर चढ़ गया और वहीं से भाषण देने लगा :

नारा लगाइए..." "नौजवान दोस्तो ! आज देश के लिए अपना खून बहाने का मौका आ गया है। आप मेरे साथ

अचानक किसी को ऊपर से भाषण देता सुनकर नीचे खड़े हड़ताली लड़कों ने पहले तो

हक्का-बक्का होकर ऊपर देखा फिर सबकुछ समझकर हर्ष से तालियाँ पीट-पीटकर उछलने लगे। जल्दी ही नारे लगने लगे। पिलपिली साहित्यिक अभिरुचि का छात्र था और उसने कुछ गीत और दो-तीन कहानियाँ भी लिखी थीं। उसे जितना भी राजनीतिक ज्ञान था, उसके आधार पर कुछ नारे फौरन तैयार करके जोश से गला फाड़कर चिल्लाने लगा :

"गांधी-नेहरू की पुकार, इन्कलाब जिन्दाबाद। भगतसिंह की यह ललकार, इन्कलाब जिन्दाबाद। अंग्रेजों को दो फटकार, इन्कलाब जिन्दाबाद।

अब मरने की है दरकार, इन्कलाब जिन्दाबाद।"

ये नारे आस-पास वृक्षों और मकानों से टकराकर गूंजने लगे। बहुत-से लोग-पुरुष और बच्चे अपने-अपने घर के सामने इकट्ठे होकर तथा स्त्रियाँ अपनी-अपनी छत पर चढ़ तथा आगे सिर उचकाकर देखने, सुनने, जानने, समझने की कोशिश कर रहे थे, जैसे कोई तमाशा हो रहा हो। इन नारों को सुनकर अगले फाटक पर भी जोरदार नारे लगने लगे।

यह सब चल रहा था और जुलूस की शक्ल में आगे बढ़ने की तैयारी भी हो रही थी कि वहाँ एक ऐसे नेता का आगमन हो गया, जो सीधे देवली कैम्प से रिहा होकर यहाँ चले आए थे, एक झोला लटकाए। यह एक पुराने कम्युनिस्ट नेता थे, हर आन्दोलन में जेल गए थे, लेकिन इस बार जेल से इसलिए रिहा

कर दिए गए कि उनकी पार्टी ने इस वक्त आन्दोलन छेड़ने का विरोध करके युद्ध-प्रयत्नों में अंग्रेज सरकार को मदद देने की अपील की थी। जब वह बोलने लगे तो कुछ लड़कों ने, जो उस समय की राजनीति को समझते थे, उनका विरोध किया। परन्तु उन्होंने बोलना बन्द नहीं किया :

"नौजवानो ! ठीक है, मैं कम्युनिस्ट था, कम्युनिस्ट हूँ और कम्युनिस्ट रहूँगा। मुझे भले ही जेल से छोड़ दिया गया है, मगर मैं अपनी पार्टी की इस नीति से इत्तेफाक नहीं करता। जब समूचा देश आजादी की ऐतिहासिक लड़ाई लड़ रहा हो, उससे कम्युनिस्टों का अलग रहना ठीक नहीं। इस लड़ाई में कम्युनिस्टों का शामिल होना इसलिए जरूरी है कि कम्युनिस्ट ही इस देश में किसानों, मजदूरों और गरीबों का राज कायम कर सकते हैं। कम्युनिस्टों के अलग रहने पर देश में सही मायने में जनता की सरकार नहीं बन सकती। इसलिए मैं खुलेआम ऐलान करता हूँ कि मैं गांधीजी के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में उनके साथ हूँ, भारतीय जनता के साथ हूँ, आजादी के लिए मैं अपनी जान कुर्बान करने को तैयार हूँ। मेरे साथ आप नारा लगाइए :

'अंग्रेजो ! भारत छोड़ो। जिन्दाबाद। आजाद हिन्दुस्तान, किसान-मजदूर राज, जिन्दाबाद। गरीबों का राज, जिन्दाबाद।

20-इंडी एपिसोड 13 हॉल 10

स्कूल में पूरी हड़ताल हो गई थी। एक लड़का भी अन्दर नहीं जाने पाया। जब जुलूस के चलने

का समय आया तो अन्य जगहों पर पिकेटिंग करनेवाले सभी छात्रों को मुख्य फाटक पर बुलाया गया। कुछ ही देर में वहाँ चारों ओर की भीड़ इकट्ठी हो गई। जल्दी-जल्दी बात करने, हँसने चिल्लाने और 'इधर आओ, उधर जाओ' की आवाजें उठने लगीं। जूतों, चप्पलों और नंगे पाँवों की ध्वनियों से किसी खेत में घुसे घोड़पराड़ों के बेतरतीब ढंग से चलने का आभास हो रहा था। इसी समय जगदम्बिका ने, जो दो-पुँछटा धोती-कुर्ता पहनकर माथे पर रुमाल बाँध लिया था, तड़पकर कहा :

"आप लोग शोर न कीजिए, दो-दो की कतार बनाकर खड़े हो जाइए। एकदम अनुशासन में रहिए। यह बड़ी लड़ाई है। लाठी, गोली कुछ भी बरदाश्त करने को तैयार रहिए। उत्तेजना में कोई गलत काम न कीजिए। हमारे सभी नेता जेलों में हैं, अब सारी जिम्मेदारी नीजवानों के कन्धों पर है। हाँ, देश के स्वाभिमान, देश की प्रतिष्ठा की रक्षा करने, देश को आजाद कराने का जिम्मा अब हमारा है। अब चुपचाप लाइन बनाकर खड़े हो जाइए..."

जगदम्बिका के आदेश का चुपचाप पालन किया गया। पसीने से सभी लथपथ थे। कुछ छात्र रुमाल या अँगोछे अथवा किसी कॉपी-किताब से अपने मुँह पर हवा कर रहे थे। आगे-आगे जगदम्बिका, वीरेश,

शम्भू, पिलपिली, चेंगन चल रहे थे और बीच में सबसे आगे केदार नाम का एक नाटा, चकइठ, तगड़ा और मोटे गट्टे वाला टेंथ क्लास का लड़का एक ऊँचा तिरंगा झंडा लेकर खड़ा था।

जुलूस रवाना होने के पहले खूब नारे लगे। आगे-आगे झंडे के साथ केदार, पीछे जगदम्बिका, वीरेश, नफीस, शम्भु वगैरह और बाद में दो-दो लड़कों की पंक्तियाँ। केदार की आवाज भी मोटी और बुलंद थी। लेकिन संगीत से उसका दूर-दूर तक रिश्ता नहीं था फिर भी अपने रूखे कर्कश स्वर में इन्तहा जोश भरकर उसने जो राष्ट्रगान शुरू किया, उससे उत्साह, त्याग और आत्मबलिदान

की तरंग शुरू से अन्त तक दौड़ गई: सिर पर बाँधें कफनिया होऽऽ शहीदों की टोली निकली...

इस गाने का अद्‌भुत प्रभाव सिर्फ जुलूस पर ही नहीं बल्कि अगल-बगल तमाशबीनों तथा अपने-अपने घरों तथा छतों पर खड़े दर्शकों पर भी पड़ रहा था। यह छोटी पंक्तियों का एक चुस्त-दुरुस्त मार्चिंग गीत नहीं था, इसमें दो पंक्तियाँ जोड़कर थोड़ा लम्बा राग बाँधना पड़ता था, लेकिन जब केदार झंडा-पकड़े हाथ को अपनी छाती की ओर ले जाते हुए जोशीली आवाज में गाता था तो उस पंक्ति को दोहराते हुए जुलूस के लोग क्रोध से उन्मत्त होकर चीखने-से लगते। एक बार तो एक छात्र पर उक्त पंक्ति का ऐसा असर हुआ कि वह पंक्ति से बाहर निकल आया और अनियन्त्रित क्रोध से रोते हुए गला फाड़कर चिल्ला पड़ा 'अंग्रेजो भारत छोड़ो।' फिर तो चुनौती-भरे क्रान्तिकारी नारे लगने लगे।

जुलूस किसी तरंगित सरिता की तरह आगे बढ़ रहा है। बीच-बीच में कुछ साधारण लोग भी शामिल हो जाते हैं छोटी-छोटी नदियों और नालों की तरह। ये ही लोग सुबह की उमस में मुर्दे की तरह पड़े थे, लेकिन इस समय चैतन्य होकर देश की आजादी के इस ऐतिहासिक आन्दोलन में अपना सबकुछ कुर्बान करने के लिए तैयार हो गए हैं। उनमें जोश-खरोश और कुर्बानी की तमन्ना को कोई नहीं रोक सकता।

लोग नदी से नद बन रहे हैं। दोनों किनारों पर खड़े लोगों में से कोई कुछ देर तक देखता है, फिर सोचता है और अन्त में बढ़ते हुए जुलूस में गायब हो जाता है। कई लोग अगल-बगल गलियों से अचानक सिर झुकाए तेजी से आते हैं और पीछे जाकर तथा पंक्ति बनाकर चल देते हैं शहीदी राष्ट्रगान गाते और चिल्ला-चीखकर नारे लगाते हुए। जुलूस पहले चौक जाएगा, उसके बाद गुदड़ी

बाजार, टाउन स्कूल, मेस्टन स्कूल और मिड्डी होता हुआ कचहरी। आगे-आगे केदार गा रहा है हाथ में तिरंगा झंडा मजबूती से पकड़े हुए :

"अंग्रेजों का छक्का छूट गया, शेखी मिल गई धूल, भाई शेखी मिल गई धूल, कलेजे बीच गोली निकली... सिर पर बाँधे कफनिया होऽऽ शहीदों की टोली निकली "

अचम्भे की बात है कि शहर में पुलिस नाममात्र को नजर आ रही है। चौक में विशाल जुलूस पहुँचने के पहले ओकडनगंज पुलिस चौकी का सिपाही तजम्मुल एक हमउम्र पंसारी से हँस-हँसकर बात कर रहा है-हाथ में लाठी न डंडा, बस नीम का एक छाकून, जिसको कभी-कभी हाथ के पंजे के ऊपर धीरे-धीरे हिलाकर थूः करते हुए दाहिनी ओर देख लेता।

जिला प्रशासन के पास वैसे भी पर्याप्त पुलिस बल नहीं है। फिर, होशियार हिन्दुस्तानी जिलाधीश ने सोचा कि माटा के छत्ते को खोदने से कोई फायदा नहीं, कांग्रेस के राष्ट्रीय नेताओं की गिरफ्तारी से जोश और गुस्सा आ जाना स्वाभाविक है, उसको निकलने का रास्ता दे दीजिए, फिर सबकुछ शान्त हो जाएगा। दरअसल छोटे-छोटे कस्बों की ही बात नहीं है, बड़े-बड़े शहरों में भी पहले दो-तीन दिनों तक अमूमन यही नीति बरती गई।

सचमुच शुरू के बड़े-बड़े जुलूस जनता के विरोध प्रदर्शन ही थे, लेकिन 12 अगस्त को ब्रिटिश सरकार के भारत सचिव लॉर्ड एमरी ने राजनीतिक स्थिति पर जो पाखंड और शरारत से भरा बयान दिया, उसने स्थिति को और बिगाड़ दिया। लॉर्ड एमरी के बयान में कांग्रेस और महात्मा गांधी के विध्वंसक उद्देश्य के रूप में एक ऐसे मनगढ़न्त कार्यक्रम की रूपरेखा पेश की गई थी, जिसमें टेलीग्राफ और टेलीफोन के तार काटना, रेल की पटरी उखाड़ना, सरकार के विभागों में हड़ताल कराना और अन्य तोड़-फोड़ के कार्यों द्वारा शासन को ठप्प करना प्रमुख था। अन्त में उसमें यह शेखी बघारी गई थी कि जनता के बीच गांधी की लोकप्रियता तेजी से घट गई है, इसीलिए हताश होकर उन्होंने तोड़-फोड़ का आन्दोलन छेड़ा है, ऐसी स्थिति में शान्तिप्रय जनता से अलग-थलग करने के लिए उनको तथा उनके कुछ सहयोगियों को गिरफ्तार करके जेल में बन्द कर दिया गया है, क्योंकि किसी भी हिंसात्मक कार्रवाई को बरदाश्त नहीं किया जाएगा।

यह सही है कि महात्मा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव पास किया था। गांधीजी ने भारतीय जनता को 'करो या मरो' का सन्देश दिया था। स्टेफर्ड क्रिप्स के प्रस्ताव को ठुकरा देने के बाद वह लगातार 'हरिजन' के अपने अग्रलेखों में अंग्रेजों को भारत छोड़कर अपने देश चले जाने की सलाह दे रहे थे। बम्बई अधिवेशन के बाद पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्ति तक 'करो या मरो' की अहिंसात्मक लड़ाई का पूरा कार्यक्रम तैयार किया जाना था, लेकिन उसके पहले ही अंग्रेज सरकार ने हमला करके नेताओं की गिरफ्तारी का भड़काऊ कार्य करके क्रूर दमनचक्र चालू कर दिया। ऐसी परिस्थिति में भारत की जनता ने लॉर्ड एमरी द्वारा घोषित मनगढ़न्त कार्यक्रम को कांग्रेस और महात्मा गांधी का वास्तविक कार्यक्रम समझा और चुनौती स्वीकार करके उसी कार्यक्रम के अनुसार कार्य भी करना शुरू कर दिया। आश्चर्य की बात, यह है कि ऐसे आन्दोलन में भी जनता हिंसा से दूर रहीं। अनेक लोगों ने हँसते-हँसते जान दे दी, लेकिन दूसरों की जान नहीं ली। अगर आईएफपीआर

कहीं कुछ हिंसा हुई भी तो अंग्रेजी सत्ता की हिंसा के जवाब में।

बहरहाल, 10 अगस्त को बलिया चौक के जुलूस को देखकर जिला प्रशासन का गुप्तचर विभाग बड़ा परेशान था। इसके पहले इतना बड़ा जुलूस तो देखने में ही नहीं आया वह भी नए-नाए नौजवान छोकरों का। अभी हाल के व्यक्तिगत सत्याग्रह में कितनी आसानी थी, जाने-पहचाने नेता या विशिष्ट कार्यकर्ता सफेद खादी में फूलमाला पहनकर कचहरी खुद आते, युद्ध के खिलाफ नारे लगाते और शहीदाना मुस्कुराहट के साथ आगे बढ़कर सहर्ष गिरफ्तारी दे देते। सजाव दही पर पड़ी मोटी मलाई को निकाल लेना कितना आसान है, पर यहाँ तो सभी एक समान छिनुही दही की तरह खट्टे और बेमजा। मजाल है कि कोई भी गुप्तचर, दलाल या मुखबिर किसी को पहचान ले। इतनी चौकसी रखने पर भी इतने लोग कहाँ से कांग्रेस में आ गए। क्रान्तिकारी जोश एवं उत्साह से वाणी, उनकी भाव मुद्राएँ रणस्थल की ओर मार्च करती सेना की तरह।

मनव्यर अली और जितेन्द्र लाल सबेरे से ही भागदौड़ कर रहे थे, मगर छात्रों के बीच में उनका कार्य नगण्य था, खैर, उन्होंने पहचाने जाने के डर से अपने को दूर ही रखकर काफी संख्या में अपने दलालों और मुखबिरों को झोंक रखा था। लेकिन असली समस्या तो उस समय उत्पन्न हुई, जब चौक में कई औरतें शामिल हो गईं, अब इनको कौन पहचाने ? बलिया में साधारण औरतें पर्दा में रहती थीं, यदि बाहर निकलीं भी तो आगे घूँघट काढ़कर या साड़ी के ऊपर चादर ओढ़कर उसका ऐसा घूँघट बनाते हुए, जिससे माथा ढका रहता और आँखें भी अगर पूरी नहीं तो आधी अवश्य।

महिलाओं के आते ही जुलूस में और भी उत्साह आ गया। जोर-जोर से नारे लगने लगे। महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, मौलाना आजाद, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद का जय-जयकार होने लगा। इस समय पिलपिली को इतना जोश आया कि वह एक लैम्प-पोस्ट के छोटे-से चबूतरे पर किसी तरह खड़ा होकर चिल्ला पड़ा :

"नौजवानो, देश के लिए जान देने का अवसर आ गया है। मेरी तो इच्छा है कि अभी जेल में जाकर फाँसी के फन्दे पर झूल जाऊँ..."

इसके बाद तो जोश-भरे नारों के जैसे विस्फोट ही होने लगे। कोई अनजान नौजवान जुलूस की पंक्तियों से बाहर आकर बगल में अपनी पसन्द के नारे लगाने लगता। उसके नारे खत्म होने पर कोई अन्य बाहर निकलकर नारे लगवाता हुआ चलने लगता। एक-से-एक क्रान्तिकारी नारे थे वे-पुराने और नए दोनों ही परन्तु जोश में वे सभी सर्वथा नवीन लगते। इसके बाद पिलपिली फिर बाहर आकर जोर-जोर से चीखने लगा।

"भाइयो, जुलूस अब इशरतगंज होकर चलेगा, वहाँ भारत की अनेक देवियाँ जिस्म बेचने को मजबूर की जा रही हैं। आजादी मिलने पर यह अन्याय नहीं होने दिया जाएगा..."

बीच में से एक अधेड़ व्यक्ति चिल्लाया, "अरे नहीं, इस जुलूस में शरीफ घरों की जनानी लोग हैं, उधर से ले जाना ठीक नहीं है..."

इसके बाद 'हाँ-हाँ', 'नहीं-नहीं' की कई आवाजें आईं। कुछ लोग हँसने भी लगे। लेकिन जुलूस इतना विशाल और इशरतगंज वाली सड़क के निकट था कि उधर ही मुड़ गया और उस पर ही आगे बढ़ने लगा। विशालता में लचक का अभाव होता है और उसके लिए ऐसी ही गति सुविधाजनक भी होती है। लेकिन शायद बहुसंख्यक लोगों की राय भी यही थी। वे देश की आजादी तो चाहते थे ही, लेकिन उसके साथ वे उनकी भी आजादी चाहते थे, जो सताए गए थे। जो दुखिया थे, गरीब थे। इसीलिए इशरतगंज की सड़क पर जाना उन्हें उचित लगा ऐसा क्रान्तिकारी, देशभक्ति-भरा अभियान, यह न समझते हुए भी कि इसका व्यावहारिक रूप क्या होगा !

भगजोगिनी और इसकी सास के लिए यह एक नया अनुभव है। देश की आजादी का मतलब वे ठीक से नहीं समझतीं। अपना गाँव-जवार अथवा अपना टोला-मोहल्ला, अपना शहर तो ठीक

है. लेकिन अपना देश क्या होता है? फिर भी दूसरी महिलाओं की देखा-देखी वे भी नारे लगा रही थीं। जितनी भी धूप निकली थी. वह बड़ी विषेली थी। उमस और पसीने से शरीर बेहाल था। विल्लाते समय उनकी नाकों में और लाली आ जाती, जिन पर पसीने की दो-चार बँदें भी हिलती दिखाई दे जातीं। लेकिन भगजोगिनी का दिल एक अनजान भय से काँप रहा था। उसकी जिन्दगी का क्या होगा अब ? और ऐसे में दामोदर प्रसाद दिखाई दे गया तो वह क्या करेगी ? पुरुषों का यह जलत है तो अगर इसमें दामोदर भी शामिल हो तो अचरज की बात क्या होगी? फिर उस आजादी की क्या कीमत जिसमें दामोदर जैसे धोखेबाज शामिल हों ? तब दखिया औरतों के साथ गौन न्याय करेगा ? उनके साथ होनेवाले अन्याय को कौन रोकेगा ? और तब उसे वह घटना याद आई जब रमाशंकर ने दामोदर को चेतावनी दी थी। उसने इधर-उधर सिर घुमाकर घूँघट के भीतर हसे ही देखा, लेकिन रमाशंकर कहीं भी नजर नहीं आया।

जब जुलूस ने इशरतगंज के इलाके में प्रवेश किया तो भगजोगिनी और भी घबराई। उसके दिमाग में फिर दामोदर प्रसाद चक्कर काटने लगा। क्या यह उसे रंडी-पतुरिया समझके ही उसके पास आता रहा ? जब यह इतना धोखेबाज था तो इस मोहल्ले में क्या वह इसी समय जोर-जोर से छाती पीटकर चिल्लाए और सबके सामने दामोदर प्रसाद की कलई खोल दे ? चिल्ला तो नहीं सकी यह लेकिन उसकी आँखों से 'झर-झर' आँसू बहने लगे।

विशाल जुलूस कुछ देर के लिए रुक गया था। करीब साढ़े बारह बजे थे, अभी धन्धा शुरू होने में करीब तीन घंटे की देर थी। जुलूस का शोर और नारे सुनकर हर उम्र की वेश्या अपने-अपने दरवाजे पर आ खड़ी हुई। उनकी आँखों में अजीब कौतुक का भाव था जैसे कोई तमाशा हो रहा हो। कोई-कोई तो जल्दी में चोटी गूँथती हुई चली आई थी। कोई पेटीकोट, कुर्ती में ही थी। किसी ने नई साड़ी तो पहन ली थी, मगर मुँह पर पाउडर-लिपिस्टिक की लाली नहीं लगने से ढीले-ढाले चमड़े के फैले छिद्रों वाला खुदुरा-सा आभाहीन चेहरा निर्धनता, शोषण एवं कटु अनुभवों की नग्न वास्तविकता का परिचय देता प्रतीत हुआ।

ढेला भी चबूतरा वाले अपने कमरे के दरवाजे पर खड़ी दिखाई पड़ी। लेकिन पहली नजर में उसे पहचानना कठिन था। चेहरा सूख गया था। दोनों कपोल धँसे हुए, आँखों के नीचे गड्ढे। पिलपिली उसे लगातार देख रहा था। बाद में वह उसे पहचान गया। उसे वह दिन याद आया, जब वह दयाशंकर, चेंगन, हीरा के साथ उसके यहाँ सुबह-सुबह गया था। तब वह कितनी जीवन्त और हँसमुख थी। हँसी-खुशी से भरी हुई। लम्बी, स्वस्थ, चंचल, खूबसूरत। लेकिन अब वह कैसी हो गई है और क्यों ? वह कोई कारण तो जान नहीं सका, परन्तु सहसा उसे बेहद गुस्सा आने लगा। आज तो गुस्सा का कारण एक ही था, इस विदेशी सरकार ने इस देश को नरक बना दिया है। इस देश की महिलाएँ कितनी साहसी और वीर होती थीं। ज्ञानी, विदुषी, कार्यकुशल, हर तरह की विद्या में निपुण। गुलामी ने इस देश का तेज नष्ट कर दिया है। इस देश को फिर तेजस्वी, वैभवशाली और शक्तिशाली बनाने के लिए यहाँ से अंग्रेजों को भगाना जरूरी है। देवियो, देश को आजाद हो जाने दीजिए, तब आपके सारे कष्ट दूर होंगे, सामाजिक अभिशापों की जिन्दगी समाप्त होगी और आपकी-हमारी, सबकी एक नई जिन्दगी शुरू होगी, जिसमें कोई अन्याय नहीं होगा, गरीबी नहीं होगी, सभी मस्तक ऊँचा करके चलेंगे। देवियों के साथ जो अन्याय करेगा उसको मौत की सजा दी जाएगी। देवियो, आप विद्रोह कर दीजिए, आप इस जुलूस में शामिल होइए, आजादी की लड़ाई लड़ने के लिए आप भी हमारे साथ चलिए। हम गुलामी को नेस्तनाबूद कर देंगे। हम विदेशी सरकार

को यहाँ से भगा देंगे। उसके लिए अपनी जानें कर्बान कर देंगे। पिलपिली पता नहीं कब जुलूस में से बाहर निकलकर ढेला तथा अन्य वेश्याओं की ओर मुट्ठी हिला हिलाकर धाराप्रवाह भाषण कर रहा था। राजनीति में उसकी कोई खास रुचि नहीं थी। साहित्य

से उसे विशेष प्रेम था। स्कूल की वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में दो बार अवश्य भाग लिया था उसने, लेकिन किसी सार्वजनिक सभा या जुलूस में भाग लेने का उसका पहला ही अवसर था। उसके दिमाग में जो भी आ रहा था. उसे ही वह मुँह के रास्ते बाहर निकाल रहा था। गर्मी उमस और बेइन्तहा जोश से उसका मुँह गर्म ताँबे की तरह तमतमा रहा था। कुछ ही देर में उसके मुँह कोनों कोनों पर गाज निकल आया।

टेला भी पहले पिलपिली को पहचान नहीं पाई। इतने समय में यह दुबला-पतला लड़का कुछ स्वस्थ हो गया था। उसके मुख की बालक जैसी कोमलता एक उभरते हुए पुरुष की सतत विकसित रुक्षता में बदल गई थी। जोश के माहौल में सबके चेहरे एक जैसे लग रहे थे, किसी खास व्यक्ति को अलग से पहचानना भी काफी कठिन था। फिर भी, ढेला एक अनजान आकर्षण से उसको एकटक देख रही थी, जैसे पूर्वजन्म की कोई बात याद आ रही हो धुँधली-धुँधली-सी। धीरे-धीरे, भाषण देता वह रूक्ष चेहरा और हिलता शरीर नाजुक-सा होकर उछलकर खिलखिलाने लगा। और बहुत समय नहीं लगा जब भाषण का एक शब्द भी उसके कानों में प्रवेश नहीं कर पा रहा था। बस एक निरर्थक चिल्लाहट के

बीच में चौड़ी छाती वाले एक नौजवान का चेहरा उभरने लगा-गम्भीर, व्यस्त, शहीदाना अन्दाज, रात को दरवाजा खटखटाता या धीमे से पुकारता, जिसका पुलिस पीछा कर रही है...

सहसा ढेला के दिल में बिजली की तरह कुछ कौंध गया। उसे उन दिनों की याद आ गई जब उसका दिल खुशी, उत्साह और प्यार की आँधी में वह चला था। फिर तो उसे न मालूम क्या हो गया और वह अपने को रोक न सकी। वह अपनी जगह से हिली और तेजी से चलकर तथा चबूतरे से नीचे उतरकर सड़क पर दौड़ती हुई जुलूस के आगे महिलाओं के बीच में पहुँची और अत्यधिक जोश में चीख-चीखकर हाथ उठाकर वही नारे लगाने लगी, जो कुछ देर पहले जुलूस के लोग लगा रहे थे :

"इन्कलाब, जिन्दाबाद महात्मा गांधी, जिन्दाबाद भगतसिंह, जिन्दाबाद अंग्रेजो ! भारत छोड़ो..." परन्तु यह जोश उसके नियन्त्रण में नहीं रहा, उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे और उसकी आवाज उसके गले में कहीं फँस गई। फिर उस पर जोरों की खाँसी का दौरा पड़ा। वह खाँसते-खाँसते नीचे बैठ गई। फिर उसे खून की उल्टी हुई और वह मूर्छित होकर नीचे लुढ़क गई।

"अरे मैया," भगजोगिनी जोर से चिल्लाई, क्योंकि ढेला उसी के पैरों के पास लुढ़की हुई थी। यह सब इतनी जल्दी घटित हुआ कि पहले तो किसी की समझ में कुछ भी नहीं आया, और जब तक जगदम्बिका, वीरेश, शम्भू, पिलपिली उधर लपकते, गली में से ढेला की माँ रोती हुई दौड़ी आई। जुलूस के लोगों में खलबली मची और उसके बीच में शोर उठने लगा। भगजोगिनी नीचे बैठकर ढेला के सिर को अपनी गोद में लेकर रोती हुई पूछ रही थी:

"अरे बहिनी, क्या हुआ है तुमको..."

भगजोगिनी वास्तव में होश में नहीं थी, उसका समूचा बदन थरथरा रहा था। थोड़ी ही दूरी पर बलगम-भरा खून का थक्का पड़ा हुआ था। उसको उन दिनों की याद आई, जब बनवारी पर इसी तरह खाँसी का दौरा पड़ता था। जब वह खाँसते-खाँसते खून की उल्टी करता और बेदम होकर लुढ़क जाता तो वह दौड़ी आती और उसे अपनी गोद में लेकर उसका मुँह पोंछती हुई ढाढ़स बंधाने लगती। लेकिन यह तो पति था, लेकिन इस वेश्यापुत्री के लिए वह क्यों इतनी परेशान हो रही है, जैसे उसकी कोई सगी हो ! क्या सेवाभाव से अथवा दया भाव से ? अथवा डर या आतंक से ?

या इसी तरह के पराने अभ्यास के कारण ? अथवा यह सब उसके स्वभाव में ही है? कारण कुछ श्री हो, ऐसा हो रहा था, और जब रमाशंकर न मालूम किधर से यहाँ आकर खड़ा हो गया तो

भगजोगिनी ने उससे अनुरोध किया: भाईजी इन्हें जल्दी किसी डॉक्टर के पास भेजवा दीजिए..."

"हाँ-हाँ अभी इन्तजाम होता है, घबराइए नहीं..."

इसके बाद तो हंगामे का दृश्य उपस्थित हो गया। ढेला की माँ पहुँचकर छाती पीट-पीटकर जवस वालों को कोसने लगी. "अरे, मार डाला मेरी बच्ची को इन छोकरों को मैं अच्छी तरह जानती हैं. मेरी बच्ची को बहकाकर इसकी जिन्दगी तबाह कर दी। आजादी मिलेगी तुम्हें, मौज-मलाई तुम उहाओगे. हमें क्या मिलेगा ? और कहाँ है पुलिस-दरोगा, इन लोगों को पकड़कर जेल ले जाओ. डाका कत्ल का मुकदमा चलाओ इन पर... इन बेईमानों ने

हमारी बच्ची को मार डाला है..." वेश्याओं के घरों से चीख-चिल्लाहट आने लगी। जगदम्बिका वीरेश, शम्भु, पिलपिली लपककर पहुँचे तो जल्दी ही लेकिन उनकी समझ में नहीं आया कि क्या करें। गनीमत यही हई कि जल्दी ही ढेला की मूर्छा टूट गई। पहले तो उसकी पलकें काँपीं और फरफराई, फिर आँखें खुली, भगजोगिनी के चेहरे पर दृष्टि टिकने के बाद उसकी समझ में आया कि वह कहाँ है, हड़बड़ाकर उठने की कोशिश करने पर भगजोगिनी ने उसे रोका :

"घबराइए मत, कमजोरी है। जल्दी ही ठीक हो जाएगा। मैं आपको सहारा देती हूँ, धीरे-धीरे ही उठिए। बीमारी में आराम करना चाहिए... आपको बुखार है...."

"नहीं, मैं ठीक हूँ..." ढेला के मुँह से धीमी आवाज निकली। उसके बाद वह भगजोगिनी के सहारे से उठ बैठी।

"आप जैसी बहन पर हमें नाज है, आप घर में चलकर आराम कीजिए। मैं डॉक्टर लेकर आता हूँ." इसके बाद रमाशंकर ने जगदम्बिका से कहा, "आप जुलूस को अनुशासन में रखिए और आगे बढ़िए। टाउन स्कूल में लड़के इन्तजार कर रहे हैं, उनको लेकर आगे बढ़िएगा तो माल गोदाम के पास मेस्टन स्कूल के लड़के भी मिलेंगे। उसके बाद सीधे कचहरी जाइए..."

इसके बाद रमाशंकर सीधे तनकर खड़े हो गए। उन्होंने जुलूस की तरफ हाथ उठाकर शान्त होने का इशारा किया। पीछे के लोगों को अभी भी सही बात का पता नहीं था। जुलूस रुका हुआ था। राष्ट्रगान बन्द और नारे भी। कई तरह की बातें उड़ रही थीं। यहाँ तक कि पीछे के लोगों में किसी ने यह अफवाह उड़ा दी कि आगे पुलिस ने जुलूस को घेर लिया है और गोली चलनेवाली है। इस पर कुछ लोग वहाँ से खिसकने भी लगे।

तत्पश्चात जगदम्बिका आगे से पीछे की तरफ दौड़ता हुआ आया यह कहते, "आप शोर न बीजिए, जुलूस चलनेवाला है। किसी तरह की अफवाह न उड़ाइए। कुछ भी नहीं हुआ है। एक बहिन गर्मी में मर्छित होकर गिर पड़ी थीं. वे अब ठीक हैं। उन्हें डॉक्टर से दिखाया जा रहा है. इस जुलूस में सरकार के कई जासूस भेष बदलकर घुसे हैं। ऐसा कोई आदमी झूठी अफवाहें फैलाए तो उसे हमारे सुपूर्द कर दीजिए, हम उसको ऐसा सबक सिखाएँगे कि जिन्दगी भर भूल नहीं पाएगा..."

लिए भेज दिया था। बलिया के ही निवासी डॉ. गुप्त लखनऊ मेडिकल कॉलेज के एम.डी. थे और रमाशंकर ने पहले ही पिलपिली को नए डॉक्टर दिनेश गुप्त को फौरन साथ में ले आने के पिछले दो

वर्षों में ही नई जानकारियों और व्यावहारिक सूझबूझ के कारण उनकी प्रैक्टिस अच्छी जम गई थी। खास बात यह थी कि महँगा डॉक्टर होने तथा सक्रिय राजनीति से दूर रहने पर भी वह कांग्रेस क्रान्तिकारियों तथा राष्ट्रीय विचार के लोगों को यदा-कदा चन्दा देते और ऐसे लोगों द्वारा

उपचार के लिए बुलाए जाने पर उनसे कोई फीस नहीं लेते थे। रमाशंकर अमूमन जुलूस से कुछ दूरी पर रहते थे-किसी गली में अथवा किसी विश्वस्त

सहयोगी के घर में। वहीं से यह किसी से सन्देश भेज देते अथवा किसी नौजवान को अपने पास बुलवा लेते। अचानक गिरफ्तारी से बचने के लिए उन्होंने और उपाय भी किए थे। दाढ़ी तो पहले ही इसी उद्देश्य से बढ़ा ली गई थी। एक लम्बे दुपट्टे को, जो इन दिनों उनके पास हमेशा रहता था, एक ऐसी पगड़ी की तरह बाँध लिया था, जो सिर के अलावा आगे माथे और पलक, के शीर्ष भाग को भी ढके हुए थी। यही नहीं, यह आज कुर्ते के साथ अलीगढ़ी पायजामा भी पहने हुए थे, जो बलिया के जानकार लोगों के लिए दुनिया का आठवाँ आश्चर्य ही था।

बहरहाल, वह सन्तुष्ट और प्रसन्न इसलिए थे कि राममूरत और नफीस जैसे उत्साही और जाँबाज कार्यकर्ताओं के यहाँ मौजूद न रहने पर भी, जो रमाशंकर के ही कहने पर मेस्टन स्कूल के जुलूस के साथ थे, उनके काम में कोई अड़चन नहीं आई थी। स्कूल के नए-नए अनुभवहीन ठोकरे राममूरत और नफीस से कम हिम्मती और फुर्तीले नहीं थे। एक इशारे पर वे देश के लिए कोई भी त्याग और बलिदान कर सकते थे।

34

रमाशंकर की छाती गर्व से फूल गई, जब वीरेश और शम्भु ने उनके कहने पर सड़क पर गिरे खनू-भरे बलगम की सफाई कर दी। जिद-भरे आदेश के बावजूद उन्होंने रमाशंकर से पैसे नहीं लिए। जब दोनों की जेबों में कुछ पैसे थे तो देश के काम के लिए स्वयं क्यों न खर्च करें! लेकिन उस मोहल्ले का कुम्हार भी हँडिया के लिए पैसा लेने को तैयार न हुआ।

"अरे, जा-जा, हमके पइसा मति दिखावऽ। एक तऽ महल्ला का मामला बाऽ दूसर हमार सगा लड़िकया तिरंगा झंडा उठाई तऽ हम ओसे पइसा लेईब ? हड़ताल कऽ दिन हऽऽ चुपे-से ई हाँड़ी ते जाऽ।"

तत्पश्चात पास की हलवाई की दुकान से उन्हें उसी हँडिया में छोटे-छोटे अंगारों से भरी राख मिल गई, जो कुछ देर बाद खून-भरे बलगम पर उड़ेल दी गई। इस बीच उन्होंने उसी मोहल्ले में नालियों की सफाई करते हुए एक सफाई मजदूर को कुछ पैसे देकर, उसका फावड़ा और झाड़ू ले लिया और राख से ढके बलगम को फावड़े की मदद से खखोर-खखोरकर हँडिया के अन्दर डाला। तत्पश्चात उस जगह को

झाड़ू से साफ कर दिया। अन्त में हँडिया में ऊपर से कुछ और जलती राख डालकर उसे बाहर फेंकने के लिए सफाई कर्मचारी के सुपुर्द कर दिया गया फावड़ा और झाड़ू लौटाते वक्त ।

ढेला ने खड़ा होने के बाद अपनी अम्मा को अंड-बंड बोलने से मना किया। फिर उसकी माँ और भगजोगिनी सहारा देकर उसे घर के अन्दर ले गई। वहाँ हाथ-मुँह धुलवाकर और कपड़े बदलवाकर उसे उसी कमरे में लेटा दिया गया, जहाँ वह दयाशंकर, पिलपिली वगैरह से पहली बार मिली थी। भगजोगिनी ने भी साबुन से अपने हाथ-मुँह अच्छी तरह धोए और आँचल के उस हिस्से को भी जिसमें बलगम की गन्दगी लग गई थी। जब वह बाहर जाने लगी तो ढेला ने रोते हुए कहा : "आपका कैसे शुक्रिया अदा करूँ? आप इन्सान नहीं, फरिश्ता हैं...।"

"ऐसा न कहिए। मैं धूल हूँ, रेत-पाई से भी गई-गुजरी हूँ। आप खूब आराम कीजिए। चिन्ता न कीजिए। ढंग से खाइए, पीजिए... दूध, अंडा, छेना अधिक... काली माई आपको अच्छा कर देंगी...।"

इसके बाद भगजोगिनी वहाँ से फौरन बाहर निकलकर जुलूस में अपनी जगह पर आकर खड़ी हो गई थी। इतनी ही देर में वह जगह साफ हो गई थी और वीरेश कुएँ से एक गगरा पानी खींचकर

ते आया था और पूरा पानी उसी जगह पर झुककर गिरा दिया था. जिससे और भी सफाई हो गई थी। इसके ठीक पहले दोनों दोस्तों ने कएँ पर जाकर पानी भरते एक व्यक्ति की मदद से साफ मिटटी से हाथ मल-मलकर धोए थे। पैर और मुँह भी। और उसी के गगरे से पानी भी ले आए थे।

जुलूस में फिर चैतन्यता आ गई थी। पहले जैसा जोश और उत्साह। शुरू से आखिर तक खूब नारे लग रहे थे। जुलूस की फिर रवानगी के पहले गोपालराम पता नहीं किधर से शायद बार्ड तरफ की एक गली से निकलकर अचानक भगजोगिनी के पास आया और सिर आगे बढ़ाकर धीमी आवाज में बोला:

"आप अपनी सास के साथ हैं न ? आप दोनों मेरे साथ चलिए, मैं आप दोनों को आपके घर पहुँचा हूँ। रमाशंकर भाई मुझसे अभी-अभी मिले थे, उन्होंने मुझसे यही कहा है। आपके दोनों बच्चे अभी रमाशंकर भाई के यहाँ हैं न ? जुलूस तो अभी लम्बा चलेगा और आपके बच्चे घबरा जाएँगे... बस चल दीजिए...।"

"आप कौन हैं भैया ?" भगजोगिनी की सास ने सशंकित भाव से पूछा।

"मैं ? मेरा नाभ गोपालराम है। मैं तो इत्तफाक से इधर आ गया। मैं जुलूस वाला नहीं हूँ। यह सब बकवास है। खैर, इससे आपको क्या मतलब? रमाशंकर भाई मुझे जानते हैं, विचारों के मामले में मतभेद होने पर भी मुझ पर विश्वास करते हैं। मैं भी उन्हें एक नेक इन्सान मानता हूँ। कोई और न मिला तो उन्होंने मुझसे कह दिया। मेरी बातों पर आपको विश्वास हो तो फौरन मेरे साथ चल दीजिए... न हो तो मैं भी चलता हूँ, मुझे और भी बहुत-से जरूरी काम हैं..."

गोपालराम मटमैले से धोती-कुर्ते में था। उसके कन्धे में एक झोला लटक रहा था, जिसमें 'लोकयुद्ध' की कुछ प्रतियाँ रखी थीं। अपनी बात समाप्त कर वह नाराजी से दूसरी ओर देखने लगा, जैसे वहाँ से जाने ही वाला हो।

"अरे नहीं, भैया, हम चलेंगे तुम्हारे साथ। नाखुश काहे होते हो ?"

कुछ ही देर में जुलूस जोरदार नारे लगाने के बाद वहाँ से चल पड़ा। इस बार वीरेश झंडा पकड़कर आगे-आगे चल रहा था। केदार को अब विश्राम दे दिया गया था। वीरेश की आवाज उतनी मोटी नहीं, लेकिन उसके कंठ में पर्याप्त मिठास थी। उसने जोशीली आवाज में गाना शुरू किया :

"बढ़े चलो, बढ़े चलो,

बढ़े चलो, बढ़े चलो

तुम वतन की जान हो,च्य

तुम वतन की शान होछ साध

तुम तो नौजवान हो, तुम तो नौजवान हो,

बढ़े चलो, बढ़े चलो..."

इस समय आकाश के एक कोने में कुछ गाढ़े बादल दिखाई देने लगे और कुछ हवा भी चलने लगी, जिससे कुछ राहत मिली। गनीमत की बात यह भी थी कि एक दिन पहले खूब बारिश हुई थी, इसलिए कंकड़ की पक्की सड़क तथा कच्ची जमीन पर भी धूल नहीं थी। मालगोदाम के पास मेस्टन स्कूल का जुलूस मिल जाने से विरोध प्रदर्शन में जान आ गई। अब साथ में राममूरत और नफीस जैसे उत्साही और त्यागी नौजवान भी आ गए थे। पिलपिली भी डॉ. दिनेश गुप्त को ढेला के यहाँ पहुंचाकर जुलूस में आ मिला था।

सारा शहर कचहरी की ओर उमड़ा जा रहा था। असंख्य पगों से धरती हिल रही थी। जनसमुद्र के कंठों से निकले राष्ट्रगान और नारों से आसमान थर्रा रहा था। आस-पास से पक्षीगण उड़कर दूसरी जगह चले गए थे। रास्ते में लावारिस जानवर घास चरना या खाना-पीना छोड़कर सिर उठाकर

चुपचाप खड़े हो गए थे। जहाँ आकाश विस्तृत नहीं था अथवा कम खुला था, यहाँ मकान और घनी पत्तियों वाले वृक्ष भी नारे दोहरा रहे थे। और खुली जगह पर पीछे का क्षितिज भी गूंज उठता जैसे

उधर से एक और विशाल जुलूस आ रहा हो, वैसे ही नारे लगाते हुए जिसकी आवाज दूरी की वजह से बहुम मद्धिम थी।

कचहरी बन्द थी हड़ताल की यजह से। कलक्टर और दूसरे हाकिम भी उठकर चले गए थे। यहाँ भी वही दृश्य यानी दारोगा-थानेदारों का पता नहीं था, वहाँ से दूर इक्का-दुक्का पुलिस कान्स्टेबल जरूर दिखाई दे जाते। कचहरी की इमारत के सामनेवाला मैदान प्रदर्शनकारियों से मर गया था।

पहले तो छात्रों के भाषण हुए। हर स्कूल के कुछ चुने हुए विद्यार्थी बोले। जोश से खूब चीख-चिल्लाकर। कोई अनुभवी, राजनैतिक रूप से शिक्षित, उम्रदार और अभ्यस्त नेता तो वे थे नहीं। ये खूब जोश-खरोश के साथ शुरू करते। चेहरा तमतमाने लगता। कहने के लिए उनके पास दो-चार बातों के अलावा कुछ था नहीं, परिणामस्वरूप उनकी बात उम्मीद के बहुत पहले ही समाप्त हो जाती और वे शरमाते हुए-से भीड़ में गायब हो जाते। इसका यदि नमूना ही पेश करना हो तो मेस्टन स्कूल के गौरीशंकर नामक एक छात्र का भाषण सर्वोत्तम समझा जाएगा, जो बिना किसी सम्बोधन के इस

प्रकार शुरू और खत्म हुआ : "अंग्रेजों को हम अपने देश से भगा देंगे। अंग्रेजो ! भारत छोड़ दो। हम अपनी जान कुर्बान कर देंगे, फाँसी पर झूल जाएँगे... नमस्ते !"

वीरेश का भाषण भी थोड़ा ही बेहतर हुआ। लेकिन राममूरत और नफीस जमकर बोले। राजनीतिज्ञों और क्रान्तिकारियों के साथ रहने तथा नियमित रूप से अखबार पढ़ने से उनको कई बातें मालूम थीं, जिनका विस्तार से उन्होंने उल्लेख किया। आजादी क्यों जरूरी है, इस पर प्रकाश डालते हुए नफीस ने कहा :

"गुलामी सबसे बुरी चीज होती है, चाहे वह एक इन्सान की हो या पूरे देश की हो। अंग्रेज कहते हैं कि वे हमें सुधारने आए हैं। हम जानवर थे, उन्होंने हमें इन्सान बना दिया है। अगरचे ऐसी ही बात है तो जालियाँवाला बाग में गोलियाँ चलाकर हजारों हिन्दुस्तानियों को क्यों मार डाला ? इनसे कोई पूछे तो। भगतसिंह को फाँसी क्यों दी गई ? रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकुल्ला खाँ, उद्धमसिंह को सूली पर क्यों चढ़ाया गया ? दुनिया भर में मशहूर यहाँ के बुनकरों, दस्तकारों का धन्धा किसने चौपट किया? क्या बात है कि यहाँ के धन पर आपका मुल्क मालामाल होता जा रहा है और हमारे मुल्क के लोग हर रोज और गरीब होते जा रहे हैं। हम तो आपसे प्यार से कहते हैं-हमें अपनी किस्मत पर छोड़कर आप अपना बोरिया-बिस्तरा लेकर अपने मुल्क चले जाइए। अपनी किस्मत का फैसला हम खुद करना चाहते हैं। अपना कानून हम खुद बनाएँगे। अपनी तरक्की के बारे में हम खुद सोचेंगे। जब हम अपने पैरों पर खड़े होकर मजबूत बनेंगे, तभी हम आपके लिए, दुनिया की आजादी और जम्हूरियत के लिए भी ताकत के साथ लड़ेंगे। गुलाम मुल्क तो लाश की तरह है। हाँ, आपने हमारे मुल्क को लाश बना दिया है, जो कुछ बोल नहीं सकता है, कोई फैसला नहीं कर सकता है। अब हम यह गुलामी बरदाश्त नहीं कर सकते। आप जाइए यहाँ से, जाइए यहाँ से जल्दी-से-जल्दी, हम अपनी आजादी के लिए बेताब हैं, हम उसे लेकर रहेंगे, नहीं तो अपनी जान कुर्बान कर देंगे..."

इसके पश्चात जो नारे लगे उनसे आस-पास के बाग-बगीचे गूंजने लगे और कचहरी की इमारत हिलने लगी... 1 एसटी टेस्टी इस टॉप प्रोटीन 1 10 155 थे टायर्स थे फे थे विस

दसरे दिन भी कचहरी, बाजार, स्कूल, अन्य सरकारी दफ्तर बन्द रहे, परन्तु पुलिस के मामले में पहले दिन जैसी वीरानगी नहीं रही। सवेरे से ही जगह-जगह पुलिस दिखाई देने लगी। शहर और जिले-भर में धारा 144 लगा दी गई। वस्तुतः पिछले दिन के विशाल प्रदर्शन से जिला प्रशासन बेहद घबरा गया। ऐसा तो कभी नहीं हुआ और महिलाओं का शामिल होना तो और भी खतरनाक है, जिसका अर्थ है कि एक हिन्दुस्तानी परिवार की पूरी इकाई इस आन्दोलन में शामिल है-पुरुष, स्त्री और बच्चे । फिर बचा कौन ?

गाँव-देहात तथा अन्य जिलों से भी हलचल की जो सूचनाएँ मिल रही थीं. वे अशान्तिकारी थीं। यदि इसी समय रोकथाम न की गई तो यह रोग तो तेजी से हर जगह फैल जाएगा। पहले ही दिन कडाई बरती गई होती तो इतना बड़ा प्रदर्शन न हो पाता और अब जिला प्रशासन अपनी कमजोरी के परिणाम का अन्दाजा लगाकर कड़ी से कड़ी कार्रवाई करके अपनी अपराजेय शक्ति का रौब जमाने को बेताब हो गया- यानी क्षतिपूर्ति द्वारा पहले जैसी कड़ी व्यवस्था, कानून के भय तथा अक्तिशाली एवं कमजोर के बीच स्थायी सन्तुलन की पुनःस्थापना।

प्रशासन की इस तैयारी से आन्दोलनकारी भी सतर्क हो गए। रमाशंकर तो छिपे-छिपे आन्दोलन का संचालन कर रहे थे और उन्हीं की राय से आज महिलाओं को जुलूस में न ले जाने का संकल्प किया गया, क्योंकि आज निश्चय ही पुलिस से संघर्ष होगा और खून-खराबी होगी। वह जानबूझकर ही अपने घर नहीं गए थे। और यह आन्दोलन की दृष्टि से ठीक ही रहा अन्यथा पुलिस तीन बार उनके घर पर छापे मारने पर भी खाली हाथ न लौटती।

स्कूल बन्द कर दिए गए थे इस दृष्टि से कि लड़कों की भीड़ इकट्ठी न होने पाए। मगर स्कूलों के गेटों पर पुलिस तैनात थी। नौजवान भी तुले हुए थे। लड़के अपने-अपने स्कूल गए जरूर, लेकिन पुलिस धारा 144 का सहारा लेकर उन्हें एक जगह इकट्ठा नहीं होने देती। जहाँ वे पाँच से अधिक का गुट बनाते, पुलिसवाले उनकी ओर दौड़ पड़ते। वे भी भागकर तितिर-वितिर हो जाते। फिर तो लड़कों को इसमें खेल का मजा आने लगा। वे पुलिस को दिखाकर एक जगह इकट्ठे होते और जब यह पीछा करती तो बिखर जाते। लेकिन जब वह काफी हो गया तो रमाशंकर ने ऐसे तमाशे से मना करते हुए सलाह दी कि वे अपनी गतिविधियों के केन्द्र, स्कूलों या चौक को न बनाएँ और उन जगहों से, जहाँ पुलिस न हो, जुलूस संघटित करके कचहरी की ओर मार्च करें।

इस नई रणनीति से गलियों में तथा पुलिसशून्य सड़कों पर पहले छात्रों तथा सर्वसाधारण को इकट्ठा किया गया। बाद में वे आपस में मिलकर एक बड़ा जुलूस बन गए और नारे लगाकर आगे बढ़ने लगे।

सभी तरफ से बिखरी हुई अवस्था में जमुना धर्मशाला की सड़क पर गली-कूचों और वीरान जगहों से होते हुए पहुँचे थे। आश्चर्य की बात यह है कि इस सड़क पर पुलिस थी ही नहीं।

बात यह है कि हर प्रशासन किसी हद तक कुन्दजेहन भी होता है। अजगर की तरह आलसी और पुराने ढर्रे पर यान्त्रिक ढंग से सोचनेवाला। बदलती या बदली परिस्थिति में वह अपने को नहीं बदलता, कोई नई रणनीति नहीं बनाता। वही पुराना सोच, पुराने तरीके। यानी प्रशासन का यह मत था कि जमुना धर्मशाला के आगे मुस्लिम बस्ती है, इसलिए वहाँ से कांग्रेस का कोई जुलूस संघटित नहीं किया जा सकता। अंग्रेजों की. हिन्दस्तानियों के बीच फूट डालने की नीति पर आँख मुंदकर चलने की वजह से प्रशासन को यह भी पता नहीं था कि इस मुस्लिम बस्ती तथा बहेरी और काजीपुरा नामक मुस्लिम मोहल्लों से अनेक नौजवान आन्दोलन में सक्रिय हिस्सा ले रहे थे। रमाशंकर को इस परिस्थिति का ज्ञान था, इसीलिए उन्होंने इस सडक से जुलूस निकालने की सलाह दी थी। अचानक वहाँ से एक बड़ा जुलूस चल निकला तो आस-पास की इकटठी पुलिस कुछ कर नहीं सकी। संख्या में वे बहुत कम थे. फिर ऐसे प्रदर्शन के विरुद्ध कानूनी कार्रवाई करने की उनकी न कोई तैयारी थी न कोई अधिकार ही प्राप्त था उन्हें। परिणामस्वरूप जुलूस जोश-खरोश से आगे

बढ़ता रहा। लेकिन रेलवे क्रासिंग से आगे-कचहरी जानेवाली सड़क पर जुलूस का रास्ता रोके पहले से ही एक मजिस्टेट, डिप्टी कलेक्टर के नेतृत्व में सशस्त्र पुलिस दल मौजूद था। मजिस्ट्रेट पैंट-कोट और टाई में, दुबला-पतला और नाटा किन्तु बेहद गम्भीर, जिससे उसके गाल पिचक गए थे। आवाज भी उसकी पतली थी, जिसमें यह तड़पकर हाथ की उँगली उठाते हुए चिल्लाया:

"स्टॉप ! मैं ऐलान करता हूँ, यह जुलूस धारा 144 लग जाने की वजह से गैर-कानूनी है। दो मिनट का समय दिया जाता है, आप लोग खामोशी से डिस्पर्स कीजिए यहाँ से... नहीं तो सख्त कार्रवाई की जाएगी।"

आज भी और इस समय केदार जुलूस के आगे अपने हाथ में तिरंगा झंडे का डंडा मजबूती से पकड़े हुए खड़ा था। कद उसका लम्बा नहीं था, लेकिन शरीर टाँठ था। वह अपने स्कूल का एक अच्छा खिलाड़ी था और एक साधारण ग्रामीण लोहार का लड़का होने के कारण घर में भी परिश्रम करने की उसकी आदत भी थी। उसके पीछे कतार बनाए जगदम्बिका, शम्भु, वीरेश, नफीस, वासुदेव खड़े थे। अभी तक नारे लग रहे थे, लेकिन मजिस्ट्रेट की चेतावनी के बाद जुलूस फिर आगे बढ़ा केदार के कल वाले राष्ट्रगान के साथ

"शहीदों की टोली निकली

क्या आपने अपने सिर पर कफनिया पहना हुआ है?

अंग्रेजों का छक्का छूट गया,

शेखी मिल गई धूल, भाई शेखी मिल गई धूल,

कलेजे बीच गोली निकली...

काये के सिर पर कफ़न बंधा है

शहीदों की टोली निकली..."

"लाठी चार्ज !" मजिस्ट्रेट फिर उँगली उठाकर तड़पकर बोला।

शिमगा पुलिस दल में पाँच बन्दूकधारी सिपाही तथा लगभग पच्चीस लाठीधारी पुलिस कान्स्टेबलों का एक चौकन्ना दस्ता था। आदेश मिलते ही लाठीवाले सिपाही जुलूस की ओर उछलकर दौड़े और प्रदर्शनकारियों पर पिल पड़े। पहला आक्रमण तो केदार पर ही हुआ। कन्धों पर, पीठ पर और सिर पर अन्धाधुन्ध लाठियों की मार खाता हुआ वह गाता रहा और झंडा मजबूती से पकड़े रहा, जब तक लहूलुहान होकर नीचे लुढ़क नहीं गया। जगदम्बिका, शम्भु, वीरेश, वासुदेव भी डटे रहे और मार खाते रहे और राष्ट्रगान गाते रहे। लेकिन नफीस को इस तरह मार खाना बरदाश्त नहीं हुआ और वह एक सिपाही की लाठी पकड़कर उससे भिड़ गया और उसे पटककर उसकी छाती पर चढ़ बैठा और अन्त में उसकी लाठी लेकर वहाँ से भाग चला।

सि। वह सिपाही भी धूल झाड़कर उठ खड़ा हुआ और 'पकड़ो साले को' ललकारता हुआ नफीस के पीछे दौड़ पड़ा। जिले के सबसे तेज दौड़किए को सिपाही क्या पकड़ता, लेकिन लाठी के साथ दौड़ने में नफीस को दिक्कत हो रही थी, इसलिए स्टेशन प्लेटफार्म की ओर कुछ दूर जाने पर उसने लाठी पीछे फेंक दी। फिर तो वह सर-सर फर-फर कब पहले प्लेटफार्म के पुल पर चढ़कर दूसरे प्लेटफार्म पर पहुँचकर पीछे के तार वाले घेरे को पार करके पोस्ट ऑफिस होते हुए मिड्डी की ओर निकल गया, इसका पता ही नहीं लगा। साननी कम है।

मजिस्ट्रेट ने होशियारी यह की कि जुलूस का नेतृत्व करते सभी लड़कों को बन्दूकधारी सिपाहियों के घेरे में लेकर गिरफ्तार कर लिया। इसके बाद पुलिस और छात्रों की लड़ाई होने लगी। छात्र भी ढेले चला रहे थे और सिपाही भी। लाठी वाले अलग मार रहे थे। अन्ततः छात्र बिखर गए और भाग चले। की।

इसके बाद तो प्रशासन और भी उन्मत्त हो गया। पुलिस छात्रों का पीछा करती हई स्टेशन ते मालगोदाम तक दौड़ लगाती रही, क्योंकि छात्र कुछ दूर भागने के बाद फिर इकट्ठे होकर ढेले चलाने लगते। इस तरह कई बार मोर्चेबन्दियाँ हई।

जब सड़क छात्रों से खाली हो गई. तब भी पुलिसवाले उग्र और उन्मत्त होकर अगल-बगल मकानों पर बड़े-बड़े ईंट-पत्थर फेंकते रहे। चारों ओर भड़-भड़ और पड़-पड़ की आवाजें होने लगीं, जैसे बड़े-बड़े ओले पड़ रहे हों।

प्रशासन महिलाओं के जुलूस में शामिल होने पर काफी खफा था, इसलिए छतों और दरवाजों से झाँकती महिलाओं को निशाना साधकर प्रहार किए गए। किसी के पैर में चोट लगी, किसी के हाथ में, किसी के पेट में और अपनी छत से झाँकती नकलनबीसिन के सिर पर ईंट का एक बड़ा टुकड़ा इतने जोर से लगा कि वह लहुलूहान होकर नीचे गिरकर बेहोश हो गई।

35

नीलेश विलम्ब से चला था लेकिन प्लेटफार्म प्रवेश करते ही उसकी तेज चाल स्वतः धीमी पड़ गई। ग्यारह से अधिक हो गए थे, परन्तु दस पचपन पर खुलनेवाली छोटी लाइन की फास्ट पैसेंजर गाड़ी अभी भी खड़ी थी इत्मीनान से, लम्बी, पतली और आगे कुछ बाईं तरफ घूमी हुई। न कहीं गार्ड की हरी झंडी और न ही स्टार्ट होने की लम्बी-सी सीटी या तीन टन-टन-टन। अब भी हर तरह की भीड़ विशेष रूप से गठरी-मोटरी, लुगाई और बीवी-बच्चे वाले भी फाटक से सीधे अन्दर आते, अचकचाकर इधर-उधर देखते, फिर पूर्ववर्ती मुसाफिरों की चहल-पहल को भाँपते हुए अचानक दाएँ या बाएँ फूटकर ट्रेन के डिब्बों की ओर तेजी से बढ़ जाते।

उड़ते बादलों की धूप-छाया से मुदित, जिज्ञासु भाव से नीलेश आगे इंजिन के निकट पहुँच गया है जहाँ मुसाफिरों की एक छोटी-सी भीड़ इकट्ठी होकर शोर मचा रही है। वह सफेद खद्दर के पायजामा-कुर्ता में है और उसके कन्धे से एक झोला लटक रहा है जिसमें जरूरी कपड़े, एक दो पत्र-पत्रिका और कोई पुस्तक। उस भीड़ में मुख्यतः नौजवान छात्र और छात्राएँ भी हैं जो वहाँ ट्रेन के अधिकारियों से हँसी-मजाक और बहसें करके तालियाँ पीट रहे हैं। इंजिन के ऊपर एक छोटे-से बाँस में लगाया गया तिरंगा झंडा फहरा रहा है। इंजिन ड्राइवर मजहर, उसके सहायक राजाराम और दुबले-पतले, हँसोड़ टी.टी.ई. मुक्तेश्वरनाथ पांडे को गांधी टोपियाँ पहना दी गई हैं लेकिन ठिगना, मोटा, टाँठ, अधेड़, अनुभवी और जिद्दी गार्ड कमलगट्टा प्रसाद सिंह भीड़ से मोर्चा ले रहा है।

ट्रेन तड़के अँधेरे में ही इलाहाबाद रामबाग स्टेशन से प्रस्थान करती है लेकिन यहीं से वह देर से चली थी। इंजिन के आगे एक लाल कपड़ा लगाया गया है जिस पर सुनहरे अक्षरों में लिखा है- आजाद ट्रेन। इस ट्रेन में उन नौजवान छात्र-छात्राओं का बाहुल्य है, जो संयुक्त-प्रान्त-अब उत्तर प्रदेश के कुछ पूर्वी जिलों और बिहार से जाकर इलाहाबाद विश्वविद्यालय तथा वहाँ के अन्य कॉलेजों में पढ़ते हैं। छात्रों के

नेतृत्व में इलाहाबाद के जन-प्रदर्शनों की चर्चाएँ आजादी, देशभक्ति और कुर्बानी का उत्साह तथा क्रोध की हँफनी उत्पन्न कर रही हैं।

अमर शहीद छात्र लाल पद्मधर सिंह की बलिदान गाथा जन-जन तक पहुँच रही है। कचहरी के निकट विशाल जुलूस को रोककर चेतावनी दी गई और जब बहादुर नौजवान चनौती स्वीकार कर आगे बढने लगे तो मजिस्ट्रेट ने चिल्लाकर अपने बन्दुकधारियों को आदेश दे दिया 'शूट टू किल'। इन बहादुर नौजवानों को किसने यह सब सिखाया है? एक छात्र नेता के आदेश पर उस समय सभी प्रदर्शनकारी जमीन पर लेट जाते हैं. जब गोलियाँ चलती हैं। चक्र समाप्त होने पर

के नौजवान फिर उठकर आकाशभेदी नारे लगाते हैं। ब्रिटिश फौज से आजादी के निहत्थे दीवानों की यह अहिंसक लड़ाई है बेमिसाल। मारो कितने मारोगे? ऐसे ही पैंतरेबाजी के समय एक नौजवान शीघ्र न लेट पाने के कारण एक ब्रिटिश फौजी चिल्लाता है, 'ही इज एलोन, शूट हिम' (वह अकेला है, उसको शूट करो)। लेकिन पास में लेटा लाल पद्मधर सिंह बिजली की गति से उठकर उस लड़के के आगे पहुँचकर अपने अँगूठे से इंगित करते हुए राष्ट्रीय गर्व-गम्भीर स्वर में बोलता है, 'ही इज नॉट एलोन, आइ एम बिद हिम, शूट मी' (वह अकेला नहीं, मैं उसके साथ हूँ, मुझे गोली मारो) तब धायें धायें... शहीद लाल पद्मधर के खून से तर धरती गर्व से उच्छ्वसित हो रही हो जैसे।

ऐसे ही किस्सों और चर्चाओं के बारे में सोचते हुए नीलेश प्लेटफार्म पर आया है। वह भी बनारस के जन-प्रदर्शनों में भाग लेने के बाद अन्य नौजवानों की तरह अपने जिला-जवार जा रहा है, जैसे फौज के सिपाही मातृभूमि रक्षार्थ लाम पर जाते हैं। वे जन-जन को उठाएँगे, संघटित करेंगे, और इस विदेशी शासन को घेरेंगे और धक्का दे-देकर यहाँ से निकालेंगे... करो या मरो।

नीलेश अब भीड़ के पीछे खड़ा हँस रहा है। ठिगना, मोटा गार्ड कमलगट्टा प्रसाद सिंह लाल-लाल मुँह किए हुए बहस कर रहा है:

"आपके तिरंगे झंडे से कैसे काम चलेगा, आपकी हुकूमत हो भी जाए तो कोई भी..."

"चलिए, यह तो आप मान गए कि हमारी हुकूमत हो सकती है। मैं तो यह कहती हूँ कि हमारी हुकूमत हो गई है और आप हमारा कहना चुपचाप मान लीजिए..."

एक दुबली, लम्बी छात्रा की पतली आवाज से गार्ड और भड़क गया। उसका सिर पहले बाई ओर झुका था, अब दाहिनी ओर झुक गया। कुछ क्षणों तक तो उसने छात्रा को अजीब नाराजी-भरे कौतुकभाव से तिरछी आँखों से पूरा, फिर अपने मोटे, सूखे होंठों को जीभ से तर करते हुए तैश में कुछ हकलाकर बोला :

"तो....तो ले...ले जाइए मेरी दो... दोनों लाल और हरी झंडियाँ और.... और अपने तिरंगे झंडे में से हरा छोड़कर बाकी दोनों रंग काटकर निकाल दीजिए, फिर मैं आप ही के झंडे से गाड़ी ले जाऊँगा। समझ रही हैं कि नहीं? आपके तीन रंगों वाले झंडे से तो ट्रेन न खुलेगी और न ही रुकेगी-हाँ, हरे रंग से खुल जाएगी और चलती रहेगी, चलती रहेगी....भले ही कहीं न रुके..."

"और बंगाल की खाड़ी में उतारकर पानी पर चलाएँगे आप...।" कोई नौजवान बीला। इस पर खूब हँसी हुई और तालियाँ पीटी गईं। गार्ड भी किसी स्प्रिंगदार बबुए की तरह उछल-उछलकर हँसने लगा।

"नहीं, आप चुप रहिए, यह हँसी-मजाक का समय नहीं है," एक खद्दरधारी नौजवान ने गम्भीर स्वर में अपने साथियों को चुप कराने के बाद गार्ड की ओर मुखातिब होकर कहा, "चचा, आप इन बच्चों की गुस्ताखी माफ कर दीजिए। आप शौक से अपनी ड्यूटी कीजिए। गांधी टोपी नहीं पहनना चाहें न पहनिए, मगर इस ट्रेन से झंडा-वंडा हटाने को न कहिए। भले ही आप हमें नासमझ, नादान समझिए लेकिन हमारे बीच न आइए... हमें वह अब करने दीजिए, जो देश की आजादी के लिए जरूरी है। हमारा एक बहादुर साथी इलाहाबाद में शहीद हो गया है, हम सैकड़ों-हजारों की तादाद में अपना खून बहाने को तैयार हैं। यह समझ लीजिए कि इस देश को आजाद कराने के लिए निकले हैं...।"

"ठीक है, आप लोग डिब्बों में बैठ जाइए। मैं तो यह कह रहा था कि तिरंगे झंडे से गाड़ी नहीं चल सकती। आपकी सरकार आ जाए तब भी...।"

कमलगट्टा प्रसाद सिंह का गुस्सा अभी शान्त नहीं हुआ था। वैसे अपने साथी के कहने से लड़के शान्त हो रहे थे, लेकिन गार्ड के अन्तिम वाक्यों ने नौजवानों को फिर भड़का दिया। जो आजाद सरकार आनेवाली है अथवा लगभग आ गई है, उसके लिए यह अपमानजनक शब्द इस्तेमाल

कर रहा है। तड़ी लगाओ। मुर्दाबाद! मुटल्ला गार्ड मुर्दाबाद! मुर्गा बनकर माफी माँगो। महात्मा गांधी जिन्दाबाद। भगतसिंह जिन्दाबाद ।

परन्तु खद्दरधारी छात्र नेता ने फिर अपने साथियों को समझाया और चुप कराया। गार्ड से कहा कि वह बहस में पड़कर मामले को न उलझाए, चुपचाप टेन स्टार्ट कराए, अन्यथा स्थिति जव बिगड़ जाएगी तो कोई सँभाल नहीं पाएगा। गार्ड भी ऐसा बेवकफ नहीं था, बहस वह इस उम्मीद में कर रहा था कि शीघ्र ही स्टेशन मास्टर पुलिस को भेजेगा और स्थिति नियन्त्रण में आ जाएगी। इसी के साथ उसकी वफादारी का ढिंढोरा भी पिट जाएगा, जिसके फलस्वरूप बाद में तरक्की की गंजाइश भी बनेगी। लेकिन पुलिस तो इस तरह गायब थी जैसे गदहे के सिर से सींग। ऊपर से और कई खतरों का अनुमान करके गार्ड सहमति से सिर हिलाकर वहाँ से अपने डिव्वे की ओर प्रस्थान कर गया। हरी झंडी हिलाते और सीटी बजाते हए।

भीड शोर मचाती हई तितिर बितिर हो गई। इसी समय मोटे, भायें-भायँ गले वाले टी.टी.ई. मुक्तेश्वरनाथ पांडे भी जनानी पतली अवाज में 'टी.टी.' चिल्लाते हुए चल पड़ा। छोटी लाइन की उस ट्रेन से नियमित रूप से आने-जानेवाले बहुसंख्यक मुसाफिर उसे जानते थे, जो ताली पीट-पीटकर हँस पड़े। रहनेवाला तो वह बनारस का ही था। शुरू में उसकी ड्यूटी लूप लाइनों में ही लगती थी, लेकिन इधर उसकी तरक्की हुई थी और बनारस से औड़िहार या गाजीपुर तक वह मुख्यतः रिलीविंग ड्यूटी कर रहा था।

लूप लाइनों के विशेषज्ञ टी.टी.ई. के रूप में उसकी बड़ी ख्याति थी और वहाँ कायम अपनी कुछ महान परम्पराएँ यहाँ भी शान से चलाए जा रहा था। मुसाफिरों से ऐसा गाढ़ा रिश्ता तो कोई अन्य माई का लाल नहीं बना सका आज तक। यही नहीं, उसके आत्मीयों की संख्या दिन-पर-दिन बढ़ रही थी, जो प्लेटफार्म में प्रवेश करते ही जब सर्वप्रथम पता लगा लेते कि 'मुक्तेश्वर बाबू' चल रहे हैं तो उनकी बाँछें खिल जातीं और बिना टिकट ही डिब्बे में जाकर इत्मीनान से बैठ जाते और सिगरेट-बीड़ी फूंकते या पान चाभने लगते।

मुक्तेश्वरनाथ पांडे टी.टी.ई. डिब्बे में घुसते ही इंजिन की पतली सीटी वाली आवाज में बोल उठता 'टी.टी, टी.टी.'। चारों ओर से आवाज आने लगती 'चचा नमस्कार, इधर आइए।' जो नहीं जानते थे अथवा जिनके पास टिकट होता था, वे भी हँस पड़ते, और उसकी गतिविधियों को अँखियानने लगते।

"चचा, इतना गल्ला पैसा क्या होगा..."। कोई आत्मीय मुसाफिर अपने पास बिठाकर पूछता, "सरकार तो देती ही है?"

"सात बच्चियों का सवाल है न, भतीजा, पढ़ाना-लिखाना, शादी-ब्याह करना..." मुक्तेश्वरनाथ अपना दाहिना हाथ आगे फैलाकर अपनी हथेली को इस तरह कटोरीनुमा बना लेता जैसे अनजान में ही ऐसा हो गया हो।

"चचा, असली देशभक्त तो आप ही हैं। विदेशी सरकार से ले भी रहे हैं, उसको चूना भी लगा रहे हैं, जनता का भला भी कर रहे हैं..." "हाँ, भतीजा," मुक्तेश्वरनाथ धीमे-से पतली आवाज में बोलने की कोशिश करता, लेकिन बीच

में कभी मोटी फटी हई-सी आवाज निकल जाती तो पूरा कम्पार्टमेंट हँस पड़ता। तत्पश्चात अँजी में चार आना, आठ आना, एक रुपया जो भी मिले 'प्राप्त होने पर' अॅजरी बन्द करके जेब में डाल देता और उठकर 'टी.टी.' करता आगे बढ़ जाता। उसकी यह लीला तीसरे दर्जे के डिब्बों में ही चलती, ड्योढे दर्जे में बहुत कम और दूसरे, पहले दर्जे में एकदम नहीं।

"आज तो, चचा, आजाद ट्रेन की आजादी बड़ी महँगी पड़ेगी आपको...।" भीड में से किसी

"टी.टी., टी.टी.," जवाय में मुक्तेश्वरनाथ चिर-परिचित आवाज में बोलते हुए भीड़ के बीच से निकलकर गार्ड की ओर बढ़ गया।

लम्बी सीटी देकर ट्रेन आगे सरकने लगी तो नीलेश हड़बड़ाकर जगह के लिए इधर-उधर भागने लगा। ट्रेन ठसाठस भीड़ के बोझ से दबी जैसे हाँफ और काँप रही थी। लेकिन फाटक से घुसने की गुंजाइश न पाकर नीलेश बिना छड़ों की एक खुली खिड़की के रास्ते छलाँग लगाकर अन्दर पहुँच ही गया, जिससे अन्दर बैठी एक लड़की ने सिर पीछे करके गुस्से से कहा :

"यह क्या बदतमीजी..."

देखे "माफ कीजिए, दरवाजों के रास्ते से कोई अन्दर आने नहीं दे रहा है..." नीलेश किसी ओर बिना आगे बढ़ने लगा, किन्तु, 'अरे नीलेशजी ? आओ यहाँ बैठो' आवाज सुनकर उसने मुड़कर देखा तो सन्न रह गया। यह तो रतनसिंह मुख्तार थे, जो अपने परिवार के साथ बलिया जा रहे थे। बगल में उनकी पत्नी तथा अन्त में खिड़की के पास नम्रता, जिसका चेहरा फक पड़ गया या और जो अपनी माँ से फुसफुसाई आबाज में झिड़की खा रही थी, "तुम देखती भी नहीं कि कौन है..."

नीलेश के अन्दर एक तूफान उठ खड़ा हुआ था, जिस पर काबू पाने की कोशिश करते हुए और रतनसिंह तथा उनकी पत्नी को नमस्कार करने के बाद वह काँपती सूखी मुस्कुराहट के साय बोला, "आप लोग आराम से बैठिए... मैं आगे देखता हूँ..."

एक-दो बाद और आग्रह किए जाने के बाद भी वह नहीं रुका और आगे बढ़कर तथा बाई ओर घूमकर भीड़ के अन्दर धँसकर लुप्त हो गया। खट-खट पट-पट प्वाइंट्स बदलने के बाद गाड़ी स्पीड पकड़ रही थी। बड़ी-बड़ी आँखों वाला नम्रता का चेहरा उसके हृदय में बिजली की तरह बार-बार कौंध जाता। सहसा उसे लगा कि ट्रेन छुक छुक नहीं, धक-धक कर रही है उसके दिल की तरह। लेकिन वह कुछ देर बाद ही चैतन्य होकर अपने को धिक्कारने लगा। फर्स्ट ईयर में पूरे वर्ष वह उसकी यादों में खोया रहा और गर्मी की छुट्टियों में जब अइगा पांडे के दुर्व्यवहार को लेकर उसके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करने के लिए उससे मिला तो उसने अकारण ही अपमानित कर दिया। तब वह सुरंजन शास्त्री तथा सदाशयव्रत के आदेशों के अनुसार जिले-भर में सभाओं, जुलूसों और प्रदर्शनों में भाग लेता रहा, कभी यहाँ, कभी वहाँ। क्या नम्रता की याद उसे यत्र-तत्र सर्वत्र भगाती रही-उससे दूर अथवा नम्रता की उपेक्षा को भूलने के लिए और अतिशय स्वाभिमानवश वह राष्ट्रीय आजादी के आन्दोलन में जी-जान से जुट पड़ा? 'नहीं, नहीं उसने मुसाफिरों की भीड़ में गर्मी, उमस और पसीने से बेहाल अपना सिर हिलाया। नहीं, उसकी देशभक्ति, राष्ट्रीयता और उसके स्वातन्त्र्य आन्दोलन कार्यों में नम्रता का कोई हाथ नहीं है-इस क्षेत्र में उसके अधीन वह नहीं है और न ही उससे परिचालित !

फिर भी छुट्टियाँ समाप्त होने के कुछ दिन पहले ही पढ़ाई के लिए बनारस रवाना होते समय वह कितना दुःखी था। बनारस में एक-एक दिन काटना मुश्किल हो रहा था। और तब एक रात, जब पानी खूब बरस रहा था, वह छत वाले अपने कमरे के एकान्त में बैठकर मित्र गोबर्धन के नाम एक ऐसा पत्र लिखने लगा, जो भावुकता और करुणा से लबालब ! उसे पत्र का एक-एक शब्द याद आने लगा-आँखों के सामने एक-एक अक्षर चमकता हुआ

मेरे अभिन्न, स्नेही मित्र गोवर्धन,

अपने एक अभागे दोस्त का यह खत पढ़कर आश्चर्य न करना। मैं एक छोटी, नगण्य किश्ती हूँ, जो समुद्र के बीच धार में ऊँची-ऊँची लहरों के सहारे छोड़ दी गई है असहाय एवं एकाकी। यह दुर्बल किश्ती कब जलमग्न हो जाएगी, कुछ भी नहीं कहा जा सकता, दोस्त ! इस निरुपाय, विकट परिस्थिति में, जब मैं अकेले चला जा रहा हूँ और असह्य वेदना से मेरी साँसें घुट रही हैं, मैं सिर्फ

तुम दोनों को ही याद कर रहा हूँ- तुमको और पूज्य भाभीजी को। मुझे उस दिन की बातें याद आ रही हैं, जब मुझे तुम दोनों का स्नेह मिला था। तुम उम्र में मुझसे कुछ बड़े हो. इसलिए मेरे बड़े भाई हो। इसी नाते भाभी मेरी पूज्य हैं, एक देवी की तरह, माँ की तरह। बस यही अनुरोध है कि मुझे अपने स्नेह और सहारे से कभी वंचित न करना तुम दोनों...

पत्र कोर्ड लम्बा नहीं था। आकाश चू रहा था और उसकी आँखें भी। क्या वह इसलिए रोया था कि उसके अन्दर नम्रता की यादें बादलों की तरह उमड़-घुमड़ रही थीं? अथवा नम्रता के अभाव मैं दुनिया सूनी लग रही थी उसे ? और गोबर्धन के पत्र के बहाने उसकी पत्नी को इसलिए तो याद नहीं किया था उसने कि वह नम्रता की सहेली है और शायद मिलने पर वह नम्रता से उसके दुःख एवं एकाकीपन की बात बताएगी ! कैसी आशा है यह ? अथवा किसी आशा की काल्पनिक अवास्तविक परछाईं ! एक मृगमरीचिका ! वह पत्र पढ़कर गोवर्धन दम्पती ने उसे कितना दुर्बल और खोखला समझा होगा ! इसीलिए शायद उधर से उसका कोई उत्तर भी नहीं मिला। यह सब सोचकर उसे शर्म आने लगी, सन्तोष इसी बात का था कि भीड़ में छिपा उसका चेहरा इस समय कोई देख नहीं सकता था ! हाँ, कैसा क्रान्तिकारी देशभक्त है वह जो परिश्रम, त्याग और कुर्बानी के समय खोखली भावुकता और निरर्थक प्रेम के वशीभूत होकर पलायन के रास्ते पर चल रहा है !

यह सब सोचते हुए वह थक गया और ऊँघने लगा। जब ट्रेन रफ्तार में आती तो उससे कई तरह के सुर निकलते। कभी सिर्फ इंजिन की छुक छुक-छुक-छुक। कभी किसी वाद्य संगीत की तरह झन-झन-झन।

कभी-कभी खट, खट के ताल पर गति की ध्वनियाँ और कभी-कभी दोनों ओर के बगीचों के बीच से गुजरती हुई ट्रेन स्वयं ही ताल देकर घने वृक्षों को बजाने लगती। वस्तुतः ट्रेन मुसाफिरों को हिला हिलाकर थकाती है और अपनी लोरी से सुलाती भी है। औड़िहार स्टेशन में नीलेश चौंक गया जब गाड़ी रुकी। अनेक मुसाफिर उतर गए, कुछ चढ़े भी लेकिन उसको बैठने की जगह मिल गई।

उसी समय रतनसिंह मुख्तार पानी की खाली सुराही लेकर नीचे उतरने के लिए जब उधर से गुजरे तो नीलेश उठ खड़ा हुआ, "चाचाजी, मुझे दीजिए.... आप कहाँ जाएँगे ?"

"मैं लाता हूँ..." लेकिन नीलेश उनके हाथ से सुराही लेकर फुर्ती से नीचे उतर गया। जब वह पानी लेकर लौटा तो नम्रता ने दूर से ही उसे देखकर अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया था। भले ही अनजान में उसके मुँह से नीलेश के लिए अपशब्द निकले थे, लेकिन अब वह अत्यधिक संकुचित और दुःखी थी और किसी भी सूरत में अपने को क्षमा नहीं कर पा रही थी।

"नीलेशजी, बैठिए, एक लड्डू खाकर पानी पीजिए..." "चाचाजी, नीचे उतरकर नल से काफी पानी पीकर आ रहा हूँ। अब पेट में कोई जगह नहीं रह गई है। घर से काफी खाकर भी आया था..."

"अब तो नीलेशजी, इधर जगहें भर गई हैं, ये सभी लोग गाजीपुर जा रहे हैं। गाजीपुर में जब ये लोग उतर जाएँगे तो आप यहीं हमारे पास आकर बैठ जाइएगा।" "ठीक है चाचाजी, इस बीच आपको कोई जरूरत हो तो आवाज दे दीजिएगा..."

नीलेश अपनी जगह पर आकर बैठा ही था कि गाड़ी खुल गई। उसने सिर झुका कर आँखें मूँद ली थीं, लेकिन नींद तो उसे आई नहीं, सामने नम्रता का चेहरा नजर आने लगा। नाराजी और उपेक्षा से भरा हुआ। अपने ऊपर गुस्सा कर उसने आँखें खोल सामने बैठे हर मुसाफिर के चेहरे और पहनावे में दिलचस्पी लेनी शुरू की। छोटी लाइन की ट्रेन स्पीड में आकर हर व्यक्ति को खूब हिला-झकझोर रही थी, जिससे एक मोटा व्यक्ति नींद से बेहाल था। नाक उसकी खर्र-खर्र बोल ही रही थी, बार-बार उसका सिर बाई ओर झुककर भीतर धँसे एक दुबले-पतले व्यक्ति के कन्धे पर टिकने की कोशिश कर रहा था। सचमुच वह दुर्बल व्यक्ति काफी परेशान था। औड़िहार के दो

स्टेशन पहले तक वह आराम से बैठा था, जब उक्त मोटा मुसाफिर डिब्बे के अन्दर तेजी से हाँफ्ता और पसिनियाया हुआ घुसा और दुर्बल व्यक्ति के पार्श्व में एक संकीर्ण फॉफर देखकर बोला:

"जरा खिसक जाइए, भाईजी, जरा में भी बैठ लूँ..."

"अरे आगे जाइए... देखते नहीं यहाँ जगह नहीं..." दुर्बल व्यक्ति ने चिड़चिड़ाकर कहा।

"आपको तकलीफ नहीं होगी... मैं किनारे ही बैठा रहूँगा..." इतना कहकर पता नहीं कैसे उसने अपने बड़े-बड़े कूल्हे उस फाँफर के किनारे पर रख दिए। दुर्बल व्यक्ति ने लाल मिर्च की कड़वाहट से उस मोटे-से निर्लिप्त चेहरे को देखा। लेकिन ऐसी परिस्थिति में बहुत क्रोध की गुंजाइश नहीं होती-क्योंकि दुर्बल व्यक्ति में सिकुड़ने की जितनी क्षमता थी, उतनी ही मोटे व्यक्ति के शरीर में फैलने की, इसलिए शीघ्र ही उतनी ही जगह में जहाँ एक व्यक्ति आराम से बैठा था, वहीं दो व्यक्तियों की समाई हो गई।

नीलेश मुँह पर हाथ रखकर हँस रहा था। बात यह है कि दुर्बल व्यक्ति के किन्हीं लापरवाह क्षणों में निद्रालु मोटे का सिर उसके कन्धे पर टिककर विश्राम करने में पहली बार सफल हुआ था। लेकिन यह सुख भी क्षणों का ही था, क्योंकि तेजाबी, चिपचिपाते पसीने तथा गुदगुदे शरीर के वाष्प से बेहद परेशान दुर्बल व्यक्ति ने पहले तेजी से अपना सिर घुमाकर और मुँह सिकोड़कर घृणा से आश्रित सिर को देखा, फिर फौरन उस तंग जगह में भी अपने कन्धे को इस तरह पीछे खींचने का कमाल दिखाया कि नींद-लीला में मस्त सिर आश्रय-वंचित होकर नीचे गिरकर हवा में जोरदार झटका खा गया। परिणामस्वरूप मोटा व्यक्ति कुछ न समझते हुए भी चैतन्य होकर सीधा हो गया और अपनी बड़ी-बड़ी लाल-लाल आँखों से सामने और अगल-बगल देखने लगा।

इस दृश्य का आनन्द लेनेवाले कम ही लोग थे यानी जो नीलेश की तरह जागे हुए थे। दुर्बल व्यक्ति ने भी काल्पनिक प्रतिशोध की काफी विषैली, टेढ़ी और संक्षिप्त हँसी के साथ अपना छोटा-सा पतला मुँह दूसरी ओर घुमा लिया था।

बहरहाल, उस समय बड़ी राहत महसूस की गई, जब सैदपुर-भीतरी स्टेशन पर वह व्यक्ति अचानक उस जगह से निकलकर अपनी मोटरी-गठरी के साथ नीचे उतर गया। गर्मी, आर्द्रता एवं वाष्प में फौरन कमी आ गई। दुर्बल व्यक्ति का शरीर कुछ फूला-सा नजर आने लगा, लेकिन इतने से ही वह सन्तुष्ट नहीं हुआ बल्कि और फैलकर बैठ गया यानी अपनी टाँगें दोनों ओर काफी फैला लीं।

"बड़ा बदतमीज आदमी है..." दुर्बल व्यक्ति ने नीलेश की ओर देखकर टिप्पणी की।

बदतमीज ! नीलेश ने अचम्भे से उसे देखा। अभी कुछ देर पहले तो नम्रता ने उसके प्रति इसी अपशब्द का इस्तेमाल किया था। लेकिन उस मोटे आदमी और स्वयं उसके बीच कौन-सी समानता है अथवा नम्रता और इस दुर्वल व्यक्ति के बीच कौन-सी रिश्तेदारी है ? उसके अन्दर अजीब-सी गुदगुदी होने लगी और उसने दुर्बल व्यक्ति को छेड़ा :

"इस गाड़ी में मैंने एक आम बात देखी है..."

बीच में ही 'हाँ-हाँ, बताइए...' दुर्बल व्यक्ति ने टोका।

"इस गाड़ी में अगर किसी मुसाफिर को कोई गाली भी देनी होती है तो सिर्फ 'बदतमीज' ही कहता है। और भी तो गालियाँ हैं ?"

दुर्बल व्यक्ति अचानक ठहाका लगाकर इस तरह हँस पड़ा कि सभी मुसाफिरों ने आश्चर्य से उसे देखा, जैसे उसका हास्य अविश्वसनीय हो। तत्पश्चात सहसा गम्भीर होकर उसने कहा :

"भाई साहब, इसमें अचम्भे की बात कुछ नहीं है। यह युद्ध का समय है, बहुत-सी ट्रेनें तो फौजियों को ढो रही हैं, आम मुसाफिरों के लिए बहुत कम ट्रेनें बची हैं। मुसाफिर दिन-पर-दिन बढ़ रहे हैं और जाना सबको ही है। जो पहले से जमकर बैठे हैं, वे सोचते हैं कि ट्रेन से यात्रा करने

का अधिकार सिर्फ उन्हीं को है। नए यात्रियों का आना उन्हें नागवार लगता है। जब इतनी भीड़ है तो आनेवाला यात्री किस नियम का पालन करे? वह किसी-न-किसी तरह चढ़कर भीतर घुसता है। जबरदस्ती कहीं बैठने की कोशिश करता है- बस इसी धकमपेल में कोई गाली भी पा जाता है। हाँ. उसका ऐसा अपराध नहीं है कि कोई बड़ी गाली दी जाए और बच्चों को दी जानेवाली पाजी. नालायक जैसी हल्की गाली भी उसके लिए उपयुक्त नहीं है। आप ही बताइए, जब आपको एक मुसाफिर के नाते किसी को गाली देने का हक नहीं है तो आप 'बदतमीज' के अलावा कौन गाली दे सकते हैं? सच कहिए तो इस भीडभाड के जमाने में हम सभी कभी-न-कभी ऐसी हरकत कर बैठते हैं कि गाली खा जाते हैं। कहिए, गलत कह रहा है ?"

सभी मुसाफिर ध्यान से उसकी बात सुन रहे थे। कछेकों के चेहरों पर, जो मजाक को समझ रहे थे, मुस्कुराहट या हँसी थिरक रही थी। नीलेश को यह सोचकर मजा आ रहा था कि इतना भुगतने के बाद भी वह बड़े दार्शनिक भाव से परिस्थति का विश्लेषण कर रहा था। "आपमें अब काफी समझदारी और उदारता आ गई है। अराम से बैठने का सुख ही कुछ और होता है।" नीलेश ने उसे फिर छेड़ा।

दुर्बल व्यक्ति ने उसका मतलब फौरन समझकर फिर ठहाका लगाया। हँसते हुए ही बोला : "सही कहते हैं आप। वैसे उस मोटे आदमी का दोष भी क्या है? मान लीजिए, वह दूसरे को आराम देने के लिए अपने शरीर को सिकोड़ना चाहता तो वह कितना सिकुड़ता ? सच पूछिए तो उसके शरीर को जो अधिकार कानूनन मिल सकता था, उसके अनुसार भी तो उसे जगह नहीं मिली थी ! और लाख बात की एक बात यह है कि वह मेरा दुश्मन भी नहीं था। ट्रेन की दुश्मनी तो दुश्मनी भी नहीं होती..."

सचमुच आरामवाली जगह मिल जाने से वह बेहद प्रसन्न था। गपशप करने की उसकी और भी इच्छा थी, लेकिन नन्दगंज स्टेशन पर उसे उतरना भी था, जिसके बाद मुसाफिरों से भरा वह डिब्बा खैखरा-सा हो गया।

तभी नीलेश फिर थकान का अनुभव करने लगा। अब डिब्बे में कोई दिलचस्प परिस्थिति भी नहीं थी और न ही कोई वाचाल मुसाफिर ही शेष रह गया था। वह धड़-धड़ आगे निकलती ट्रेन के पीछे भागते दृश्य का चुपचाप अवलोकन करने लगा।

36

सूरज नीचे उतरकर पश्चिम की ओर जा रहा है। वृक्षों की छायाएँ कुछ लम्बी हो गई हैं, जो उन्हीं के साथ आतीं और पीछे की ओर भागती हुई लुप्त हो जातीं। धूप की तेजी भी उतार पर है, जिसके साथ एक सुहावनी उदासी भी फैलती महसूस हो रही है। सुहावनी इसलिए कि जल्दी ही शाम उतरेगी, शीतलता लेकर, जिसमें बाग-बगीचे, खेत, मैदान, गाँवों के नर-नारी, बच्चे, घर लौटते चरवाहे और जानवर सामने से गुजर जाएँगे धरती का अद्‌भुत आकर्षण बिखेरते और आँखों को ठंडक तथा दिल को आत्मीय लगाव का सुख पहुँचाते हुए। और उदासी का कारण है कि कुछ देर बाद शाम भी गाढी होकर रात में बदल जाएगी, जिसमें बाहर का सम्पर्क टूट जाएगा-शायद इस उदासी में उन लोगों की उदासी भी शामिल है. जिन्हें टेन पीछे छोडकर आगे बढ़ जाती है।

नन्दगंज और ऑकुसपुर स्टेशनों के बीच की दूरी लम्बी है. जिसके बीच में एक वीरान इलाका पड़ता है. ग्रामीण बस्तियों से दूर, झाडी-झंखाडों वाला. जिसको पाँतर कहा जाता है और जिससे होकर ट्रेनें धड़ाधड़ निकल रही हैं। नीलेश ने सुना है कि इसी क्षेत्र में कहीं क्रान्तिकारियों ने टेन को रोककर

इन्हीं हथियारों से / 319

उसके सरकारी खजाने को लूटा था काकोरी ट्रेन डकैती की तरह। नीलेश यह भी जानता है कि इन देशभक्तों को पकड़ने के लिए ब्रह्मासिंह नामक एक पुलिस गुप्तचर अधिकारी भेस बदलकर इस इलाके में घूमता रहा था एक-दो वर्ष तक और सफलता मिलने पर उसकी तरक्की भी हुई थी।

नीलेश को आश्चर्य उस समय हुआ, जब उस वीरान इलाके की समाप्ति के कुछ समय पूर्व ट्रेन इंजिन ने सीटी देना शुरू किया। स्टेशन तो अभी आया नहीं, सीटी कैसी? मगर सीटी रुकने का नाम नहीं ले रही थी और गाड़ी की रफ्तार भी धीमी पड़ गई। कुछ आगे जाकर गाड़ी भी रुक गई और सीटी जारी रही।

"सावधान होकर बैठ जाइए, अपने सामानों की फिक्र कीजिए... ट्रेन में डकैती पड़ने वाली है। इलाहाबाद से ही क्रान्तिकारी स्टूडेन्ट चढ़कर आए हैं। यही जगह तो है-ठीक यहीं क्रान्तिकारी देशभक्तों ने ट्रेन रोककर खजाना लूटा था... मैं तो सब जानता हूँ..।"

सैदपुर-भीतरी की तहसीली कचहरी में काम करनेवाले एक मामूली कर्मचारी ने ऐलान किया। यह पैजामा और छोटी-सी कमीज पहने और बुलबुली झाड़े एक कस्बाई छैला का नक्शा पेश कर रहा था। सौभाग्य से उस डिब्बे में छात्रों का जमावड़ा नहीं था, परन्तु उसकी बात से सभी मुसाफिरों के चेहरों पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। लोग पहले तो डिब्बों से ही झाँक-झाँककर तथ्यों का पता लगाने की कोशिश करने लगे। बाद में ट्रेन को हिलता-डुलता न देखकर और सीटी बन्द हो जाने के बाद लोग नीचे उतरने लगे खास तरह से छात्र समुदाय ।

सभी लोग इंजिन की ओर जा रहे थे। नीलेश भी उतरकर उधर ही चल पड़ा था। जो लोग डिब्बों में रह गए थे, खास तरह से स्त्रियाँ और बच्चे काफी परेशान थे। सभी उधर ही बढ़ रहे हैं तो बताएगा कौन ? देर हो रही है। बात क्या है? क्या इंजिन के पास या उससे आगे हल्ला हो रहा है ? अरे नहीं... यह तो नारा है... इन्कलाब जिन्दावाद ! अंग्रेजो, भारत छोड़ो !

नीलेश छात्र समुदाय की भीड़ के अग्रिम दस्ते के साथ था। गार्ड तो इंजिन के पास पहुँचकर स्थिति का जायजा लेने के बाद वापस अपने डिब्बे की ओर लौट रहा था। भीड़ में से किसी ने पूछा: 16 "कहिए जनाब, ट्रेन क्यों रुकी है..."

कमलगट्टा प्रसाद सिंह अपनी आदत के मुताबिक सूचना के साथ विष-वाण चलाने से बाज नहीं आया, "खैर मनाइए, आप लोग बाल-बाल बच गए। आप लोगों को तो और कुछ सूझता नहीं-कौन मरेगा, कौन जीएगा, आपको क्या मतलब? वफादार मुस्तैद ड्राइवर ने देख न लिया होता तो आपकी क्या हालत होती, यह ईश्वर ही जानता है। अब आगे जाकर खुद अपनी आँखों से देख आइए, अब यह गाड़ी एक इंच भी आगे नहीं बढ़ेगी, वापस लौट जाएगी...।"

"अरे, बक-बक का तूफान मेल क्या जोते जा रहा है भाई... साफ क्यों नहीं बताता कि क्या हुआ है..." किसी छात्र ने उत्तेजित होकर गुस्से में कहा।

"अरे, आगे जाकर खुद देख क्यों नहीं लेता ? जैसी नीयत वैसी बरकत। सभी पटरियाँ उखाड़ी हुई हैं। अब सभी मुसाफिर अपने सामानों के साथ नीचे उतर जाएँ और जहाँ जाना हो खुद जाएँ। गाड़ी वापस जाएगी। हाँ, जिसे औड़िहार या बनारस लौटना हो, वे बैठे रह सकते हैं..."

"अच्छा तो नीयत देखोगे तुम ? अभी पनपियाव नहीं मिला है न?"

'मारो, मारो' के शोरगुल के साथ भीड़ के लोग गार्ड की ओर लपके, लेकिन खद्दरधारी छात्र नेता ने उनको ऐसा करने से फिर रोका। तत्पश्चात गार्ड को चेतावनी देने और उसके लिए मुर्दाबाद का नारा लगाने के बाद भीड़ इंजिन की तरफ बढ़ चली।

एक इंजिन के पास पहुँचते ही सबकुछ साफ-साफ नजर आने लगा। ड्राइवर इंजिन पर ही नीचे पैर लटकाकर बैठे-बैठे टुकुर-टुकुर इधर-उधर देख रहा था और उसका सहायक अन्दर एक मैले कपड़े से सफाई। भीड़ के कुछ लोगों ने ड्राइवर से पूछने की कोशिश की, लेकिन उसने मौन रहकर आगे

उँगली का संकेत कर दिया।

भीड़ आगे बढ़ गई। वहाँ से आधा फर्लांग की दूरी पर तार का पहला खम्भा मिला, जिसे एक ओर मोड़ दिया गया था. जिसे देखकर कमर से झके एक निहायत दबले-पतले व्यक्ति के नीचे कुछ निहारने का भ्रम हो रहा था। और आगे वाले दसरे खम्भे को तो सीधा झुका-गिराकर जमीन पर साष्टांग की मुद्रा में लेटा दिया गया था। खम्भों के तार ढीले-ढाले होकर इधर-उधर फैले छितरे थे। रेल पटरियों की दशा तो और भी खराब थी। वे जगह-जगह से परी तरह उखाड़ दी गई थीं-सिर्फ कल-पुर्जे और जोड ही नहीं खोले गए थे। और जहाँ जोड पूरी तरह नहीं खुल पाए थे, कोई-कोई लम्बी-सी पटरी रेल-पथ से थोड़ा अलग टेढी-तिरछी काले सर्प की तरह लहराती-सी पड़ी थी. फीकी होती और भागती धूप में चमकती हुई। रेल-पथ के स्लीपर उखंड़कर इधर-उधर पड़े थे और कहीं-कहीं तो गायब ही थे।

सामने एक अनोखा दृश्य था, अनिष्टकारी दहशत से भरा। आकाश में जमनेवाले बादल नहीं थे। वे हल्के धूप में चमकते और पश्चिम दिशा में तेजी से भाग रहे थे। वीरानगी का अन्तिम छोर था, फिर भी झाड़ी-झंखाड़, झौवों, जंगली पेड़-पौधों, बबूलों वगैरह से अभी छुटकारा नहीं था। और इस वीरानगी में भी कई तरह के पक्षी इधर-उधर फुदक रहे थे। शायद उन्हें इस तोड़-फोड़ में खेल का मजा आ रहा था। सुग्गे, मैनाएँ, नीलकंठ तथा अन्य कई तरह के छोटे-छोटे खूबसूरत पक्षी मुड़े खम्भों या नीचे उखड़ी, बिछी पटरियों पर आकर बैठते, अपनी गर्दनें कई बार इधर-उधर मोड़ते, चहचहाते और फुर्र से उड़ जाते।

दहशत का कारण कुछ दूसरा ही था। पहले लोगों ने सोचा कि कुछ बदमाशों या डाकुओं ने लूटमार करने के उद्देश्य से तोड़-फोड़ की है। यानी ट्रेन दुर्घटनाग्रस्त हो जाए तब डकैती का अवसर मिले। यह तो सचमुच ड्राइवर की मुस्तैदी कही जाएगी, जिसने पहले ही देखकर ट्रेन रोक दी। यदि वह जरा भी लापरवाह रहता तो क्या होता आज ? गार्ड तो ठीक ही कह रहा था।

भीड़ लौटकर ड्राइवर के पास आकर उससे पूछताछ करने लगी, "कहिए, ड्राइवर साहब, यह सब कैसे हो गया ? अब क्या होगा ?"

मजहर नामक ड्राइवर हँसने लगा। फिर गम्भीर होकर बोला, "अब तो कुछ नहीं हो सकता। यह तो शुरुआत है, क्या आप समझते हैं, किसी तरह यहाँ की मरम्मत कर दी जाए तो गाड़ी आगे चली चलेगी ? अल्ला ही जानता है कि आगे क्या होगा? कहाँ-कहाँ रेल की पटरियों की मरम्मत कीजिएगा, जनाब ? आप खुद जुलूस निकालकर आ रहे हैं, मगर आपको यह पता नहीं है कि यह सब किसने किया है ? जनाब, यह सब गांधीजी के लोगों की करतूत है और आगे भी ऐसा ही नजारा देखने को मिलेगा। यह गाड़ी फौरन बनारस लौट जाएगी, नहीं लौटने पर सभी फँस जाएँगे। आप सभी उतरकर चले जाइए, यहाँ से ऑकुसपुर स्टेशन दूर नहीं है और ऑकुसपुर से गाजीपुर भी नजदीक ही है..."

ड्राइवर का कथन सुनकर भीड़ में अचानक जोश आ गया, जैसे अँधेरे में बिजली चमकने से रास्ता सूझ गया हो। वे जोर-जोर से नारे लगाते हुए अपने-अपने डिब्बे की ओर लौट पड़े।

कुछ देर बाद खद्दरधारी छात्र नेता एक सिरे से दूसरे सिरे तक घूम-घूमकर मुसाफिरों को समझाने लगा :

"आप लोग घबराइए नहीं-नीचे अपने सामानों के साथ उतर जाइए। हम सभी साथ-साथ गाजीपुर स्टेशन तक पैदल चलेंगे, वहाँ पहुँचकर कोई-न-कोई इन्तजाम हो जाएगा। किसी डाकू-वाकू का काम नहीं है, गांधीजी, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, मैलाना आजाद के वीर सिपाहियों ने रेल की पटरियाँ उखाड़ दी हैं जिससे विदेशी सरकार का सभी कामकाज ठप हो जाए और वे एक मिनट के लिए यहाँ शासन न कर सकें। आप हिम्मत से काम लें और अपने देश के नेताओं का

साथ दें, देश की आजादी प्राप्त करने की कोशिश करें..."

नीलेश जब अपने डिब्बे में पहुँचा तो रतनसिंह मुख्तार के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं और ये डिब्बे से झाँक झाँककर इधर-उधर देख रहे थे। उनकी पत्नी और नम्रता भी चिन्तित दिखाई है रही थीं। नीलेश अचानक पहुँचकर धीमे स्वर में बोला :

"चाचाजी, नीचे उतरना होगा, क्या-क्या सामान है, बता दीजिए, मैं उतार देता हूँ..."

बोले : दरअसल रतनसिंह उसी को देख रहे थे, और उसको पाकर यह खुश होकर गद्‌गद स्वर में

"अरे बेटा, तुम कहाँ थे? मैंने तो सोचा कि तुम चले गए हो...।"

"मैं कहाँ जाता, चाचाजी ? गाजीपुर यहाँ से दूर नहीं है। हाँ, आप लोगों को पैदल चलना पड़ेगा। आराम से चलेंगे। काफी लड़के हैं, मुसाफिर हैं, सभी एक-दूसरे की मदद करेंगे।" "अरे, तुम साथ हो तो हमें किस बात का डर है, बेटाजी ?"

रतनसिंह ने असाधारण खुशी से ऐसी चहकती आवाज में कहा था, जो उनके स्वभाव के विपरीत थी। उनकी पत्नी ने आश्चर्य के साथ उनकी तरफ देखा और नम्रता ने तो नाराजी से उनको घूरा। यह तो सही है कि रतनसिंह जैसा हिम्मती व्यक्ति ऐसी असामान्य परिस्थिति में बेहद भयभीत हो गया था, खास तरह से इसलिए भी कि उनके साथ दो स्त्रियाँ थीं और भारी सामान भी। जीवन में ऐसा अनुभव भी नहीं हुआ था उन्हें कभी। परन्तु सबसे बड़ा कारण यह था कि जब उन्होंने नीलेश को कहीं नहीं देखा तो उन्हें लगा था कि नीलेश उन्हें अकेला छोड़कर किसी सुरक्षित स्थान पर चला गया है।

"पिताजी, आप इतना भयभीत क्यों हो गए हैं..."

नम्रता ने ठीक ही उनकी नब्ज पकड़ी थी। नीलेश के सामने इस तरह गिड़गिड़ाकर खुशी प्रकट करने की क्या जरूरत है ? इस तरह के व्यवहार से वह अपने को कितना छोटा महसूस कर रही है।

नम्रता की बात सुनकर रतनसिंह के चेहरे पर शर्मिन्दगी की हल्की लाली उभर आई, फिर भी यह प्रदर्शित करने के लिए कि कुछ भी नहीं सुनाई पड़ा है, वह नीचे झुककर सीट के नीचे रखी डोलची और पानी की सुराही को व्यस्ततापूर्वक बाहर निकालने लगे।

परन्तु, नीलेश को नम्रता का व्यवहार अच्छा नहीं लगा। उसने रतनसिंह के हाथ से डोलची और सुराही लेते हुए कहा, "चाचाजी, आप चाचीजी और नम्रता को लेकर नीचे उतरिए, मैं सभी सामान उतार रहा हूँ। जल्दी नहीं है। कोई भी चिन्ता न कीजिए, सबकुछ सहूलियत से हो जाएगा...।"

एक बड़ा-सा बक्सा था, जिसमें सभी कपड़े और कुछ जरूरी सामान थे। जाड़े के दिन न होने से होलडाल भारी नहीं था। सामान उतरते-उतरते बहुत-से लोग जिनके पास कुछ खास नहीं था, बड़े-बड़े कदम रखते आगे बढ़ गए थे।

"नीलेशजी..."

परन्तु नीलेश ने रतनसिंह को बोलने नहीं दिया, "चाचाजी आप देखते रहिए, सामान कैसे चलता है। आप तो हमारा पथ-प्रदर्शन कीजिए। यहाँ कोई कुली नहीं मिलेगा। नम्रता सुराही ले लेंगी। चाचीजी डोलची ले लेंगी। मैं इस बक्से पर हल्का-सा होलडाल रख देता हूँ, आप थोड़ा सहारा दे दीजिए, मैं आराम से इन दोनों सामानों को कन्धे पर रखकर ले जाऊँगा...।" "अरे नीलेशजी, तुम दोनों कैसे ले जाओगे ?"

"नहीं चाचाजी, आप देखते रहिए... हाँ, चाचीजी थक जाएँगी तो आप डोलची उनसे ले लीजिएगा... और मेरा झोला आप कन्धे से लटका लीजिए...।"

नीलेश ने किसी तर्क को नहीं माना। उसने झोला में से तौलिया निकालकर उसको गोल-गोल

मोडकर अपने सिर पर रख लिया। फिर बक्सा पर होलडाल रखकर नीलेश के कन्धे पर चढ़ाया जाने लगा, जिसमें रतनसिंह की पत्नी ने भी सहयोग दिया। नम्रता एक अजीब भय और आतंक तथा किंचित शर्म से आँखें विस्फारित करके सामने के पूर्वी क्षितिज को देखने लगी, जहाँ से शाम ने उतरकर धीरे-धीरे आकाश को घेरने की तैयारी शुरू कर दी थी। यह पता नहीं कब तक उधर देखती रही। धूप का रंग बदल रहा था। धरती के बहत-से हिस्से पर छाया कब्जा करके आगे बढ़ रही थी। कहाँ जा रही है नम्रता? क्या पूर्वी क्षितिज के उस पार, जहाँ रात्रि संकोच छोडकर काले इरादे ते कुटिलतापूर्वक मुस्कुरा रही है....

तरह-तरह की आशंकाओं से भरी नम्रता उस समय चौंकी, जब माँ ने उसकी बाँह को हाथ से खोदते हुए कहा, "कहाँ खोई हुई हो ? सब लोग जा रहे हैं... कुछ देर में शाम हो जाएगी, फिर रात..."

उसने सिर को चारों ओर घुमाया। ट्रेन लगभग खाली हो चुकी थी। कम सामान वाले तो सचमुच आगे निकलकर दृष्टि से गायब हो चुके थे। पीछे वही लोग शोरगुल कर रहे थे जिनके पास सामान अधिक थे अथवा परिवार में बच्चे और अशक्त वृद्धजन। छात्रों की कुछ छोटी-छोटी टोलियाँ पीछे छूटे लोगों के साथ चल रही थीं कमजोर और मजबूर लोगों को मदद देती तथा जरूरत पड़ने पर उनके सामान ढोती हुई।

विशेष रूप से छात्रजन उत्साह में थे। वे बेताब हो रहे थे कि जल्दी-से-जल्दी अपने गाँव पहुँचकर उस क्रान्ति को आगे बढ़ाएँ, जिसका बिगुल बम्बई में बजाया गया था गांधीजी तथा उनके साथी जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, मौलाना आजाद वगैरह द्वारा; तथा जो शहरों से शुरू होकर तेजी से गाँवों में फैल रही है। नीलेश कम उत्साहित नहीं था कुछ अधिक इसलिए भी कि वह नम्रता एवं उसके परिवारजनों के लिए चिन्तित था और उनको जल्दी-से-जल्दी किसी सुरक्षित जगह पर पहुँचा देना चाहता था। परिश्रम के ऐसे आनन्द को एक-दो शब्दों में परिभाषित करना सम्भव नहीं है, जिसमें देशभक्ति, कुर्बानी, दायित्व, गर्व एवं स्वार्थरहित प्यार की भावनाएँ एकीकृत हो गई हों।

शुरू में नीलेश की इच्छा हुई कि दौड़कर चले, परन्तु उसका उत्साह वास्तविकता के समानुपातिक नहीं था। होलडाल तो हल्का ही था, किन्तु ट्रंक वैसा नहीं। वह दो-तीन कदम दौड़कर चला भी, फिर सँभलकर कदम रखने को मजबूर हुआ। यदि वह दौड़ भी सकता तो उसके साथ चलनेवाले लोगों के लिए यह कहाँ सम्भव था ? फिर हवा भी पुरुवा थी और उसके प्रतिरोध का सामना करके ही आगे बढ़ा जा सकता था। महिलाएँ तो और भी परेशान हो रही थीं। उनके आँचल उड़कर फड़फड़ाने लगते तथा साड़ी दोनों टाँगों के बीच में घुसकर बेड़ी की तरह चलना मुश्किल कर देती।

नीलेश ने एक बार होलडाल सहित ट्रंक को सिर पर से उतारकर दोनों हाथों के सहारे कन्धे पर टिकाने की कोशिश की, जिसके बाद उसके शरीर की आकृति दर्शनीय थी। सन्तुलन बनाने के प्रयास में सीधी धड़ के नीचे उसके कूल्हे तिरछे एक ओर निकल आए, ऊपर गर्दन विपरीत दिशा में। नम्रता भय और आतंक दे देखती हुई होंठों में ही मुस्कुरा पड़ी, सहसा उसे बिहारी का वह दोहा याद आ गया जिसमें बाँसुरी-वादक श्याम को त्रिभंगीलाल की संज्ञा से विभूषित किया गया है। उसके दिमाग में 'श्याम श्याम' शब्द चक्कर काटने लगा और हृदय में कुछ क्षणों के लिए उस आकति के प्रति मुग्धता का भाव भी उगाः लेकिन शीघ्र ही अपने को धिक्कारा। वह तो अपने को बहुत छोटा सिद्ध कर चुकी है हर दृष्टि से और ऐसे अवसर पर भी वह निष्क्रिय-सी चल रही है. हीन भावना से भरी हुई।

असुविधा महसूस करने के बाद नीलेश ने ट्रंक फिर सिर पर ले लिया। आश्चर्य की बात

यह है कि सिर पर गोल घुमाकर रखा हुआ उसका तीलिया यथास्थान स्थिर रहा। सभी रेलवे लाइन के बगल-बगल ही चल रहे थे। शुरू में कुछ दूर तक काफी दिक्कतें थीं। लोहे की पटरियाँ जगह-जगह उखड़ी थीं और कोई पटरी रास्ते में ही पड़ी थी, जिसे लाँधकर जाना पड़ रहा था। कहीं-कहीं तार भी फैले थे। आगे चलनेवाला अपने पीछे आनेवालों को सावधान कर देता, "भाई, नीचे देखके..."

परन्तु कुछ दूर बाद रास्ता ठीक था। पटरियाँ तथा तार के खम्भे जस-के-तस हैं। अब मुसाफिरों की भावना में अन्तर आ गया है। ट्रेन की यात्रा करते समय पीछे छूटते स्टेशनों, आदमियों तथा पेड़-पौधों के प्रति वियोग जैसी एक उदासी भर आती थी। परन्तु अब एक उतावलापन था-भय-आशंका-भरी इच्छा कि जल्दी से यह रास्ता और उसके आस-पास फैला वातावरण पीछे छूटे और कोई सुरक्षित स्थान, खास तरह से गाजीपुर स्टेशन शीघ्र ही आ जाए।

डूबते हुए दिन ने कई रंग बदले। उसको रोकना अब व्यर्थ था। क्षीण होती धूप वृक्षों के शिखरों को स्पर्श करती हुई पीठ पीछे पश्चिमी क्षितिज में शर्म से लाल होकर छिप रही थी। सूर्य का गोला दिन-भर की आभा के बाद शिथिल होकर ठंडा पड़ गया, जिसके डूबने के बाद उसकी आमा कुछ देर तक फैली रही अत्यधिक फीके लाल रंग की तरह अथवा अशक्त व्यक्ति की क्षीण मुस्कराहट के समान।

जब वे लोग आँकुसपुर पहुँचे, शाम का चेहरा हँसता हुआ, उज्ज्वल था। छोटा स्टेशन है, लेकिन कुछ लोग दिखाई तो पड़े। वहाँ के स्टेशन मास्टर ने किसी प्रश्न का जवाब नहीं दिया। आगे भी लाइन टूटी है? कोई और वारदात तो नहीं हुई ? लेकिन जानकार मुसाफिरों में कई लोगों ने कहा-गाजीपुर यहाँ से नजदीक ही है और पटरी के बगल का रास्ता भी ठीक है। सभी यक गए थे। तेज हवा के साथ उमस भी थी और नीलेश तो पसीने से लथपथ था। परन्तु कोई भी वहाँ थोड़ी देर रुककर सुस्ताने को तैयार नहीं हुआ। सिर्फ उन्होंने कुछ मिनट रुककर एक-एक गिलास पानी पीया-एक-एक लड्डू भी नहीं खाया उन्होंने और चल पड़े जल्दी ही।

गाजीपुर स्टेशन पहुँचने के समय रात उतर आई थी। नीलेश सामान उतारकर सबको एक बेंच पर बिठाकर वस्तुस्थिति का पता लगाने चला गया और कुछ देर बाद लौटकर बताया :

"चाचाजी, अब कोई भी गाड़ी बलिया की ओर नहीं जा रही है। जाएगी भी नहीं। उधर से भी कोई ट्रेन नहीं आ रही है। उधर हालत और भी खराब है। बस का रास्ता भी खराब है। सड़कें बीच-बीच में काट दी गई हैं, जिससे पुलिस या फौज आ-जा नहीं सके। बसें भी नहीं आ-जा रही हैं। लोग गुस्से में उठ खड़े हुए हैं। एक जबरदस्त जन-ज्वार, जनक्रान्ति की आँधी आ गई है..."

"अरे, यह तो बड़ा बुरा हुआ अब क्या होगा नीलेशजी ? मुझे तो एक दिन के लिए गौसपुर जाना था रिश्तेदारी में-गाजीपुर के बाद युसुफपुर स्टेशन पड़ता है, वहीं से गौसपुर गाँव जाते हैं..." रतनसिंह मुख्तार का चेहरा आतंकित था।

"चाचाजी, कोई चिन्ता की बात नहीं। हम इस समय नियाजी मोहल्ला चलेंगे। वहाँ मेरे फूफाजी रहते हैं। आप तो जानते भी हैं, बाबू बेनी प्रसादजी। आज रात में रुकेंगे और सुबह कल दिन में नदी-मार्ग से नाव द्वारा बलिया चले चलेंगे। कोई दूर थोड़े है बलिया यहाँ से। सभी लोगों की यही राय थी..."

"नाव से ?" रतनसिंह की आँखें निकल आईं। "हाँ चाचाजी...ट्रेन, बस, सब बन्द हैं...।"

37

बहुत आग्रह करके नीलेश एक ताँगे पर रतनसिंह और उनके परिवार को अपने फूफाजी के मकान पराने ढंग की छोटी-छोटी लाखीरी ईंटों से ऊँचाई पर निर्मित एक मजबूत मकान है यह जहाँ तक पर ले गया, जो नियाजी मोहल्ला के महाजन टोली में स्थित है। रात के करीब नौ बज गए थे। पहुंचने के लिए सड़क से हल्की चढ़ाई करनी पड़ती है। गंगा के किनारे बसा गाजीपुर शहर बरसात में अक्सर बाढ़ की चपेट में आ जाता है। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि अब ड्या तब ड्या ! तब बढ़ी हई नदी पक्की सीढियों पर चढ़कर शहर के गली-कैंचों में प्रवेश कर जाती है और आहि-त्राहि मच जाती है। इस मोहल्ले से तो गंगा काफी नजदीक है और बहुत पहले जब सुरक्षा की व्यवस्था आज की तरह नहीं थी, बहुत सोच-समझकर ऐसे स्थान पर यह इमारत खड़ी की गई

होगी। नीलेश के फूफा जिला जज के पेशकार थे। कभी बलिया स्वतन्त्र जिला न होकर गाजीपुर में ही आमिल था, और नया अस्तित्व प्राप्त होने पर भी एक ही जज दोनों जनपदों के मुकदमे देखा करता। परिणामस्वरूप जब जज साहब बलिया बैठने लगते तो पेशकार को भी उनके साथ जाना पड़ता। उस समय कोई रिश्तेदार आकर अलग ठहर जाए, यह सम्भव नहीं था, मगर पेशकार साहव घर-गृहस्थी छोड़कर बहुधा अकेले आते और जज साहब छः-आठ महीना, एक वर्ष रहने के बाद जब गाजीपुर वापस चले जाते तो वह भी।

नीलेश सोच भी नहीं सकता कि यदि पहले से परिचित न भी होते तो रतनसिंह मुख्तार और उनके परिवार का वहाँ स्वागत नहीं होता। वैसे भी भारतीय परिवारों में अतिथि भगवान से कम नहीं समझा जाता था। और खुशी तथा हँसी से वह भर गया जब दोनों महिलाओं के ऊपर चले जाने के बाद गोंद के लड्डू जलपान करते समय रतनसिंह मुख्तार और उसके फूफाजी उस समय के किसी मशहूर मुकदमे की विस्तार से चर्चा करने लगे। देखते-ही-देखते उस विशाल, साफ-सुथरे बैठकखाने में 'चुनांचे', 'दरख्वास्त', 'मुद्दई', 'कत्ल', 'फैसला' आदि नुक्ता, बेनुक्ता वाले उर्दू के शब्द तैरने लगे। नीलेश किसी तरह अपनी हँसी रोककर ऊपर की तरफ भागा।

दो भाइयों का परिवार ऊपर अलग-अलग रहता था, जिनमें उसके फूफाजी छोटे थे। ऊपर के कमरे भी हालनुमा बैठकखाने की तरह ही थे। उनके बाहर बड़ी, खुली छत भी थी तथा उसके फूफाजी की तरह पीछे गली में उगा एक विशाल पीपल का वृक्ष झुक आया था, जिसकी पत्तियाँ थोड़ी-सी हवा चलने पर ही खड़-खड़-खड़ बोलने लगतीं। उसके नीचे सुतली से बुना और कसा एक बड़ा पलंग पड़ा था, जिस पर जाकर वह लेट गया और बेतहाशा हँसने लगा।

उस घर में छोटा कुछ भी न था, चाहे कमरा हो, मसहरी हो अथवा लोटा, गिलास, थाली एवं कटोरा-कटोरी ही क्यों न हो। और उसे सहसा महसूस हुआ कि भले ही उसके फूफा तथा उनके बड़े भाई मामूली डील-डौल के हों, परन्तु उनके दिल बड़े थे, तभी तो वे तथा उनके परिवाजन उत्साहपूर्वक अतिथियों का स्वागत करने में जुटे हए थे। यह ख्याल आते ही उसकी हँसी बन्द हो गई और निजी किस्म के एक अनजान कृतज्ञता भाव ने तरतर पसीनेवाली उस दुस्सह गर्मी और उमस में खड़खड़ाते पत्तों की शीतल हवा का सुख और भी बढ़ा दिया।

इन दिनों वह अपने फफाजी से खुश भी नहीं था। और बचपन में भी वे और उनका खयाल एक अजीब मनहसियत और आतंक पैदा कर देते। सिल की तरह उनका चेहरा खुखुरा, सपाट और संवेदनहीन था। न खाने का शौक न खिलाने का। न पहनने का और न हँसने-बोलने का। सबसे यहाँ तक कि भोजपुरी बोलनेवाली घर की औरतों से भी गम्भीर मोटे स्वर में नक्तों से भरी उर्द फारसी बोलते। वैसी ही भाषा, जो किसी मुकदमे का वृत्तान्त सुनाते उनके मुँह से निकलती और

जिसे सुनकर कोई भी औरत शरमाकर घूँघट काढ़ लेती और तिरछा मुँह करके बुदबुदाती, "पता नहीं आबा-गाबा क्या बोलते हैं !'

चाहे अधिक ही क्यों न दे दिया जाए, सिर्फ एक गोंद का लड्डू अथवा जलेबी के एक टुकड़े से उनका नाश्ता सम्पन्न होता। फिर तो औरतों की रसोई की भाग-दौड़ शुरू हो जाती। झुंझलाहट और चिल्लाहट भी। कोई चावल बीन रही है, कोई दाल। कोई सब्जी काट रही है। मसाला भी साथ-साथ पीसा जा रहा है। इस बीच फूफाजी ठीक साढ़े आठ बजे बिना किसी दरवाजे के अधखुले गुसलखाने में नहाने के लिए चले जाते एक लाल अँगोछे और धोती के साथ। दो-चार लोटा सिर पर डाला, धोती आगे-पीछे ढीली करके एक-एक लोटा अन्दर और स्नान सम्पन्न। वह उतारी धोती और अँगोछा नौकर के लिए छँटाई हेतु छोड़कर अन्दर आ जाते।

नीचे कुछ नहीं पहनते थे वह। एक पतली महीन पारदर्शी-सी थोती स्नान के बाद धारण कर लेते तो उससे ही बीच-बीच में, जब कचहरी अथवा कहीं और जाना होता, कच्छा-अंडरवियर का काम ले लेते। यानी धोती को ऊपर अच्छी तरह खोंटकर उसके ऊपर एक उटुंग-सा पायजामा चढ़ा लेते और कच्चा-पक्का भोजन, जो भी मिलता, करके एक पुराना पारसी कोट तथा फ्लेक्स जूते पहनने के बाद ठीक सवा-नी बजे सीतानाथ से एक-सवा घंटा पहले ही चल देते थे कचहरी पैदल ही। शाम को लौटने के

बाद वह जूते, कोट तथा पायजामा उतार देते। फिर, जिसे कच्छा बना दिया गया था, उसे फिर धोती बना दिया जाता। एक ही कमीज-बनियान कई दिनों तक चलती। बीच-चीच में कभी बनियान और कभी कमीज छाँटने के लिए उतारी जाती। इस तरह कभी बनियान, कभी कमीज और कभी धोती सबसे अधिक साफ नजर आती।

शाम को नाश्ता करने के बाद वह कमरे अथवा बाहर चारपाई या तख्त पर बैठ जाते चुपचाप। सीतानाथ कचहरी से आकर थोड़ी देर आराम करते, फिर मन्दिर चले जाते। तब उस समय मुकदमों, हाकिमों वगैरह के बारे में गप-सड़ाका के लिए अन्य कौन मिलता ? उन्हें और किसी से भी यहाँ तक कि बच्चों से भी बोलने-बतियाने का शौक नहीं था। वह देर तक घंटों पालथी मारकर बैठे रहते और सामने टुकुर-टुकुर देखते रहते, चाहे देखने की चीज हो या न हो। ऐसे समय वह कभी दाई और कभी बाई बाँह को सीधे तख्त या चारपाई पर टेककर अपने शरीर का पूरा भार उस पर डाल देते। तब बाँह ऐंठकर घूम जाती और किहुनी का दूसरी ओर का हिस्सा आगे उभर आता। फूफाजी से ऐसी हरकत करने की हिम्मत तो नहीं कर सका नीलेश, परन्तु उसी से प्रेरित होकर उसने कई बार अपनी बड़ी बहन अथवा किसी छोटे भाई से उसी तरह बाँह टेकवाने के पश्चात आगे निकले उभार को हल्के-से अपने हाथ से धक्का दे दिया था, जिससे बेसहारा होकर वे नीचे लुढ़क गए थे।

लेकिन शाम का वह समय नीलेश के लिए खतरनाक भी हो सकता था और हो भी जाता था। इसलिए जब वह तबादले पर बलिया आ जाते तो उसकी रूह काँप जाती और वह भरसक उनकी नजर से दूर रहने की कोशिश करता। अचानक मुकदमा सम्बन्धी उनकी स्थायी दिलचस्पियाँ कहाँ और कैसे तिरोहित हो जातीं और एक अध्यापक की प्रतिभा इस सीमा तक जाग उठती कि जब उम्मीद नहीं होती, उसी समय नीलेश को बुलाकर कहते

"अपनी इंगलिश की बुक ले आओ..."

नीलेश का चेहरा फक।

"ले आओ, तुम्हीं से कह रहा हूँ..."

नीलेश बड़ी ही अनिच्छा से पैरों तो ताने हुए अन्दर जाता अपनी माँ और दादी की ओर देखता हुआ, गोया उसके साथ बड़ा अन्याय किया जा रहा हो। सिर्फ दादी ही उसकी माँ की तरफ अर्थपूर्ण दृष्टि से देखती हुई धीरे से कहतीं:

"समय पर लड़के खेलेंगे-कूदेंगे नहीं तो पनकेंगे कैसे ?" जब उसकी माँ बाहर की तरफ देखने

के बाद सिर झुकाकर गम्भीर होकर मुँह फुला लेती तो दादी किसी चतुर राजनीतिज्ञ की तरह सुनाती बुलन्द आवाज में कहती

हई "जाओ बेटवा, आज पढ़ लो... पढ़ाई-लिखाई से बुद्धि खुलती है."

उसके फूफाजी सिर्फ टेन्थ तक ही पढ़े थे, मगर उनकी अंग्रेजी अच्छी थी और लिखावट भी बेहद खूबसूरत। वह शुरू में ही हिज्जे पूछने लगते। और जब उससे कभी भूल हो जाती तो कान पकड़कर ऊपर-नीचे झलाने लगते। बड़ी जोरदार पकड़ थी उनकी दर्द से रोएँ खड़े हो जाते, लगता जान ही निकल जाएगी। वह रोने लगता। उसकी बड़ी बहन पल-पल में दरवाजे से झाँक जाती और पूरी रिपोर्ट भीतर पहुँचा देती।

औरतों में खलबली मच जाती। दादी धीरे-से कहतीं, "कसाई की तरह कान थोड़े ही मरोड़ना चाहिए। कान उखड़ गया तो..."

अब उसकी माँ भी अपने को रोक नहीं पाती, गुस्से से लेकिन फुसफुसाई आवाज में कहती : "मेरे लड़के को कलक्टर नहीं बनना है ! इससे अच्छा तो अपढ़-गँवार रहना है। जब जान ही नहीं रहेगी तो पढ़-लिखकर क्या होगा ?"

लेकिन इससे आगे बढ़ने की हिम्मत किसी में नहीं थी। यहाँ तक कि आनन्दी अपने पति से भी कुछ नहीं कह सकी क्योंकि यह जानती थी सीतानाथ उसी पर बिगड़ेंगे और क्रोध से चिल्लाने लगेंगे:

"अरे, तुम उसे नालायक बनाना चाहती हो ?... समझ लो, बिना पिटाई के पढ़ाई आती भी नहीं। जानती हो, एक बार में इम्तहान के जमाने में, शाम को खेलने गया था तो मेरे चाचा ने मुझे पचपन खड़ाऊँ मारे थे...ले खड़ाऊँ...ले खड़ाऊँ। बोले, 'क्या समझते हो, भैया नहीं हैं हमारे बीच तो तुम्हें आजादी मिल गई है ! भैया की जगह अब मैं हूँ-हाँ, अब मैं ही तुम्हारा बाप हूँ, हर शौक तुम्हारा जरूर पूरा करूँगा, लेकिन पढ़ाई में कोताही हुई तो मारते-मारते हड्डी-पसली एक कर दूंगा।"

लेकिन वह सिर्फ एक शाम की पढ़ाई नहीं थी। फूफाजी ने अँधेरा हो जाने पर उसकी छुट्टी करते हुए कहा था, "रोज शाम को, जब मैं कचहरी से आ जाऊँ, तुम अपनी अंग्रेजी की किताब लेकर मेरे पास आ जाया करो। समझ लो, हिज्जे याद होना चाहिए। हिज्जे याद न होगा तो अंग्रेजी क्या पढ़ोगे..."

जिस दिन वह तबादला होने के बाद फिर गाजीपुर वापस चले जाते, नीलेश की खुशी का ठिकाना न होता। वह खूब उछलता, खूब गाता। भाइयों को परेशान करता। बाद में तो बलिया के लिए भी अलग स्वतन्त्र जज की नियुक्ति होने लगी तो दोहरा न्याय-प्रशासन भी समाप्त हो गया। यह भी बड़ा होने लगा और राजनीतिक तथा सामाजिक रूप से जागरूक भी। लेकिन जब हाई स्कूल में यह पहुँचा तो एक दिन दोपहर के बाद सन्नाटे में दक्षिणी बरामदे में कोठरी के अन्दर होनेवाली फुसफुस बातचीत

सुनकर डर से परेशान हो गया। गाजीपुर वाली उसकी बुआ एक दिन पहले ही मैके आई थीं और उसकी माँ से गिड़गिड़ाकर कह रही थीं :

"तुमसे हाथ जोड़कर कहती हूँ, भौजी... इनकी एक और शादी करा दो..."

" क्या कहती हैं, बड़ी बीबीजी..." आनन्दी ने आश्चर्य से कहा।

"ठीक कहती हूँ, भौजी, किसी गरीब घर की लड़की हो...सारा खर्चा मैं दूँगी। ऊपर से भी कुछ दे दूँगी...मैं तो अभागी हूँ भीजी, इन्हें कुछ दे न सकी...ज्योतिषी ने भी हाथ देखकर कहा है कि भाग्य में सन्तान तो है। अब इस उम्र में मैं तो सन्तान देने से रही... इसीलिए तुमसे विनती कर रही हूँ..."

"कुछ कहा है क्या उन्होंने ?" आनन्दी ने पूछा था।तानि

"आप तो जानती हैं. भौजी ये कुछ बोलते नहीं। बार-बार पूछती हूँ, गुमसुम लगाए रहते हैं। फिर मेरा भी तो कोई फर्ज बनता है. भीजी. एक दिन मेरे अन्दर भगवान ही कहने लगे. 'इनकी नई शादी करा दो... बच्चा होगा. इनकी किस्मत में बच्चा लिखा है... पुण्य कमाओगी तुम... हाँ, मौजी. इनके मन में भी कोई हौसला होगा तो पूरा हो जाएगा।"

"बीबीजी, आप कुछ छिपा रही हैं... जानबूझकर अपने पैरों पर कुल्हाड़ी क्यों मार रही हैं ? मान लीजिए. शादी के बाद भी कोई सन्तान न हई तो एक औरत की जिन्दगी नरक बन जाएगी"

"नहीं भीजी में जान दे दूँगी, जहर खा लूँगी, कएँ-नदी में इव मरूँगी... घर के लोगों की आनीबानी तो बरदाश्त हो सकती है. अपने ही मरद का रोज-रोज का कोसना नहीं। पहले ऐसी बात नहीं थी दूसरी शादी की बात से चिढ़ते थे. बड़े भाई साहब की सन्तान को अपनी सन्तान मानते थे... इधर एक-दो साल से पता नहीं क्या हो गया है। दो साल में रिटायर हो जाएँगे... एक दिन बोले, 'कोई नई लड़की मिल जाए तो अब भी मैं कई बच्चे पैदा कर दूँ...।'"

उसकी बुआ बिलख-बिलखकर रोने लगी थीं। आनन्दी छाती पर हाथ रखकर चीख पड़ी थी, 'हाय, बीवीजी !' नीलेश का बुरा हाल था। शर्म, क्रोध और नफरत से काँपता और पैर पटकता हुआ वह तेजी से बाहर के बैठक में जाकर खड़ा हो गया। फिर दाँत पीसकर दीवार पर ही एक जोर का मुक्का जमाते हुए मुँह के अन्दर ही कुछ बुदबुदाने लगा।

लेकिन वह कुछ कर नहीं सका, और आनन्दी ने अपने मैकेवालों की मदद से कचहरी के एक ऐसे दरिद्र क्लर्क को ढूँढ़ निकाला, जिसे ढेर सारे बच्चे थे और जो कर्ज में डूबा हुआ था। उसकी बारह वर्ष की अबोध लड़की से अन्ततः उसके फूफाजी की शादी हो गई हुलासो देवी हुई तब उसकी नई बुआ।

यही सब सोचता हुआ नीलेश आश्चर्य कर रहा था कि फूफाजी के प्रति आज वह इतना कृतज्ञ क्यों है ? जो होना था वह तो हो ही गया था, उससे रिश्तेदारी तो नहीं खत्म हुई बल्कि कुछ और प्रगाढ़ हो गई, चाहे उसका कारण जो भी हो। शायद इसके केन्द्र में बड़ी बुआजी ही थीं। उन्हीं की जिद से शादी हुई थी और अब वही चाहती थीं कि सम्बन्धों में कोई बदमजगी या खटास उत्पन्न न हो। अपनी सौत को वह छोटी बहन की तरह मानतीं। उसके लिए और उसके मैकेवालों के लिए सामान, कपड़ा-लत्ता, मिठाई वगैरह क्या-क्या बनवाती थीं और भेजवातीं, लेकिन अपने मैकेवालों के लिए रत्ती-भर कम न करतीं।

उसके फूफाजी ने समस्त अधिकार अपनी पहली पत्नी के पास ही रहने दिया क्योंकि छोटी अनुभवहीन थी। भोजन बनाने, सिलाई, बुनाई, सांसारिक व्यवहार सब में वह एकदम कच्ची थी। पहली पत्नी ही अब उसकी दादी, नानी, भाई, बहन और सहेली थी, जो उसे सिखाती, समझाती, पुचकारती और कभी-कभी डाँटती-फटकारती भी। इन दो वर्षों में वह उम्र का चौदहवाँ वर्ष पार करके निखरती गई थी। लम्वी, पतली, शमशीर की तरह लपलपाती और चमकती। उसके पति का भी रंग-ढंग एकदम बदल गया था। वह खिजाब लगाकर सदा जवान बने रहते। कपड़े साफ-सुथरे। इत्र से गमकते। गले में हल्की सोने की जंजीर और हाथ की अंगुलियों में लाभकारी रत्न-जड़ित स्वर्ण अँगूठियाँ चमचमाती हुई। हँसते-मुस्कुराते। मगर सन्तान से वह वंचित ही थे अभी तक।

"अरे, नीलेश... उठो बेटा, खाना खा लो..."

नीलेश हड़बड़ाकर उठ खड़ा हुआ। वह हुलासो बुआ की ही आवाज थी, एकदम पतली नहीं, मोटी-महीन का समन्वित नकियाया हुआ-सा मिश्रण। वह रेशमी साड़ी बार-बार सँभालने की कोशिश करती हुई, चूजे की तरह गर्दन दाएँ-बाएँ घुमाकर देख रही थी। उसके पीछे नम्रता हाथ में लालटेन लिए हुए खड़ी थी, जिसका धीमा और लघु प्रकाश-वृत्त उसकी बड़ी-बड़ी आँखों के शर्म-संकोच एवं किसी आतंक भाव को उद्घाटित कर रहा था।

"खाने की इच्छा नहीं है." नीलेश धीमे स्वर में बोला।

"कैसी बात करते हो बाबू... नीचे इन्तजार हो रहा है तुम्हारा... लम्बे सफर से आए हो... सुनते * मेहनत भी खूब की है तुमने... जल्दी जाओ हाथ-मुँह धोकर...।"

वे लोग तो खा चुके थे पहले ही जब तक सभी हाथ-मुँह धोकर तथा कपडे बदलकर तैयार होते...हलासो देवी ने गजब की फर्ती दिखाते हुए अपने जेठ की दोनों लड़कियों के सहयोग से पूड़ी, कचौडी, आलू की रसेदार सब्जी और खीर तैयार कर लिया था। अचार तो घर में था ही! दही भी था.

जिस पर बूरा छिड़ककर पेश किया गया। लेकिन नीलेश अपने से लगभग पाँच वर्ष छोटी और अब रिश्ते में बुआ बनी हुलासो देवी की पुरखिन जैसी बातों से बेहद संचित एवं दुःखी हो गया था।

नीचे बैठक में सीमित स्थान को धो-पोंछकर लम्बाई में चपेतकर एक दरी बिछा दी गई थी, जिस पर रतनसिंह और नीलेश के अलावा मेजबान पेशकार साहब भी उनका साथ देने के लिए बैठे। हासो देवी तो परदा की वजह से नीचे नहीं आई. लेकिन उनके जेठ की दोनों अविवाहित लडकियों तया नम्रता ने मिल-जुलकर खिलाने-पिलाने का काम किया। गर्म-गर्म, फूली और सुर्ख कचौड़ियों की खुशबू बैठके में चारों ओर फैल गई लेकिन पेशकार साहव यानी नीलेश के फूफा सिर्फ एक कटोरी में खीर लेकर रतनसिंह मुख्तार की बगल में खाना खाने का नाटक करते रहे। वह बीच-बीच में चम्मच से कुछ दाना खीर जीभ पर ले लेते और देर तक मेजबान को देखते हुए होंठों से बन्द करके मुँह चलाते रहते पगुराती भैंस की तरह।

रतनसिंह के उत्साह का कोई अन्त नहीं था। भूख तो लगी हुई थी खूब लगता था पेट के अन्दर ऐसा गड्ढा है, जो कभी भरा नहीं जा सकेगा। आँखों के सामने अँधेरा छा गया था। खुराक भी उनकी कम नहीं थी। कई कचौड़ियों के बड़े-बड़े निवाले अन्दर डालने के पश्चात जब उनको कुछ धरान हुआ और नेत्र ज्योति लौटी तो वह लघु विराम देकर और सिर उठाकर अनजान में ही सीतानाथ की शैली का अनुकरण करते हुए, ठीक उसी अन्दाज में बाएँ हाथ की जुम्बिश के साथ बोले :

"लाजवाब खाना बना है, भाई साहब! क्या खुशबू है! क्या जायका है! आला दरजे के हुनरमन्द बावर्ची भी यह जायका नहीं दे सकते। कोई क्या पाएगा हमारे घरों की औरतों को... विलायत की औरतें पानी भरें इनके सामने... वाह !"

वह फिर उसी तन्मयता से भोजन करने लगे। निश्चय ही उनको पूड़ी-कचौड़ी तथा अन्य पकवान बेहद पसन्द थे, लेकिन किसी की पाक-कला की प्रशंसा के कायल वह कभी नहीं रहे, जिसके लिए उनकी पत्नी सदा तरसती रहीं। गप-शप भी उन्हें अच्छा लगता था और मुख्तार होने के नाते बातचीत के अन्य कई तरीके भी आते थे, लेकिन सीतानाथ के सामने वह अमूमन श्रोता की ही भूमिका में रहते थे। फिर इस समय वह क्यों असाधारण रूप से उत्साहित थे ?

विशेष कारण घंटों भयंकर दहशत का समय बिताने के बाद अप्रत्याशित रूप से एक सुरक्षित जगह पर पहुँचने से सम्बन्धित है। ट्रेन की दुर्घटना से बचना, टूटे हुए तार के खम्भे और रेल की पटरियाँ, भागती हुई शाम की वीरानगी। अनिश्चितता में सामान और महिलाओं के साथ पैदल यात्रा। क्या होता अगर नीलेश न मिलता ? तेज विपुल हवा में भी हृदय खोखला हो गया, ऑक्सीजन तथा अन्य सुखद मानवीय भावनाओं से खाली-सिर्फ अन्दर डर का एक कुआँ बनता गया। और यहाँ आकर ऐसा इत्मीनान आ गया है कि वे सभी सुखद भावनाएँ- खशी, उदारता आदि-असाधारण तेजी से हृदयस्थल को भरने के लिए लौट आई हैं. जैसे वायुशून्य जगह पर आस-पास की हवा दौड़ आती है।

ऐसी हालत में नीलेश पर उन्हें बड़ा लाइ आने लगा। बहुत खुश थे उस पर। कृतज्ञ थे उसके

प्रति। भोजन के बाद तप्ति-भरे आनन्द से इतने गद्गद हो गए कि एक बार ख्याल आया, अगर नीलेश जैसा दामाद मिल जाए तो कितना अच्छा हो। परन्तु यह सोचते ही उनके मन को आयात-सा लगा और वह चुप होकर पेशकार साहय से एक नए मुकदमे का लम्या वृत्तान्त सुनते रहे नींद से आँखें झपकने तक।

नीलेश इस समय तक बेहद दुःखी हो चुका था। हया गुम होने से उमस काफी बढ़ गई थी और वह बड़ी बुआ के मना करने पर भी छत पर पीपल के वृक्ष के नीचे बिछे पलंग पर निखहरे ही सो गया। साफ आकाश और इस पर टिमटिमाते तारे भी वह सुख और सुकून नहीं दे सके, जिसमें हृदय जुगनुओं की तरह जग-मग होने लगता है। सबकुछ भारी-भारी और अस्वाभाविक लग रहा था उसे-वह खुशी जो नम्रता तथा उसके परिवारजनों को एक सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने से मिली थी और वह कृतज्ञता भाव भी जो फूफा के घर में उनके स्वागत-सत्कार से उत्पन्न हुआ।

ऐसा क्यों है ? यह ऊपर देख रहा है लेकिन अनन्त आकाश तो जैसे उसके अन्दर ही फैला है, उसके दिमाग में और दिल में भी, जिसमें वह असहाय-सा भटक रहा है सबकुछ जानने के लिए। और बहुत देर बाद, जब दोनों आँखों के किंचित ऊपर माये के केन्द्र में एक दर्द उभर आया था, उसके फूफा का चेहरा सामने नाचने लगा तभी उसे याद आया कि ऐसा कुछ घटित हो गया है, जिसकी उसने कभी कल्पना ही नहीं की थी। दाढ़ी तो अनिवार्य रूप से सफाचट रही, परन्तु दो दिन पर नाई से छँटवाकर एक विचित्र चौड़ी, कुन्द और भोवरी मूँछ का अस्तित्व सर्वदा विद्यमान रहा। अब लॉर्ड कर्जन की तरह, बूढ़े साफ-सुथरे चेहरे पर उभरनेवाली भुल-भुल मुस्कुराहट पर सहसा विश्वास कैसे होता ? आश्चर्य है कि सिर पर बाल पहले जैसे खूटी की तरह छोटे-छोटे नहीं रहे और ललाट के ऊपर दाहिनी तरफ माँग भी दिखाई दे रही है एक सुदूर पर्वतीय सड़क की तरह।

अपने फूफा का ऐसा रूप उसने पहली बार ही देखा। कपड़े भी साफ-सुथरे इस्तरी किए हुए, भीनी-भीनी सुगन्ध छोड़ते हुए। रतनसिंह ने उन्हें अचम्भे से कई बार देखा था, परन्तु सारा किस्सा जानने और अनुभवी होने के कारण उन्हें सबकुछ समझने में देर नहीं लगी। और पहला उत्साह नीचे बैठ जाने पर नीलेश भी अब साफ-साफ देख सकता है कि उस कमसिन और नासमझ द्वितीय पली को आकर्षित करने के लिए, उस पर अपनी मर्दानगी सिद्ध करने के लिए वह नौजवान, स्मार्ट छैला बनने की कोशिश कर रहे हैं, जो अपनी बड़ी सौत, जिसे वह जीजी कहती है, के अनुशासन एवं नियन्त्रण में फिरकी की तरह नाचती हुई घर-गृहस्थी को सँभालती है। फिर भी उसकी जीजी का मुँह फूल क्यों जाता है, जब वह सामने आती है? शादी तो उन्होंने ही शौक से कराई, अब क्या यह महसूस कर हृदय भूसी की तरह जल रहा है कि जो जमीन उनकी थी, जिस पर उनका अधिकार था, वह कोई अन्य ही हथियाकर उन्हें बेदखल कर रहा है ?

नीलेश यह सब सोचकर अपने को बहुत छोटा महसूस करने लगा। और तब उसे नम्रता की दहशत और आतंक से स्याह आँखें याद आईं। जब वह हुलासो देवी के साथ पीपल के नीचे आई तब वैसा भाव था और उस समय भी जब वह नीचे खाना परोसने आई थी। क्या यहाँ की पारिवारिक परिस्थितियों का उस पर कोई असर पड़ा है? क्या वह शाबासी लूटने के लिए उन्हें ले आया था अपने फूफा के घर ? अथवा शुद्ध कर्त्तव्य-भाव से ? कारण जो भी हो, हर हालत में यह कार्य अनुचित था, जिसने अवश्य ही नम्रता के कोमल दिल तथा स्वाभिमान को ठेस पहुँचाई है, उसे अपमानित किया है। वह अपनी समस्त शक्ति से नम्रता की रक्षा, उसको आश्वस्त एवं निश्चिन्त करने के लिए आतुर हो उठा। लेकिन कैसे ?

एक यही उपाय था कि जल्दी-से-जल्दी इस घर का परित्याग कर दिया जाए। क्या इसी समय ? लेकिन यह कैसे सम्भव है ? फिर कल सुबह अवश्य हर हालत में। इस निश्चय पर पहुँचते ही उसका तनाव कम होता गया और उसका शरीर भी ढीला पड़ने लगा। आकाश में सामने बादल का एक

यही बादल अपने साथ कुछ हवा भी ले आया है. जिससे पीपल के पत्ते खड़खड़ाकर अपने असख्य टुकड़ा पता नहीं कहाँ से आ गया था जिसके अन्दर बिजली शमशीर की तरह चमक रही थी। शायद पंखों से शीतलता प्रवाहित कर रहे हैं। कहीं किरकिचही बोल उठी। उसकी पलकें भारी होने लगीं और वह बाई करवट सिकुड़कर नींद के आगोश में चला गया।

38

फिर भी एक पल के लिए न चाहते हुए उन्हें तीन दिन और रुकना पड़ा। अफवाह यह थी कि टूटी हुई रेल पटरियाँ दुरुस्त कर दी गई हैं और टेन फिर चलनेवाली है। नीलेश दूसरे दिन सुबह ही पता लगाने के लिए स्टेशन चला गया। आशा में वहाँ बहत से मुसाफिर भी इकटठे थे। कर्ड किस्म की खबरें वहाँ तैर रही थीं, चीराई हवा की तरह, जिसके प्रवाह में खेत में खड़ी फसलें विभिन्न दिशाओं में झुकती चली जाती हैं। मुसाफिरों के चेहरों पर कभी हवाइयाँ उड़ने लगतीं और आँखों में स्याही गहरी हो जाती। लेकिन कुछ ही देर बाद वे खुश होकर एक-दूसरे की ओर चमकती दृष्टि ते देखते। उनके होंठ मुस्कुराहट में कॉप-काँप जाते और वे उत्साह में बच्चों की तरह चहकने लगते।

एक बार तो यह अफवाह वहाँ एकत्रित मुसाफिरों के बीच तेजी से फैली कि अंग्रेज फौज रेल की पटरियों को जोड़ते हुए गाजीपुर आ रही है और लोग जो भी सामने आएगा-गोलियों ते भून दिए जाएँगे। असहाय मुसाफिरों के बीच बड़ी दहशत फैली। कई पुरुष उठ खड़े हुए और भय की भड़कीली आवाज में अपने परिवारजनों से होंठों के बीच बुड़-बुड़ कहने लगे, "उठो, जल्दी करो..."

चार-पाँच लोग स्टेशन मास्टर के कमरे में जा पहुँचे, जहाँ एक अधेड़ व्यक्ति अपनी ढीली-ढाली वर्दी में मेज के सामने कुर्सी पर बैठा अपनी टाँगें हिला रहा था।

"क्यों साहब, ट्रेन आ रही है?"

"सिगनल की घंटी सुनी आपने?" स्टेशन मास्टर ने धीमे स्वर में कहा।

"यही तो पूछा जा रहा है आपसे, कब सिगनल होगा?"

"आप तो जानते ही हैं कि कब सिगनल होता है!

"तो हम यहाँ बैठकर इन्तजार करें या जाएँ यहाँ से ?"

स्टेशन मास्टर कुछ क्षणों तक चुपचाप नीचे फर्श को देखता रहा। इस बीच शायद मुस्कुराया भी हो। फिर इसी मुद्रा में उसके होंठों के बीच से आवाज फूटी :

"मैं कई लोगों को जवाब दे चुका हूँ, मगर आप लोग बार-बार आते हैं, वही सवाल पूछते हैं। रेलवे डिपार्टमेन्ट की गलती से यह सब हुआ होता तो कभी का ठीक भी हो गया होता, मगर जानते हैं जनाब, देश में आग लगी है, लपटें उठ रही हैं, इस तरह का वाकया रोज हो रहा है, हर जगह हो रहा है, कहाँ-कहाँ रोकेंगे आप ? यहाँ क्या रखा है, देहातों में जाइए, बनारस, गाजीपुर, बलिया, पूरा बिहार उठ खड़ा हुआ है। यहाँ में भी बैठा हूँ, सरकारी ड्यूटी बजा रहा हूँ, मगर असलियत यह है जनाब, कि जितने अँधेरे में आप हैं, उतने ही अँधेरे में मैं भी हूँ..."

"साहब, सुनते हैं अंग्रेज फौज लाइन बनाती हुई आ रही है... गोलियाँ चलेंगी।" क़ाज़

"हो सकता है... अभी राज तो उन्हीं का है..."

"तो जाएँ हम लोग, किसी खतरे की बात तो मालूम ही होगी आपको ?"

"मैंने कह दिया, मैं भी अँधेरे में ही हूँ। जाना चाहते हों तो जाइए, रहना चाहते हो तो रहिए। सिर्फ यही कह सकता हूँ मैं, जब टेन आनेवाली होगी और क्लीयरेन्स मिल जाएगा तो रात हो या

दिन, इस स्टेशन पर सिगनल की घंटी टनटना दी जाएगी।"

नीलेश लगातार तीन दिन तक स्टेशन पर आता रहा और मुसाफिरों की बढ़ती-घटती भीड़ के साथ खबरों के झूले पर ऊपर-नीचे झूलता रहा। उसकी बुआ ही बार-बार मना कर रही थीं, 'गढ़ी नदी में नाय की यात्रा ठीक न होगी, कोई पॉतर में थोड़े ही हैं यहाँ, दो-चार दिन इन्तजार करने में हर्ज क्या है, ट्रेन तो जरूर ही चलेगी।' लेकिन तीसरे दिन जब यह हल्ला हुआ कि गाँवों की क्रान्तिकारी जनता का एक बड़ा जुलूस स्टेशन की तरफ कूच कर गया है तो कुछ ही देर में प्लेटफार्म खाली हो गया। और

रतनसिंह ने तब यह ऐलान कर दिया कि अगले दिन सुबह यह नाव से ही प्रस्थान कर जाएँगे, चाहे इसका नतीजा जो भी हो, क्योंकि अगले हफ्ते उनके कुछ जरूरी मुकदमों की तारीखें हैं।

नीलेश के फूफा ने अपने मकान के नीचे दाहिने कोने की एक कोठरी में रहनेवाले पहलवान किस्म के छः फुटे रामचरित्तर दुबे को उसके साथ भाव तै करने के लिए घाट पर भेज दिया। कोठरी रहने के लिए मुफ्त दे दी गई थी रामचरित्तर को, जो इसका बड़ा एहसान मानता था और एक सेठ के यहाँ दरबानी करने के पश्चात शाम को छुट्टी होने पर इस घर के लिए भी जरूरी दौड़-धूप कर दिया करता। वह हँसमुख था और विनम्र भी, और इसलिए भी लोग उससे प्रसन्न रहते कि शादी की एक दावत में 80 बड़े-बड़े लड्डू खाने का रिकॉर्ड कायम किया था कभी उसने। खैर, उसका जाना बड़ा उपयोगी रहा, क्योंकि जब प्रत्येक नाविक इस बरसात और बढ़ी नदी में बलिया जाने से मना कर रहा था, उसने एक ऐसे मल्लाह को ढूँढ़ निकाला और समझा-बुझाकर तथा अधिक भाड़ा का वादा करके मना लिया जो पूर्व परिचित और उसके गाँव गौसपुर का ही रहनेवाला था।

मौसम खुशमुना है इस अर्थ में कि तेज पुरुवाई में नीले आकाश में हल्के-हल्के बादल दौड़किया कर रहे हैं और चटक धूप निकल आई है। रामचरित्तर दुबे भी आया है घाट पर उन्हें चढ़ाने। नाव बड़ी है मगर बहुत बड़ी नहीं। नदी फैल गई है आसमान की तरह ही उस पार सुदूर, अछोर और दाएँ-बाएँ भी। और सामने बलुई जमीन की लीलती हुई पक्के घाट की सीढ़ियाँ चढ़ने को आतुर बहुत नजदीक चली आई है। उसका मटमैला जल उच्छ्वसित होता है, हलकता है, उछलता है और कभी शान्त होकर गम्भीरता से मुस्कुराने लगता है।

नदी का लहराता और हुँकारता-सा सागर रूप सामने देखकर बड़ा-से-बड़ा हिम्मती, धीर-गम्भीर और उदंड व्यक्ति सहम जाता है। धड़कन तेज हो जाती है, भीतर दलकी समा जाती है, दिल और दिमाग ऊँची तरंगों के एहसास में ऊपर-नीचे होने लगता है। कैसी चुनौती देती है यह नदी ? मृत्यु एवं विनाश की ? लेकिन सबसे निश्चित है रतनसिंह की पत्नी, जिसने आते ही आँचल के भीतर हाथ जोड़ते हुए आँखें मूंदकर और माथा झुकाकर मन-ही-मन प्रार्थना की, 'जै हो गंगा मैया, भूल-चूक माफ करीं, मर्द लोग तो सोचते-समझते नहीं, बिटिया भी निर्बुद्धि है-सबके रक्षा करीं हे गंगा मैया !'

रतनसिंह ने रामचरित्तर दुबे के हाथ पर दस रुपए, मना करने पर भी, रखने के बाद माथा नवाकर बिदाई दी। नाविक शोभलाल ने रामचरित्तर दुबे की मदद से नाव को एकदम किनारे खींचकर, झुकाकर और नाव में रखे एक पटरे को सीढ़ी की तरह लगाकर सामान और यात्रियों को अन्दर चढ़ाया। झोला-झक्कड़ उसका भी था और उसने सामान तथा मुसाफिरों को दोनों ओर बराबर-बराबर रखने और स्वयं भी वैसे ही बैठने की हिदायत दे दी। रतनसिंह ने सन्तुलन की सुविचारित व्याख्या करके फॉर्मूला भी प्रस्तुत कर दिया अर्थात ट्रंक इधर तो होलडाल उधर, एक पुरुष-महिला इधर तो एक पुरुष-महिला उधर।

"हाँ, बूढ़ी पार्टी एक ओर, नौजवान पार्टी दूसरी ओर। फिर रास्ते-भर खूब गप्पें होंगी..." उन्होंने हल्का, झेंप-भरा ठहाका लगाया।

लेकिन उनकी खूबसूरत, आत्म-सजग पत्नी का चेहरा ईगुर की तरह लाल हो गया। उसने सहारा

देते अपने पति के हाथ को झटक दिया और नीचे मुँह करके धीमे स्वर में बोली:

"बिटटी, तुम मेरे पास आओ...।"

"नहीं, मैं इधर ही ठीक हूँ.."

पहले से ही बैठी नम्रता ने अपनी गर्दन बाईं ओर घुमा ली धीरे-धीरे सामने नदी और उसका जल है। यह अपनी आँखों के विस्तार, चमक एवं रंगों से जैसे नदी को माप रही हो। या चुनौती ? लेकिन इस समय उसके दिमाग में अपने माँ-बाप के जीवन के कुछ चित्र गतिमान हैं। यह बच्ची नहीं रही और स्त्री के रूप में अपनी माँ की सुन्दरता, समझदारी, कर्मठता और उदारता से अवगत है। इससे भी कि उसके पिता अपनी पत्नी पर बेहद निर्भर हैं, एक पल को भी अलग नहीं रहना चाहते और छोटी-से-छोटी बात के लिए भी पुकार, हँकार और स्वीकार के अभ्यस्त ।

अपनी माँ की दुलरुआ बेटी तो वह खुद है, इससे कुछ बिगड़-सी गई थी, इसलिए इस एहसास हे कि उसे नगण्य बात में भी सर्वाधिक महत्त्व नहीं मिल रहा है अथवा वे दोनों एक-दूसरे की निकटता के लिए सदा बेचैन एवं एकान्त मिलनातुर रहते हैं, वह अनजान ईर्ष्या से जलकर माँ से उलझ जाती और इस तरह लड़ने लगती जैसे हवा से। एक बार उसने कह दिया खाने और सोने को छोड़ और क्या आता है तुम्हें, तो माँ का चेहरा फक पड़ गया और वह आन्तरिक आतंक की दब्बू प्रखरता से बेटी को देर तक देखती रह गई जैसे प्रथम बार समझ में आया हो कि लड़की तो बड़ी हो गई है, उसी की तरह एक औरत !

"ठीक है, जो चाहे करो... पाल-पोसकर इसीलिए बड़ा किया है तुम्हें...।" वह रुदन को रोकने की कोशिश में आँखों पर आँचल रखकर वहाँ से चली गई थी।

उस दिन से नम्रता की माँ अपने पति के प्रति बात-व्यवहार में बेहद सतर्क और सावधान हो गई। और नम्रता भी, बीतते दिनों के साथ, उपायहीन, विकासमान शरीर से मानसिक सन्तुलन स्थापित करने की व्याकुलता के दौरान मिली समझदारी के नए ख्यालों से हिल-सी गई। क्या होगा जब माता-पिता एक-दूसरे को प्यार न करें ? एक-दूसरे से अलग रहें और आपस में झगड़ते रहें ? इस कल्पना से उसे अरक्षा, असहायता एवं शक्तिहीनता का अनुभव होने लगा। वह धिक्कार उठी अपने को ! नारी स्वाभिमान के कितना विपरीत था उसका यह सोच ? यह सँभलकर मुड़ गई आत्म-सजगता के स्वतन्त्र, सकारात्मक

मार्ग पर, धीरे-धीरे प्रसन्नतापूर्वक प्यार और कोमलता से उनसे अपने को अलगाती। और उन्हें परस्पर अपनी पसन्द की जिन्दगी जीने का अबाध जनतान्त्रिक अधिकार देती हुई वह अपने माँ-बाप के दाम्पत्य प्यार को आदर देना और उससे शक्ति ग्रहण करना सीख गई, जिसके विविध खुशनुमा रंगों से उसने अपने अन्तर को सजाया और पुष्ट किया और जिसकी वजह से उनकी पुरातन, यथास्थितिवादी विचार एवं कार्य शैली को स्पष्टतापूर्वक अस्वीकार भी कर सकी वह।

नाविक शोभलाल ने लंगर खोलकर नाव को हाथ से पानी में ठेला फिर स्वयं सवार होकर डाँड़ की मदद से उसे किनारे से दूर ले जाने लगा। परन्तु गर्मी ऋतु की तरह नदी दूर तक छिछली नहीं थी और शीघ्र ही अथाह गहराई आ गई। शोभलाल के साथ उसका तेरह-चौदह वर्षीय लड़का ननकुआ भी था। वे दोनों पतवार सँभालकर नौका को बीच में ले जाने लगे। बलिया पूरब दिशा में या और नदी भी पूरब की ओर जा रही थी, लेकिन बीच-बीच में पुरुया हवा झकझोरने लगती। हल्के सफेद बादल भी हवा की तरह तेजी से पूरब से पश्चिम की तरफ ही अग्रसर थे. जो कभी सूरज को ढक लेते और जब मुक्त कर देते तो कुछ दूरी पर बीच मझधार में एक लम्बी-सी पटटी स्वर्णिम प्रकाश में चमक उठती. जिसमें रेंगती. उछलती. नाचती जल लहरियों की गतिशीलता स्पष्ट नजर आने लगती।

"भाई, नाव को इधर ही रखो. बीच में तो काफी लहर है...।"

"बाबूजी, सब्र रखो। वह तुम्हें वहाँ नहीं ले जा रहा है। वह तुम्हें सड़क पर डाल रहा है। बाढ़ आई हुई है, आजकल किनारा ठीक नहीं है, बाबूजी... कहीं पेड़ हैं... घर, पहाड़, चबूतरे... चिंता मत करो, सरकार सबको घाट पार करा देगी।"

रतनसिंह ने आगे कुछ न बोलकर सहमकर विहंगम दृष्टि से जल को देखा फिर मल्लाह, तव पत्नी तथा अन्त में नीलेश और नम्रता को जो ठीक सामने दसरी तरफ एक-दूसरे से यथासम्पन दूरी बनाए हुए बैठे थे। तेज हवा में धांनी साड़ी को सावधानी और मजबूती से समेटे नम्रता अपनी लम्बी और मोहक गर्दन मोड़े जल और माँ-बाप को स्पर्श करनेवाली अनन्त उजली जगह, स्पेस के बीच किसी अनजान शून्य को निहारे जा रही थी।

नदी तट पर आने के बाद से ही नीलेश ने उसकी तरफ कई बार सुखद आश्चर्य से देखा है, फिर भी समझ नहीं सका कि फूफा के घर पर उसकी आँखों में भय एवं आतंक की जो स्याही फैली थी, अब क्यों नहीं है। वहाँ नम्रता दवी, सिकुड़ी और असहाय-सी लग रही थी, परन्तु यहाँ तो वैसा कुछ भी नहीं है, जैसे उसकी गरिमा वापस आ गई हो... वही किसी ओर न देखता प्यारा-सा स्वाभिमानी चेहरा और अपने तेजधार आकर्षण से अनभिज्ञ आँखें जिनके लाल डोरे और श्वेत-स्वच्छ फैलाव अब स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे हैं। फूफा के घर उसको देखकर वह दुःखी हो उठा था और उसकी प्रसन्नता के लिए कुछ भी करने को तैयार था। मगर क्या सचमुच नम्रता इस समय प्रसन्न है ? क्यों ? यह सब वह नहीं जानता। और जानकर भी क्या करेगा? परन्तु वह समझ नहीं सका कि धूप में चमकती जल की स्वर्णिम

पट्टी को देखकर उसे क्यों महसूस हुआ कि उसका हृदय ही पिघलकर तरंगों में आगे बढ़ रहा है-कहाँ, किधर, किसकी तरफ ?

नम्रता ने कल्पना भी नहीं की थी कि पढ़े-लिखे, खाते-पीते परिवार में उसे करीब साठ वर्ष के एक बूढ़े व्यक्ति से व्याही गई चौदह वर्षीय लड़की से मुलाकात होगी। हुलासो देवी अशिक्षित, लड़कबुद्धि, बेहद सीधी और मेहनती थी, जिसे उसके पति ने बारह वर्ष की अवस्था में ही बड़ी-बूढी पत्नी के सुपुर्द कर दिया, जिससे वह शऊर, अन्य तौर-तरीके तथा दाम्पत्य प्रेम के जरूरी गुर सीखे और सन्तान का जन्म हो। बुजुर्ग पत्नी ने अनुभवी पड़ोसिनों तथा दाइयों की सलाह से पति और सौत, दोनों की ताकत और उत्पादन क्षमता वाले खाद्य पदार्थ खूब खिलाए-पिलाए, अचूक तरीके भी बताए गए, मगर दो वर्ष के प्रयास के बाद भी परिणाम नगण्य रहा तो 'बाँझ-बाँझ' की फुसफुसाहट होने लगी।

जब नम्रता आई, बड़ी पत्नी 'जीजी' से क्रूर सीत बन चुकी थी। हमेशा फटकार, व्यंग्य और ताने। हुलासो देवी के लिए असहाय मायके तथा असमर्थ पति की वजह से स्वावलम्बी, दबंग, धूर्त और मुँहतोड़ विरोधी होने की भी गुंजाइश नहीं थी। वह सबेरे से रात तक बुजुर्गियत का अभिनय करती और नौकरानी की तरह दौड़ती रहती। नम्रता ने यह सब देखा, कुछ सुना और बहुत-कुछ महसूस किया। क्या स्त्री होना यही है? वह बेहद डर गई थी। बहुत छोटा महसूस करने लगी थी अपने को वह-इस हद तक कि चाहकर भी वह गुस्सा नहीं कर पा रही थी। प्रतिरोध में एक शब्द नहीं कह पाई वह किसी से भी।

बढ़ी हुई नदी में नौका-यात्रा के खतरों से भी आगाह किया गया था। नीलेश के फूफा ने बार-बार कहा कि वे लोग कुछ दिन और रुक जाएँ, ट्रेन न भी मिली तो कोई दूसरा इन्तजाम किया जाएगा, परन्तु नम्रता को वहाँ का एक-एक पल भय-आतंक से भरा सर्वथा असहनीय लग रहा था। और उसी की जिद्द से उसके माँ-बाप ने भी नाव से सफर करना स्वीकार कर लिया।

सचमुच घाट पर पहुँचते ही उन्मत्त नदी में कोई भी नाव तेज धार में बहते हुए पत्ते की तरह ही लगी थी उन्हें। आशंकाएँ और बढ़ गई थीं। सिर्फ नम्रता ही ऐसी थी उनमें जो एक भय से दूसरे किस्म के भय क्षेत्र में आई थी। और यह परिवर्तन उसको क्या अनोखी राहत नहीं दे गया था ?

उसके दिल और दिमाग पर एक विशेष प्रकार का जो भारी दबाव था, यह कैसे हट गया और यह अपने को क्यों हल्का महसूस कर रही थी स्वाभाविकता की सीमा तक? क्या विकराल, तरंगित सरिता को देखकर उत्फुल्ल थी वह जिससे उसकी आँखों की प्राकृतिक चमक लीट आई? और क्या भिन्न प्रकार का भय किसी पर्ववर्ती भय के प्रभाव को खत्म करके सचमुच आशा का संचार करता है अथवा यह क्षणिक भुलावा मात्र है ?

वस्तुतः इस समय भी उसके दिमाग में हलासो देवी और उसकी समस्याएँ ही थीं लेकिन क्रोध और प्रतिशोध की भावना के साथ। वे समस्याएँ अब भारतीय नारी से जुड़ गई थीं और वह अपने सोच में उन विचारों और संकल्पों को ढालने की कोशिश कर रही थी. जिनसे अन्याय और उत्पीडन का मुकाबला किया जा सकता है। निश्चय ही उपायहीन भय, आतंक, अपमान एवं अवसाद के तीन दिवसीय निष्क्रिय और दयनीय अनुभव की प्रतिक्रिया का ही परिणाम है यह। और वह कल्पना में पुरातन बज्र अन्धविश्वासियों तथा उत्पीडकों को अकाट्य जवाब देकर उनके किलों को ध्वस्त कर रही थी। इससे सन्तुष्ट और खुश भी थी वह कि क्रोध और प्रतिरोध करने की उसकी क्षमता नष्ट नहीं हई है. अब भी विद्यमान है उसके अन्दर और पहले से अधिक जैसे कुछ देर के लिए अपने सन्न अंग को फिर हरकत करता महसूस कर कोई यह सोचकर खुश हो जाए कि उस पर लकवा नहीं पड़ा है।

हवा कुछ थम गई थी और दिशा-नियन्त्रित नौका नदी की अनुकूल धार के सहारे ही आराम से आगे बढ़ रही थी। लेकिन इससे बादल एक जगह इकट्ठे होकर गाढ़े होने लगे। रतनसिंह ने

दो-तीन बार ऊपर चिन्ता से देखकर पूछा : "क्यों भाई, बारिश, तूफान वगैरह का तो नहीं अन्देशा है?"

"बाबूजी, घबराएँ नहीं, कुछ नहीं होगा। और नहीं मानेंगे, बरसेंगे तो इन्तजाम है, बाबूजी... दो त्रिपाल दोनों ओर के सामान, आदमी जन के खातिर मजे के हैं।"

"हाँ जी, कैसा तूफान ? आसमान तो नीला साफ है, बस एक जगह बादल कुछ... जहाँ हवा चली तो वह भी साफ...।"

रतनसिंह के ये शब्द आत्म-आश्वासन हेतु और नाविक शोभलाल से पुनः पुष्टि प्राप्त करने के लिए भी कहे गए थे, परन्तु मौन प्रत्युत्तर के बाद उन्होंने एक सूखी-सी हँसी के साथ कुछ झुककर पत्नी से कहा:

"नहीं आएगा न कोई तूफान वूफान ? मौसम के बारे में तुम्हारा अन्दाजा तो बड़ा सही होता है...?"

रतनसिंह काल्पनिक आशंकाओं से बेहद डर गए थे। वैसे अनिश्चितता के कुछ ठोस कारण भी थे। शहर और गाजीपुर घाट स्टेशन कभी पीछे छूट गया था और निर्जनता में जहाँ नदी का फैलाव बढ़कर और भयावह हो गया था, उसकी विनाशलीला भी नजर आने लगी। किनारे अघडूबे झाड़ी-झंखाड़... एक बहती हुई पलानी और गाय के छोटे बछड़े का शव... एक वृक्ष की जल-स्पर्श करती लम्बी मजबूत डाली और उस पर बैठा और प्रेत की तरह घूरता कोई लँगोटधारी अधेड़ व्यक्ति... लहरों में नाचता काठ का पटरा और टूटा छाता...

नम्रता का क्रोध कम होकर घिस गया था। उसकी उपयोगिता अब नहीं रही, नारी जाति के उत्पीड़न और अपमान की कल्पना में पर्याप्त वैचारिक प्रतिशोध ले चुकी थी वह। इससे उसे अपने भावी जीवन

के नए और दृढ़ संकल्प का सन्तोष भी मिल गया था-हुलासो देवी अब इसी सकारात्मक रूप में उसके दिल और दिमाग में शेष रह गई थी।

नया संकल्प ? क्या था वह ? उसके साथ ही नीलेश का चेहरा सामने उभर आया। वह उच्छ्वसित हो गई। कैसे मानसिक संकट से घिर गई थी वह, जब नीलेश का खास ख्याल नहीं

आया उसे आँखें मैंद लीं उसने और नीलेश की यादों में भटकने के लिए छोड़ दिया अपने को निर्वन्ध । लड़कपन में कितना शैतान था। अकेले में डरा देता या नाक मल देता और जब रोने लगती तो मनाने के लिए सामने झुककर कहता, लो मारो मुझे। वह थप्पड़ और मुक्का दोनों ही चलाती। लेकिन बड़े होने पर कितना गम्भीर हो गया। लम्बा मजबूत, चुप्पा, विचारवान। फिर वाहर चाले कमरे के एकान्त में उसकी हरकत... बाद में मन्दिर में मिलना...कितना दुःखी और उदास या वह। पढ़ने के लिए पहली बार जाते समय किस तरह उसके घर की तरफ बार-बार उदास नजरों से देखते हुए स्टेशन प्रस्थान कर गया था। और रेलवे पटरी के बगल में सिर पर भारी सामान लेकर आगे बढ़ता उसका टेढ़ा डगमगाता शरीर...उसे असह्य हो गया और सिर हिलाती बुदबुदा उठी वह, 'नहीं-नहीं...'

"क्या हुआ बिट्टी, सपना देख रही हो ?"

उसकी माँ ने घबराई आवाज में कहा, "आ जाओ इधर, मेरी गोद में सिर रखकर सो जाओ... थक गई हो...।"

"नहीं कुछ तो नहीं है...मैं ठीक हूँ, जगी हूँ...।" चींककर आँख खोलकर धीमे स्वर में बोली वह। बहुत संकुचित थी अपने अन्दर और तिरछे-मुँह शर्मीली, कटी-कटी दृष्टि से नीचे नाव के खोखल में देखने लगी।

"आओगी इधर... मैं उधर चला जाऊँगा...।"

"आप लोग परेशान क्यों हो गए?" उसने अपनी खीझ को दबाने की कोशिश करके किंचित कंपित धीमी आवाज में अपने पिता की ओर देखकर कहा।

"परेशानी की बात नहीं... तुम्हें नींद आ रही है न?"

नम्रता कुछ नहीं बोली, जिससे रतनसिंह का मुँह चोखा-सा बन गया और उन्होंने सिकुड़े होंठों में हँसने की कोशिश करते हुए बारी-बारी पत्नी, मल्लाह और नीलेश की ओर देखा।

उनके बीच फिर चुप्पी छा गई। नौका धार के सहारे गतिमान थी। लहरें हर जगह समान नहीं थीं, कहीं उद्वेलित होकर अधिक उठने लगतीं तो उतार के समय नाव पानी में अधिक धँस जाती। बीच-बीच में प्रवाह की कल-कल ध्वनि सुनाई दे रही थी। हवा फिर तेज हो गई थी और आकाश के गाढ़े बादल छूट गए थे। धूप भी निकल आई थी और उसकी तीव्र ऊष्मा एवं जल-स्पर्श से शीतल वायु का मिलन एक सुखद अनुभव दे रहा था। ऊपर दूर चीलें मँडरा रही थीं, जिनमें से कोई पता नहीं किधर से नीचे आकर नदी के समानान्तर उड़ती हुई जल में झपट्टा मारकर फिर ऊँचाई में गायब हो जाती।

एक बढ़ी हुई समुद्रीय नदी के मध्य नौका से सफर करनेवाले वे चारों ही अपनी असहायावस्था से अवगत थे। अनजान दहशत से वे देर तक सरिता से आँखें नहीं मिला पा रहे थे और कभी देखते भी तो हवाई दृष्टि से। दूर कोई अन्य नौका दृष्टिगोचर होने पर भी उन्हें जैसे अपनी खोई हिम्मत मिल जाती। भुलावे के अन्य विचार एवं घटनाएँ भी थीं, जिनमें खोकर समय काटने की कोशिश कर रहे थे वे। रतनसिंह की पत्नी लगातार मन-ही-मन 'गंगा मैया, गंगा मैया' जप रही थी और वह स्वयं साहस प्राप्त करने के लिए उस घटना पर विस्तार से सोचने की कोशिश करते जब उन्होंने एक तीर्थ-स्थान पर बीवी के पीछे पड़े एक गुंडे को पीटा था। और नीलेश इस स्थिति का डटकर मुकाबला एक अशुभ घटना के शुभ परिणाम की कल्पना से कर रहा था कि किस तरह यह नाव दुर्घटनाग्रस्त हो जाती है और उस जैसा कुशल तैराक उन चारों को बचाकर किनारे पहुँचाने में सफल हो जाता है !

नम्रता की हालत कुछ अलग है। अनेक तरह के द्वन्द्व हैं उसके भीतर। एक स्तर पर वह अपने से लड़ रही है निजी स्वतन्त्र एवं नूतन व्यक्तित्व के लिए तथा दूसरे स्तर पर समाज की जड़ स्थितियों

से सम्पूर्ण नारी जाति की अस्मिता और गरिमा के लिए। उसके अन्दर एक आँधी की शुरुआत पहले ही हो चुकी थी, परन्तु जब से नीलेश नई स्थितियों में उससे फिर मिला है और साथ ही हुलासो देवी की घुटन और उत्पीडन-भरी जिन्दगी देखने को मिली है. वही आँधी झकझोर रही है. और एक स्पष्ट क्रियात्मक बिन्दु पर ले जा रही है उसे टूटे तार और उखड़ी रेल पटरियों के दिन से आज तक के आतंक-भरे माहौल में नीलेश कितना निकट आ गया है उसके जैसे अँधेरी दिशाहीन समुद्री यात्रा में कोई प्रकाश स्तम्भ। इसीलिए अब उसे ऊँची-ऊँची विनाशकारी लहरों तथा चकोहों का भय नहीं है और जब कभी होता भी है और दलकन के मारे साहस जवाब देने लगता है तो वह उस स्तम्भ की ओर बढ़ जाती है और उसका अन्तर जगर-

मगर आलोकित हो जाता है। "बाबूजी, कुछ आराम कर लें..." नाविक शोभलाल मुस्कुराते हुए बोला। सभी चौंक गए। रतनसिंह को आशंका हुई थी कि नाव में या आगे रास्ते में कोई गड़बड़ी है। उन्होंने वैसी ही आवाज में पूछा :

"यह क्या कह रहे हो, भाई ? कोई खतरा हो तो लौट चलो वापस....हमें सफर नहीं करना है.."

"खतरा की बात कहाँ कह रहा हूँ, बाबूजी ! एक ही जगह बैठे-बैठे देह अकड़ जाती है, किनारे पर घूम-टहल लेंगे, फुर्ती आ जाएगी। बड़ा आराम मिलेगा..." शोभलाल शिष्टतापूर्वक हँसने लगा। "नहीं भैया, कोई गड़बड़ी नहीं है तो सीधे चले चलो। रुकोगे तो देर होगी... हम जल्दी-से-जल्दी बलिया पहुँचना चाहते हैं।"

"बलिया कोई दूर थोड़े ही है बाबूजी। आप चिन्ता न करें, मैं समय से पहुंचा दूँगा आप लोगों को। बात यह है बाबूजी, गरीब आदमी हूँ... कुछ लोगों को लेकर बनारस गया था, पैसा मिला तो कुछ सौदा-सुलफ ले लिया। पास ही किनारे अपना गाँव है, और कोई काम नहीं है, बस सामान रखा और लौटा... तब तक आप लोग घूमिएगा-टहलिएगा, बोलिएगा-बतिआइएगा...।"

"कौन गाँव है..." रतनसिंह ने धीमे स्वर में पूछा।

"वह क्या है गौसपुर गाँव। वही अपना गाँव है बाबूजी। दरियाव बढ़कर बहुत पास पहुँच गया है। कुछ भी देरी नहीं होगी।"

"गौसपुर ? अरे वाह, किधर है ?" रतनसिंह ने चहकती आवाज में पूछा। वह पश्चिम दिशा में मुँह करके बैठे थे और शोभलाल के हाथ उठाकर दिखाने पर उन्होंने बाईं तरफ सिर पीछे घुमाकर उत्तर-पूर्व की दिशा में देखा। उनके चेहरे पर उत्साहपूर्ण उत्तेजना की रौनक दौड़ गई। बोले:

"यार, यह तो अच्छी याद दिलाई तुमने। इसी गाँव में मेरी मौसी का घर है। काफी बूढ़ी हो गई हैं। बहुत दिनों से बिस्तर पर हैं। हमारे प्रोग्राम में था कि लौटत वक्त एक दिन के लिए गौसपुर जाकर मौसी को देख लेंगे...उनका हाल-चाल मालूम करेंगे... बड़ा किया है उन्होंने हम लोगों के लिए..." -13 ए इस

"आपका नाम क्या है, बाबूजी..."

"मौसा का नाम तो जगदीश्वर सिंह था... उनका इन्तकाल हो गया...हाँ, उनके चार लड़के .. बड़े का नाम... भूल रहा हूँ.... हाँ हाँ याद आया... परमेश्वर सिंह.....

कोई दूर नहीं है, दुःख-परेशानी में दरवाजे पर कोर्ड नहीं जाएगा तो कब जाएगा बाबूजी ?" "चलिए बाबू साहब, मैं समझ गया... पहुँचा दूँगा, अच्छा मौका है... भेंट-मुलाकात कर लीजिए। " लिए भी।" रतनसिंह की पत्नी ने कहा।

हाँ. हाँ. चलिए. पाँच-दस मिनट के "क्या कहती हो ? पाँच-दस मिनट के लिए चलें ? मौसी तमको भी कितना मानती थीं ?" रतनसिंह ने लपलपाते भाव से अपनी पत्नी को देखते हुए पूछा।

"जिस दिन बलिया से इलाहाबाद चला गया था. दोपहर खाने के समय मैंने ही कहा था लौटानी

में, मौसीजी का हाल-चाल ले लिया जाए...और सभी लोग तो भूले ही हुए थे...." पत्नी ने मुँह फुलाकर दूसरी ओर देखते हुए कहा।

रतनसिंह ने आँखें नचाते हुए इस तरह मुँह बनाया जैसे भारी भूल हो गई हो और उत्साहपूर्वक समर्थन किया, "ठीक कहती हो, सोलहो आने दुरुस्त। मैं तो सचमुच भूल ही गया था। तो ठीक है, चलते हैं कुछ देर के लिए। नम्रता बेटी, तैयार हो जाओ... नानी-मौसी बीमार हैं, चलो देख आएँ कुछ देर के लिए...।"

इसके जवाब में नम्रता कुछ नहीं बोली। सिर उठाकर देखा भी नहीं। जब उसकी माँ ने भी आग्रह दुहराया तो नम्रता ने सुस्त स्वर में कहा:

"आप लोगों का जाना जरूरी है... मेरे सिर में दर्द है..."

रतनसिंह ने लड़की और पत्नी को दो बार देखा जैसे इन्तजार कर रहे हों कि देखें, अब कौन क्या कहता है। लेकिन शोभलाल उसके पहले ही बोल पड़ा :

"बाबू साहब, आप दोनों बेकत चलें... देर नहीं होगी! बिटिया, भैयाजी रहेंगे, ननकुआ भी यहीं रहेगा... डर तो कोई नहीं है... हाँ, नाव में सामान है, कोई रहे तो ठीक ही होगा।"

शोभलाल ने पहले ही नाव को किनारे की तरफ ले जाना शुरू कर दिया था। ननकुआ ने... रुआँसा मुँह बनाकर कहा, "नहीं, मैं भी चलूँगा..."

"तू यहीं रहेगा-समझ ले। निषाद का लड़का कब तक खेलेगा-कूदेगा ! अभी से नाव-डेंगी का काम नहीं सीखेगा तो क्या खाएगा रे ? कौन पूछेगा ? बलिया से लौटकर दो दिन खेल-कूद लेना, महतारी की गोदी में सो लेना। यहाँ भैयाजी, और बहनजी हैं, जो काम कहें शान्ति से कर देना...।"

कुछ देर में नाव किनारे आ लगी ठीक गाँव के सामने, जो वहाँ से एक किलोमीटर से कम दूरी पर ही था। वह गाँव का स्नान-घाट ही था, जहाँ सिर्फ दो स्नानार्थी थे, जिनमें से एक कार्य सम्पन्न करने के बाद सिर पर अँगोछा रखकर वापस जाने की तैयारी में था और दूसरा छाती तक पानी में खड़ा जल्दी-जल्दी डुबकी लगा रहा था।

शोभलाल ने नाव का लंगर लगा दिया था। नीलेश ने रतनसिंह और उसकी पत्नी के नीचे उतरने में मदद की-फिर स्वयं किनारे उस समय तक टहलता रहा, जब तक शोभलाल एक बड़ी-सी गठरी उतारकर और उसे पीठ पर लादकर अपने आतुर पुत्र को डाँटने के बाद वहाँ से बुजुर्ग दम्पती के साथ प्रस्थान नहीं कर गया।

जब वे दूर निकल गए तो ननकुआ को किनारे से निहारता छोड़ नीलेश नाव पर वापस आकर धीरे से बैठ गया। ननकुआ कुछ देर और वैसा ही खड़ा रहा और जब वे आँखों से ओझल हो गए तो वह पीछे गर्दन मोड़कर नीलेश को देखता हुआ हँसा, फिर पिनपिनाता हुआ गाँव की तरफ दौड़ पड़ा दोनों बाँहों को पहियों की तरह घुमाते हुए।

"अरे !" अचम्भे से नीलेश के मुँह से आवाज निकली, "वह तो भाग चला..."

नम्रता ने किंचित मुँह फेरकर देखा। फिर यथापूर्व विपरीत दिशा में विस्तृत जल को निहारने लगी। स्नानघाट भी अब निर्जन हो चुका था। वह भीतर-ही-भीतर कसमसा रही थी कि घूम जाए नीलेश की तरफ, उससे कुछ कहे, निवेदन करे। परन्तु जबान पर जैसे लकवा गिर गया हो, एक शब्द भी नहीं निकला उसके मुँह से। दृष्टि गंगा की धूप में चमकती लहरों पर ही जमी रही। सुदूर और निकट भी, काले-काले सूँस ऊपर आते और डूब जाते। एक पक्षी लगातार बोलता हुआ सिर के ऊपर पश्चिम से पूरब की तरफ निकल गया। एक भँवर में चींटे की तरह कोई छोटा-सा काला कीड़ा नाच रहा था। अधिक दूर नहीं, सामने एक घड़ियाल का मुँह पानी के ऊपर उभरकर गायब हो गया...

अचानक डर से नम्रता के शरीर में सन-सन होने लगा। अगर घडियाल पानी के अन्दर अन्दर चलकर नाव पर हमला कर दे... तब क्या करेगी वह ? लगा उसे कि नीलेश के बहत नजदीक आ गई है यह... उसके हृदय के पास... नहीं, नहीं, नीलेश का कोई नुकसान नहीं होने देगी... आगे आकर खद घड़ियाल को मुकाबला करेगी... नाव में रखा बाँस उसके मुँह के अन्दर दूस देगी... उसका मुट्ठी-बँधा दाहिना हाथ हवा में लहराया...

"नम्रता, क्या बात है. कोई तकलीफ हो तो किनारे टहल आओ न... मैं दूसरी तरफ देखता रहूँगा..."

इसके बाद होश नहीं रहा नम्रता को कि क्या हुआ। उसने विद्युत गति से घूमकर नीलेश का दाहिना हाथ अपने दोनों हाथों की मुट्ठी में बाँध और अपनी तरफ खींच छाती के ऊपर और ठोडी के नीचे घाँटी के पास चिपका लिया। नीलेश न पूछ सका और न कुछ कह सका। सोचने का कुछ भी समय नहीं दिया नम्रता ने। तत्काल अपने शरीर और मन के सौन्दर्य का न्यौछावर कर रही थी उत्स पर, जिसको वह चुपचाप गहराई से महसूस कर रहा था, ग्रहण कर रहा था।

नम्रता का पूरा शरीर सिर से पैर तक, बुरी तरह हिल और कॉप रहा था, जैसे कोई भूचाल आ गया हो। उसके भीतर उसका हृदय और भी तेजी से धड़क रहा था। मुट्ठी में बँधे उसके दोनों हाथ जैसे अलग काँप रहे थे। धानी साड़ी का उसका आँचल नीचे गिर गया था और उसके वक्ष लहरों की तरह उठ-गिर रहे थे। धारोंधार रो रही थी वह। उसका मुँह आँसुओं से भीग गया था और होंठ भी तर-बतर होकर स्याह-से नजर आ रहे थे। उसके मुँह से रुदन में लथपथ और लड़खड़ाते शब्द निकल रहे थे :

"मैं ऐसी बुरी नहीं हूँ... जो तुम समझते हो... कितने कीमती हो मेरे लिए... यह तुम नहीं जानते। मैं यही चाहती हूँ... तुम खुश रहो... सही-सलामत रहो... तुम्हारी खुशी के लिए क्या नहीं कर सकती मैं... मुझसे मिले बिना क्यों चले गए थे बनारस ? मुझे क्यों नहीं बताया था सबकुछ..."

उसके शब्दों पर नीलेश का खास ध्यान नहीं था... वह तो जैसे किसी उन्मत्त दरिया की तरंगों को शक्ति एवं गति देती हुई छोटी-छोटी बूँदों का मधुर संगीत सुन रहा था... अभिभूत, अचेत... कुछ देर बाद नम्रता का उफान खत्म हो गया तो उसे होश आया। उसने नीलेश का हाथ छोड़ दिया और सीधे होकर अपने आँचल को ठीक किया।

नीलेश अभी उन्हीं दुर्लभ क्षणों में ही खोया था। यही एक अनुभव इस संसार में जीवित रहने के लिए पर्याप्त है-ऐसा लगा उसे। शब्दों से उसकी व्याख्या नहीं हो सकती।

"तुम मेरा साथ दोगी, हमेशा ?" बहुत कोशिश करने पर उसके मुँह से निकला।

"हाँ... हमेशा....।" वह बोली।

पुरुषों में हम ट्रांसफ़र करते हैं, यह टिप्स और बर्थ कोर है, यह समय है, प्रसिद्धि के लिए

बहन को स्टोरिनेटिप्रोलाइन में मिला

39

करीब रात के सात बजे थे, जब रतनसिंह अपने परिवार तथा नीलेश के साथ बलिया के अस्पताल-घाट पहुँचे। लम्बी नौका यात्रा की शारीरिक अकड़न तथा थकान अथवा मंजिल पर पहुँचने की गम्भीरता की वजह से उनमें कोई उत्साह नहीं पैदा हुआ और न ही किसी के मुँह से कोई शब्द ही फूटा। हाँ, अब सबकुछ बीत चुका था-दरिया के सीमाहीन, लहराते जल के अनेक शब्दों एवं संकेतों का भय, गिरव कुछ दीव पकानाटा-तोड़ तीव्र छपाक, कभी डब-डब, कभी बुड़-बुड़, कभी

कल-कल और कभी लहरों की हहराहट। नम्रता रास्ते-भर एक अनोखी खुशी की गुदगुदी लिए बैठी रही, लेकिन अब उसका भी मुँह

छोटा पड़ गया और होंठ सूख गए थे। गीसपुर के गंगाघाट पर जो कुछ अनायास घटित हो गया था उसी का चित्र वह रास्ते भर देखती तथा उसका अर्थ समझने की कोशिश करती रही। कितनी मचल गई थी वह... एक ऐसे तरीके से. जिसकी सपने में भी कल्पना नहीं की थी. उसने नीलेश पर अपनी भावनाएँ प्रकट कर दी थीं। और बाद में होश आने पर क्यों शरमा गई थी अपनी हरकत पर! क्या

सबकुछ एकतरफा था. सिर्फ जमी की तरफ से ? नीलेश इतना निश्चेष्ट क्यों बैठा रहा ? उसने अपने हाथ से बाँहों से उँगलियों से अपनी आँखों से कोई प्रत्युत्तर क्यों नहीं दिया ? यह रुआँसी-सी हो गई थी एक अनजाने-से पश्चाताप भाव से बेहद संकुचित ! बचपन में जो चंचल और शरारती था, अब उसके प्रति इतना गम्भीर क्यों रहने लगा है? उसमें मामूली शिष्टाचार भी क्यों नहीं है? क्या उसके दर्द को जरा भी नहीं समझता यह ?

किन्त उसकी शंकाओं और सवालों की चुभन उस समय गायब हो गई. जब उसे यह ख्याल आया कि अन्त में गंगा की उन्मत्त लहरों के बीच नीलेश ने उससे सदा साथ देने का अनुरोध किया था। वह गुलाब की तरह खिल गई। तब कल्पना करने लगी कि नीलेश के हर कार्य में सहयोग देती हुई क्या-क्या कुर्बानियाँ करेगी वह-घर-परिवार तथा समाज के दकियानूस प्रतिवन्धों ओर ढकोसलों को झेलने, बरदाश्त करने तथा उनका प्रतिरोध करने का संकल्प। फिर तो उसके अन्दर तर्क-सम्मत क्रान्तिकारी विचारों की एक आँधी ही चलने लगी।

बलिया घाट निकट आते ही शहर की तरफ से प्रकाश के अनेक बिन्दु नजर आने लगे, जैसे जुगनू उड़ रहे हों। आखिर हम आ पहुँचे, इस एहसास से सबने एक-दूसरे की ओर देखा, जिसमें विद्यमान खुशी में दमक वाली आँच नहीं थी। उतरने पर जल्दी ही एक कुली मिल गया। आकाश साफ था और हवा में कोई दम नहीं। होंठ तो सूखे ही थे सबके, परन्तु जमीन पर कुछ कदम लँगड़ाकर चलने के पश्चात स्फूर्ति आ गई और मुँह पर मुस्कुराहट थिरकने लगी।

अपने शहर में पहुँचकर रतनसिंह असाधारण रूप से गम्भीर हो गए, जिससे मुँह कुछ फूल गया। उन्हें इस छोटे-से कस्बे में अपने रुतबे का ध्यान आ गया। एक ऐसे सीनियर, लोकप्रिय मुख्तार और रईस, जिसकी गाँव में अच्छी-खासी जमींदारी भी थी। अब उन्हें किसी के सहारे और सहायता की क्या जरूरत है ? हाँ, इस समय उनके दिमाग में वह दहशत और अनिश्चितता तथा बेचारगी नहीं है, जो उन्हें कुछ दिनों से बेहाल किए हुए है। अब वह उस शहर में हैं, जहाँ वर्षों रहकर उन्होंने अपनी मजबूत गृहस्थी खड़ी कर ली थी और जहाँ घर से बाहर निकलने पर, आत्मविश्वास से भरकर वह उच्चता के भाव से गर्दन टेढ़ी करके चलते थे, जबकि रास्ते में हर जगह दो-चार व्यक्ति उन्हें सलाम करनेवाले मिल ही जाते थे। यहाँ किस बात का डर है, जी? जरूरत या संकट के समय, जब चाहें पच्चीस-पचास आदमी जन या लठैत बुलाए जा सकते हैं जमींदारी के इलाके से ! और पता नहीं कैसे इस समय उन्हें याद आया कि वह क्षत्रिय हैं, ठाकुर हैं, जिनकी जाति ने सदियों इस देश पर शासन किया और आज भी उनकी जमींदारी में हजारों लोग उनके असामी और प्रजाजन हैं।

यह सब सोचकर उन्हें अपने ऊपर गर्व हुआ। उस आकस्मिक और अप्रत्याशित परिस्थिति का दबाव हटने से, जिसके नीचे वह बेहद असहाय हो गए थे, उनका अक्खड़ स्वाभिमान लौटकर अहंकार का रूप धारण करके हीनता-जन्य अपमान की क्षतिपूर्ति और प्रतिशोध का कार्य कर रहा था। यहाँ तक कि नीलेश के प्रति भी वह बेहद निर्मम हो उठे और उसकी तरफ एक-दो बार इस प्रकार की उड़ती दृष्टि से देखा, जैसे उसे पहचानते भी न हों। उसी के बाद अपनी पत्नी से बेहद रूखाई से बोले :

"चलो भाई जल्दी... तुम लोग हर काम में देर लगा देती हो..." रतनसिंह के व्यवहार में इस परिवर्तन की तरफ नीलेश का ध्यान तत्काल गया था। वह हतप्रभ

होकर सोचने लगा कि उससे कोई गलती तो नहीं हई, जिससे रतनसिंह नाराज लग रहे हैं? उसकी चाल सुस्त पड़ गई। यह सही होने पर भी कि रतनसिंह को अब उसकी मदद की जरूरत नहीं रह गई है, वह समझ नहीं पाया कि ऐसी रूखाई इस समय क्यों प्रदर्शित की जा रही है. जबकि सभी एक ही साथ आए थे और सबको एक ही जगह जाना है। कुछ आश्यासन उस समय मिला, जव नम्रता ने उसको तड़प-भरी विछोह दृष्टि से देखा।

धीरे-धीरे चलता हुआ वह रतनसिंह को अपने परिवार के साथ तेजी से आगे बढ़ते हुए देखता रहा, जब तक कि अदृश्य नहीं हो गए। वह और उदास हो गया। पाँव उसके अनिच्छा से उठ रहे थे। अस्पताल के आगे पहुँचने पर उसे सहसा लगा कि सामने जो नौजवान दाईं तरफ से आकर बार्ड दिशा में जा रहा है, वह दयाशंकर ही है। अपने सिर और गले में एक दुपट्टा वह इस ढंग से लपेटे हुए था कि कोई भी दूर से उसका चेहरा स्पष्ट नहीं देख सकता था। मुँह भी अपनी आदत हे अनुसार दाएँ-बाएँ न घुमाकर नीचे छाती पर गाड़े हुए था, परन्तु गले के नीचे मजबूत, छरहरा शरीर संदा की तरह तरंगित हो रहा था। हाथों की सुपरिचित जम्बिश और लटपट चाल की तयात्मकता के साथ. जिसे किसी मित्र या जान-पहचानी से छिपाया नहीं जा सकता। उसे आश्चर्य हआ और जिज्ञासा भी कि ऐसा रूप धारण करने का क्या कारण हो सकता है. वैसे वह जानता भी था कि कुछ-न-कुछ अनोखा करके दूसरों को आकर्षित करने की दयाशंकर की पुरानी आदत अब भी नहीं छूटी है।

"अरे भाई... रुकिए...

* शायद दूसरे ही ख्यालों में खोया दयाशंकर समझ नहीं सका कि इस समय कौन पुकार रहा है। पहले तो उसे भ्रम हुआ कि गुप्तचर विभाग का ही कोई व्यक्ति होगा। वह ठिठकते रह गया। उसने न सिर उठाया और न ही घुमाकर देखा।

"मैं नीलेश हूँ, दयाशंकर भाई..."

दयाशंकर ने अब रुककर और मुँह घुमाकर देखा। जब नीलेश उसके पास पहुँचा तो वह धीमी आवाज में बोला:

"अरे तुम हो ? यह झोला-झक्कड़ लेकर कहाँ से आ रहे हो ?"

** अपने साधारण सफर का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करने के बाद नीलेश ने पूछा, "शहर का क्या हाल है, भाई ? सिर में दुपट्टा क्यों लपेटे हैं? तबीयत ठीक है न ?"

दयाशंकर ने मुँह बिचकाकर कहा, "क्या होगा इस शहर में? वही मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक। वही कांग्रेसिया लफड़ा... वही नपुंसक हड़ताल, प्रदर्शन, जुलूस... चलता रहे एक-सा हजार वर्ष तक... नतीजा कुछ निकलनेवाला नहीं। क्या लड़ाई है यह... एक बार हल्का लाठीचार्ज हुआ है...अब 144 धारा लगी है तो सभी डरकर घरों में बैठ गए हैं। हम तो पहले ही कह चुके हैं, इससे कुछ होनेवाला नहीं। अंग्रेजों की दवा तो हम जानते हैं। कांग्रेसियों को करने दो जो चाहते हैं... हम तो अपनी अलग तैयारी कर रहे हैं..."

"यह कैसे कहते हैं, भाईजी ! जनता तो उठ खड़ी हुई है। छात्र समुदाय उठ खड़ा हुआ है। इलाहाबाद, बनारस में जो कुछ हुआ है, आप जानते हैं...बम्बई में जो नेता पकड़े नहीं जा सके, फरार होकर देश-भर में फैल गए हैं। चारों ओर रेल की पटरियाँ उखाड़ दी गई हैं, तार काट दिए गए

"तुम क्या समझते हो, यह सब अहिंसा के पुजारी कांग्रेसी करेंगे ? यहाँ भी हमारे लोग लगे हैं, आज ही में जिले का दौरा करके आया हूँ... क्या करूँ, सबकुछ छिप-छिपकर करना पड़ रहा है, पुलिस पीछे पड़ी हुई है...अपन अधिक-से-अधिक हथियार इकट्ठे करने की फिराक में हैं...उसके लिए पैसा-कौड़ी चाहिए... अपन कर रहे हैं इन्तजाम उसका भी..."

दयाशंकर काफी दयी आवाज में बोल रहा था। सहसा चुप होकर अगल-बगल और पीछे की तरफ सशंक दृष्टि से देखकर दो-तीन बार भुल-भुल मुस्कुराने के बाद आत्मप्रंशसा के भाव से बोला:

"तुमसे भी अपन काम लेंगे. बताना मत किसी से... अपन पिछली रात गाँव के एक बनिया सेठ के घर में घुस गए... यडी आसानी से सब हो गया। अपन पाँच नौजवान थे. मुँह में अँगोछा बाँध रखा था... थर-थर काँपने लगा वह। मालमत्ता लेकर अपन अँधेरिया रात में गायब हो गए। बताओ, यह सब न करें तो धड़ाधड़ बम कैसे बनें, हथियार कैसे खरीदे जाएँ... विदेशी अपने मन से कभी नहीं जाएँगे, उन्हें देश से भगाने के लिए जबरदस्ती करनी पड़ेगी, हथियार इस्तेमाल करना पडेगा... 'भारत छोडो भारत छोडो' नारा लगाने से थोड़े ही वे भारत छोड देंगे? अच्छा में चलता हूँ, जरूरी काम से एक जगह जा रहा हूँ... तुमसे मिलूँगा, तैयार रहना..."

उसने फिर चारों तरफ देखा, सिर को महत्त्वपूर्ण ढंग से ऊपर की तरफ झटका दिया और तेजी से अपनी गन्तव्य दिशा में चल पड़ा। नीलेश चकित होकर उसकी तरफ देखता रह गया। उसकी बातों से असहमत होते हुए भी एक क्रान्तिकारी उत्साह से रोमांच हो आया उसे और आँखों में आँसू। और जलती लालटेनों और ढिबरियों वाले अपेक्षाकृत अधिक सन्नाटे-भरे शहर के बीच से होकर अपने घर की ओर जाते समय वह गर्व से फूला हुआ था। उसे महसूस हुआ कि देश उसे बुला रहा है, "आओ मुक्त

करो मुझे, गुलामी की घृणित जंजीरों को काट डालो और हमेशा के लिए यहाँ की गरीबी, शोषण, उत्पीड़न और जलालत को समाप्त कर दो...'

अब उसकी सुस्ती दूर हो गई थी और कदम जल्दी-जल्दी पड़ रहे थे। उसके दिमाग में दयाशंकर की ही बातें घूम रही थीं। स्टेशन के पास आने पर उसका घर दिखाई देने लगा और वह उल्लास से भर उठा।

घर पहुँचते ही हल्ला मच गया। उसको लेकर सभी चिन्तित थे। इलाहाबाद, बनारस आदि शहरों के कॉलेजों और यूनिवर्सिटी में पढ़नेवाले लड़के पहले ही आ गए थे। उन्होंने बड़े-बड़े जुलूसों, जनप्रदर्शनों और लाठीचार्ज-गोलीकांडों की जो खबरें सुनाई थीं, और यहाँ भी जो कुछ घटित हुआ * था, उनसे घबराहट काफी बढ़ गई थी। आखिर नीलेश कहाँ है ? सभी लड़के आ गए तो सिर्फ उसी की खबर क्यों नहीं मिल रही है? शैलजा फिर ससुराल से आई हुई थी, उसने उत्साह से छोटे भाइयों-सुरेश, धीरेश, उमेश, रमेश को जगा दिया, जो कुटाइम सो रहे थे। वे आँखें मलते हुए उठे और अपनी खुशी प्रकट करने का तरीका समझ न पाने के कारण कभी बाहर जाएँ और कभी भीतर। सीतानाथ कचहरी बन्द और समय खराब होने से जल्दी ही मन्दिर जाकर लौट आए थे और अपने कमरे में लेटे थे। जब उत्साह का बवंडर थमा तो वह भी उठकर कमरे से बाहर आए और नीलेश को देखकर ठहाका मारकर हँस पड़े।

"सब ठीक है न ?"

नीलेश ने उठकर पैर छुए और कुछ बताए, उसके पहले ही शैलजा बोल पड़ी, "बाबूजी, ये लोग नाव से आए हैं। नम्रता लोग भी साथ में आई हैं। नम्रता के मामा के लड़के का इलाहाबाद में मुंडन था। रेल की पटरियाँ उखाड़ दी गई थीं। गाजीपुर के फूफाजी के यहाँ सभी रुके थे...." "अच्छा ! ठीक है, प्रभु की कृपा है..." इतना कहकर वह अपने कमरे में जाकर फिर लेट गए।

इस बीच सुरेश ने बरामदे में रखे नीलेश के झोले में झाँककर, बाद में हाथ डालकर तथा अन्त में अन्दर के सभी सामान को निकालकर देखा और होंठ बिचका दिए। उसी समय दूसरे छोटे भाई आकर पूछने लगे, "क्या लाए हैं भैया ?"

"कट्टू" सुरेश अन्दर के सामान फिर यथास्थान रखकर गम्भीरता से बोला, "बताना मत किसी को... नहीं तो बहुत मारूँगा... चले आए लालची पिल्लों की तरह।" अन्त में उसने उमेश का लोला मीस दिया।

"बताऊँगा, बताऊँगा..." उमेश ने गुस्से में पैर पटकते हुए कहा।

सुरेश ने उसे पकड़ना चाहा, लेकिन वह पकड़ में नहीं आया। नीलेश जब कभी बाहर से आता, बढ़िया मिठाई का डिब्बा जरूर लाता था, और जब वह घर के लोगों से बातचीत में लीन हो जाता, उसी

समय छोटे भाइयों द्वारा उसके सामान की तलाशी ले ली जाती थी। इस बार भी आन्दोलन की भाग-दौड के बीच वह बनारस से एक डिब्बा लेकर चला था, किन्तु गाजीपुर में फूफाजी के घर में वह खाली हो गया। वास्तव में. अभाव की एक विचित्र विकट स्थिति में मिष्ठान्न उपहार की आशा ने बच्चों के दिल में खुशी की गुदगुदी उत्पन्न कर दी थी. लेकिन निराशा की हालत में वे क्या करें ? सबसे आसान तरीका अवश्य सबकी नजर बचाकर आपस में गाली-गलौज या मारपीट करना ही था, मगर शिष्टाचार के तकाजे के साथ-साथ सीतानाथ की मौजूदगी में इसकी गुंजाइश कम ही थी। नीलेश जब हाथ-मुँह धोने के लिए गुसलखाने में चला गया तो चोट खाया उमेश अच्छा

मौका देखकर अपनी माँ के पास जाकर उसके कान में फुसफुसाया : "अम्मा, सुरेश भैया चोरी कर रहे थे बड़का भैया के झोले में से..."

"हटो जी..." आनन्दी ने झुंझलाकर उसे हाथ से परे ठेल दिया। वस्तुतः आनन्दी ऐसी चिन्ताओं में खोई हुई थी, जिनकी वजह से और कोई बात अच्छी नहीं लगती थी, उमेश की बात तो उसके कान में गई ही नहीं। जब से नीलेश आया है, वह उधेड़बुन में है कि नाश्ते और भोजन के लिए उसके सामने क्या रखा जाए। और गुसलखाने में जाने से पहले नीलेश ने जो कुछ कहा, उससे तो उसका कलेजा ही फट गया।

"अम्मा, बड़ी भूख लगी है, इस समय और कुछ खास न बनाओ...बस फरहर भात, अरहर की दाल और पतले-पतले कतरों वाली आलू की भुजिया तरकारी...एकदम सादा भोजन... रास्ते-भर बुआ की दी हुई पूड़ियाँ खाने के बाद अब पकवान खाने की जरा भी इच्छा नहीं।"

नीलेश खाने का शौकीन तो था, परन्तु वह दूसरे भाइयों और अपने पिताजी की तरह शायद ही कभी कोई फरमाईश करता हो। वैसे आनन्दी स्वयं इसका ख्याल रखती थी। बड़े लड़के की बात सुनकर बेहद घबरा गई। वह दो बार बाहर गई। और उसने दरवाजे से सिर उचका-उचकाकर इधर-उधर देखा गोया उसे देखते ही कोई आकर पूछेगा कि तुम्हें क्या परेशानी है, जिस चीज की जरूरत हो बताओ, अभी इन्तजाम हो जाएगा। चारों ओर सन्नाटा था, और वह हारकर दक्षिणी बरामदेवाले कमरे में जाकर आँचल से आँखें ढककर चुपचाप रोने लगी।

कचहरी की वजह से सीतानाथ गाँव तथा नातेदारी रिश्तेदारी नहीं जा पाते थे, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि आर्थिक संकट का सामना उन्हें करना ही नहीं पड़ा। जब वह दो बार बीमार पड़े तो उस समय जमीन-जायदाद का प्रबन्ध पुख्ता था और वहाँ से पर्याप्त अन्नादि और कभी-कभी नकद भी मिलता रहता था। वकालत भी तब अच्छी चलती थी। मगर अब तो हालत ही उल्टी हो गई है।

समस्या उस समय खड़ी हो गई, जब उनके छोटे भाई ने गाँव की गृहस्थी से ऊबकर किसी प्राइवेट कम्पनी में नौकरी कर ली। तब से खेती-किसानी का खेल बिगड़ता गया है। एक दूर के नकारा रिश्तेदार के हाथों में जमीन-जायदाद के प्रबन्ध का काम सौंपने के पश्चात दोनों भाइयों की निश्चिन्तता का कुफल शीघ्र ही मिलने लगा। ऐसे में खर्चशाह आदतें, दिन-पर-दिन गृहस्थी-बोझ में वृद्धि तथा

वकालत में गिरावट के दुर्योग के साथ यदि कचहरी दो दिन के लिए भी बन्द हो जाती तो भारी असुविधा और कभी-कभी संकट का सामना करना पड़ता था।

नौ अगस्त, सन् बयालीस को सिर्फ एक ही मुकदमा हाथ में था, वह भी हाकिम के न आने से बहस न हो सकी और तारीख पड़ गई परिणामस्वरूप मुवक्किल से किसी तरह प्राप्त चार रुपए शेरवानी की जेब में रखकर सीतानाथ शाम को घर आए थे। यही समय है. जब एक साधारण

वकील-मुख्तार के घर की कई जरूरतें एकत्रित हो जाती हैं, जिनमें शाम तथा अगले दिन के लिए राशन, घी, तेल, लकड़ी आदि भी शामिल हैं। किन्तु अगले दिन यानी दस अगस्त से हड़ताल, जुलूस, प्रदर्शन आदि का सिलसिला शुरू हो गया, जिससे स्कूल, कॉलेज, दफ्तर, कचहरी आदि में कामकाज ठप हो गया।

ग्यारह अगस्त को आनन्दी ने सीतानाथ से कहा था, "आज संझा तक के लिए ही चावल-दाल बचा है। लकड़ी भी नहीं थी, वह तो सामने के लाला के यहाँ से उधार मँगवा ली है..." "एकदम दुरुस्त ! और भी सामान उसके यहाँ से मँगवा लो... कचहरी खुलने की देर है, आगे

कई मुकदमे हैं, रुपया-ही-रुपया हो जाएगा..." सीतानाथ ने मूँछ पर ताव देकर उत्साहपूर्वक कहा। "वह भी अब सीधे मुँह बात नहीं करता। ऐंठकर बोला, समय खराव है, लकड़ी का टाल भी बन्द है, जब बड़ी दुकानें खुलेंगी, तभी तो मैं भी सामान लाकर बेचूँगा... उधार का पैसा कल भेजवा देना... आगे कोई सामान लेना हो तो नकद लेकर आना..."

"बचाकर कुछ रखा हो तो निकालकर काम चलाओ... कर्जा समझकर खर्चा करो... कचहरी खुलने पर एक का दो दे दूँगा...।" सीतानाथ शरमाकर हँसने लगे।

इस बात पर आनन्दी तिनक गई, "रखने के लिए अलग से कभी दिया भी गया कि निकालूँगी ? घर का खर्चा में जिस तरह से चला रही हूँ, मेरा दिल ही जानता है। कभी रखा भी है तो सबकी नजर उसी पर लगी रहती है। मैं तो हमेशा भिखमंगिन बनी रहती हूँ।"

अरे, मैंने इसलिए कहा कि कुछ छिपाकर रखने की आदत होती है औरतों की...।"

" "वे घर दूसरे होते हैं, जहाँ औरतें छिपाकर रखती हैं। ये दुःख-सुख में भी अपना एक पैसा नहीं निकालतीं। उनके मर्द भी बड़े हिम्मती होते हैं, बड़ी-से-बड़ी विपत्ति में अपनी स्त्री की एक कौड़ी भी नहीं छूते। नीलेश बाबू के मुंडन के बाल और पच्चीस रुपए ओइँछकर रखे थे विन्ध्याचली देवी को चढ़ाने के लिए। अपने तो जाया नहीं गया, वे रुपए भी निकलवा लिए... बाद में कौन वादा पूरा करता है ? देवी-देवता का ओइँछा रुपया इस तरह खर्च करना चाहिए? मैं तो लड़के के लिए चिन्ता करती हूँ...

हमेशा विन्ध्याचली देवी से प्रार्थना करती हूँ, 'हे देवी, लड़के को नीके-नीके रखना...' रामप्रसाद पंडित हर साल नवरात्र में विन्ध्याचल जाते हैं, वे रुपए होते तो उन्हीं को बाल चढ़ाने को दे देती..."

आनन्दी का दिल जला हुआ था, उसने पुरानी शिकायतों का ऐसा लम्बा वृत्तान्त आरम्भ कर दिया जिसका कोई अन्त नहीं था। परन्तु, सीतानाथ सदा अपनी तथा पत्नी की घबराहट और हताशा को हवाई आशावादी आश्वासनों से दूर भगा देते, इस बार भी यही उपाय कारगर सिद्ध हुआ:

"ठीक कहती हो, गलती मेरी ही है... मैं रुपयों का फौरन इन्तजाम करता हूँ... कल शाम को नवानगर का एक अच्छा मुवक्किल आनेवाला है...हाँ जी, इत्मीनान रखो, इस दफा क्वार के नवरात्र में विन्ध्याचल भी चलेंगे और नीलेश बाबू का बाल इस बार जरूर चढ़ेगा, जरूर चढ़ेगा...ठीक है, इस समय काम चलाओ... प्रभु सब ठीक करेगा..."

कल शाम ? इसके पहले तक का काम कैसे चलेगा? आनन्दी वहाँ से गुस्से में चली तो आई थी, मगर वह जानती थी कि उसके पति कोई समस्या आने पर सबकुछ ईश्वर के सुपुर्द करके निश्चिन्त हो जाते हैं। उसने सोचा कि शैलजा से माँगें, उसके पास जरूर कुछ-न-कुछ होगा, लेकिन बाद में यह सोचकर यह अपने को धिक्कारने लगी कि विवाहित लड़की से कुछ माँगने के बारे में सोचने की हिम्मत कैसे हुई उसकी ? फिर मायके की ओर दिमाग दौड़ा था, मगर वह लोग भी तो आजकल परेशान हैं, जब से उसके भैया के दूसरे लड़के की चेचक से मृत्यु हुई है, उन लोगों पर दुःख का पहाड़ ही टूट पड़ा है। अन्त में उसका ध्यान कमरे के ताँड़ पर रखे पन्द्रह कनस्तरों पर गया, जिनमें से चार में जौ और ग्यारह में चना रखे हुए थे

पहले तो वह काँप गई यह सोचकर कि सभी महीन खाने के शौकीन हैं, चना और जी कौन खाएगा? उनसे क्या-क्या बनेगा ? एक दिन भात न बनने पर सभी उदास हो जाते हैं बच्चे तो ते मचलते ही हैं. बड़े लोग भी बिना बात की बात पर गुस्साकर बोलते हैं। जी का आटा तैयार करने में सौ झंझट, काफी मेहनत के बाद आटा तैयार भी हुआ तो उसकी रोटी मुश्किल से हलक के नीचे उतरती है। घी हो. दही हो. महिया हो तो बात दूसरी है, मगर आजकल यह सब नसीब में कहाँ? सोचते-सोचते उसके दिमाग में दर्द होने लगा।

लेकिन उपास कराने से अच्छा तो यही है जौ, चना का भोजन सामने पेश कर दिया जाए यह ख्याल आते ही वह हँसने लगी। हाँ, क्या-क्या बनेगा उन मोटे अनाजों से? कल्पना कर-करके उसकी ती तेज होने लगी. यहाँ तक कि सुरुहरी चढ़ गई-тых "क्या हँस रही हो दुल्हन ?"ग ने

आनन्दी अपनी सास जीरादेई को आते नहीं देख पाई थी, प्रश्न सुनकर हँसी में ब्रेक लग गया और किंचित भय और लज्जा से आँखें दूसरी तरफ घूम गईं। आँचल सिर से थोड़े आगे खींचकर

घोली "क्या-क्या बताऊँ अम्माजी, कचहरी बन्द होने से आफत आ गई है। लोग-बाग हाथ झाड़कर अलग हो गए हैं। कहा जा रहा है, किसी तरह काम चलाओ। अब कैसे काम चलाऊँ, अम्माजी। सोच रही थी, ऊपर कनस्टर में जौ, चना रखा हुआ है उसी को कूट-पीसकर कुछ दिन काम चल सकता है क्या ? चिकना-महीन खानेवालों की जबान पर ऐसा खाना चढ़ेगा ?"

"ए दुल्हन, मैं सब देख रही हूँ! बाबू भी क्या करें, कचहरी बन्द है तो कहाँ से रुपए लायें ? उन पर कितना खर्च है, सबको देते हैं, किसी से कही माँग सकते हैं भला ?"

"तो मैं कौन दफ्तर-कचहरी करती हूँ कि सबका पेट भर दूँगी ? मर्द का जन्म किसलिए होता है, दुःख-विपत्ति का जो मुकाबला न करे, वह मर्द कैसा? जब ससुराल से बहन लोगों का परिवार आ जाता है, बेटी आ जाती है तो कहाँ से आ जाता है? तीज-त्योहार पर करनी-चौथार कैसे चला जाता है ? फिर भी मुझसे जो बन पड़ता है करती ही हूँ। सोचा था, जौ, चना का जो कुछ तैयार होगा, सामने रख दूँगी। जौ तो बहुत कम है, चना भरा पड़ा है। गाँव की जायदाद बेईमान के हाथ में देकर और भी भुगत रहे हैं लोग। एक ही बात हो तो बताऊँ, दुकानदार अब उधार भी नहीं देते, जलाने के लिए लकड़ी कहाँ से लाऊँगी, छौकने-बघारने के लिए घी-तेल कहाँ से आएगा, मेथी, जीरा, मिर्चा, धनियाँ कौन देगा ? सभी डिब्बे-बर्तन बोल गए हैं... मौका पड़ने पर कोई मदद नहीं करता, हर बात मुझी पर छोड़ देते हैं, सब मुझे ही नोचते-खसोटते हैं..."

जीरादेई सहसा उत्तर न दे पाई और दूसरी ओर मुँह करके फर्श को देखने लगीं। वह फौरन समझ गई कि उनकी बहू जो व्यंग्य-बाण छोड़ रही है, उनका लक्ष्य वही हैं। यह सही है कि उनकी लड़की अपने एक बेटा और तीन लड़कियों के साथ गर्मी में दो महीने रहकर गई है। विवाहित लड़की के मायके आने-जाने में खर्च भी बहुत होता है। लेकिन इसमें कौन नई बात है, यह तो सभी करते हैं। इसको लेकर कोई आनी-बानी भी बोलता है? परन्तु जीरादेई ने असमय में गुस्सा करना उचित न समझकर संयत स्वर में कहानि

"दुल्हन, जी छोटा न करो... लड़कियाँ तो हमेशा आएँगी, चाहे मायका धनी हो या गरीबः। तुम्हारी तकलीफ में समझती हूँ। बाबू कुछ कर सकते तो जरूर करते। वह भी मन में जो तकलीफ पा रहे हैं यह मैं जानती हूँ। पर क्या करूँ दुल्हन, मेरे पास कुछ रहता तो निकाल देती। बाबू ही मुझे कभी कुछ दे देते हैं. वही बचाकर रखती है। यह भी जब गर्मी में बिटिया आई तो सब उसी पर खर्च कर दिए, बस दस रुपए बच रहे हैं. उसे निकालकर देती हैं, उससे लकड़ी और थोड़ा-थोडा तेल-मसाला मँगाकर काम चलाओ आगे परम पिता परमेश्वर मदद करेंगे" जनर

"अम्माजी, कुछ और हो तो निकाल..."

"अरे नहीं दुल्हन, गुरु महाराज की कसम खाती हूँ... मैं कमीनी कुत्ती कि झूठ बोल... मेरे पास दस रुपया से एक कौड़ी भी अधिक नहीं है। मैं पैसा जोड़कर क्या करूँगी ? तुम लोगों के अलावा मेरा कौन है? एक बेटी है तो उसकी शादी बाबू ने अच्छे घर में कर दी है, यह तो मुझे पचास-सी दे रही थी... मैं ब्याही लड़की का पैसा लेकर क्या नरक में जाऊँ? हाँ, बच्चे हैं, उन पर खर्च कर देती हूँ। इस घर के लड़कों-रमेश, उमेश को भी मचलते देखती हूँ तो उनके हाथ पर कुछ रख देती हूँ। अभी पैसा लाती हूँ, तुम वीरेश, सुरेश से कहकर कनस्टर उतरवाओ...मैं आटा पीसने के लिए जी तैयार कर दूँगी... घर में जाँता है, साथ में बैठकर पिसवा दूँगी। जी में बड़ी ताकत होती है दुल्हन, देखने में ही रूखा-सूखा है। और चना तो राजा है दुल्हन, कहा भी गया है उसे 'छप्पन परकारा'। देखना, मैं क्या-क्या बना देती हूँ उससे। तुम चिन्ता न करो, दुल्हन..."

जीरादेई से दस रुपए पाकर आनन्दी के चेहरे पर उत्साह और आशा की चमक आ गई। सूखे धान में क्या पानी पड़ गया ? वीरेश और सुरेश की मदद से ताँड़ पर रखे कनस्टरों को उतारा गया। जौ को बीनने, हल्के कूटने, सुखाने तथा फटककर ऊपरी भूसा निकालने में जीरादेई ने कमाल की फुर्ती दिखाई। फिर सास-बहू दक्षिण के बरामदे में स्थापित जाँते के दोनों ओर, आमने-सामने फैली टाँगों को मिलाकर बैठ गई और बीच में गड़े खूँटे को पकड़कर और बीच-बीच में मुट्ठी से जी का अन्न भीतर डालकर आगे-पीछे झूमती हुई चक्की चलाने लगीं। फिर तो जीरादेई को बहुत पहले, जब उनके पति यानी सीतानाथ के चाचा जीवित थे, ससुराल के गाँव में बिताए कर्मठ गृहस्थ जीवन की याद में ऐसा आनन्द आने लगा कि उनके कंठ से एक पुराना, धराऊ विचित्र गीत स्वतः फूटकर मुँह से निकलने लगा :

"तीन चीजुइया याद आवे....

तीन चीजुइया याद आवे...

मैं अपने माता-पिता को भूल गया, मैं अपने दोस्तों को भूल गया

मत सत्तीन चीजुड्या याद आवे, तीन चीजुइया याद आवे"

गीत की इन पंक्तियों को सुनते ही आनन्दी अपनी हँसी रोक नहीं सकी। उसकी घूमती हुई बाँह भी रुक गई और अपनी हँसी की तेज तरंगित गति को किसी तरह नियन्त्रित करके उसने पूछा : "अम्माजी, वे तीन चीजुइया क्या हैं..."

"ए बहू, तुम्हें क्या बताना, तुमसे अधिक मैं ही जानती हूँ? लड़की को माँ-बाप के घर में जो सुख मिलता है, लाड़-प्यार मिलता है, बेफिक्री मिलती है, वह सब शादी के बाद कहाँ रह जाता है ? विवाह के बाद बाल-बच्चे होते हैं, घर-गृहस्थी की चक्की में पिसना होता है। पुराना सब भूल जाता है, बस चौबीसों घंटे नून, तेल, लकड़ी का चक्कर..."

निशा आनन्दी गम्भीर हो गई। उसके सामने अपना बचपन झलक गया। वह रुआँसी होकर आँखें दूसरी तरफ घुमाती हुई बोली:

"हाँ, अम्माजी, बात तो सही है..."

इसके पश्चात दोनों ही बाँहें फिर घूमने लगीं और जाँता चलने लगा। जीरादेई का गाना पुनः चालू हुआ

"भूल गइलीं दही चिउरा, भूल गइलीं पूड़ी-हलवा,हैंग कितीन चीजुइया याद आवे, तीन चीजुइया याद आवे लिए भूल गइलीं मेला-चकरी, भूल गइलीं झूला-घुमरी, वालिका वि ट्रांसहित तीन चीजुइया याद... खाली तीन चीजुइया याद आवे..."

'गाना-बजाना' के सम्बन्ध में जीरादेई की कोई विशेष ख्याति नहीं थी, अब तो उनका स्वर

श्री बीच-बीच में जवाब देने लगता था। परन्तु उसी ने ऐसा उत्साह उत्पन्न कर दिया कि जो काम आनन्दी को बड़ा कठिन लग रहा था, वह आसानी से सम्पन्न हो गया। साथ ही जौ और चना का महत्व बताकर बच्चों की रुचि जगाने की कोशिश भी की जीरादेई ने- विशेष रूप से उनकी वह लोककथा अत्यन्त प्रभावी सिद्ध हई, जिसमें एक गरीब, सच्चा और परिश्रमी किसान जी की रोटी नमक खाकर और कसरत-कुश्ती करके खूब तगड़ा बनकर चिकना चुपड़ा पकवान खानेवाले एक विलासी और अन्यायी राजा को परास्त करके स्वयं राजा बन जाता है। तब से सरेश धीरेश. उमेश और रमेश बेसबी से प्रतीक्षा करने लगे कि कब जौ की रोटी बने जिसके सेवन से वे जल्दी-से-जल्दी तगड़े बन जाएँ।

कनस्टर के अन्न से बने भोजन की पहली थाली जब सीतानाथ के सामने रखी गई तो उन्होंने पहले चोरी-छपी तिरछी दृष्टि से उसे देखा. फिर ठहाका मारकर हँस पड़े। अन्त में गम्भीर होकर उत्साहपूर्वक बोले. गोया कवि सम्मेलन में किसी कविता की तारीफ कर रहे हैं:

"वाह , क्या बात है, मजा आ जाएगा। अब अधिक क्या चाहिए... वाह!"

"यह सब अम्माजी ने किया है..."

"अरे तो चाची को कम समझती हो ? एक समय था, जब वह पूरी बारात को खिला देती थीं। सब्जी इतनी लजीज होती थी कि लोग उँगली चाटते रह जाते थे..."

थाली में जी की दो बड़ी, पतली रोटियाँ, चने की दाल और चने की पतले रसे की तीखी सब्जी। ऐसी बात नहीं है कि सीतानाथ ने जी की रोटियाँ खाई न हों, कड़ाहे में से निकाले हुए गर्म-गर्म गन्ने के रस के साथ वे बहुत अच्छी लगती थीं-वह भी कभी-कभी और नाश्ते पर, लेकिन भोजन में वे भात-दाल

खाने के ही आदी हैं। अपनी अरुचि को नियन्त्रित करके प्रेम-भाव से खाने की कोशिश में वह अस्वाभाविक रूप से रूखे और गम्भीर नजर आए, किन्तु राम-शबरी प्रसंग की याद आते ही उनके चेहरे पर प्रेम, करुणा, भक्ति और खुशी की चमक और चिकनाई दौड़ आई। चौदह वर्ष तक वन में राम, सीता ने रूखा-सूखा, कन्दमूल खाया, उसके मुकाबले में जौ की ये रोटियाँ तो राजसी पकवान की तरह हैं और यह भोजन भी उस राम की कृपा से मिल रहा है। यह सब सोचकर उनकी आँखें डबडबा आईं।

"वाह चाची, पूरा खाना अमृत से भी मीठा है..." उन्होंने चौके से उठते हुए कहा था।

परन्तु, समस्या छोटे लड़कों को लेकर पैदा हुई। वीरेश तो गम्भीर हो गया था, वह सिर्फ एक रोटी खाकर उठ गया था। बाकी सुरेश, धीरेश, उमेश और रमेश ने पहले उत्साह में चुपचाप खाने के बाद रूठना-मचलना शुरू किया। 'भात-भात' की उनकी माँग की पूर्ति कैसे हो? आनन्दी समझाती थी कि 'कचहरी खुलनेवाली है, फिर खाना न भात जितना चाहे'। फिर जीरादेई भी उनको मनाने के लिए तरह-तरह की कहानियाँ सुनाने बैठ जाती थीं। एक दिन आनन्दी ने खीझकर कह दिया, "जाओ, नहीं खाना हो तो न खाओ... भात मैं कलेजा फाड़ के निकालूँ?" अन्त में आँचल में मुँह छिपाकर रोने लगी।

माँ की रुलाई का बच्चों पर न मालूम क्या असर हुआ कि उसके बाद उन्होंने जिद्द करना भी छोड़ दिया। आगे तो और भी कठिन समय आ गया, जब जी का आटा जल्दी ही खत्म हो गया और सिर्फ चने पर ही निर्भर रहने की नौबत आ गई। हर चीज की तो दिक्कत थी। हड़ताल और पुलिस के डर से भी साग-सब्जी वाले आते नहीं थे। गंगा पार से अनेक औरतें दूध, दही और घी बेचने के लिए आती थीं- उनका अब पता ही नहीं था। जब तक तेल की गुंजाइश थी नाश्ते में बेसन का पपरा (चीला) बनाकर काम चलाया गया। एक दिन तेल और गुड़ की मदद से हलवा भी बना। सीतानाथ इस दिन भी खूब हँसे ।

"सब भगवान की कृपा है"

यह मुमकिन है कि चने के छप्पन प्रकार के व्यंजन बन जाते हों, लेकिन सहयोग के लिए घी, दूध, दही, मिर्च-मसाला, शक्कर, सब्जी आदि का होना भी जरूरी है। चने (बेसन) की रोटी. चने की दाल तो ठीक है। चने की घघनी कभी तल के और कभी रसा में। चने (बेसन) की कभी पकौड़ी, कभी बजका, कभी खंडेरा। कभी सूखा चना तवे या कड़ाही में बालू की मदद से भूनकर भूजा अथवा कभी थोड़े से तेल और लाल मिर्च की मदद से तवे पर तलकर सोसिया तैयार करना।

एक शाम को दो-चार बूँद तेल और फीके गुड़-रस में बने हलवे को एक उँगली से उठाकर सुरेश ने चखा और मुँह बिचकाया, फिर हलवे की तरफ दोनों हाथ जोड़कर बोला :

"तुम्हीं जान हो, जहान हो, तुम ही माँ हो, बाप हो, तुम्हीं दीदी हो, भाई हो, घर हो, द्वार हो, तुम्हीं स्कूल हो, पढ़ाई हो...।"

वहाँ उपस्थित सभी परिवारजन खिलखिलाकर हँस पड़े, यहाँ तक कि वीरेश भी, जो इस संकटपूर्ण परिस्थिति के बीच यह सोचकर गम्भीर और जिम्मेदार होने की कोशिश कर रहा था कि आजादी की लड़ाई में दरकार कुर्बानियों के सामने भोजन सम्बन्धी अभाव और असुविधा तो मामूली चीज है ! लेकिन वह फौरन सँभल गया और सुरेश को घूरते हुए बोला, "क्या तुम हमेशा जोकरी करते रहते हो...तबीयत में जो आता है बोल देते हो। समझ लो, करोड़ो लोग हैं देश में, जिनको दोनों जून खाना भी नहीं मिलता..."

"तो मैंने क्या कह दिया छोटे भैया? मैंने तो-"

"मैं जानता हूँ, हलवा के सामने हाथ जोड़कर जो कुछ तुमने कहा है, उनका मतलब क्या है। अगर घी और चीनी से बना हलवा होता तो तुम गप-गप खा गए होते..." वीरेश पर गुस्सा चढ़ने लगी

"अरे बचवा, गुस्सा नहीं करते। ऐसे समय में हँसना-बोलना अच्छा लगता है। दुःख-तकलीफ खुशी-खुशी काट देना चाहिए। मन का खाना न मिलने पर कोई मुस्कुराता है, कोई गुस्साता है... तुम्हारे बाबूजी हर चीज कितनी खुशी से खाते हैं।" वीरेश ने किंचित आश्चर्य-मिश्रित खीस से जीरादेई को घूरा, फिर वहाँ से पैर पटकता हुआ-सा चला गया यह कहते हुए :

"आप तो, दादी, कुछ समझती हैं नहीं, हर चीज में टाँग अड़ाती हैं...।

एक ऐसे वक्त में, जब चना खाते-खाते हर सदस्य के नाक में दम हो गया था, नीलेश रात में घर पहुँचा था-ऐसा समय जब परिवार का प्रत्येक सदस्य रोज यह आशा करता था कि आन्दोलन बन्द हो जाएगा और अगले दिन कचहरी खुल जाएगी।

गुसलखाने से निकलने पर नीलेश को सुरेश ने वास्तविकता की धरती पर उतार दिया:

सम "बड़का भइया, आप जो सोचते हैं वह नहीं मिलेगा... चने की रोटी, चने की तरकारी, चने की चटनी खाने को तैयार हो जाइए।"

"चने की चटनी ? क्या मतलब?" नीलेश ने अचम्भे से सुरेश को देखा।

"यह तो अम्मा से ही पूछिए..."

आनन्दी रुआँसी होकर नीलेश को देख रही थी, "गर्मी में जौ, चना गाँव से आया था, हर बार चावल-दाल आता था...। जब से जमामार बैठे हैं, बज्जर पड़ गया है...। मैं तो कभी से कह रही हूँ, किसी अच्छे आदमी को रखिए... अब तो आम, आँवला भी नहीं आता...।"

घुमा-फिराकर तथा फैलाकर बात कहने की अपनी माँ की आदत से नीलेश वाकिफ था, किन्तु इस समय धीरज खोकर उसने आनन्दी को गुस्से से देखा जिसका अर्थ फौरन समझते हुए सुरेश ने कहा :

"बड़का भइया, जब पाँच-छह दिन से कचहरी और दुकानें बन्द होंगी तो कौन उधार देगा ?

तब घर में जौ, चना होगा तो जौ, चना ही खाया जाएगा। अम्मा कहाँ से आलू-चीनी चावल, अरहर की मीठी दाल ले आएँगी ?"

नीलेश आश्चर्य से आँखें विस्फारित करके सुरेश को देखता ही रह गया। जब उसने मुँह घुमाया और आनन्दी की आँखों से मोटे आँस गिरते देखे तो पूरी कहानी समझते देर नहीं लगी। उसे सुरेश पर बड़ा लाड आया। निश्चय ही सुरेश बड़ा हो रहा है. अभी बड़ा हुआ नहीं है- लेकिन वह पहले से ही माँ के साथ लगा रहता आया है। माँ का कष्ट उससे अधिक कौन जान सकता है ? उसकी आँखों के सामने अनेक चित्र उभर आए।

गाँव से कच्चे आम आए हैं, आनन्दी अचार के लिए आम काट रही है तो सुरेश पास बैठा तरह-तरह के सहयोग दे रहा है। मसाला कूटना हो. भीमल-बो दाई के नागा करने पर बर्तन मलना हो तो सुरेश मौजूद। घर में कोई मेहमान आने पर नीलेश और वीरेश शर्म से कमरे में छिप जाएँगे। सुरेश उनको बैठका खोलकर बिठाएगा और बाजार दौड़कर नाश्ता का सामान लाएगा। बीमारी हैरानी में भी डॉक्टर के यहाँ चक्कर लगानेवाला एक ही व्यक्ति इस घर में है। अब वह समझ सकता है कि संकट काल में सुरेश ही उधार के लिए दुकानों पर दौड़ा होगा... परिवार की हताशा और निराशा को आगे बढ़कर झेलते और हल्का करने की कोशिश करते हुए...

नीलेश कुर्ता की जेब टटोलने लगा और आश्वस्त होकर सुरेश से बोला :

"सुरेश, इस समय कोई दुकान खुली होगी ?"

"दुकान कहाँ खुलती है आजकल बड़का भैया ? चोरी-छिपे कुछ लोग सामान बेचते हैं...उधार कोई नहीं देता..."

"लाला के यहाँ चावन-दाल होगा ?"

"चावल-दाल, आलू भी रखता है वह, पर मैं नहीं जाऊँगा उसके यहाँ। भइया को भेज दीजिए। मुझे देखकर बड़बड़ाने लगता है, दस रुपया उसका उधार है..."

"अरे तो उसका उधार दे दो न, मैं देता हूँ। मैं अम्मा को पैसा दे देता हूँ, अम्मा से पूछकर सामान ला दो..."

"मैं लाला का उधार चुका दूँगा... सामान नहीं लाऊँगा। वह गाली-गलौज भी करता है, मेरा उससे झगड़ा हो गया है। बमपुलिस गली का रामदयाल बनिया सामान अच्छा रखता है, उसका लड़का मेरे साथ पढ़ता है। मेरी बात हो चुकी है, मौका पड़ने पर वह उधार भी दे देगा..."

नीलेश जेब से निकालकर रुपए गिन रहा था। वह बनारस में चाचा के यहाँ रहकर पढ़ता था, लेकिन उसका सारा खर्चा, कपड़ा-लत्ता सब यहाँ तक कि जेब खर्चा भी उसके चाचा ही देते हैं। सैर-सपाटा, फैशन, होटल वगैरह निजी शौक न होने की वजह से उसके पैसे बचते ही थे-खास खर्चा उसका राजनीतिक और साहित्यिक पुस्तकों पर ही होता। गाजीपुर से चलते समय बुआ ने भी उसके हाथ में कुछ रुपए रखे थे। इस समय उसके पास 105 रुपए थे, जिनमें से बीस रुपए अपने पास रखकर शेष माँ को दे दिए।

जब सुरेश झोले और घी-तेल के डिब्बे लेकर रामदयाल बनिया के यहाँ चला गया तो नीलेश आनन्दी के पास बैठकर बोला, "अम्मा, मुझे क्या मालूम तुम लोग इतनी परेशानी में हो, नहीं तो चावल-दाल बनाने की बात कहकर तुम्हें दुःखी न करता। खैर, अब कोई चिन्ता की बात नहीं। अम्मा, आज गांधीजी देश की आजादी के लिए बड़ी लड़ाई चला रहे हैं. आजादी के लिए लोग लाठी-गोली की मार झेल रहे हैं, खुशी-खुशी जेल जा रहे हैं। इस लड़ाई में सबसे अधिक तो ऐसे गरीब लोग हैं जो मुश्किल से दो जून का खाना जुटा पाते हैं। और भी कष्ट झेलना पड़ सकता है. मगर आजादी मिलने पर सबका कष्ट दूर भी हो जाएगा।"गिओस "सभी मर जाएँगे तो आजादी क्या होगी, बाबू ?"

"आजादी उसके लिए होगी, जो बच जाएँगे। अच्छे काम के लिए तो कुर्गानी देनी ही पड़ती है।"

आनन्दी धुप लगा गई। रुपए मिलने से यह अपने को बेहद हल्का महसूस कर रही थी, जबकि पिछले पाँच-छह दिनों का एक-एक पल उसने पहाड़ की तरह काटा था। उसे अपने लड़के पर गर्व हुआ, जैसे नौकरी लगने पर पहली तनख्वाह लाकर उसके हाथ में दे दी हो नीलेश ने।

सुरेश को दो बार बाजार जाना पड़ा था। यह जिस तेजी से शरीर फेंक रहा है, उससे लगता है लम्बाई में अपने दोनों बड़े भाइयों को पीछे छोड़ देगा। देखते-ही-देखते घर में किसी जश्न का माहौल बन गया। परिवारजन, जो चुपचाप मनहूस की तरह बैठे रहते या सोए रहते, अब टन-टन बोलने लगे। रसोई से जब आलू-चीनी चावल और अरहर दाल के पकने की सुगन्ध उठने लगी, उम्मीद के उत्साह से सबके नथुने फूल-फूल जाते। बीच-बीच में झूठ-मूठ नाक सुड़ककर वे दूसरी ओर देखने लगते। इस बीच छोटे बच्चे धीरेश, रमेश और उमेश, जो खेल-कूद मूल चुके थे, आँगन में लालटेन की धुँधली रोशनी में एकट-दुकट खेलने लगे, जिसमें सुरेश भी सहयोग देने लगा।

शैलजा भी इधर पाँच-छह दिनों से काफी उदास रहने लगी थी; अब उत्साहित होकर रसोई में लगी आनन्दी के पास आकर बैठकर नाक सुड़कने के बाद धीमे स्वर में बोली: "अम्मा, बड़ी कमजोरी लग रही है..."

"अरे, कमजोरी नहीं लगेगी? तुम इधर झटक गई हो...ए बेटी, चावल बन गया है, अरहर की दाल भी आधी पककर फट गई है, कटोरा में भात, फटी दाल, ऊपर से एक चम्मच घी डालकर देती हूँ, कमरे में जाकर खा लो... धरान हो जाएगा, बाद में पूरा खाना बन जाने पर सबके साथ खाना... क्या बताऊँ, तुम नइहर आई हो, कहाँ मैं तरह-तरह के भोजन-पकवान बनाकर खिलाती-पिलाती..."

कुछ देर बाद शैलजा ने कमरे में लेटे सीतानाथ के पास जाकर कहा, "बाबूजी, खाने का पीढ़ा बिछ गया है, अम्मा बुला रही हैं। बाबूजी, आज भात-दाल और आलू की पतली-पतली भुजिया तरकारी बनी है, ऊपर से घी भी है, बाबूजी..."

"अच्छाऽऽ ! एकदम दुरुस्त। सीतानाथ चलते हैं भोजन करने..." सीतानाथ जोकर की तरह आवाज खींचकर बोलते हुए उठ बैठे।

"बाबूजी, चना खाते-खाते तबीयत ऊब गई थी..."

"अरे, गोली मारो चने को..." सीतानाथ ने तेज आवाज में सिर को झटका देते हुए इस तरह कहा, गोया किसी नाटक का संवाद बोल रहे हैं।

"बाबूजी, सुरेश बहुत मेहनत करता है। सबकी फिक्र रखता है। कई बार बाजार दौड़कर गया।"

"अरे पूछो मत ! वाह, क्या लड़का है! हिन्दुस्तान-भर में ऐसा लाडला ढूँढ़े नहीं मिलेगा !" "हाँ बाबूजी..."

"नीलेशजी ने खाना खाया ?"

"बाबूजी, आप भोजन कर लीजिए... वह कुछ देर बाद करेंगे। नीलेश बहुत गम्भीर हो गए हैं बाबूजी, सबके बारे में सोचते हैं। यहाँ से आप, वहाँ से चाचाजी जो रुपए देते हैं, अपने ऊपर खर्च नहीं करते, बचाकर रखते हैं... यहाँ आने पर सबकुछ मालूम हुआ तो निकालकर अम्मा को दे दिया..."

"हाँ... वाह... आला दिमाग पाया है... इतने समझदार कि उफ इन्तहाई समझदार..." सीतानाथ की बातचीत के ढंग में नाटकीय व महफिली अतिशयोक्ति एवं हास्य-विनोद का पुट होता था, किन्तु यह झूठ और कृत्रिमता का रूप न होकर उनके सहज विश्वासी स्वभाव और भाव

प्रवणता का ही प्रतिफल है। प्रशंसा, आत्मीयता या दुःख संवेदना प्रकट करते समय यह सर्वोच्च बुलन्दी पर पहुंच जाते और उनकी आँखें भर आतीं तथा कंठ अवरुद्ध होने लगता।

"बाबूजी, चना का बजका परोसा जाए ?"

"अरे कैसा चना और कैसा बजका बेटी । कुछ नहीं...बस थोड़ा-सा चावल, थोड़ी-सी दाल और आलू के चार कतले...चलो, लगाओ थाली।"

"बाबूजी, घना का कुछ भी खाने की इच्छा नहीं थी किसी की... चना मिगोकर रखा था। हाँ, नीलेश को सब किस्सा मालूम हुआ तो उन्होंने चना का बजका बनाने को कहा... उन्हीं के लिए कुछ बना है...सबके लिए तो आलू की भुजिया तरकारी है...।"

शैलजा पहलौंठी लड़की होने की वजह से बड़ी प्रिय थी। बचपन से ही वह माँ-बाप को हर बात की रिपोर्ट पहुँचाने फौरन से पेशतर पहुँच जाती। छोटे भाई, खास तरह नीलेश उसकी रिपोर्ट पर कई बार डॉट-फटकार भुगत चुके थे। शादी के बाद परिवर्तन उसमें यह हुआ है कि अपने भाइयों के प्रति काफी स्नेहशील हो गई है और अब दूसरों से उनकी थोड़ी-सी शिकायत नहीं सुन सकती ।

सीतानाथ के पश्चात तीनों भाई- नीलेश, वीरेश और सुरेश एक साथ खाने के लिए बैठे। ऐसा पहली बार हो रहा था, वह भी नीलेश के कहने पर। जब से नीलेश आया है, वीरेश ऐसे एकान्त अवसर की प्रतीक्षा में था, जब वह विस्तार से आन्दोलन की सभी बातें बता सके, जिनमें उसने भी भाग लिया था और अब भी शामिल है। उनमें कुछ ऐसी गुप्त बातें भी थीं, जो वह घर में नीलेश को छोड़कर और किसी दूसरे के सामने नहीं कहना चाहता था, चाहे वह सुरेश जैसा भाई ही क्यों न हो। इसीलिए सुरेश को साथ में लेकर भोजन करने का नीलेश का प्रस्ताव उसे पसन्द नहीं आया।

लेकिन सुरेश दिन में और इस समय भी काफी दौड़ा-धूपा था, जिससे थककर चूर-चूर हो रहा था। नीलेश ने उसकी हालत भाँपकर भोजन समाप्त होते ही कहा "सुरेश, तुम थक गए हो, जाकर सो रहो।"

वीरेश इस प्रस्ताव से बड़ा खुश हुआ। उसके बेहद गम्भीर चेहरे तथा मतलब-भरी दृष्टि से नीलेश ने पहले ही उसकी मंशा समझा ली थी, अतः सुरेश के जाते ही उसने कहा :

"वीरेश, ऊपर छत पर चलकर कुछ देर टहलते हैं। ठीक है? अगर सोना चाहते हो तो कोई बात नहीं; जाकर सो रहो।"

"मुझे तो देर से सोने की आदत है। बोर्ड के इम्तहान कितने महीने रह ही गए हैं?"

"कब तक सोते हो ?"

"यही एक-डेढ़ बजे तक। आदमी सोचता है इम्तहान तक पूरा कोर्स तीन-चार बार पूरा कर ते, कुछ छूट न जाए। संयुक्त प्रान्त के टॉप करनेवाले लड़कों से मुकाबला है न। हाँ, इधर रुकावट आ गई है..." वीरेश ने मुस्कुराकर उसकी तरफ देखा।

"क्या रुकावट है ? अच्छा ठहरो, ऊपर चलते हैं, वहाँ विस्तार से बातें होंगी..."

छत पर पहुँचकर वे चहारदीवारी के सहारे खड़े हो गए। आकाश में बादल तो जरूर थे, लेकिन बीच-बीच में फटे हुए, जिससे खुशनुमा चाँदनी किसी खूबसूरत, रहस्यमय जीवन की तरह फैली हुई थी। यह ऐसा माहौल था, जिसने वीरेश का उत्साह काफी बढ़ा दिया। उसने देशमुक्ति की भावना से रोमांचित होकर कहा कि 'जब देश की जनता अपनी आजादी के लिए जीवन-मौत की लड़ाई लड़ रही है, आदमी कैसे उदासीन बैठा रह सकता है! आदमी के प्रयास से ही जगदम्बिका, शम्भू और पिलपिली आगे आए और गवर्नमेंट स्कूल में सफल हड़ताल हुई, छात्रों का विशाल प्रदर्शन हुआ। अब ये लड़के देश के लिए जान देने को तैयार हैं। आदमी रमाशंकर के सम्पर्क में है और एक दिन गाँव की तरफ भी गया था। वहाँ लोग डाकखाना, थाना और दूसरे सरकारी दफ्तरों पर हमले कर रहे हैं। इन स्थानों पर, कांग्रेस के नेतृत्व में लोग कब्जा करके सभी सरकारी कागजात जला देते

हैं। आदमी यह सब अपनी आँखों से देख चुका है।"

नीलेश आश्चर्य से आँखें फाड़कर यह सब सुन रहा था। किचिंत क्रोध का भी उसने अनुभव किया अन्दर से उठता हुआ क्यों ? क्या इसलिए कि दो दिन का लड़का कुछ साधारण राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेकर अपने को काफी महत्त्वपूर्ण समझ रहा है? क्या यह बताना चाहता है कि नीलेश बनारस में रहकर जब कुछ नहीं कर सका, स्वयं उसने आन्दोलन की कई योजनाओं को अंजाम दिया है और उसका उन लोगों से भी अधिक गहरा सम्पर्क है, जो नीलेश के साथी रहे हैं। नीलेश के अन्दर अपने छोटे भाई के पति ईर्ष्या का भाव कब उत्पन्न हो गया, यह जान भी नहीं पाया वह। अपने विस्तृत विवरण के अन्त में जब वीरेश ने दयाशंकर से होनेवाली मुलाकातों के बारे में बताया तो अपने ईर्ष्या-जनित क्रोध को जब्त नहीं कर सका नीलेश।

"क्रान्तिकारी भी अलग अपना काम कर रहे हैं। दयाशंकर भैया का बड़े-बड़े क्रान्तिकारियों से साथ है. और वे डाके डालकर हथियार के लिए पैसे इकटठे कर रहे हैं। उन्होंने छाता गाँव में डाका डाला है। काफी रुपए मिले हैं उनको। एक दिन पहले दयाशंकर मिले थे. मुझसे भी कहा था चलने को..." वीरेश ने बताया था।

"डाका डालने के लिए," नीलेश ने क्रोध से घूरते हुए कहा।

"हाँ... मैंने..."

"तुमने जो भी जवाब दिया हो, यह मैं नहीं सुनना चाहता। मुझे ऐसा लगता है, थोड़े-से बचकाने काम करके तुम अपने को देश का बड़ा नेता समझ रहे हो ! लेकिन यहाँ आकर मैंने तुम्हारी असलियत देख ली है। घर में लोग जब इतना कष्ट भुगत रहे थे, सुरेश दिन-रात उधार-सामान ताने के लिए दुकानों के चक्कर लगा रहा था, तुम अपने घमंड में चूर निष्क्रिय बने रहे। देश के लिए काम तो ठीक है, मगर क्या घर-परिवार के कष्टों से उदासीन हुआ जा सकता है? सही काम समझने की बुद्धि भी नहीं है तुम्हारे पास। सारा देश जब उठ खड़ा हुआ है, उस समय डकैती जैसे क्षुद्र काम करने का क्या तुक है ? तुम्हारा क्या बनता उससे ? जब इतनी समझ नहीं है तो अच्छा होगा, तुम अपनी पढ़ाई में ही ध्यान लगाओ।"

40

नीलेश को रात-भर नींद नहीं आई। उसके सामने बार-बार वीरेश का अपमान से कुठित चेहरा उभर आता। कुछ मामूली कार्यों और संकल्पों के बल पर अपने को महान देशभक्त और छोटे भाई को तुच्छ समझकर उसके उत्साह-उमंग को रोकने की कोशिश करना क्या उचित है? पश्चाताप से इतना व्याकुल हो गया कि सवेरे उठते ही वीरेश को अपने पास बुलाकर पूछा उसने ही

"क्या, तुम नाराज हो ?"

"मैं किसी पर नाराज नहीं होता, कोई क्या कहता है, इसकी परवाह नहीं करता...।" वीरेश का चेहरा कड़वाहट से तमतमाने लगा और गर्दन तनकर टेढ़ी हो गई। "मैं कल की बातों के लिए शर्मिन्दा हूँ... पता नहीं क्या हो गया था मुझे..."

वीरेश के पतले-पतले होंठ व्यंग्य-विष में लटककर संकुचित हो गए। नीलेश रतजगी से हुई अपनी लाल-लाल आँखें फैलाकर छोटे भाई को देखने लगा। उसे आज प्रथम बार महसूस हुआ कि उम्र में छोटा होने पर भी, वीरेश बड़ा हो गया है और वह भी स्वाभिमान, समानता तथा जीवन में कुछ सार्थक करने की बढ़ती हुई इच्छा के साथ। और अब समय गया, जब बड़े भाई के नाते वह आश्वस्त और आत्मतुष्ट तानाशाह की लापरवाही के साथ वीरेश को कोई आदेश दे देता या

डॉट-फटकार देता था। वह सोचकर दुःखी हो गया कि कितना निर्मम है अपने से छोटे. निर्बल और आज्ञाकारी से सदभावना-रहित अलोकतान्त्रिक व्यवहार करना। उसे याद आई अपने बचपन की

पिताजी की डॉट-फटकार, जो उस समय भी अच्छी नहीं लगी थी. जिससे वह कृठित और भयभीत हो जाया करता था।

"बीरेश," वह कंपित स्वर में बोला, "मुझे माफ करो... मुझसे गलती हो गई। हो सकता है. मैं चाहता था कि तुम हर बात से ध्यान हटाकर सिर्फ पढाई पर अपनी शक्ति केन्द्रित करो। देश की आजादी के लिए मैं कुछ करना चाहता हूँ... तुम भी उसी लाइन में लगोगे... मान लो. मुझे कुछ हो गया तो बाबूजी के साथ कौन खड़ा होगा? दूसरे भाई अभी छोटे हैं, उन्हें सँभालना भी है। खैर, अब तुम स्वतन्त्र हो, यह अच्छी बात है कि तुम देश के बारे में सोच रहे हो. और उसकी आजादी के लिए कुछ करना चाहते हो। मैं यह जानकर खुश भी हूँ कि तुमने आगे बढ़कर कुछ सार्थक किया भी है। सच बात तो यह है कि देश का हर व्यक्ति परिश्रम और त्याग करेगा, तभी वह आजाद पाएगा, तरक्की कर सकेगा। तुमको भी देशसेवा का उतना ही अधिकार है, जितना मुझे या किसी और को। आशा है, तुम मेरी बातों को भूल जाओगे-एक क्षण के लिए भी याद नहीं करोगे, जैसे कुछ हुआ ही न हो...।" हो

परन्तु, रात से ही अपमान और क्रोध से जलता वीरेश इस स्थिति के लिए तैयार नहीं था। बड़े भाई की पश्चाताप-भरी स्वीकारोक्ति के कारण वीरेश की हृदय की गहराई में विद्यमान श्रद्धा, आदर और प्रेम के भाव ऊपर आने के लिए मचलने लगे, जिन पर नियन्त्रण की कोशिश में उसका मुँह लाल हो गया और उसकी रेखाएँ विकृत। परन्तु कमजोर बाँध शीघ्र ही टूट गया और वह दोनों हाथों के कटोरे में मुँह छिपाकर फफकने लगा। नीलेश ने किंकर्तव्यविमूढ़ होकर उसे देखा, लेकिन वह बड़े भाई की कोई बात सुनने के पहले ही आँखें पोंछते हुए कमरे से बाहर निकल गया।

मौसम कुछ-कुछ ठीक चल रहा है यानी कई दिनों से तेज बारिश नहीं हुई है। बादल अवश्य ही घिरकर गाढ़े हो जाते हैं, यदि कभी दो-चार बूँदें गिरती भी हैं तो हवा शीघ्र ही उड़ा ले जाती है, जिससे बीच-बीच में नीला आकाश दिखाई देने लगता है। शहर में एक बेचैन सन्नाटा छाया है, लेकिन गाँवों में घटनाएँ तेजी से घट रही हैं, जिन पर नियन्त्रण रखने में जिला प्रशासन पूरी तरह असमर्थ। लाठी-चार्ज के बाद शहर में कोई वैसा बड़ा जुलूस तो नहीं निकल पाया है, किन्तु गलियों में अथवा अन्य महत्त्वहीन जगहों पर छोटे-छोटे जुलूस अचानक प्रकट होकर नारे लगाते हैं और पुलिस आगमन के पूर्व ही बिखरकर गायब हो जाते हैं।

प्रशासन बेहद घबराया हुआ है। गाँवों में आन्दोलन दिन-पर-दिन तेज होता गया है और जिले के विभिन्न थानों में सिपाही भेजने से पुलिस बल कम पड़ गया है और रेल पटरियाँ उखाड़े जाने तथा तार काटे जाने से कमिश्नरी अथवा अन्य किसी जिला मुख्यालय से सम्पर्क करके कुमुक मँगाना सम्भव नहीं हो पा रहा है। ऐसी हालत में प्रशासन अपनी कमजोरी छिपाने की जी तोड़ कोशिश कर रहा है। धारा 144 तो पहले से ही लागू कर दी गई है. इसके साथ ही पाँच-छह सशस्त्र पुलिस सिपाही और एक मजिस्टेट को लेकर एक लॉरी डेढ़-दो घंटे के अन्तर से शहर का चक्कर लगाने लगी है। प्रशासन स्वयं डरा हुआ है. इसीलिए वह शहर की जनता में भय और आतंक फैला रहा है। ऐसी ही मनःस्थिति में

सवेरे सवेरे घूमने टहलनेवाले एक अत्यन्त बूढे वकील उनकी गोली का शिकार होकर स्वर्ग सिधार चुके हैं।

हाँ. प्रशासन का सन्तुलन बेहद गड़बड़ा गया है। हर दिन और हर जगह उठते और बढ़ते हुए जन-ज्यार से वह सीमित दर्बल और क्षीण हो रहा है। वह शक्ति का जैसा प्रदर्शन करना चाहता है. वैसा कर तो नहीं पा रहा है. फिर भी उसे अंग्रेजों की अजेय शक्ति पर दृढ़ विश्वास है कि शीघ्र ही वे फौज के साथ आ जाएँगे और यह आन्दोलन कड़ाई से दबा दिया जाएगा-फिर तो अगले

सौ वर्ष तक कोई सिर उठाने की हिम्मत नहीं करेगा। हाँ, प्रशासन बेसब्री से प्रतीक्षा कर रहा है, लेकिन कब तक ? प्रतीक्षा की घड़ियाँ लम्बी होती जा रही हैं। और एक दिन जब शहर का छोटा डाकखाना और जहाज घाट का कार्यालय फूंक दिया गया तो जिला प्रशासन की असमर्थता और असहायता जग जाहिर हो गई। कठिनाई तो यह है कि गुप्तचर विभाग के इंस्पेक्टर जितेन्द्रल' और मनव्वर अली तथा उनके सहायक कर्मचारी एवं मुखबिर पहले से कुछ भी नहीं बता पाए और वाद में भी पता नहीं लगा सके कि इन वारदातों में किन लोगों का हाथ है।

नीलेश कल रात में घर आते ही शहर और जिले की घटनाओं की जवानी रिपोर्ट सुन चुका है। अस्पताल घाट से रास्ते में उसे कुछ आशंका हुई थी, मगर रास्ते में पुलिस लॉरी का न मिलना एक संयोग ही है। वह तेजी से फैलती इस निर्णायक दौर में पहुँचती हुई आजादी की लड़ाई में अपना सर्वस्व बलिदान करने को व्याकुल हो उठा। सुबह से ही यह दो यार यमपुलिस गली में जाकर रमाशंकर से मिलने की कोशिश कर चुका है, मगर वह घर पर कहाँ रहते हैं? अजीब सन्नाटा है उसके घर के सामने से गुजरनेवाली कंकड़ की धूल-भरी सड़क पर। कहाँ छिप गए हैं लोग? सिर्फ आवारा पशुओं की चहलकदमी।

वह अब स्वयं बाहर के बैठके में दरवाजा भीतर से बन्द करके बैठा खिड़की से सड़क को निहारने लगा। सामने सड़क के उस पार नम्रता का घर बन्द है, कोई खिड़की भी नहीं खुली है, जैसे वे रात में नाव से उतरकर घर पहुँचे ही न हों। वह अधीर होकर फिर उठ खड़ा हुआ और कमरे से बाहर गलियारे का दरवाजा धीर-से खोलने और बाहर से उठंगाने के बाद जल्दी-जल्दी बमपुलिस गली के मुहाने की तरफ बढ़ चला।

सम्भवतः प्रत्येक बड़े या छोटे शहर में इस तरह की गली जरूर होती है, फिर भी वह जमके हुए नालियों के काले कीचड़, कूड़ा-करकट की अव्यवस्था, बड़े-बड़े मच्छरों की भनमनाहट और असह्य दुर्गन्ध के मामले में बीस ही पड़ेगी। वह नाक पर रूमाल रखकर कुछ आगे बढ़ा होगा किं पता नहीं किस मकान से एक छोकरा निकलकर सामने आ गया और भुल-से हँसकर अपने बड़े-बड़े दाँत प्रदर्शित करते हुए बोला :

"बाहर सड़क पर सब ठीक-ठाक है न भाईजी? पुलिस की लॉरी चली गई? घर में कुछ खाने को नहीं है, सड़क पर एक बनिया है... उससे उधार चलता है, दुकान खुलवाकर कुछ लाऊँगा।" "अरे जाओ न... सँभलकर जाना। सन्नाटा इतना है कि किसी लॉरी के आने की आवाज दूर से ही सुनाई पड़ जाती है...।"

"सुना तो यह है भाईजी, आज कुछ देर के लिए गुदड़ी बाजार खुलेगा। रमाशंकर खुलवाएँगे। लोग इन्तजार में हैं, पुलिस की लॉरी जहाँ राउंड करके गई, दुकानें खुल जाएँगी। बनिया लोग तैयार हैं, वहाँ से माल लाकर दुकान पर रख देंगे, तभी तो मोहल्ले-टोला का काम चलेगा। हम वहाँ क्या जाएँ, थोड़ा सामान लेना है, सड़कवाले बनिया से ले लेंगे... डर भी लग रहा है...।"

"इतना डरोगे तो अपने देश को आजाद कैसे करोगे? कर्फ्यू थोड़े ही लगा है ? धारा 144 लगी है, जिससे पाँच आदमी एक जगह इकट्ठे न हों..."

नीलेश की बात से छोकरे की बड़ी-बड़ी आँखें अचम्भे से बाहर निकल आईं, "कर्फ्यू में क्या होता है भाईजी ?"

"कर्फ्यू में घर से बाहर निकले पर रोक होती है, निकलने पर गोली मारी जा सकती है।" "भाईजी, गुदड़ी बाजार खुलने पर पाँच से अधिक आदमी एक जगह इकट्ठे नहीं होंगे ?" "देखो भाई, गुदड़ी बाजार खुलेगा या नहीं खुलेगा, मुझे नहीं मालूम। बाजार तो इसलिए नहीं खुल रहा है कि हड़ताल चल रही है, आन्दोलन चल रहा है, अगर खुलता भी है तो काम चलाने के लिए कुछ देर तक खोलकर बन्द कर दिया जाएगा। जनता की परेशानी दूर करने के लिए जब

यह सब किया जा रहा है तो पुलिस भी क्यों बोलेगी ? सरकार भी तो चाहती है कि हड़ताल खत्म हो । डरो मत, होशियारी से अपना काम करो...।"

नीलेश मुँह सीधा करके आगे बढ़ गया। शरीर की नसों की तरह ही हैं इस शहर की गलियाँ जा सकता है। बीच में यदि कोई सड़क रास्ता काट भी देती है तो सामने दूसरी तरफ कोई अन्य जो हर दिशा में हर जगह जाती हैं। स्टेशन से निकलकर गली-गली सरयू तट तक आसानी से पहुँचा गली मुँह बाए स्वागत के लिए प्रतीक्षातर विद्यमान रहती है। इस समय मुख्य रूप से गलियों में ही आवाज हो रही हैं। सभी पैर दबाकर चल रहे हैं दाएँ-वाएँ चौकन्ना होकर देखते हुए कुत्तों की तरह। ऐसा नहीं है कि सड़कों पर चलनेवाले दिखाई नहीं देते कुछ साहसी लोग, अनजान ग्रामीण पैदल मुसाफिर, मजूर और कामवालियाँ। नीलेश का प्रत्येक गली से परिचय है और गुदड़ी बाजार से पहले ही दाई तरफ की एक छोटी सँकरी गली में घुसकर गोबर्धन के गोले तक पहुँचने में कोई असुविधा नहीं हुई उसे। गोले का फाटक भीतर से बन्द है। दरबान रामदीन उसे पहचानता है। ताला खोलते हुए कहता

"मालिक, समय खराब है। समाचार है न ?"

हाँ-हाँ, कोई बात नहीं। मैं बनारस से कल ही आया हूँ। गोवर्धन बाबू हैं न ?"

" "हाँ सरकार, ऊपर बैठकर मुनीमजी से हिसाव किताब समझ रहे हैं। दो दिन पहले ही तो बंगाल से आए हैं।"

गोला के बड़े अहाते में सामान्य कारोबारी दिनों की तरह चहल-पहल नहीं है। न वैलगाड़ियाँ, न बोरों के टीले और न ही मोटिया मजूरों का हो-हल्ला। गद्दी भी बन्द। जब वह ऊपर के कमरे में पहुँचा, गोबर्धन तख्त पर बीच में बैठा सामने खुली बही पर मुँह झुकाए हुए था और उसके सामने किनारे मुनीम भी। दोनों ही किसी हिसाब-किताब की उलझन में खोए हैं और उनके माथे और नाक पर पसीने की छोटी-छोटी बूँदें चमक रही हैं।

"नमस्कार भाई, माफ करना..."

गोबर्धन ने सिर उठाकर किंचित आश्चर्य-भरी रूखाई से देखा, जिसके बाद पल-भर में ही उसके मुख पर खुशी की आभा फैल गई, "अरे तुम ? कब आए? आओ, आओ...।" वह नीचे उतरकर तथा आगे बढ़कर और नीलेश का हाथ पकड़कर बोला, "यार, खूब आए... मैं तो इस जिन्दगी में बुरी तरह फँस गया हूँ, फुरसत ही नहीं मिलती। इन्हीं चक्करों की वजह से तुम्हारी चिट्ठी का जवाब नहीं दे सका...खैर, मैं अभी फुरसत पा जाता हूँ... तब तक तुम उधर चलकर गप्पें लड़ाओ...।"

"दोस्त, मैं गप्पें लड़ाने नहीं आया हूँ... मैं शहर का हाल जानने को व्याकुल हो रहा हूँ, लोगों से मिलना चाहता हूँ, कोई मिलता ही नहीं। यही सोचकर आया हूँ कि तुमसे सबकुछ मालूम हो जाएगा..."

"ठीक है, मैं अभी आता हूँ, तुम तब तक उधर बैठो।" हाथ पकड़े-पकड़े वह नीलेश को बगलवाले कमरे में ले गया, जो वहीं से पच्चीस कदम दूर है। और उसे आगे ठेलकर हँसते हुए बोला : तुम्हारी ही रट लगी रहती है। खैर, तुम बात करो मैं एक जरूरी काम निबटाकर फौरन पहुँचता "देखो भई, यह रहे तुम्हारे नीलेश देवरजी। सँभालो इनको। अरे यार, जब से तुम गए हो, हाँ, खाना साथ खाएँगे, बताए देता हूँ... एक बात और, एक मिनट के लिए बाहर चलो तो..." वह फिर हाथ पकड़कर नीलेश को कमरे के बाहर ले गया और फसफसाई आवाज में बोला, "दोस्त, एक बात बताओ. संकोच न करना... बाबूजी की कचहरी बन्द है. हडताल की वजह से दकानें भी नहीं

नहीं खुल रही हैं... कोई दिक्कत, कोई जरूरत किसी भी तरह की...।" "नहीं... ऐसी कोई बात नहीं..." नीलेश मन-ही-मन संकुचित हो गया और उसकी भौंहें भी कुछ

सिकुड़ गईं।

" मेरे पास आदमी-जन हैं, कोई समान..."

" "अब जाओ, कुछ देर तक राजलक्ष्मी से बात करो, मैं जल्दी ही आता हूँ..."

नहीं गोबर्धन...।" नीलेश दूसरी तरफ देखने लगा होंठ सिकोड़कर।

नीलेश चलने को हुआ, लेकिन सहसा उसके कदम आगे नहीं बढ़े, जबकि गोवर्धन व्यस्ततापूर्वक जल्दी-जल्दी अपने कमरे की तरह जाते हुए अन्तर्धान हो गया। अब उसे अपने उस पत्र की एक-एक पंक्ति फिर याद आने लगी, जो उसने बनारस से गोवर्धन के पास लिखा था :

'मुझे उस दिन की बातें याद आ रही हैं, जब मुझे तुम दोनों का स्नेह मिला था। तुम उम्र में दो-तीन साल बड़े हो, इसलिए मेरे बड़े भाई भी हो, इसी नाते महाराजलक्ष्मी भाभी मेरे लिए पूज्य हैं, देवी की तरह, माँ की तरह। बस यही अनुरोध है कि मुझे अपने स्नेह और सहारे से कभी मुझसे वंचित न करना तुम दोनों...'

सहसा नीलेश को बड़ी शर्म आई। उसे विश्वास ही नहीं हुआ कि ऐसी बचकानी चिट्ठी उसने कभी लिखी भी थी। क्या उस पत्र की अन्तिम दो पंक्तियों की वजह से ही गोवर्धन ने आर्थिक मदद की पेशकश की है इस समय ? उसके प्रति कोई दया-भाव ? यह काठ हो गया यह सब सोचकर। इच्छा हुई कि फौरन घूमकर चल दे यहाँ से, लेकिन आश्चर्य है कि यह खयाल आते ही उसके पाँव महाराजलक्ष्मी के कमरे की तरफ बढ़ने लगे।

महाराजलक्ष्मी दरवाजे की तरफ ही देख रही थी, उसकी आँखों और खुले-से होंठों में उत्सुकता-भरी बेचैन-सी प्रतीक्षा थी। नीलेश ने झट अपनी आँखें दूसरी ओर फेर लीं, मुख भी विपरीत दिशा में मुड़ गया, लेकिन नमस्कार के लिए जुड़े हुए हाथ ललाट के एक किनारे को स्पर्श करते हुए वक्रता के साथ महाराजलक्ष्मी की तरफ उन्मुख ।

वे दोनों ही कमरे, जिनमें महाराजलक्ष्मी और गोवर्धन बैठे हैं अब हल्के, साफ-सुथरे और मद्धिम हरे रंग की पुताई से एक अनोखी आभा बिखेर रहे हैं। महाराजलक्ष्मी के कमरे में एक बड़ा पलंग बिछा है, एक मोटे गद्देदार बिस्तर पर छींटोंवाली रंगीन, खुशनुमा चादर के साथ। दाहिनी तरफ दीवार से सटाकर तीन कुर्सियाँ रखी हैं। वह पलंग के किनारे ही बैठी लाल कवरवाली एक बही का अवलोकन कर रही थी, जो अब सामने की एक छोटी मेज पर बन्द करके रख दी गई है। इसका अर्थ स्पष्ट है कि वह अपने पति के कार्य में अपना पूरा सहयोग दे रही है-उस अनुभव का भी लाभ, जो उसे अपने मैके से मिला था।

नीलेश जब आगे बढ़कर एक कुर्सी पर बैठ गया, महाराजलक्ष्मी की आँखों में एक ज्योति जल उठी-और यह किसी भावना से अभिभूत होकर मचलती हुई शीघ्रता से पलंग से उतरकर नीलेश के पास पहुँच

गई। उसने सामने खड़े होकर तत्काल नीलेश के सिर को अपनी तरफ खींचकर अपने शरीर से सटा लिया और उसके काले बालों में अपने दोनों हाथ बार-बार फिराते हुए अस्पष्ट स्वर में कहा :

"तुम कब आए नीलेश, पहले चिट्ठी क्यों नहीं लिखी ?... मैं हमेशा तुम्हें याद करती हूँ..." महाराजलक्ष्मी से ऐसे व्यवहार की कल्पना भी नहीं कर सकता था नीलेश। यह सब अच्छा नहीं लगा, साथ ही घबराहट भी हुई, फिर भी कोई प्रतिवाद नहीं कर सका, यहाँ तक कि सिर पीछे करने में भी असमर्थ। महाराजलक्ष्मी उसे घेरे हुए थी, जिसके वक्ष प्रदेश के नीचे मुखस्पर्श से रेशमी साड़ी की फिसलन में उसकी साँस घुट-घुट जा रही थी।

महाराजलक्ष्मी बुदबुदाए जा रही है, "में हर रोज तुम्हारा इन्तजार कर रही थी, नीलेश। जब से तुम्हारी चिट्ठी मिली है, मैं बहुत खुश हूँ...तुमसे बहुत कुछ कहना चाहती हूँ, मेरे प्यारे देवरजी....।"

अचानक उसका बोलना बन्द हो गया। उसने त्वरित गति से सिर घुमाकर दरवाजे की तरफ देखा, फिर नीलेश से अलग होकर बगलवाली कुर्सी पर बैठ गई।

"पानी लाऊँ ?" उसके स्वर में अब कोई उत्साह या उद्वेग और उत्तेजना नहीं रह गई थी। "नहीं..." नीलेश को आश्चर्य हुआ कि भीतर घबराहट भरी नाराजगी होते हुए भी वह मुस्कुरा रहा है।

"ठीक है... ये अभी आते होंगे... काम तो होता रहता है। हड़ताल होने से बैठने की फुरसत मिली है। मैं भी इनका साथ दे देती हैं। ये तो बहुत कम घर पर रहते हैं... बहुत कुछ बिगड़ गया था, दूर-दूर तक जाना पड़ता है अच्छा असर पड़ा है इसका। मैं तो बहुत अकेली पड़ जाती हैं। नीलेश मैं तुमसे बहुत कुछ कहना चाहती हूँ एक दोस्त की तरह...।"

इन शब्दों से नीलेश को ऐसी अरुचि और असुविधा महसूस हई कि वह जान-बूझकर खाँसने लंगा, गोया कोई बात सुनाई ही न पड़ी हो। महाराजलक्ष्मी के शरीर की पसीनाई गर्मी में लियडे-से 'नीलेश' और 'दोस्त' शब्द उसके दिमाग में चक्कर काटने लगे। उम्र में बड़ा हो या छोटा, जब कोई व्यक्ति दोस्त मान लिया जाता है तो उससे एक गहरा और पवित्र रिश्ता बन जाता है-इसी वजह से उसने गोबर्धन की पत्नी को भाभी के ऊँचे पद पर बिठाया, लेकिन महाराजलक्ष्मी ने उसको नकारकर अपने पति की अनुपस्थिति में एक अजीब ढंग का व्यवहार करने के बाद उससे मैत्री सम्बन्ध की पेशकश क्यों की है ? कुछ दिन पूर्व मित्र को लिखी चिट्ठी में व्यक्त सरल, सच्ची भावनाओं के बहाने अनुचित स्वतन्त्रता लेकर निस्संकोच उसके निकट पहुँचने का प्रयास क्यों ? यह सब सोचकर वह शर्म से गड़ने लगा-कुछ वैसी ही भावना, जब बचपन में उसकी माँ उसे किसी दूसरे के घर ले जाती तो वह सिर झुकाकर बैठा रहता, भूलकर भी किसी की ओर नहीं देखता और न ही किसी की बात का जवाब देता। इस समय भी वह सिर झुकाकर बैठा था। मौन-और फिर भी, उसको अपनी ही दृष्टि में अपना आचरण बेहद खटक रहा था, साहसविहीन, दब्बू और अनुचित को स्वीकार करता हुआ।

"हाँ, मुझे भी मित्र समझो, देवरजी," नीलेश को जैसे नेपथ्य से आवाज आती सुनाई पड़ी, "क्या स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध एक ही तरह का होता है, इससे भिन्न नहीं हो सकता एक सच्चे मित्र की तरह ? निःस्वार्थ भाव से एक-दूसरे को सहारा और भावनात्मक तथा वैचारिक मजबूती देना। भाभी-देवर का रिश्ता तो अपनी जगह है, मगर मैं तुमको उससे ऊपर का दर्जा देना चाहती हूँ, जिसमें किसी अन्य के सम्बन्ध का योगदान न होकर मेरे स्वतन्त्र निश्चय की भूमिका है। मैं एकदम अकेली हो गई हूँ, नीलेश... हमेशा लगता है, मेरा कोई पीछा कर रहा है, मेरी जिन्दगी बरबाद करना चाहता है। मैं कोई अच्छी बात क्यों नहीं सोच पाती...दूसरों के लिए बुरे विचार क्यों आते हैं मुझे ? मैं बहुत दुःखी हूँ, ऐसे में क्या करूँ नीलेश ?"

महाराजलक्ष्मी की वाणी अवरुद्ध हो गई। और सिर झुकाकर मुँह आँचल से ढक लिया था उसने। नीलेश ने चौंककर पहले उसे, फिर अपने दाएँ-बाएँ देखा, जैसे चैतन्य हो गया हो। अभी कुछ क्षण पहले यह संकुचित हो गया था कि यह स्त्री अपने पति द्वारा उपेक्षित होकर, किसी लालसा में सीमा का उल्लंघन कर रही है; किन्तु अब कुछ-कुछ महसूस हो रहा है कि यह शायद सचमुच दुःखी है...।

"क्यों ? ऐसा क्यों ?" जैसे अनजान में ही उसके मुँह से आवाज निकली, जो स्वयं उसे ही अनोखी लगी, जैसे कुछ दूसरा ही बोल रहा हो।

"हाँ. मैं दुःखी हैं. जैसे किसी अभिशाप को भोगने के लिए मेरा जन्म हुआ है। मैं वह नहीं वैसे मुझे सभी भीतिक सुख प्राप्त हैं. जो एक स्त्री को मिलने चाहिए, लेकिन..." महाराजलक्ष्मी सहसा हूँ, नीलेश जो मैं होना चाहती हैं। शादी की पहली ही रात से एक दुःस्वप्न मेरा पीछा कर रहा है।

चुप होकर दरवाजे की तरफ देखने लगी।

"मैं भी तो यही सोचता हूँ कि इतना सम्पन्न परियार है, इतने अच्छे लोग हैं, कमी किस यात की है ?" नीलेश का तनाव ढीला पड़ रहा था और वह एक संयत सहानुभूति के साथ अपनी भावना प्रकट करने की कोशिश करता हुआ मुस्कुरा रहा था, जैसे सदा से ही वह ऐसा रहा हो, दुर्भावना और कटुता से दूर।

"हाँ, इतना सब होते हुए भी में अपने को अकेला महसूस कर रही हूँ, लगता है कि सबकुछ होते हुए भी कुछ भी नहीं है। क्यों है ऐसा? क्या इसीलिए मेरे मन में किसी के सम्बन्ध में अच्छी बात नहीं आती ? ये मुझे इतना मानते हैं, मेरी छोटी-से-छोटी बात भी नहीं टालते... और मैं चाहती हूँ कि ये काम में इतने व्यस्त रहें कि और कुछ सोचने की फुरसत नहीं मिले इन्हें। मैं बार-वार बाहर जाकर कारोबार को व्यवस्थित और विकसित करने की नसीहत देती रहती हूँ। इनसे एक-एक पाई का नफा-नुकसान पूछती रहती हूँ। ये बहुत उदार हैं, खर्चीले भी हैं, में इन्हें अपने मन से एक पैसा भी खर्च करने नहीं देती-किसी को मदद करने भी नहीं देती। ये कांग्रेस को और दूसरी क्रान्तिकारी पार्टियों को गुप्त चन्दा

देते थे, मैंने सब बन्द करा दिया है। कभी-कभी लगता है में इन पर अन्याय कर रही हूँ, इनकी स्वाभाविकता छीन रही हूँ... मगर ये कुछ भी नहीं कहते, हमेशा मुस्कुराते रहते हैं, चुपचाप वही करते हैं जो मैं कहती हूँ। समर्पण की उनकी उदारता से बुद्धिमत्ता के आत्मगौरव से उत्साहित होकर और भी निर्मम क्यों हो जाती हूँ मैं ?"

महाराजलक्ष्मी की वाणी पुनः भीतर उठते हुए रुदन से भर्राकर अवश हो गई। वह आँखों को हाथ से ढककर अपनी भावनाओं को नियन्त्रित करने की कोशिश करने लगी। नीलेश चकित किन्तु नासमझी के भाव से उसे देख रहा था, कुछ-कुछ यह महसूस करता हुआ कि यदि निश्चिन्तता के साथ विचार करने का अवसर प्राप्त हो तो भीतरी अर्थ पर लगे हुए भारी ताले को वह खोल सकता है।

सिर उठाने पर महाराजलक्ष्मी की आँखें ललछऊँ नजर आने लगीं। उसने दबे स्वर में अपना कथन जारी रखा, "मैंने इनसे कहा कि कारोबार चलाना हो तो सरकार से विरोध ठानना बन्द कीजिए। बनिया हाकिम से रार मोल लेगा तो धन्धा क्या करेगा ? हर बनिया यह सब जानता है, पता नहीं इन्हें क्या हो गया था। खैर, ये भी अब मानने लगे हैं। मैं बनिया की पुत्री हैं, अपने मैके में सबकुछ देखा है मैंने, मेरी कारोबारी बुद्धि को मेरे ससुरजी भी पसन्द करते हैं। सचमुच में हमेशा चौकन्नी रहती हूँ, नीलेश। सदा फायदे की बात सोचती हूँ, कर्मचारियों, नौकर-चाकर पर कड़ी नजर रखती हूँ। मेरी बात कोई नहीं टालता, मेरी आज्ञा का पालन होता है। एक स्त्री को और क्या चाहिए ?"

वह कुछ देर तक फर्श को निहारती रही, फिर बोली, "मैं क्यों ऐसा करती हूँ, मगर ये कुछ भी नहीं बोलते। बड़ी मेहनत करते हैं ये। फिर भी, हर विवाहित और अविवाहित जवान, सुखी स्त्री से जलती रहती हूँ। यहाँ या मैके में अनेक स्त्रियाँ मिलने आती हैं, ऊपर से मैं प्रेम और उत्साह से बोलती हूँ, अन्दर से जलन-कुढ़न से बेचैन रहती हूँ। उनकी छोटी-छोटी खुशी, उनकी हँसी, उनकी तन्दुरुस्ती, उनकी सरलता, उनकी सुन्दरता, कुछ भी तो मुझे सहन नहीं होती। बनावटी आत्मीयता से आरम्भ करके जल्दी ही में गम्भीर हो जाती हूँ और कोई-न-कोई बहाना करके वहाँ से उठकर चली जाती हूँ। अब क्या बताऊँ नीलेश, मैं चौका-वर्तन करनेवाली दो औरतों को नौकरी से इसलिए निकाल चुकी हूँ कि ये जवान और सुन्दर थीं! मुझे क्या मिलनेवाला है ऐसे व्यवहार से ? मैं किससे प्रतिशोध ले रही हूँ, अपने से या किसी और से? इसके केन्द्र में मेरी कुंठा है या मेरी कोई उच्चता-ग्रन्थि ? या मैं स्वभाव से ही दुष्ट या ईर्ष्यालु हूँ?"

"ऐसा न कहिए..." नीलेश आँखें फैलाकर उसे गौर से देखने लगा।

"मैं जानती हूँ मुझे इस तरह की बातें नहीं करनी चाहिए। मुझे क्या अधिकार है ? फिर भी, लगे। जब से तुम्हारी चिटठी मिली, मुझे लगता रहा है मैं तुमसे मन की बातें कह सकती हूँ... इस दुनिया में कोई ऐसा नहीं है, जिससे मैं अपने दिल की बात कह सकूँ... बस तुम ही मुझे ऐसा तुम सहानुभूति से सनोगे

और सही राय दोगे। शादी के बाद आए थे, उस समय भी तुमसे सहानुभूति मिली थी... हाँ, दोस्ती की बात कही है मैंने वह झूठ नहीं है, नीलेश... मैं बहुत दुःखी और अकेली

महाराजलक्ष्मी चुप तो हो' गई, लेकिन बीच-बीच में उसने दो-तीन बार घूरती हुई उत्सुक दृष्टि ने देखा, जबकि नीलेश की ओर से कोई उत्तर नहीं मिला। फिर वहाँ एक सन्नाटा उभर आया, जिसके बीच कभी-कभी एक गौरैया की चीं-चीं हस्तक्षेप कर जाती, जो कुछ देर से कमरे के टाँड पर योंसला बनाने के प्रयास में फर्र-फर्र बाहर भीतर कर रही थी। किसी अनजानी जगह पर पहुँचे याक्ति के समान नीलेश बगावती उद्धत भाव से मुँह को तिरछा किए हुए बैठा था, परन्तु इसी समय महसूस हो रहा था उसे, गोया उस ताले की चाभी मिल गई हो, जिसकी वह तलाश कर रहा था। अब उसके अन्दर कारण और परिणाम की एक झीनी तर्क-श्रृंखला लगातार चमकनेवाली बिजली की तरह वास्तविकता को प्रतिभासित कर रही थी। और इस प्रश्न से वह ठगा-सा रह गया कि विवाहित होने पर भी महाराजलक्ष्मी की उम्र एक जवान होती लड़की की ही है और उसके शरीर और मुख की रेखाओं में अतिरेक या विकृति नहीं बल्कि आत्मीय-सा मुस्कुराता, आकर्षक सन्तुलन है, उसकी वाणी में मधुर निश्चयात्मकता; वह साहित्य-प्रेमी है और अपनी भावनाओं को सुन्दर भाषा में अभिव्यक्त कर सकती है-फिर इतना विष उसमें क्यों और कैसे इकट्ठा हो गया ?

निश्चय ही इसका सम्बन्ध शादी-पूर्व उस प्रेम से है, जिसकी कहानी सुहागरात को ही सुनाकर गोबर्धन ने विश्वास-भरा दाम्पत्य जीवन आरम्भ करने की इच्छा प्रकट की थी, किन्तु उसी ने महाराजलक्ष्मी के जीवन को अभिशापों से भर दिया है। वह घोर अविश्वास, ईर्ष्या, प्रतिशोध के जिस भँवर-जाल में फँस गई है, उससे निकलने का रास्ता नीलेश भले ही बता न सके, किन्तु उसकी निरुपाय गहरी पीड़ा को तो वह शायद समझ ही सकता है। फिर भी अपने मित्र की अनुपस्थिति एवं अनभिज्ञता में उसकी पत्नी की मैत्री पेशकश कौन-सा अर्थ दोस्त तक सम्प्रेषित करेगी, यह सोचते ही उसका चेहरा अत्यधिक कठोर हो गया।

किन्तु अचानक महाराजलक्ष्मी ने गिड़गिड़ाती फुसफुसाती आवाज में कहा, "नीलेश, सुनने में आया है, अस्पताल में एक बहुत काबिल लेडी डॉक्टर आई हैं, क्या तुम एक दिन मुझे उसके पास ले चलोगे ? जब हड़ताल-वड़ताल खत्म हो जाए..."

नीलेश उसको आश्चर्य-भरी नासमझी के भाव से देखने लगा, लेकिन उससे पूछने का साहस नहीं हुआ कि यदि वह अस्वस्थ है तो इतने सम्पन्न और समर्थ परिवार की बहू होने पर भी क्या वही मिला है डॉक्टर के पास ले जानेवाला, जबकि उसका बलिया आना एक विशेष परिस्थिति में हुआ है। वह भी अपने घर का बड़ा दुलरुआ लड़का है, जिसके हर सुख, आराम का खयाल रखा जाता है और जिससे इस तरह का काम तो कहा ही नहीं जाता। वह बचपन से ही भावुक और शर्मीला रहा है और घर में कोई व्यावहारिक काम का अवसर उपस्थित होने पर अशक्तता से उसके हाथ-पैर छितराने लगते हैं. यहाँ तक कि शादी-ब्याह पर निजी कर्तव्य पालन अथवा गमी में किसी के प्रति श्रद्धांजलि संवेदना प्रकट करने का समय आने पर उसे लकवा मार जाता है। क्या वह कोई ऐरा-गैरा है कि उसकी

आदर्शवादी उदारता का अनुचित लाभ लेने पर उतर आई है महाराजलक्ष्मी ? क्या यह मेहरारूई चाल नहीं है ?

स्थिति से पलायन के लिए उसकी देह कसमसाने और ऐंठने लगी. जिसमें संयोगवश सहायक हुई गोवर्धन के कक्ष की ओर से आती ऊँचे और उत्तेजित स्वर में बातचीत की आवाज ।

इन्हीं हथियारों से / 359

41

दरबान रामदीन दरवाजे पर खड़ा भा-भायें स्वर में बोल रहा था, "मैं तो सुरती लेने गया था ए यरक्षक फाटक पर सुखई को खड़ा कर दिया था। सुना था, गुदड़ी बाजार खोला गया है...तो ए दादा, बड़ा जुल्म हो गया है... छोटे-छोटे दुकानदार आए थे, सौदा-सुल्फ खरीद रहे थे जल्दी-जल्दी कि एकाएक तड़-तड़ गोली चलने लगी...किसी तरह जान बचाकर आ रहा हूँ...एक आदमी तो पके आम की तरह मेरे पास ही भद से गिर पड़ा...गिरते ही उसकी आँखें ऊपर टैंग गई... दूसरा कुछ दूरी पर गिरा था...दर्द से चिल्लाना चाहता था कि बीच में ही प्राण-पखेरू उड़ गए... मुँह पर दर्द का पूरा निशान बन भी नहीं पाया है, हे काली मैया! कितने मरे, कितने घायल हुए, यह सब देखने का मौका कहाँ था..."

"अच्छा, तुम जाओ..." कमरे के अन्दर से आती गोबर्धन की आवाज में उतनी तेजी और स्पष्टता नहीं थी, "अब किसी से कहना मत। मुनीमजी, अब काम बन्द कीजिए, चलकर नीचे बैठिए, फिर चले जाइएगा... आपको घर पहुँचाने का इन्तजाम हो जाएगा..."

जब गोबर्धन महाराजलक्ष्मी के कमरे में पहुँचा तो नीलेश उठकर दरवाजे पर खड़ा था और चिन्तित दृष्टि से देख रहा था, गोया वहाँ से जाने को तैयार हो।

हूँ..." "मेरा खयाल है, दरबान किसी से सुनकर बात कर रहा है... मैं सही स्थिति का अभी पता लगता

"नहीं गोबर्धन, मुझे फौरन जाना चाहिए। मैंने तो घर में किसी को बताया भी नहीं था, चुपके-से निकल आया कि तुमसे हाल-चाल लेकर जल्दी ही घर लौट जाऊँगा।" सहसा उसका चेहरा गुस्से से तमतमा आया, "यह सरकार जानवर की तरह व्यवहार कर रही है... ऐसे वक्त में मेरे लिए यहाँ बैठकर गप्पें लड़ाना और दावत खाना उचित नहीं है।"

"थोड़ा रुको...।"

"अगर मौका मिला तो फिर आऊँगा..." यह कहकर नीलेश थोड़ा घूमकर महाराजलक्ष्मी, फिर गोबर्धन को वक्र नमस्कार करके कमरे से निकल गया। गोबर्धन अवाक, उसको आवेश में तेजी से जाते हुए

देखता रह गया, फिर स्वयं उसके पीछे तीव्र गति से चल पड़ा और फाटक तक पहुँचते नीलेश के पास जाकर बोला, "तुम अकेले नहीं जाओगे... मैं भी चलता हूँ तुम्हारे साथ...।"

चौंककर नीलेश ने पीछे देखा और उसके होंठ व्यंग्य से टेढ़े हो गए, "मैं नहीं चाहता कि मेरी वजह से तुम किसी संकट में फँस जाओ। तुम इस शहर के बड़े आदमी हो, तुम्हारी पहुँच बड़े-बड़े हाकिमों तक है, तुम धन से हर सुख-सुविधा और सुरक्षा प्राप्त कर सकते हो... लेकिन मेरा रास्ता अलग है। मेरी जगह तो स्वतन्त्रता के लिए लड़नेवाले कांग्रेसियों, क्रान्तिकारियों, साधारण लोगों और असंख्य किसानों-मजदूरों के बीच में है। मैं उन लोगों के साथ हूँ, जिन्हें एक जून की रोटी भी ठीक से नहीं मिलती। मैं जाऊँगा अकेले, चाहे कुछ भी हो...।"

गोवर्धन टेढ़ी, प्रखर दृष्टि से उसे कुछ क्षणों तक घूरता रहा, तत्पश्चात फीकी हँसी के साथ बोला, "तुम ठीक कहते हो शायद... मगर यह सब होते हुए भी तुम मेरे दोस्त हो और मैं तुम्हें अकेले नहीं जाने दूँगा। तुम मेरे घर में हो और तुम्हारी सुरक्षा की जिम्मेदारी मेरी ही है। जब तक हालात का मैं खुद पता नहीं लगा लेता, तुम कैसे जा सकते हो ? अगर जाने की जिद करोगे तो मैं तुम्हारे साथ जरूर चलूँगा, चाहे इसके लिए तुम मुझे थप्पड़ ही क्यों न लगा दो।"

नीलेश उसकी आँखों में घूरता हुआ बोला, "ठीक है तुम पता लगा लो...तब तक मैं इस फाटक पर ही खड़ा रहूँगा...।"

गोबर्धन फाटक खुलवाकर और दरबान को साथ में न आकर नीलेश पर ध्यान देने की आज्ञा

सुनाने के बाद सड़क पर निकल गया। दरबान दौडकर भीतर से एक कर्सी ले आया और उसे पास के एक शीशम वृक्ष के नीचे रखते हुए नीलेश से बोला :

"बाबुजी, बैठ जाइए, मालिक आते ही होंगे।"

आकाश में कुछ बादल थे. लेकिन धूप निकल आई थी चटक-सी. जिसे देखकर आँखें चनचना जातीं। कर्सी पर बैठने से छाया और हवा से कुछ राहत मिली. लेकिन अब वह पश्चाताप से भरा था। उसकी आँखें भर आई। गोबर्धन से रूखाई से क्यों पेश आया, उसकी समस्याएँ और मजबूरी समझने की कोशिश क्यों नहीं की? वह उठकर दरबान से बोला :

"देखो भाई, फाटक खोल दो, मैं भी जाऊँगा, पता नहीं कहाँ गए हैं गोवर्धन... अकेले जाने की जरूरत क्या थी ? मुझे तो मना करते रहे, मुझे उनके साथ रहना चाहिए..."

"बाबूजी, आप जाएँगे भी तो मालिक मिलेंगे कहाँ ? उनकी जान-पहचान के बहुत लोग हैं, किसी के घर में बैठकर पता लगा लेंगे। चिन्ता न करें, आते ही होंगे मालिक... पानी लाऊँ ?" "नहीं..." नीलेश फिर कुर्सी पर बैठ गया।

गोवर्धन के लौटने में आधा घंटा से कुछ अधिक समय लगा। होंठ-पर-होंठ दवे और आँखें सिकुड़कर जमीन को घूरती हुईं। नीलेश उठकर जल्दी उसके पास गया, परन्तु वह उसकी ओर न देखता हुआ धीमे स्वर में बोला :

"नीलेश, हालत ठीक नहीं है, एक घंटा बाद ही तुम जा सकोगे। तब तक गद्दी में चलकर बैठो, सबकुछ बताता... हूँ।"

इस बार नीलेश विरोध नहीं कर सका और उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। गद्दी का कमरा गलियारे से कुछ ऊँचाई पर बनाया गया है और दो सीढ़ी चढ़कर ही उसमें पहुँचा जा सकता है, जिसकी फर्श पर एक मोटा गद्दा और सफेद जाजिम बिछी है। बीच में दीवार से सटाकर एक मसनद रखा हुआ है, जो गद्दी के मालिक का विशेष स्थान है। कमरे की एक दीवार में एक छोटी-सी कोठरी खुलती है, जो अब बन्द है और जिसमें जरूरी बही-खाता, खमीरी तमाखू रंग का काठ का एक छोटा बक्सा, कलम, पीतल की दावात, तिजोरी आदि सामान रखे जाते हैं गद्दी बन्द होने के बाद।

नीलेश को गद्दी में बिठाकर गोवर्धन ऊपर चला गया और जब लौटा तो उसके हाथ में एक बड़ी तश्तरी थी, जिसमें बर्फी के दो छोटे आयताकार टुकड़े, और नमकपारे थे। साथ दो गिलास पानी भी।

"थोड़ा लो... बड़ी गर्मी है, बार-बार प्यास लगती है..."

"बताओ वहाँ के बारे में..." नीलेश ने बेसब्री से पूछा।

"पानी पी लो तो बताता हूँ..."

दोनों मित्रों ने बर्फी का एक-एक टुकड़ा खाकर जल ग्रहण किया। तत्पश्चात गोबर्धन उठकर बोला, "मैं अभी आता हूँ..."

नीलेश ने उसे दरबान के पास जाकर अपनी जेब से निकालकर कुछ देते हुए और हाथ के इशारे से समझाते हुए देखा। गोबर्धन अमूमन शान्त रहता है, बहुत कम बोलता है, लेकिन इस समय बेहद परेशान होकर नजर भी नहीं मिला रहा है।

"नीलेश," लौटकर बैठने के बाद गोबर्धन ने कहा, "दरबान झूठ नहीं कह रहा था। बाजार अच्छा लगा था, पास के देहातों से भी कुछ सब्जीवाले और व्यापारी आए थे। उसी समय चार सशस्त्र सिपाहियों की एक लॉरी लेकर एक अफसर भीतर घुस आए और धारा 144 तोड़ने के जुर्म में अन्धाधुन्ध गोलियाँ

चलवा दीं। कई लोग मरे हैं, नीलेश... घायल और अधिक हुए हैं। में वहाँ तक गया था, पुलिस लॉरी मौत, आतंक और भय के धुर्रे उड़ाती हुई चली गई है हताहतों

को छोड़कर...।"

गोबर्धन कुछ देर तक सिर झुकाकर और माथे पर हाथ रखकर चुप बैठा रहा, फिर और भी धीमें स्वर में बोला :

"बहुत-से लोग जमीन पर बोरे बिछाकर और उन पर गल्ले या सब्जियों यगैरह के ढेर लगाकर सामान बेचते हैं। भगदड़ में कहीं आलू बिखरे हुए हैं, कहीं गेहूँ। न कहीं जुलूस, न कहीं आन्दोलन, एक बाजार पर बिना किसी चेतावनी के तड़ातड़ गोलियाँ। कोई चावल के ढेर पर मरा है, कोई देगें के बीच के रास्ते में। कोई सड़क के बीच में पड़ा है, कोई नाली के किनारे। बाजार तो बन्द है, दुकानदार भाग गए हैं, समान जहाँ-के-तहाँ पड़े हैं। समस्या है लाशों की, उनके रिश्तेदारों को बुलाकर अल्येष्टि कराने की। घायलों का उपचार जरूरी है। इस काम में रमाशंकर, राममूरत, नफीस, जगदम्बिका और कई नौजवान लगे हैं। मैंने अपनी ओर से कुछ भेजवा दिया है, और दुकानदार भी चन्दे दे रहे हैं।"

"गोबर्धन, मैं जा रहा हूँ यहाँ।"

"देखो नीलेश, यह समय उत्तेजित होने का नहीं है। मदद करने के लिए बहुत लोग हैं, कुछ नौजवान तो तैयार हैं कि अगर लॉरी फिर आती है तो इस कांड का बदला जरूर लेंगे। यह काम निबट लेने दो... लोग इधर-उधर भाग-दौड़ कर रहे हैं, वहाँ कोई मिलेगा थोड़े ही। कुछ रुककर जाना... उचित तो यह कि कुछ देर बाद तुम सीधे अपने घर जाओ, वहाँ घर का हाल-चाल लेकर जो चाहो करो...।"

"तुम अच्छी राय दे रहे हो, गोवर्धन," नीलेश सहसा क्रोध-भरी उत्तेजना में बोला, "तुम पैसेवाले हो, कुछ रुपए देकर तुम्हारे कर्तव्य की इतिश्री हो गई है, मगर तुम्हें मालूम होना चाहिए कि मैं कांग्रेस का एक अदना सिपाही हूँ-मैंने कुछ कसमें खाई हैं, उसी की वजह से पढ़ाई छोड़कर आया हूँ। यह सही है कि जो कुछ तुमने किया है, यह पर्याप्त है... मगर मुझे न रोको। राममूरत, नफीस, ये सब दोस्त हैं, जवान हैं, जान की बाजी लगाकर जुटे हुए हैं, मैं यहाँ बैठा बर्फी खा रहा हूँ, धिक्कार है मुझे।"

गोबर्धन का चेहरा क्रोध से तमतमा गया। उसने कुछ क्षण नीलेश को घूरकर देखा, फिर क्षीण स्वर में कहा, "ठीक है, दरवान बाहर गया है, उसके आने पर चले जाना...।"

नीलेश वहाँ से उठा और सीढ़ी से उतरकर और चप्पलों में पैर डालकर फाटक के पास जाकर खड़ा हो गया। उसका मुख अतिशय गम्भीर था, छाती आगे निकली हुई और गर्दन कुछ टेढ़ी और तनी। गोवर्धन उसको जाते हुए नाराजगी से देखता रहा था। तत्पश्चात आँखें मूँद और होंठों पर उँगली रखकर कुछ

सोचने लगा। फिर सहसा तेजी से उठकर नीचे उतरने के बाद उसने गद्दी के मजबूत लौह कपाट पर भारी ताला लगाया, चाभी कुर्ते की जेब में रखी और तीव्र गति से नीलेश के पास पहुँचकर संक्षिप्त वक्र हँसी के साथ कहा

"नीलेश, तुमसे झूठ नहीं कहूँगा, इस समय यहाँ कोई भी नहीं मिलेगा। लोग चुपचाप काम निबटा रहे हैं। घायलों में गम्भीर चोटवालों की संख्या कम ही है, उन्हें अस्पताल या कुछ प्राइवेट डॉक्टरों के यहाँ पहुँचा दिया गया है। हताहतों में अधिकतर लोग शहर ही के हैं, हाँ, कुछ लोग देहातों के भी हैं। खबर सुनकर उनके सम्बन्धी आ रहे हैं। रमाशंकर को तो छिपकर ही काम करना पड़ रहा है, पुलिस उनके पीछे पड़ी हुई है...।"

"क्या रमाशंकरजी ने वहाँ न जाने के लिए तुमको हिदायत दी है?" नीलेश ने तिरछी दृष्टि से देखते हुए व्यंग्य भाव से पूछा।

"ऐसी बात नहीं है। गली में उनसे संक्षिप्त बात हुई थी। उनसे पुरानी जान-पहचान है मेरी। अभी हाल तक कांग्रेस के लिए गुप्त चन्दा उनके पास पहुँचा रहा था, अब बन्द कर दिया गया है।

यह सही है. मैंने सम्बन्ध तोड लिया है। तुम्हारा यह कहना भी गलत नहीं है कि मेरा रास्ता अलग है। मैं तुमसे यह नहीं कहँगा कि उद्योग-धन्धे का विकास भी एक राष्ट्रीय कर्म है. लेकिन यह जरूर कहँगा कि मैं नए ढंग से अपने कारोबार को जमाना चाहता हूँ, इसीलिए मैं अपना पूरा समय, पूरा ध्यान व्यापार को ही दे रहा है। तम मेरे दोस्त हो. इसका मतलब यह नहीं कि अपनी ही तरह सोचने के लिए तुम्हें मजबूर कर रहा है... नहीं, तुम विचार और कार्य के मामले में पूरी तरह स्वतन्त्र हो ।

मैं तो यह कह रहा था कि इस समय वहाँ जाना उपयोगी नहीं है " "खूब !" नीलेश व्यंग्य से हँसा।

गई। "इस तरह क्यों हँस रहे हो ? क्या मैं कोई बात झूठ कह रहा हूँ ?" गोवर्धन की त्यौरियाँ चढ़

"हँस नहीं रहा हूँ, सोच रहा हूँ इतनी कम उम्र में इतना बड़ा कारोबार सँभालना पड़ रहा हैं तुम्हें।"

गोबर्धन कुछ देर तक उसे सवालिया निगाह से देखता रहा, लेकिन जब उसकी मुख की रेखाएँ ढीली होकर सामान्य हो गई तो उसने स्वाभाविक स्वर में कहा, "तुम तो जानते हो, नीलेश, मैं पहले कितना लापरवाह था... मेरे पुराने मुनीम ने हमारे परिवार को बरबाद ही कर दिया था। सौभाग्य की बात है, बाबूजी का स्वास्थ्य कुछ सुधरा है, वह अब कुछ देर के लिए गद्दी में बैठते हैं-उनसे

बहुत कुछ सीखने को मिलता है और...।" "और ? रुक क्यों गए ?"

"व्यापारी को जागते-सोते चौबीसों घंटे चौकन्ना रहना पड़ता है, हर बात में नफा-नुकसान देखना पड़ता है। थोड़ी-सी गफलत, थोड़ा-सा आलस्य, थोड़ी-सी फिजूलखर्ची... और सबकुछ चौपट। मेहनत, बुद्धि, दूरदर्शिता, संगठन, नए-नए ढंग से और नए-नए क्षेत्रों की पहुँच, फैलाव, अच्छा माल और ईश्वर की कृपा से व्यापार फलता-फूलता है। तब बड़ी चहल-पहल रहती है। चापलूसी, अनैतिकता और बेईमानी से व्यापार का कोई रिश्ता नहीं। झगड़ा-फसाद, घमंड-अहंकार और अनुचित, द्वेषपूर्ण प्रतियोगिता से भी नहीं। व्यापार के विकास से समृद्धि आती है, बेकारी दूर होती है। शान्ति-संतोष का फैलाव होता है। अच्छा व्यापारी सिर्फ अपने लिए ही नहीं काम करता, अपने तरीके से देश-समाज के लिए भी कुछ करता है। बढ़ता हुआ व्यापार दूसरे परिवारों में भी उजाला फैलाता है। व्यापार चौपट होने पर भारी विपत्ति समाज पर गिर पड़ती है... व्यापार शून्यता से अधिक मनहूस कुछ भी नहीं...तब मरघट से भी भयंकर सन्नाटा फैल जाता है।"

गोवर्धन चुप होकर, गर्दन टेढ़ी करके बाहर आसमान की तरफ देखने लगा, जैसे सपने में खो गया हो। कुछ देर बाद सनकी की तरह मुस्कुराते हुए फिर बोला, "हर तरह के काम-धाम से मतलब है मेरा। कोई भी उद्यम एक अच्छा सामाजिक, बौद्धिक और नैतिक कार्य है, जिससे ऊर्जा प्रकट होती है और जीवन को सार्थकता मिलती है। उद्यम में लगा व्यक्ति एक अच्छा संघटनकर्ता होता है। वह आवेश से दूर रहता है, इसलिए बारीक-से-चारीक बात को देख सकता है और जटिल-से-जटिल बात को सरल और व्यावहारिक बना सकता है। नीलेश, मेरे जीवन का यही उद्देश्य रह गया है कि अपने कारोबार को पुराने दकियानूस साँचे से बाहर निकालकर इसे नया कलेवर प्रदान करूँ, जिससे एक ऐसी रोशनी फैले, जो सबको सुख दे। अभी तो कुछ भी नहीं हुआ है... कुछ समय लगेगा..."

"जीवन की बीती हई बातें अब याद नहीं आतीं?"

"तुम्हारा जो भी मतलब हो... हाँ, तुमको हक है कुछ भी कहने का... खैर. मैं तुमको स्पष्ट बता देना चाहता है कि जो जीवन मेरा बीत चुका है. अब मेरे लिए उसका कोई महत्त्व नहीं है। वैसे, पहले भी मैं तुम्हें बता चुका हूँ। मैं जानता हूँ मुझ पर मेरी बातों पर. मेरे स्पष्टीकरण पर

विश्वास...खैर, मैं अपने वर्तमान को सुधारने और सँवारने और भविष्य को बनाने में लगा हूँ... अरे दरबान आ गया, बड़ी देर लगा दी...।"

उनकी बातचीत रुक गई। बाहर से ताला खोलकर भीतर आने के बाद फाटक फिर बन्द किया दरबान ने। उसके घूमने के पहले ही गोवर्धन ने पूछा, "दे दिया साहूजी को ?"

"दे दिया सरकार। भीतर दो-चार लोग बैठे थे, देर में निकले। बहुत दुःखी थे... कह रहे थे, ऐसा तो गुदड़ी बाजार में कभी नहीं हुआ...।"

"हूँ!" गोवर्धन और गम्भीर हो गया और उसका मुँह कुछ लटक-सा गया, "और क्या हाल

"बड़ा सन्नाटा है, सरकार। सबके दरवाजे बन्द हैं। आफत है मालिक। कुछ लोग टिकटी बनवाकर बारी-बारी से ला रहे हैं। पढ़वैया लड़के लोग हैं, मरे हुए लोगों के सम्बन्धी भी हैं। सभी माथे में गमछा लपेटे हैं। सिर झुकाए हैं, पाँव दबाकर चलते हैं... बोलते नहीं, हाथ से, आँख से इशारा करते हैं..."

"अच्छा, ठीक है। सुखई की ड्यूटी खत्म हो गई ?"

"जी सरकार, वह तो चला गया। मैंने कहा, मर्दवा रुक जाओ, बाहर सान्ती हो जाने दो तो बोला, बारह बजे रात से ड्यूटी कर रहा हूँ, हमारे भी तो बाल-बच्चे हैं..."

"ठीक है, अब कहीं जाना नहीं, हाँ, कुछ देर बाद बाबूजी को इनके घर... देखा है न ? कई बार तो जा चुके हो..."

"हाँ सरकार, चलें बाबूजी, कोई आँच नहीं आने दूंगा, जो कुछ होगा पहले मुझे होगा, जान भले ही चली जाए, बाबूजी का बाल बाँका नहीं होने दूँगा...।"

"फालतू बात क्यों करते हो। गली-गली निकल जाना, घर पहुँचाकर लौट आना। मैं खुद चला जाता, मगर..."

"नहीं, गोबर्धन, मैं अकेले चला जाऊँगा। मैं अभी जाता हूँ...।"

"मैं तुम्हें रोक नहीं रहा हूँ.... बस, कुछ देर बाद चले जाना। उनकी अन्त्येष्टि हो जाने दो, दूर नहीं जाना होगा उन्हें। गंगा नदी बढ़ी हुई हैं, बहुत नजदीक आ गई हैं... पूरब की ओर कुछ दूरी पर ही...।"

अब कोई प्रतिवाद न करके नीलेश ने सिर झुका लिया। तत्पश्चात गोबर्धन ने तेजी से जाकर गद्दी खोल दी।

"तुम खाना खा लो, अभी नहीं, कुछ देर बाद।" गोबर्धन ने नीलेश के गद्दी में बैठ जाने पर कहा।

"तुम मेरे साथ अन्याय कर रहे हो, गोबर्धन। तुम्हारी बात मानकर मैं जरूर रुक गया हूँ, कुछ देर चुपचाप बैठने दो, आधा घंटा बाद चला जाऊँगा..."

नीलेश ने आँखें मूँद लीं। वह अपने अन्दर गहरे दुःख का अनुभव करने लगा, सिर्फ इसीलिए नहीं कि अनेक निर्दोष लोग विदेशी हुकूमत की बर्बरता के शिकार हुए हैं, बल्कि इसलिए भी कि ऐसे अवसर पर वह सबकुछ जानते हुए भी बैठा रह गया है। क्यों? क्या किसी भय या कायरता की वजह से ? यही तो गोबर्धन भी समझाता रहा है, फिर उसकी बात मानकर रुक क्यों गया वह ? शायद गोबर्धन दोस्ती

के नाते उसको सीधे उसके घर पहुँचवा देना चाहता है, जिसके बाद यदि कुछ होता है तो उसकी जिम्मेदारी नहीं रहेगी। लेकिन देश के प्रति उसके कर्तव्य की जिम्मेदारी गोबर्धन कैसे ले सकता है ! इस सम्बन्ध में फैसला करने का उसे क्या अधिकार है ? वह आवेश से भर उठा और उठते हुए बोला :

"मुझे हतोत्साहित करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं। मुझे यदि कुछ होगा, उसकी जिम्मेदारी

तुम पर नहीं होगी. मैं आश्वासन देता है। मैं जा रहा हूँ, मेरे साथ आने की कोशिश न करना। दरवान को भी मेरे साथ न भेजना...।"

जैसे लकवा मार गया हो, गोबर्धन सुन्न-सा नीलेश को दरवान के पास जाते हुए देखता रह गया, जिसके बाद उसकी आवाज सुनाई पड़ी, "फाटक खोल दो, मैं जाऊँगा। तुम्हें मेरे साथ जाने की जरूरत नहीं, तुम्हारे मालिक से मेरी बात हो गई है।"

दरबान ने सिर घुमाकर गद्दी की तरफ देखा, फिर फाटक खोलने के लिए बढ़ गया। नीलेश जब बाहर निकला तो बादलों ने आकाश में एक जगह सिमटकर सूरज को ढक लिया था। हवा गुम-सुम। उसने रास्ता पकड़ा जिससे आया था। आते वक्त तो गलियों में या सड़क पर इक्का-दुक्का लोग चलते हुए दिखाई भी दे जाते थे, लेकिन अब पूरा सन्नाटा है चारों ओर, हर जगह।

गली में घुसते ही वह एक अजीब भय से जड़ हो गया। जल्दी से सिर पीछे घुमाकर देखने लगा, गोया निर्जन सन्नाटा किसी खूँखार जानवर की तरह गुर्रा रहा हो। उसकी चाल अनजान में ही तेज हो गई। कई बार ऐसा ही हुआ और एक बार तो उसके मुँह से आवाज निकल गई, "कौन है?" अचानक रुककर उसने आगे-पीछे और चारों तरफ देखा। वह फिर चल पड़ा तो उसका ध्यान अपनी चप्पलों की आवाज की तरफ गया। बाएँ पैर की चप्पल का एक जोड़ खुल गया था, जिससे बह रास्ते में घिसट-घिसटकर 'खस-खस' की अजीब मनहूस आवाज पैदा कर रही थी। लेकिन यह गुर्राहट तो नहीं ही है। क्या किसी बन्दूकधारी पुलिस-सिपाही द्वारा पीछा किए जाने के अनजान भव का कोई अनजाना रूप है यह ?

कुछ क्षणों में ही अब चारों ओर फैल गए गाढ़े काले बादल बरसने लगे और जैसे उन्हीं के बीच से हवा नीचे उतरकर वृक्षों को हिलाने-झकझोरने लगी। मोटी-मोटी बूँदों की वर्षा और सन्नाटे को तोड़कर कई प्रकार की आवाजें उभरने लगीं, छतों, वृक्षों और जमीन से। वह भीगने लगा। और जब अघटूटी चप्पल के साथ चलना असम्भव हो गया तो उसने जल्दीबाजी में दोनों ओर देखा-बाईं ओर एक छोटे मकान के छोटे ओसारे में एक व्यक्ति सिर पर गमछा रखे नजर आया। जैसे अन्धकार में बिजली चमकी हो और रास्ता दिखाई पड़ गया हो, वह पैर घिसटते हुए उधर ही चल पड़ा।

मकान अन्दर से बन्द था। जब ओसारे में पहुँचकर खड़ा हुआ तो वर्षा और भी तेज हो गई। बूँदें इतनी तेज और सघन थीं कि सामने धुआँ-सा नजर आने लगा। खपड़ैल के मकान की ओरियानी बहकर मोटी

धार में नीचे गिरकर एक अलग तेज आवाज पैदा करने लगी। गमछेवाला व्यक्ति कुछ देर तक उसी तरह खड़ा रहा, जैसे कोई पत्थरमूर्ति हो, फिर उसने अचानक सिर उठाकर, नीलेश की तरफ देखकर कहा, "अरे आप ? इस समय यहाँ कहाँ ?"

नीलेश ने भी सिर घुमाकर देखा तो आश्चर्यचकित रह गया। सपने में भी उम्मीद नहीं थी उसे कि यहाँ रमाशंकर खड़े मिल जाएँगे।

"मैं अपने एक दोस्त गोबर्धन सेठ के यहाँ गया था। गोबर्धन से सब सुन चुका हूँ। मैं इस समय आपसे ही मिलना चाह रहा था, विश्वास था गुदड़ी बाजार के आस-पास आप जरूर मिल जाएँगे। बताइए, इस संकट के समय मैं क्या कर सकता हूँ देश के लिए, उन शहीदों के लिए जो अभी-अभी धोखे से मार दिए गए हैं...।"

नीलेश दुःख और उत्तेजना से काँप रहा था। उसकी आँखें भर आई थीं, जिन्हें मुँह घुमाकर एक उँगली से इस ढंग से पोंछी उसने गोया हाथ वहाँ संयोग से ही पहुँच गया हो। परन्तु, रमाशंकर से कोई बात छिपी नहीं रही. इसलिए कुछ रुककर ही वह बहुत धीमे स्वर में बोले : "नीलेशजी, इस देश का जो ऋण हम सब पर है, उसको चुकता करने में प्राणों का बलिदान

भी कुछ नहीं है, पर यह समय उत्तेजित होने का नहीं है. धीरज और हिम्मत से इस ढंग से काम करने का है. जिससे जल्दी-से-जल्दी गुलामी की जंजीर टूट जाए। आपके खानदान की भूमिका तो बहुत महत्त्वपूर्ण है। छात्रों की हड़ताल और प्रदर्शन में आपके छोटे भाई वीरेशजी ने जो कुछ किया, उसकी जितनी तारीफ की जाए, यह कम है। और गुदड़ी बाजार में आज शहीद हुए लोगों की अन्त्येष्टि के लिए जो नौजवान इकट्ठे हुए हैं, इनमें नफीस, राममूरत, शम्भु, जगदम्बिका और वीरेश भी हैं... वीरेश तो छिप-छिपकर अकेले पास के एक गाँव में जाकर एक गरीब सब्जीवाले के सम्यग्धियों को अभी-अभी ले आए हैं..."

रमाशंकर ने सिर पीछे घुमाकर बन्द दरवाजे की तरफ सशंकित दृष्टि से देखा। नीलेश को जैसे काठ मार गया। हक्का-बक्का होने से उसका मुँह जो शुरू में खुला था, वह अब भी वैसा ही बना हुआ था। झमाझम पानी पीट रहा था, और ऐसा लगा उसे, गोया वर्षा से लगातार लय के साथ एक आवाज आ रही हो 'वीरेश... वीरेश... वीरेश' ।

"बबुआ, हम सब जानते हैं, देशसेवा के लिए आपने जो कुछ किया है, उसी से प्रेरित होकर आपके छोटे भाई भी आगे बढ़कर कुछ करने को... कुर्बानी देने को तैयार हैं। ये सभी नौजवान हैं, इनकी उम्र कुछ भी नहीं, मगर जिस जिम्मेदारी से ये काम कर रहे हैं, उससे सभी चिन्ताएँ दूर हो जाती हैं। जिस देश में ऐसे नौजवान हों, उसे क्या कोई गुलाम रख सकता है? बाघ की तरह साहसी और मजबूत हैं ये, किसी अनुभवी बुजुर्ग की तरह धैर्य है इनमें। हर धर्म और जाति के लोग हैं इनमें। यही तो हिन्दुस्तान

है। शहीदों को उठाने और तैयार करने में वे खुद खून, कीचड़ और धूत से लथपथ हो गए। किसी-किसी की टिकटी तैयार हुई और जिसकी नहीं हो सकी, उसे बँसखट पर घाट पहुँचाया गया है; गुदड़ी बाजार के सामने स्नान-घाट से कुछ पूरब। सभी कुछ विधिवत करने की कोशिश की गई है...।"

रमाशंकर चुप होकर सामने देखने लगे। नीलेश कुछ नहीं बोला। वह भीतर-ही-भीतर संकुचित हो रहा था। फिर वही क्रोध और ईर्ष्या। उसे लगा, वीरेश जान-बूझकर, उसकी इच्छा जानते हुए भी, उससे आगे बढ़कर उसे अपमानित करने की कोशिश कर रहा है, जैसे उसमें देशभक्ति, साहस और कुर्बानी देने की आकांक्षा अधिक हो। जहाँ चाहकर भी वह नहीं पहुँच सका, वहाँ वीरेश पहले से ही मौजूद है, बहुत कुछ कर चुका और अब भी कर रहा है। अपने भाई के इन कारनामों से उसे खुशी क्यों नहीं हो रही है ?

"नीलेशजी," रमाशंकर कह रहे थे, "असली संघर्ष गाँवों में हो रहा है, वहीं जोर लगाने का समय आ गया है। गाँवों में ब्रिटिश हुकूमत की हर निशानी को मिटाने के बाद यहाँ के जिला मुख्यालय पर अधिकार करना है। जोरदार लड़ाई बैरिया में चल रही है। वहाँ का थानेदार बड़ा जालिम और धोखेबाज है। वैरिया का किला फतह होने के बाद रसड़ा तहसील के कुछ स्थानों को जीतना आसान हो जाएगा। मेरा तो खयाल है कि इस समय हर जगह के नौजवानों को बैरिया पहुँचकर आन्दोलन को जोर पहुँचाना चाहिए। हाँ, एक चिन्ता है...।

"दुलारी देवी के नेतृत्व में महिलाओं का एक जुलूस निकला था, जिसमें भगजोगिनी देवी भी थीं। अब सुना है, पुलिस उनको गिरफ्तार करके कोतवाली ले गई है। लोगों में मर्द, औरत, बच्चे सबमें इतना उत्साह है कि जगह-जगह वे जुलूस निकाल देते हैं। मैं पुराने जमाने का आन्दोलनकारी हूँ, मगर देशभक्ति का ऐसा जुनून मैंने कभी नहीं देखा। मैं भगजोगिनी देवी के लिए चिन्तित हूँ, घर में बूढ़ी सास और दो छोटे बच्चे हैं। आप सीधे घर जाइए और ये बीस रुपए दे दीजिएगा, वक्त-जरूरत पर काम आएगा। मैंने गोपालराम के पास सूचना भेजवा दी थी लेकिन हो सकता है वह न पहुँच सकें। कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य हैं, आजकल भी बेखौफ आते-जाते हैं, मगर कहने पर हम लोगों की मदद कर देते हैं। तो ठीक है न?"

नीलेश ने अपनी आर्थिक स्थिति ठीक न होने पर भी संकोचवश रुपया लेने से इनकार किया, किन्तु रमाशंकर ने उसे जबरदस्ती थमाते हुए कहा :

"मुझे अच्छी तरह मालूम है आजकल रोज कमाने-खानेवाले लोगों की क्या हालत है। आप कोई काम-धाम करते होते तो मान जाता। आप विद्यार्थी हैं. कहाँ से देंगे? फिर यह सिर्फ बीस रुपए की घात तो नहीं है, कदम-कदम पर जरूरत पड़ती है। लोग भयंकर संकट में रहते हैं, फिर भी वे आन्दोलन में साथ देते हैं। हम तो उनकी पर्याप्त मदद भी नहीं कर पाते, कुछ हाथ पर रखते हैं तो उसे भी वे आसानी से नहीं लेते। भगजोगिनी देवी का परिवार किस संकट में है, यह तो आप जानते ही होंगे। कैसी विपत्ति पड़ी है उस पर, कितना धोखा हुआ है उसके साथ मगर गजब की हिम्मती और समझदार स्त्री है वह।

खैर, मेरे पास जो रुपए हैं वे निजी नहीं। ये चन्दे के रुपए हैं जो पार्टी के सदस्य लोग देते हैं या अन्य देशभक्त गुप्त रूप से भेजवाते हैं। मैं खुद जाता, लेकिन मेरे मोहल्ले में गुप्तचर विभाग

के मुखबिर दिन-रात चक्कर लगाते रहते हैं..." नीलेश ने वे बीस रुपए अपनी जेब के हवाले कर दिए।

42

उस दिन के बाद से, जब रमाशंकर ने सास-बहू को घर पहुँचाने के लिए कहा था, गोपालराम रोज ही भगजोगिनी के घर जाता रहा है। अचम्भे की बात है कि कांग्रेस का घोर विरोधी होते हुए भी रमाशंकर से उसका विशेष लगाव है। समाजवादी कक्षा के दिनों में गोपालराम भी उसका एक विद्यार्थी था। सुरंजन शास्त्री की अनुपस्थिति में कभी-कभी रमाशंकर भी क्लास लेने पहुँच जाते। जाड़े के दिन थे, जब सभी लड़के कोट या स्वेटर पहनकर अथवा चादर-अंटी ओढ़कर आते थे, गोपालराम गाढ़े की एक कमीज या कुर्ता में बैठकर गम्भीर और सिकुड़े चेहरे के साथ चुपचाप नोट लेता रहता था।

एक दिन क्लास खत्म होने के बाद रमाशंकर ने उससे कहा, "एक काली सदरी मेरे पास है... बात यह है कि मेरे एक रिश्तेदार जब बनारस से आए थे तो उपहार के रूप में वहीं से खरीदकर लेते आए... यह मेरे लिए छोटी पड़ गई, उन्हें मेरे लम्बे-चौड़े शरीर का सही अन्दाजा नहीं था। एक दिन भी वह सदरी नहीं पहनी गई है... घर का दूसरा आदमी उसकी तरफ देखता तक नहीं। आप दुबले-पतले हैं, आपको बहुत ठीक आएगी। क्या उपहार के रूप में उसे स्वीकार करेंगे ?"

उस समय गोपालराम के होंठों के ऊपर नरम नरम बालों की मूँछ उभर आई थी। वह बहुधा सिर झुकाए, कुछ सोचता हुआ दिखाई देता। बोलचाल में भी वह सदैव विनम्र रहता। उसने सिर उठाकर तिरछी कौंधी दृष्टि से देखकर कहा :

"मैं अपनी वर्तमान पोशाक में खुश हूँ। अशिष्टता के लिए क्षमा चाहता हूँ।"

"ठीक है, कोई बात नहीं। आपकी राय की मैं कद्र करता हूँ...।" रमाशंकर ने मुस्कुराकर कहा। इस छोटी घटना के बाद दोनों में एक-दूसरे के प्रति एक समझदारी बनी। गोपालराम कोई बात समझ में न आने पर रमाशंकर से पूछता और बहस करता। दो-तीन बार वह उसको अपने घर भी ले गए। उसके प्रति उनका व्यवहार सदा एक साथी की तरह सहज, स्वाभाविक, विश्वास-भरा और सहायक होता। और जब यह अचानक समाजवादी क्लास छोड़कर कम्युनिस्ट क्लास में चला गया तो जहाँ अन्य साथियों ने घेर-घार करके उसे वापस ले आने की कोशिश की, रमाशंकर ने पहली मुलाकात में उससे कहा था:

"ठीक है, हर व्यक्ति को अधिकार है कि वह अपने विचार के अनुसार आचरण करे। आप

जहाँ भी हों, मेहनत से काम करें, साहस के साथ अपने विचार प्रकट करें... और मतभेद होने पर भी, जो सम्बन्ध बन गए हैं उन्हें बनाए रखें, क्योंकि राजनीतिक कार्यकर्ता के साथ हम व्यक्ति भी हैं...।"

गोपालराम हर राजनीतिक विरोधी से क्रान्तिकारी जोश से बहस करता, मगर रमाशंकर के साथ यह नौबत नहीं आती। असल बात यह थी कि रमाशंकर राजनीतिक मतभेदों और बहसों को महत्त्व न देकर विचार के अनुसार व्यावहारिक ठोस कार्यों पर बलं देते। छोटा शहर, राजनीति का क्षेत्र, उन दोनों की अक्सर मुलाकात होती रहती, लेकिन रमाशंकर पहले की तरह ही आत्मीय भाव से उसका स्वागत करते, देर तक बातें भी करते, लेकिन इस ढंग से कि कोई कटुता उत्पन्न नहीं हो पाती।

भगजोगिनी और दामोदर का किस्सा सुन चुका है गोपालराम, जिससे उन दोनों के प्रति बड़ा गुस्सा है उसके अन्दर। दोनों स्त्रियों को घर पहुँचाने के लिए किसी दूसरे व्यक्ति ने कहा होता तो निश्चय ही इन्कार कर देता, लेकिन उसे कुछ उत्सुकता भी है उस स्त्री के बारे में जानने की। जिसे अमूमन चरित्रहीन समझ लिया जाता है, वह राष्ट्रीय आन्दोलन में शामिल क्यों हुई ? रमाशंकर उनका इतना खयाल रखते हैं, उसका वास्तविक कारण क्या है ?

जुलूस से भगजोगिनी और उसकी सास को लेकर वह आगे-आगे चला, लेकिन रास्ते-भर उसकी गर्दन तनी रही। मुँह टेढ़ा और होंठ सिकुड़े। एक बार भी उसने उनकी तरफ नहीं देखा। न मुँह से कोई शब्द ही निकाला। और जब उन्हें पहुँचाकर वह नीचे गली से ही जाने लगा तो भगजोगिनी की सास ने कहा :

"बच्चा, कुछ देर रुकते... मीठा खाकर पानी पी लो... बड़ी गर्मी है..."

"अच्छा, ठीक है।"

"हाँ, तब तक तुम बैठो, मैं बच्चों को ले आती हूँ रमाशंकर बाबू के यहाँ से।"

"आप बैठिए, मैं ले आता हूँ। खूब हैं आप लोग भी, बच्चों को दूसरे के घर में बिठाकर खुद नेतागिरी करने निकल गईं।" गोपालराम व्यंग्यपूर्वक हँस पड़ा।

"नेता कहाँ हैं हम लोग ? रमाशंकर बाबू ने कहा था, आप लोग जाना चाहें तो बच्चों को हमारे घर छोड़ जाइए। झूठ काहे बोलूँ भैया, हमको यह झंडा-जुलूस पसन्द नहीं, हाँ, हमारी पतोहिया का बड़ा मन था।..."

"अजीब शौक है जैसे कोई मेला-ठेला हो।"

"हाँ भैया, मन बहल तो जाता है, झूठ काहे कहूँ। वही चूल्हा-चौका रोज... हाँ, मेरी पतोह चरखा पर सूत काटती है, सड़कवाले वकील साहब की बिटिया से पढ़ने जाती है। रमाशंकर बाबू कहते हैं, बड़ी

देशभगतिन है तुम्हारी बहू... तो झूठ काहे कहूँ ए बेटा, शहर में दीया लेकर ढूँढो तो ऐसी बहू न मिले...।"

"अच्छा, अच्छा, लौटकर आता हूँ तो आपका दुखड़ा सुनूँगा...।

गोपालराम हँसकर बाहर निकल गया। भगजोगिनी आँगन में ही ठिठकी सिर घुमाकर उनकी बात सुन रही थी। उसकी आँखों में नाराजगी की तेजी और नाक पर नुकीली खूबसूरती। लेकिन कुछ न बोलकर उसने कमरे में से लोहे की एक कुर्सी लाकर बरामदे में रख दी, फिर रसोईघर में जाकर एक तश्तरी में गुड़ निकालकर रखा और लोटा माँजकर उसमें घड़े में से ठंडा पानी ढारा।

"रसोई में सब रखा है, आप दे दीजिएगा अम्माजी।" इतना कहकर वह अपने कमरे में चली गई।

कुछ देर बाद ही जब दोनों बच्चे उछलते-कूदते अपनी माँ के कमरे में घुसे, लगभग एक ही साथ बताने लगे 'हमने घी-रोटी का मलीदा खाया है...हमने आम खाया है...' तो गोपालराम ओसारे में

रखी कुर्सी पर बैठते हुए बोला, "अरे, कहाँ हैं मैया, आकर इत्मीनान से सुनाइए अपना किस्सा।" भगजोगिनी की सास रसोईघर में ही थी, आवाज सुनकर फौरन निकली और गुड़ की तश्तरी

धमाते और लोटा नीचे जमीनी फर्श पर रखकर बोली: "अरे क्या बताऊँ बेटवा... वही कह रही थी..."

"हाँ, कह रही थीं चरखा-वरखा की बात...ए. मैया, साफ-साफ बताओ, इस जुलूस-युलूस में आमिल होने से क्या मिलेगा आपको?" गोपालराम गुड़ की एक भेली दाँत से काटकर खाते हुए बोल रहा था. जिससे उसके मुख की दोनों क्रियाओं में उलझ और लटपटाकर एक अजीब आवाज निकल रही थी।

"अरे झंडा-जुलूस, आजादी मैं क्या जानूँ बेटवा।"

"नारा तो तुम भी लगा रही थीं। कभी सोचा नहीं, आजादी मिलने पर तुम्हें क्या मिलेगा, लड्डू या पेड़ा ?" यह खुलकर हँस रहा था।

"अरे चलो... लड्डू-पेड़ा के लिए इतना बड़ा जुलूस निकलेगा ? नरेटी की नस फुला-फुलाकर नारे लगा रहे थे। लड्डू-पेड़ा तो हमने बहुत खाया, जब इन बच्चों के आजा का राज था।"

"यह सब धोखा है मैया, आजादी मिलेगी तो भी लड्डू-पेड़ा नहीं मिलेगा गरीब को, वही सबकुछ गड़प लेंगे, जो अपने को धनी-मानी कहते हैं। अब एक बात बताओ मैया, जब सभी इनसान एक ही तरह के

हैं तो कोई अमीर क्यों, कोई गरीब क्यों ? कोई क्यों अपने को बलवान समझकर अकड़कर चलता है और दूसरों को सताता है... और कुछ लोग दीन-हीन बनकर उनकी मार सहते हैं ?"

गोपालराम गुड़ खाकर पूरा लोटा पानी गट-गट पी चुका था। वह बुलन्द आवाज में टन-टन बोलते हुए बीच-बीच में सिर घुमाकर भगजोगिनी के कमरे की तरफ देख लेता, जैसे सिर्फ उसकी बूढ़ी सास को ही सुनाना उसका उद्देश्य न हो।

"ए बचवा, यह तो करम-करम का फल है, जो पहले जन्म में किया उसी को तो भोग रहे टी

"खूब... वाह रे मैया ! यही तो धनी-मानी, ठाकुर-बाम्हन, सेठ-साहूकार, पंडा-पुजारी ने तुम लोगों को पाठ पढ़ाया है। इसलिए कि तुम पर जो अन्याय हो रहे हैं, उनका विरोध न कर सको। इसलिए तुम खुशी-खुशी उनकी टहल-चाकरी करती रहो... उनकी गन्दी गन्दी बात-बोली, उनका जूता-लात सहती रहो... तुमने पहले जन्म में बुरे कर्म किए तो इस जन्म में तुमको अच्छा व्यवहार क्यों मिले ? एक बात बताओगी मैया ?"

"हम लोग जाहिल-गँवार हैं... हम क्या जानें ?"

"नहीं, तुम्हीं न कहती हो कि सबको अपने पूर्व जन्म के कर्म का फल भोगना पड़ता है... तो इसका यह मतलब हुआ कि आज के धनी-मानी लोगों को सुख और विलास की जिन्दगी इसलिए मिली है कि उन्होंने पहले जन्म में बहुत अच्छे कर्म किए थे ! पर, यह बताओ कि जो पहले जन्म में महात्मा थे, वे इस जन्म में इतने घमंडी, नीच, अन्यायी कैसे हो गए ? ये लोग हमेशा इस फिराक में क्यों रहते हैं कि दूसरों को दबाकर रखो, दूसरों को लूट लो, नींबू की तरह दूसरों का रस निचोड़कर अपनी सेहत बना लो। जब ये लोग सुख भोग रहे होते हैं, इनके आसनास ऐसे लोग होते हैं जिनको एक जून खाना भी ठीक से नहीं मिलता और तब भी इन महात्मा लोगों का दिल नहीं पसीजता। इस जन्म में इन्हें तो और भी पुण्यात्मा होना चाहिए। क्या इनके दिमाग में यह बात नहीं आती कि लाखों की रोटी छीनकर उनका हक मारकर इन्होंने अपने सुख बटोरे हैं? क्या ऐसे ही जीवन

और विचार के लिए इन्होंने अपने पूर्व जन्म में पुण्य काम किए थे?" এइ কী "ए बचवा...हम ये बातें क्या जानें....तुम ठीक ही कहते होगे..."

"तुम्हें जानना चाहिए मैया...तुम जानोगी तो तुमसे तुम्हारे परिवार के लोग सीखेंगे, तब तुम्हारे बच्चे दब्बू और गैयार नहीं होंगे, वे धोखा नहीं खाएँगे, बल्कि मजबूत बनेंगे, सिर्फ शरीर से ही नहीं बल्कि मन से, बुद्धि से, हिम्मत से भी। यह झूठ है मैया कि इस जन्म में पहले जन्म के कर्म का फल भोगना पड़ता है। इसका मतलब तो यह होगा कि इस समय के करोड़ों गरीब पूर्व न्म में लफंगे, बदमाश, चोर, लुटेरे और हत्यारे थे। सफेद झूठ है यह सब मैया। कोई ऊँच-नीच नहीं है सभी बराबर हैं, सबको मेहनत

करके इज्जत की रोटी खाने और इज्जत से रहने का अधिकार है। गरीबों को यह बात समझनी चाहिए, उन्हें संघटित होकर ऐसे अन्याय का विरोध करना चाहिए, आगे बढ़ने की कोशिश करनी चाहिए, जिससे कोई भी उन्हें भुलावे का पाठ पढ़ाने की हिम्मत न कर सके, उन्हें आँख न दिखा सके...।"

"ऐसा हुआ है कभी...।"

"हाँ मैया, हुआ है। रूस में तो मजदूरों की सरकार भी कायम हुई है। दूसरे भी कई देश हैं, जिन्होंने अपने को ऐसे पाखंडी विचार से अलग कर लिया है। हमारे देश में ही लोग पुराने, सड़े-गले विचारों को गले लगाए हुए हैं। ऐसी हालत में आजादी मिल भी गई तो गरीबों का कहाँ मला होगा ?"

"हाँ ए बाबू," भगजोगिनी की सास ने दोनों हाथ उठाकर तानते हुए जोर की जमुहाई ती, "बड़ी ऊँघाई आ रही है..."

गोपालराम को अब होश आया कि वह जोर-जोर से इस ढंग से बोल रहा था, गोया किसी मजदूर सभा में भाषण दे रहा हो। वह कुछ लज्जित होकर उठ खड़ा हुआ।

"अच्छा मैया, मैं चलता हूँ, देर तक बैठा रह गया। बड़ा जरूरी काम भी है। बाद में आऊँगा तो इत्मीनान से बातें होंगी।" उसके मुख पर एक शर्मीली तुच्छ मुस्कान उभर आई थी। भगजोगिनी कमरे की तरफ उत्सुकता से देखते हुए वह मुड़कर सर-सर बाहर निकल गया। के

अगले चार दिनों तक वह लगातार आया, दिन में नहीं, बल्कि रात में आठ से नौ के बीच, ठीक उसी तरह जैसे दामोदर का आगमन हुआ करता था। आते ही वह हर बार यही बताता कि 'एक जरूरी काम से इधर आया था तो यहाँ भी आ गया?' कभी गुड़ और कभी मूढ़ी-चना से उसका स्वागत किया जाता। इसके बाद तो वह बिना किसी भूमिका के ही आग का बोला बनकर शोषण और अन्याय की व्यवस्था को जलाकर खाक करने लगता।

"आप लोग गांधी बाबा के आन्दोलन में शामिल हैं, लेकिन किसलिए? गांधी बाबा से क्यों नहीं पूछतीं कि वह वर्णाश्रम धर्म की हिमायत क्यों करते हैं? क्या आजादी मिलने पर वर्णाश्रम धर्म बना रहेगा ? क्या आज का दबाया हुआ पिछड़ा, दलित और शूद्र समाज आजादी के बाद भी ऐसा ही बना रहेगा ? गांधी बाबा हर चीज का बहुत आसान तरीका बताते हैं। समाज का ढाँचा जो बना हुआ है उसे तोड़ना नहीं चाहते। जो जैसा है बना रहे वैसा और सभी शान्ति, प्रेम से रहें। शूद्र का मतलब जानती हो-छुद्र, अछूत, दलित। धनी, बलवानों, ऊँची जाति के लोगों का कर्तव्ब है कि वे शूद्रों का खयाल रखें, कभी-कभी उनकी बस्तियों में जाकर सफाई करें, चरखा चलाएँ, साथ में खाना खाएँ। कौन करता है यह सब ? और साल-दो साल में, एक-दो बार यदि कुछ लोग शरमाते-शरमाते जाकर कुछ करते-धरते भी हैं तो क्या इससे गरीबी दूर होगी ?"

जब वह आता तो उनका खाना-पीना हो चुका होता। उस समय तक बच्चे तो चुके होते। यदि जगे होते तो वह उनको पास बुलाकर उनसे कुछ देर तक बात करता। उनसे कहता कि वे तैयार रहें, आन्दोलन खत्म होने पर वह उनका नाम स्कूल में लिखा देगा, खुद आकर घर पर पढ़ाएगा उनको। एक दिन वह एक स्लेट, खड़िया और प्राइमरी की पुस्तक लेता आया और मुन्नी को पास बुलाकर ढिबरी की रोशनी में उसे ककहरा सिखाने लगा। फिर अत्यधिक उत्साहित होकर बोता,

"तुम जितना पढोगी. मैं पढाऊँगा। तुम्हारी उम्र काम करने की नहीं है-पढने की है। तुम मेहनती बनो, हिम्मती और बहादुर बनो। अपने को गुलाम और नौकर न समझो। कोई अन्याय करना चाहे, कोई गलत बात कहे तो उसको बरदाश्त न करो... चाहे घर का हो या बाहर का...।"

"ए बाब... स्त्री जाति है. सिर नवाकर नहीं रहेगी तो इसका गुजर-बसर कैसे होगा ?" जोगिनी की सास ने गाल पर हाथ रखकर ऐतराज किया था।

गोपाल राम फौरन इसका जवाब नहीं दे पाया, कुछ देर तक सिर झुकाकर सोचता रह गया। फिर धीमे स्वर में बोला:

"मैया, मैं गलत बात नहीं करता...तुम्हीं सोचो, क्या स्त्री का जन्म सिर नवाकर सबकुछ बरदाश्त करने के लिए हुआ है? मैं जानता हूँ, गरीबों की जिन्दगी में बहुत-सी कठिनाइयाँ हैं। गरीबों की स्त्रियाँ तो नरक की जिन्दगी जीती हैं। यह भी जानता हूँ, सिर्फ बातों से उपदेश देने से उनकी समस्याएँ हल नहीं होंगी। दो जून की रोटी जुटाने के लिए उन्हें कितनी मेहनत करनी पड़ती है, कितना खटना पड़ता है, क्या-क्या बरदाश्त करना पड़ता है। मगर हमेशा रोने से क्या होगा, मैया ? सोचने-विचारने का पुराना तरीका तो बदलना पड़ेगा... अगर सोच में गुलामी रहेगी तो गलत वातों को बरदाश्त करने की आदत कभी नहीं जाएगी। सिर नवाकर क्यों रहे लड़की ? क्यों बचपन से ही उसका जी-मन कुचल दिया जाए ? पढ़ना उसका इसलिए जरूरी है कि यह दुनिया को ठीक से समझेगी। उसकी बुद्धि तेज होगी और वह अच्छे-बुरे में फर्क करना सीख जाएगी। हिम्मत इसलिए

जरूरी है कि वह अन्याय को मंजूर नहीं करेगी और उसका मुकाबला करेगी...।" बोलते-बोलते उसकी वाणी अवरुद्ध हो गई। गला भर आया। वह सिर झुका और आँखें बन्द करके उन पर दाहिने हाथ की उँगलियाँ रखकर अपने को नियन्त्रित करने की कोशिश करने लगा। फिर रुआँसी आवाज में बोला :

"मैं क्यों यह सब कह रहा हूँ मैया... क्या इससे कुछ बदलेगा? जानता हूँ नहीं बदलेगा। खुद मेरे गाँव में मेरे परिवार के लोग घोर गरीबी की जिन्दगी बिता रहे हैं, मेरी हिम्मत नहीं होती कि वहाँ जाकर उनको ऐसी बातें सिखाऊँ। मेरी भी दो छोटी बहनें हैं, दो भाई हैं, वे कैसे पढ़ेंगे, सोच-सोचकर दिमाग की नसें फटने लगती हैं। मेरी पढ़ाई किस तरह हुई है, इसके लिए मेरे माँ-बाप को कितना कष्ट उठाना

पड़ा है, वह क्या बताऊँ। बहुत चाहते हुए भी आगे नहीं पढ़ सका। हारकर राजनीति में आकर कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य बन गया हूँ। इससे यह हुआ कि यहाँ मुझे रहने की जगह मिल गई है, पार्टी की ओर से कुछ रुपए खाना-कपड़ा के लिए मिल जाते हैं-किसानों, मजदूरों, गरीबों की मीटिंगों में वही सब बताता हूँ, जो आपसे कहता हूँ। ये बातें झूठ नहीं हैं मैया... मगर एक बार जब मैं अपने घर पर कह रहा था तो मेरी माँ ने कहा था, ये बातें तुम शहर में कहो। यही सब कहना है तो गाँव में न आया करो, मालूम होने पर लोग हमारी बोटी-बोटी काट देंगे..."

सहसा वह उठकर चला गया तो भगजोगिनी, उसकी सास, दोनों बच्चे जो अभी तक जगे थे, आँखें फाड़-फाड़कर उसे देखते ही रह गए। उस अँधेरे में भी उनकी फैली-फैली आँखों का स्याह डर देखा जा सकता था। भगजोगिनी सोने के लिए चारपाई पर गई तो उसे देर तक नींद नहीं आई। उसकी बन्द आँखों में ही अनेक डरावनी आकृतियाँ काँपने लगीं। हाँ, नम्रता और रमाशंकर भी तो उससे हिम्मत से काम लेने की बात करते हैं, मगर हिम्मत तो कभी भी धसक सकती है। कमजोर नींववाली एक इमारत की तरह। गरीबों के लिए हिम्मत और आशा की इतनी अच्छी-अच्छी बातें करनेवाले शिक्षित और संघर्षशील व्यक्ति गोपालराम की जब यह हालत है तो हिम्मत के लिए जगह कहाँ बचेगी ? वह निरुपाय भय और सीमाहीन बेसहारापन का अनुभव करके इतनी दुःखी हुई कि बैठकर बिलखने लगी, रुदन की आवाज को बाँधने की कोशिश करती हुई।

गर्मी के मौसम में, कमरों के बाहर आँगन में सोने से मच्छर भी कम लगते हैं और झिर-झिर हया सुख देती है, लेकिन शुरू से ही उसे कमरे में सोना पड़ा, जिसकी आदत भी पड़ गई है; लेकिन बनवारी के मरने और दामोदर से सम्बन्ध टूट जाने पर भी बाहर सोने की हिम्मत नहीं हुई। उसकी सास भी हमेशा चिन्तित रहती है कि इतनी जवान और सुन्दर है, बाहर कैसे सोएगी, अगर कोई चोर-बदमाश घुस गया तो क्या होगा। इसीलिए वह अब भी उसे कमरे के अन्दर भीतर से कुंडी लगाकर सोने को कहती और स्वयं कमरे के बाहर ओसारे में वैसखट बिछाकर छोटे पोते के साथ सोती। कुकुरंनींद के कारण यह कोई खटका होने पर फौरन उठ जाती। कई बार खाँसती और खाँसते हुए घर के अन्दर चारों ओर चक्कर लंगा आती। भगजोगिनी की रुदन की आवाज अँधेरे की जगह और बन्द दरवाजे को पार करके उसके कानों से टकराई थी, जिससे वह फौरन उठकर खाँसने लगी।

"दुल्हन, दुल्हन, क्या बात है ? जी ठीक है न?"

"ठीक है..." भगजोगिनी अपने को सँभालकर बहुत दवे स्वर किसी तरह बोली।

"मैं जगी हूँ.... कोई बात हो तो बताना।"

भगजोगिनी अपनी बच्ची के पैर और हाथ धीरे-धीरे दबाती रही, लेकिन जल्दी ही ऊँघने लगी। हारकर यह फिर लेट गई, मगर लेटने से जैसे नींद भाग गई और उसकी आँखें खुली-खुली अँधेरे में देखने लगीं।

सहसा उसे आभास हुआ कि ऊपर धरन पर बैठा गोपालराम जैसे हँस रहा हो। उसे गुस्सा आने लगा। क्या चाहता है गोपालराम ? क्यों सबसे चिढ़ा हुआ है ? जब सब लोग मिल-जुलकर अंग्रेजों से लड़ रहे हैं तो यह क्यों आन्दोलन, गांधीजी, सबके खिलाफ जहर उगल रहा है ? इस समय तो सबको जोड़ना चाहिए, तोड़ने से तो काम बिगड़ जाएगा। रमाशंकर भी तो कहते हैं कि सबकी एकता से ही आजादी मिलेगी, आजादी के बाद घी-दूध की नदियाँ बहेंगी...तो क्या वह झूठ कहते हैं ? वह सबका इतना खयाल रखते हैं, गलत बात क्यों कहेंगे ? अगर गोपालराम आया और ऐसी-वैसी बातें कीं उसने तो फटकार देगी वह...।

फिर उसे नींद आ गई। दूसरे दिन सवेरे करीब आठ बजे दरवाजे से ही 'मैया, मैया' पुकारते अन्दर प्रवेश किया गोपालराम ने। भगजोगिनी ने तड़के उठते ही समूचे घर को चमाचम साफ किया था, स्वयं नहाया था, नाश्ते में बच्चे को गुड़ के साथ रात की बची रोटी दी थी और जब बच्चा बाहर बगल के एक बच्चे के साथ खेलने के लिए चला गया तो वह आँगन में खड़ी-खड़ी सोच रही थी कि कुछ देर इन्ताजर करें या अभी फौरन खाना बनाने की तैयारी शुरू कर दें। लेकिन गोपालराम की आवाज सुनकर उसकी नाक-भौं सिकुड़ गई और आँचल माथे के आगे थोड़ा खींचकर मुँह दूसरी दिशा में फेर लिया उसने ।

"मैया कहाँ हैं, दिखाई नहीं दे रही हैं..." भीतर पहुँचकर ठिठकते हुए उसने पूछा।

"काम करने गई हैं...।"

"बच्चे ?"

"बच्चा बाहर खेल रहा है। मुन्नी अपनी दादी के साथ गई है।

"मैंने मना किया था न कि बच्ची को काम पर न भेजो, अभी से गुलामी सीख जाएगी..." गोपालराम की आवाज क्रोध से फटी-फटी-सी थी, जैसे इस तरह फटकारने का उसे अधिकार हो। भगजोगिनी सिर घुमाकर इस तरह उसके सामने खड़ी हो गई, जैसे उसकी हर बात का जवाब देने को तैयार हो गई हो। उसकी चमकती खूबसूरत आँखें गोपालराम के चेहरे पर जम गईं। तत्पश्चात स्पष्ट दृढ़ता से कहा उसने :

"वह अपनी दादी और माँ के कहने से काम पर गई है। उसकी दादी का शरीर कमजोर है, जाती है तो उनकी कुछ मदद हो जाती है। अपना काम करना कोई गुलामी नहीं है। हम सबसे लड़ेंगे तो काम कौन देगा हमें ? काम नहीं मिलेगा तो खाएँगे क्या हम ?"

"तो क्या मैं गलत राय दे रहा है ?" गोपालराम हक्का-बक्का आँखें निकालकर देख रहा था

उसे। "यह कहाँ कह रही हैं मैं? हर चीज का समय होता है. हर काम को करने का ढंग-तरीका होता है। जहाँ सोच-समझकर शान्ति से काम करना ठीक है, वहाँ गुस्से से चिल्लाने से तो काम ही बिगड़ जाएगा। यह सही है, गरीब, कमजोर को लोग सताते हैं, उन्हीं को मजबूत बनाने के के लिए श्री तो गांधीजी ने आन्दोलन शुरू किया है। चरखा कातना, काते हुए सूत का कपड़ा पहनना, सबसे मेल-मुहब्बत से रहना, एक-दूसरे की मदद करना, सत्याग्रह से जुल्म का मुकाबला करना। सभी लोग यह तय करने लगें तो आजादी मिल जाएगी..."

"अच्छा... तब तो आप गांधीजी की पक्की चेली बन गई हो। बड़े लोगों की सेवा करना, उनसे मेल-जोल से रहना, वे जैसा कहें वैसे ही आन्दोलन करना-खूब पाठ पढ़ा दिया गया है। वही पाठ तोते की तरह बोल रही हो। गरीबों के स्वाभिमान, उनकी एकता, उनकी उन्नति की बात कह रहा हैं तो बुरा लग रहा है."

"भगजोगिनी के अप्रत्याशित विरोध से गोपालराम अपमान का अनुभव करके क्रोध से तिलमिला उठा था। उसने सोचा भी नहीं था कि यह स्त्री शान्ति, दृढ़ता और तर्क के साथ उसकी बात का जवाब देगी। उसका मुँह नाराजी से छोटा पड़ गया था और उसकी खींसें निकल आई थीं।

"मुझे बुरा नहीं लग रहा है... बुरा क्या लगेगा ? मैं तो जानती भी नहीं थी यह सब। जो भगवान ने दिया था उससे खुश थी...फिर सबकुछ छिन गया मुझसे। तब रमाशंकर भाईजी और नम्रता बहिनजी ने मुझे सहारा दिया। उन्होंने प्यार से यह भी बताया कि हिम्मत से काम करने से रास्ता भी मिल जाएगा। उन्होंने चौका-बर्तन का काम दिलाया, नम्रता बहिन ने धनेसरी दीदी के साथ मुझे भी पढ़ाना शुरू किया। उन्होंने कातने के लिए एक चरखा दिया। समय बहुत नहीं मिलता, जो भी सूत कातती हूँ, उसे बेचकर कुछ पैसा मिल जाता है। नम्रता बहिन कहती हैं, औरत हो, गरीब हो तो अपने को छोटा न समझना। चौका-बर्तन करती हो, आस-पास के घरों में कूटना-पीसना करती हो तो गुलाम नहीं हो। अपनी मेहनत का पैसा लेती हो। कोई टेढ़ी आँख से देखे, ऐंठकर बोले, गाली-गलौज करे तो बरदशत न करना, काम छोड़ देना। उन्होंने मेरी राय पूछकर, मुझसे चार आना तेकर कांग्रेस की मेम्बर बनवा दिया। दुलारी बहिनजी को एक दिन मेरे घर ले आई..."

"तब तो तुम गहरे पानी में हो," गोपालराम ने कुढ़ती आवाज में टोका। "हाँ, इन लोगों के कारण हम लोगों ने अपने को सँभाल लिया है। अम्मा तो बूढ़ी हो गई हैं, उनको काम करते देखकर अच्छा नहीं लगता, वही मुझे जाने नहीं देतीं। आँख की पुतली की तरह मेरी रक्षा करना चाहती हैं। सोचती हैं, उन्हीं की गलती से मेरी जिन्दगी चौपट हो गई। कभी बीमार पड़ जाती हैं तो मैं जाती हूँ। नम्रता बहिन कह रही थीं, हमारा मकान बड़ा है, बाहर का बरामदा, कमरा बड़ा है, इसे किराए पर उठा दिया जाए। इसी कमरे में कितनी चहल-पहल रहती थी, सामान भरा रहता था...सब चौपट हो गया..."

भगजोगिनी का कंठ अवरुद्ध हो गया और वह सिर झुकाकर आत्म-नियन्त्रण की कोशिश करने तगी। गोपालराम की कुदन गई नहीं. लेकिन बिना मर्द के घर की निरक्षर, गँवार, गरीब और लाचार औरत को अपने विचारों से प्रभावित करके क्रान्तिकारी बनाने की उसकी तमन्ना की हवा ही निकल गई क्योंकि विचार तो थे उसके पास, लेकिन किसी ठोस आकर्षक, व्यावहारिक कार्यक्रम के आधार से शून्य और कठिनाई यह भी कि जो कुछ वह बता रहा था, वैसा कुछ-कुछ भगजोगिनी भी जानती और उस पर विश्वास करती हई उसे अपने आचरण में लाने की कोशिश भी कर रही थी। गोपालराम व्यक्ति विशेष की निजी परिस्थितियों को जाने बगैर उसे बिना किसी तैयारी के फौरन युद्ध में झोंक देना चाहता था, जबकि वह स्वयं घर से दूर भागा हुआ था अपने गाँव और अपने परिवार की

वास्तविकताओं का मुकाबला करने में असमर्थ।

दोष गोपालराम का नहीं है। उसके गाँव की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ अत्यधिक भयावह और हताशा-भरी हैं। यदि यह पढ़ा-लिखा न होता तो उस व्यवस्था का अंग बनकर उसी में मर-खप जाता, लेकिन उसने अभाव, भूख और सामाजिक दुर्भावना को झेलते हुए हाई स्कूल प्रथम श्रेणी में पास किया था और अब सबकुछ जानने पर बदलाव करने में असमर्थ होने पर भी वह कोई अन्याय बरदाश्त नहीं कर सकता था, अस्पृश्यता और गरीबी तो किसी भी हालत में नहीं।

राजनीति के प्रति आकर्षित होने का कारण भी एकमात्र यही है कि वहाँ गरीबों के उत्थान की बात की जाती थी। पहले कांग्रेस की ओर झुका यह, लेकिन सन् 1940 ई. के दौरान व्यक्तिगत सत्याग्रह में जब उसने धनी-मानी कांग्रेसियों को खूब सज-धजकर, फूल-मलाएँ पहनकर युद्ध के विरुद्ध नारे लगाते हुए जेल जाते देखा तो वितृष्णा हो गई उसे। मजिस्ट्रेट और बड़े पुलिस अधिकारी भी उन्हें काफी संम्मान से गिरफ्तार करते थे। उसके बाद समाजवादी पार्टी के सम्पर्क में आया और उसके चलाए जानेवाले क्लास में जाने लगा। उस पार्टी से भी वह जल्दी ही निराश हो गया। समाजवादी पार्टी में अवश्य सामन्तवाद और पूँजीवाद को समाप्त करके समाजवाद कायम करने की बात की जाती थी, जिसमें किसान-मजदूर सरकार बनेगी, ऊँच-नीच का भेद मिटेगा, साधारण लोग आजाद और खुशहाल होंगे, परन्तु वहाँ भी उसे घुटन महसूस होने लगी। अधिक संख्या में वहाँ धनी, सम्पन्न ऊँची जातियों के कर्मठ नौजवान थे, जो सचमुच समाज में परिवर्तन चाहते थे देश की आजादी के साथ-परन्तु गोपालराम को लगता कि वे उससे खिंचे-खिंचे रहते हैं, उससे कुछ अलग बैठने की कोशिश करते हैं। यदि उसके हाथ का पानी पीने का अवसर आता तो कुठेक ऐसे भी थे, जो कोई-न-कोई बहाना बनाने लगते। सबसे हताशा उसे यह होती कि ये समाजवादी होते हुए भी दूसरों से घुलने-मिलने की कोशिश न करके अक्सर अपनी-अपनी जातियों के पार्टी सदस्यों के साथ घूमते, टहलते, बहस करते या गप-सड़ाका करते हुए देखे जाते। वे आपस में अपने गाँव-परिवार, खेत-खलिहान, लड़ाई-झगड़ा, हास्यास्पद चरित्रों के बारे में खूब हँस-हँसकर बातें करते। वैसे गोपालराम के पास हँसी-खुशीवाले अनुभव थे भी नहीं जो वह स्वाभिमान के साथ सुनाकर उनके अनुभवों से आदान-प्रदान कर लेता। कभी-कभी तो उसे महसूस

होता कि वे अपने परिवार या उसके चरित्रों की जीवन शैली और क्रिया-कलापों का आलोचनात्मक ढंग से वर्णन करते, परन्तु वस्तुतः वह प्रशंसा अथवा आत्म-श्लाघा ही होती। वह क्षोभ और नफरत से भर जाता। वह उनके बीच जल्दी ही अकेला महसूस करने लगता और कुछ देर तक चुपचाप उनकी बातें सुनने के बाद उठकर चला जाता वहाँ से।

गोपालराम को दुःख तो यह सोचकर होता कि कोई भी उसके परिवार, उसकी समस्याओं के बारे में नहीं पूछता-उसकी भावनाओं के बारे में कि वह क्या सोचता है। अस्पृश्यता की समस्या आने पर भी उसके सम्बन्ध में सामान्य ढंग की आदर्शवादी सहमति के बाद फौरन विषयान्तर कर दिया जाता-उसके आर्थिक और सामाजिक कारणों एवं समाधान पर विस्तार से चर्चा न होती। अमूमन उनकी बातों से यह ध्वनि निकलती कि समाजवाद आने पर सबकुछ ठीक हो जाएगा। बड़ा अप्रिय विषय था, सिर्फ उन्हीं के लिए नहीं बल्कि स्वयं गोपालराम के लिए भी, क्योंकि उसे स्वयं मालूम नहीं था कि वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों में एक आदर्श समाज की स्थापना कैसे होगी। यह कारण जानता था कि वे सभी अपने गाँव में ऊँचे जमींदार और धनी काश्तकार घराने के थे-यदि जो नहीं थे तो उनमें भी ऊँची जाति का होने का आत्म-सन्तोष था और उनका अछूतों के साथ कोई सामाजिक सम्बन्ध नहीं था, जो कुछ था भी वह ऊँच और नीच या मालिक और गुलाम का। राष्ट्रीय आन्दोलन के जमाने में स्थितियों की बदलने की कल्पना उत्साह प्रदान करती, परन्तु गाँवों के सामाजिक वैषम्य और जड़ता का स्पर्श करना आसान नहीं था।

गोपालराम तीव्रता से महसूस करता कि देश में जो कुछ हो रहा था-मामूली बातों से लेकर धर्म, संस्कृति, आन्दोलन, उद्देश्य क्रान्ति तक के क्रिया-कलापों में एक खास दुनिया का ही प्रतिनिधित्व था, जो चारों ओर फैली थी समुद्र के चमकते हुए जल की तरह। मगर उसके गर्भ में क्या है, कितनी अन्तर्धाराएँ हैं, कितने जीव-जन्तु और क्रिया-कलाप हैं, उनका कुछ भी पता नहीं। धनी-मानी समर्थ बलवान और जन्मजात उच्च लोगों का समुद्र हिलोरें ले रहा था, कभी चमकता, कभी मुस्कुराता कभी ऊँची तरंगों में गर्जन करता और अपने भीतर असंख्य जीव-जन्तुओं को दवाए, छिपाए, इवाए और उनके अस्तित्व को नकारते। अन्दर जो जल है. असंख्य धराएँ और भँवर तथा अतल गहराइयों में धरती का जो आधार है, वह सब क्या कुछ भी नहीं ? हाँ, ऊँची जातियों के लोगों ने सबकुछ ले लिया है. सबके हक हड़प लिए हैं और गरीबों के लिए कुछ भी नहीं छोड़ा है। वे कुछ देना भी नहीं चाहते- न खेत-जमीन, न कुआँ-तालाब, न पत्रा-पोथी और न पूजा-पाठ । वह बगावत की भावनाओं से बेचैन हो जाता।

सामाजिक कम्युनिस्ट पार्टी में जाकर उसे कुछ राहत मिली. खास तरह से इसलिए कि उसके काफी सदस्य किसान-मजदूर और गरीब तथा अछूत तबके के लोग ही थे। नेतृत्व अवश्य ऊँची जाति के लोगों के हाथ में था, लेकिन उस पार्टी के प्रति उसके आकर्षण का कारण आर्थिक संघर्षों का उसका सिद्धान्त था, जिसमें सबसे गरीब तबकों-किसान-मजदूर की सरकार बनाने का समर्थन था। पार्टी में हुआ-छूत,

जातिवादी अहंकार और साम्प्रदायिक भावनाएँ लगभग शून्य थीं। एक साथ बैठकर भोजन करना, पानी पीना, सम्प्रदायवाद, सामन्तवाद, पूँजीवाद की आलोचना करना, उनके प्रति व्यंग्य और आक्रोश प्रकट करना आम बात थी। देश में इस पार्टी का प्रभाव बहुत कम था, जिसका एक मुख्य कारण तो यह था कि वह राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन की मुख्य धारा से जबरदस्त टक्कर ले रही थी। गांधी, नेहरू, सुभाष आदि राष्ट्रीय नेताओं के विचारों का विरोध और उनकी साम्यवादी शब्दावलियों से आलोचना और निन्दा उन्हें बेहद प्रिय था। उनके आन्दोलन भी बहुत सीमित ढंग के थे, खास तरह से बड़े शहरों के मुट्ठी-भर कारखानों में मजदूरों को संघटित करके हड़ताल करा देना या उसकी कोशिश करना। लेकिन देश के शेष विशाल, महत्त्वपूर्ण भूभाग पर उसका संगठन नाम मात्र का ही था और उसके कार्यक्रम ऐसे, जो जनता की समस्याओं को गहराई से प्रभावित नहीं कर पाते थे।

फिर भी गोपालराम को दिन-पर-दिन बढ़ते अपने असन्तोष और आक्रोश को अभिव्यक्त करने का उपयुक्त मंच मिल गया था। वह जोश-खरोश से जुलूसों और सभाओं में भाग लेता, पार्टी का अखबार और अन्य साहित्य बेचता, लोगों से बहस करता, पार्टी के विचार का प्रचार करता। अन्याय की कोई भी बात उसे अच्छी नहीं लगती और ऐसे वक्त पर भी वह अपने को रोक नहीं पाता। उसकी आँखें क्रोध से चमकने लगतीं, व्यंग्य-विद्रूप की रेखाएँ चेहरे पर उभर आतीं और वह तत्काल अपने विरोधी विचार प्रकट करने लगता।

भगजोगिनी और दामोदर का किस्सा जब से उसे मालूम हुआ, चरित्रहीनता की घटना समझते हुए भी गुस्सा इसलिए आया कि दामोदर ऊँची जाति का लम्पट और सरकारी गुप्तचर विभाग का दलाल है। और भगजोगिनी भी कोई मजबूर लेकिन घटिया किस्म की औरत लगी थी। परन्तु जुलूस में जब उसे नारा लगाते हुए देखा खास तरह से नीचे बैठकर मुर्छित वेश्यापत्री को सँभालते और उसका खूनी बलगम साफ करते हुए, तो सहसा उसे विश्वास नहीं हुआ। अत्यन्त मामूली कपडों में इस औरत का मुख आत्मविश्वास और सच्चाई से दप-दप क्यों कर रहा है? यह कैसे हो सकता है?

गहरी जिज्ञासा से प्रेरित होकर ही वह चार-पाँच दिन लगातार भगजोगिनी के घर गया और वहीं भी उसके व्यवहार और आचरण में ऐसा कुछ भी नहीं मिला जो उसके सन्देह की पुष्टि करता।

वह उसको और उसके परिवार को बचाने उठाने और साम्यवादी विचारधारा से लैस करने के लिए व्याकुल हो उठा। लेकिन उसमें दीर्य नहीं था। यह भी उसे मालूम नहीं कि कैसे संभव होगा यह कार्य जो एक सुन्दर और बदनाम औरत के उत्थान से सम्बन्धित हो। उसके पास उन विचारों के अलावा कुछ भी नहीं था, जिन्हें वह नित्य सभाओं, बहसों और बातचीत में फेटता रहता-मौका-बेमौका हर जगह यह जाने बगैर कि किसी व्यक्ति को उसकी जरूरत है या नहीं।

भगजोगिनी के सम्बन्ध में वह कुछ अधिक ही जल्दीबाजी से काम ले रहा था, इस दृढ़ विश्वास के साथ कि उस जैसी बेसहारा औरत को उसके विचारों की सख्त जरूरत है. जिन्हें वह सहर्ष स्वीकार भी

लेगी। यही सब वह अधिकारपूर्वक, क्रान्तिकारी ऊँचाई, सच्चाई और रूखाई से कर रहा था। और जब वह अपने और अपने परिवार, नम्रता, और रमाशंकर के सम्बन्ध में बताते हुए रुदन से विवश होकर चुप हो गई तो वह कुछ देर के लिए सकते में आ गया। कुछ देर बात काफी कोच में बोला :

"तुम अपने पहले के समय को इस तरह याद कर रही हो, जैसे रानी-महारानी का जीवन बिताया हो तुमने। इतना ही घमंड है अपने परिवार का, तो उस अत्यन्त तुच्छ और सड़े हुए व्यक्ति को क्यों बुलाया अपने घर के अन्दर ?"

विद्युत गति से भगजोगिनी का झुका हुआ चेहरा उठा, आँखें फैलकर निकल आई चुनौती की सीमा तक। मुँह पर रक्त की आभा दौड़ गई। लेकिन कुछ क्षण बाद अपने को संयमित करने के पश्चात ही उसने प्रतिवाद किया :

"भाईजी, यही कहने के लिए यहाँ आप आते हैं? मैं तो पहले से ही टूटी हुई हूँ, क्या आप और भी टुकड़े करना चाहते हैं? आप क्या चाहते हैं हमसे ? मैं माफी माँग लूँ? मुझसे यह कहलाना चाहते हैं, मैं बहुत गई-गुजरी औरत हूँ? मैंने क्या बिगाड़ा है आपका ? मैं गांधीजी को बुरा-मता कहूँ ? उनके आन्दोलन में शामिल होने न जाऊँ? यह सब करने से आप खुश हो जाएँगे ? इससे आपको सन्तोष हो जाएगा...।"

गोपालराम का चेहरा फक पड़ गया ओर बीच ही में यह कहकर कि 'मुझे तुमसे कुछ नहीं चाहिए'... वह घूमकर तेजी से बाहर निकल गया।

दूसरे दिन सवेरे लगभग उसी समय उसका पुनः आगमन हुआ। आभाहीन चेहरा, आँखें बुझी-बुझी, कपड़े मुड़े-तुड़े। वह बहुत धीमे कदमों से प्रवेश कर आँगन में खड़ा हो गया।

भगजोगिनी को आहट नहीं मिली। कई कारणों से वह उत्साह में थी। एक तो मौसम में ठंडक से गर्मी-उमस में राहत। रात में कुछ बारिश हुई, इस समय भी आकाश में बादल। हवा के झोंके सुख पहुँचा रहे थे। दूसरा कारण कल दोपहर बाद दुलारी देवी का आगमन धनेसरी के साथ। वह गोपालराम के व्यवहार के कारण कई बार अकेले में रो चुकी थी और उस समय भी दुःखी और उदास बैठी थी। उसने अपनी सास से भी कुछ नहीं कहा, इस डर से कि रमाशंकर को मालूम होगा तो क्या कहेंगे। दुलारी के कई बार पूछने पर भी उसने कुछ नहीं बताया। तब दुलारी ने कहा:

"इस तरह हिम्मत हारकर दुःखी रहोगी तो समस्याओं का सामना कैसे करोगी? तुम अकेती नहीं हो, हमारे साथ हो, एक देशव्यापी आन्दोलन के साथ। कोई भी बात हो, अगर हमसे नहीं कहोगी तो तुम्हारा जी-मन हल्का कैसे होगा? मैं तो इसलिए आई थी कि हमने स्त्रियों का एक * जुलूस निकालने का फैसला किया है। मैं रहूँगी, घनेसरी देवी रहेंगी और दूसरी कई महिलाएँ भी। यह जीवन-मरण की लड़ाई है, हम औरतें पीछे क्यों रहें? चाहे जेल जाना पड़े, लाठी-गोली खानी पड़े। लेकिन तुम परेशान हो, तुमसे नहीं कहूँगी..." "

"अरे नहीं बहिनजी, मुझे भी ले चलिए, हाथ जोडती हूँ... मुझे परेशानी नहीं है कुछ भी... भगजोगिनी की आँखों में चमक आ गई और वाणी में उत्साह जैसे उसकी चेतना लौट आई हो।

"देखो भाई. देशसेवा, समाजसेवा का काम खुशी-खुशी किया जाता है। स्त्रियों को कठिनाइयाँ होती हैं, उन्हें परिवार, बाल-बच्चे सँभालने होते हैं। मुझे ही देखो, मेरे पतिदेव जेल में हैं, बच्चे भी उतने बड़े नहीं हैं. मेरी सास सब सँभालने को तैयार हो गई हैं। तुम सोच लो और चलना चाहती हो तो सभी चिन्ताएँ छोड़ दो... तुम्हारे परिवार और बच्चों की चिन्ता राष्ट्र करेगा, पूरा समाज..."

"नहीं बहिनजी, मैं जरूर चलूँगी, मुझे बड़ी घुटन हो रही है, मुझे ले चलिए। मैं सबकुछ सह हूँगी... मुझे कोई चिन्ता नहीं..." वह हँसने लगी. साथ ही उसकी आँखों से आँस भी गिरने लगे। दुलारी देवी ने आजादी के आन्दोलन में महिलाओं की कर्बानियों और त्याग के बारे में विस्तार से बताकर भगजोगिनी की हिम्मत बँधाई और अन्त में उससे तैयार रहने को कहा कि उसे धनेसरी देवी अपने साथ ले जाएगी।

भगजोगिनी की वह हीनता काफी हद तक दूर हो गई, जो गोपालराम ने अपनी बातों और ग्योक्तियों से उसके अन्दर भर दी थीं। दसरे दिन तड़के उठकर उसने जल्दी-जल्दी तैयारी शुरू कर दी। वह दोनों जून के लिए रोटियाँ और आलू की मसालेदार लपेटआ तरकारी बनाकर रख देना चाहती थी और बच्चों के लिए गुड के मीठे ठेकए भी। बच्चों अपनी सास और अपने शरीर के गन्दे कपडे सवेरे ही छाँटकर उसने पसार दिए थे। और स्वयं नहाकर और कपडे बदलकर जब वह मडी तो गोपालराम को परानी, भोथरी पत्थर की मर्ति के समान खडा देखकर वह बेहद डर गई. उसके मुख से हल्की चीख निकली और वह विपरीत दिशा में मुड़कर तिरछे-तिरछे अपने कमरे की ओर भागी।

उसने अपने को अन्दर से कमरे में बन्द कर देना चाहा-गोपालराम की आँखों में क्या देख लिया था उसने ? लेकिन नम्रता दीदी तो कहती हैं कि किसी गलत बात को स्वीकार करोगी, झुकोगी तो ऐसे दलदल में फँसोगी कि निकलना मुश्किल होगा। दुलारी बहिन भी कल क्या-क्या कह गई हैं? वह तो कुछ देर बाद जुलूस में शामिल होने जाएगी, इसी हिम्मत पर वह गोली-लाठी बरदाश्त करेगी ?

ये बातें तेजी से उसके दिमाग में आई और वह कमरे से पुनः बाहर आकर गर्दन तानकर खड़ी हो गई। गोपालराम उसकी तरफ ही आ रहा था धीरे-धीरे। वह तेज झनझनाती आवाज में बोली, "क्या चाहते हैं आप... किसलिए आए हैं ?"

गोपालराम पास आकर उसके सामने खड़ा हो गया। उसके चेहरे पर गहरी व्यथा का भाव फैला था। अत्यन्त कठिनाई से उसके मुँह से शब्द निकलने लगे:

"मैं नहीं जानता क्यों आया हूँ। पर यह भी नहीं मालूम कि क्या कहना चाहता हूँ। मैं कल दिन और रात-भर अपने कमरे में पड़ा इस तरह छटपटाता रहा हूँ, जैसे मुझे खौलते तेल के कड़ाहे में डाल दिया

गया हो। कल तक मैं समझता था कि इस दुनिया को बदलना बड़ा आसान है। इसके लिए मेरा पार्टी सदस्य होना, क्रोध और घृणा से अपने क्रान्तिकारी विचार प्रकट करना काफी है। तुमको भी बदलना चाहता था मैं-यह मैं अपना अधिकार समझता था। मगर तुम्हारी बातों से मुझे अपनी असलियत का पता लगा कि..."

आगे की बात उसके मुँह से नहीं निकली, सिर्फ होठों में ऊपर-नीचे कुछ हरकत हुई, गोया वह अपनी भावनाओं को विचारों का रूपाकार देने की कोशिश कर रहा हो। भगजोगिनी की आँखों में और चेहरे पर क्रोध, डर तथा रुदन का एकीकत सहमा सहमा भाव था. अनेक अनजान, अस्पष्ट, पतली सवालिया लकीरों के साथ। गोपालराम फिर कह रहा था:

"हाँ. मैं जिस समाज में पैदा हुआ, उसके अमली दर्द, उसकी समस्या को अब महसूस कर रहा है। पहले क्रोध था, घृणा थी. इसके सहारे सबकुछ बड़ा आसान लगता था। मैं ऊपर ऊपर तैर रहा था, अब असलियत की गहराई में जाकर पीडा से छटपटा रहा है। मुझे लग रहा है कि हमारे

समाज के अछूत, दबाए हुए गरीब लोगों के पैरों के नीचे तो कोई जमीन ही नहीं है, जिस पर खड़े होकर शरीर, मन और दिमाग को सहारा मिल सके। यह सिर्फ आर्थिक समस्या नहीं है। सदियों से कुछ नहीं हुआ है। मैं देश की आजादी का विरोधी नहीं हूँ, मैं आजादी चाहता हूँ। लेकिन कांग्रेस यदि आजादी ले लेती है तो क्या यह समाज बदल जाएगा ? हमारी कम्युनिस्ट पार्टी भी कई उलझनों में पड़ी है। उसमें अनेक सच्चे और त्यागी लोग हैं, लेकिन समूचे देश में उनकी पैठ बहुत मामूली है। गरीबों में भी कम। ये उन छोटे बच्चों की तरह व्यवहार करते हैं जो अपने बड़ों की नकल करते रहते हैं। सोवियत रूस की जो नीति होती है, उसी के पीछे चल देते हैं आँख मूँदकर, यह सोचे बगैर कि यदि इस नीति में कमजोरियाँ हुई तो पार्टी को काफी नुकसान होगा, मुस्लिम लीग से मिलकर पाकिस्तान के विचार का समर्थन कर रही है, इस तरह पार्टी सबसे ही कट गई है, मुस्लिम लीग भी उसकी नीति से फायदा उठा रही है।"

उसने कुछ क्षण रुककर भगजोगिनी के चेहरे को गीर से देखा, "मेरा कहने का मतलब यह है कि देश-समाज का जो हाल है, उसमें नहीं कहा जा सकता कि गरीबों की हालत में कोई सुधार होगा। ये बातें तुम्हारे मतलब की हो या न हों, मैं इसलिए कह रहा हूँ कि इससे मुझे शान्ति मिल रही है, यह सन्तोष कि मैं कोई सच्चाई नहीं छिपा रहा हूँ। मैं गरीबी, शोषण, अन्याय, हुआसूत से घृणा करता हूँ। लेकिन यह सब कहने से कोई लाभ नहीं। खैर, सच्ची बात यह है कि तुम्हारा आकर्षण मुझे लगातार चार-पाँच दिनों से मुझे यहाँ खींच लाया है। मैं अनाड़ी और बेवकूफ की तरह अपने क्रान्तिकारी विचारों से प्रभावित करके तुम्हें अपने निकट लाने की कोशिश करता रहा हूँ... मगर तुमने अपनी बातों से, अपने व्यवहार से सिद्ध कर दिया कि में कितना अहंकारी और तुच्छ हूँ और एक क्रान्तिकारी का धैर्य, व्यापक सोच-समझ नहीं है मुझमें..."

बीच में खाँसी आने के व्यवधान के बाद फिर बोला वह, "हमारे समाज को बदलना बड़ा कठिन है...इसलिए कि देश के लोग ही तैयार नहीं हैं। और जो ऊँची समर्थ जातियों के लोग हैं, वे स्वयं तो अपने को बदलेंगे नहीं, हमें भी बदलने नहीं देंगे। बड़ी हरहठई है ऊँची जाति के लोगों में। वे अब भी मानते हैं कि पुराने जमाने में जो कुछ हो चुका है, किया जा चुका है, लिखा जा चुका है, यह सब सही है। वर्णाश्रम धर्म भी बड़ा सही और वैज्ञानिक है। खैर, उनकी बात वे जानें, लेकिन हम जो गरीब हैं, अछूत हैं, गए-गुजरे हैं, उन्हें अपने को बदलना पड़ेगा। हमें अपने को हर तरह 11 से योग्य बनाना पड़ेगा, अपने को शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक दृष्टि से मजबूत, उदार, प्रखर ताकि हम आगे बढ़कर ऊँची जातियों को दिखा सकें कि एक जनतान्त्रिक व्यवस्था कैसे कायम की जा सकती है। समानता का क्या अर्थ है। मैं बहुत पढ़ तो नहीं सका, लेकिन मैंने राजनीति छोड़कर सरकारी नौकरी करने का निश्चय किया है ताकि मेरे भाई-बहन तो पढ़ सकें, मेरे माँ-बाप तो कुछ दिन तक आराम कर सकें। हाँ, मैं यह कहने के लिए ही आज यहाँ आया हूँ कि यह संकल्प तुम्हारी वजह से लिया है मैंने। तुम्हीं ने मुझे बुद्धि दी है। अपने दुर्व्यवहार के लिए मैं तुमसे माफी माँग रहा हूँ..."

उसका स्याह चेहरा सिकुड़ गया और वह घूमकर लड़खड़ाते हुए कदम से आगे चलता हुआ घर से बाहर निकल गया।

43

लगभग दो घंटे की धुआँधार वर्षा बन्द होने पर नीलेश ने रमाशंकर से विदा ली। गली हो या सड़क, आगे चलना बड़ा कठिन। उसने अपनी चप्पलें हाथ में ले ली थीं। चारों ओर बरसाती पानी का

मैलाब दिखाई दे रहा था। नालियों यह रही हैं नदियों की तरह हहराती और ऊपर रास्ते में फैलती । पानी को हेलकर चलना पड़ रहा है, जिसके अन्दर कहीं-कहीं फूला हुआ कीचड पाँयों को गोंद की तरह चिपका लेता है। रास्ते में छोटे-छोटे कंकड़-पत्थर, शीशे टीन आदि के टुकड़े, कूड़ा-कचरा, कीड़े-मकोड़े बह रहे हैं और कई मकानों की ओरियानी से गिरती मोटी जलधाराओं की आवाजें मनहूलियत को तोड़ रही हैं।

सचमुच इस बारिश ने गुदड़ी बाजार गोलीकांड में हई मौत के भय और आतंक से विच्छिन्न करके लोगों को जैसे किसी सुरक्षा घेरे में पहुँचा दिया हो। कुछ मकानों की खिड़कियाँ खुल गई थीं. जिनसे बाहर झाँकते कुछ सिर और आँखें दिखाई दे रही हैं। कहीं-कहीं बच्चे नियन्त्रण की ढिलाई का लाभ उठाते हुए बाहर निकल और इधर-उधर देखकर बातें कर रहे हैं, धीमे स्वर में। कहीं-कहीं कागज की नावें पानी में छोड़ी जा रही हैं। दूर छतों पर इक्का-दुक्का आदमी भी दिखाई दे रहे हैं उग आए छोटे पौधों की तरह। कभी वे ऊपर आकाश के बादलों और कभी नीचे के जल-प्लावन का चुपचाप अवलोकन कर रहे हैं और कुछ चूजों की भाँति मुँह घुमाकर अपनी छत या मकान के बिगड़े हुए हुलिया का मुआइना ।

नीलेश ने सोचा, वह इसी समय भगजोगिनी के घर जाकर रमाशंकर के दिए रुपए थमा दे, परन्तु ऐसा संभव नहीं है, क्योंकि कई गलियों, विशेष रूप से बमपुलिस गली का अस्तित्व-लोप हो गया है, जहाँ दोनों ओर मकानों को जोड़ती कई सलवटोंवाली जल-चादर फैली हुई है। वह स्वयं सड़क पर निकल आया है, जहाँ दोनों किनारे पानी भरा हुआ है और उसे बाध्य होकर बीच के उभरे हुए कंकरीले रास्ते का सहारा लेना पड़ रहा है।

जब वह किसी तरह अपने मकान के बरामदे में पहुँचा तो सभी दरवाजे भीतर से बन्द। सहसा खटखटाने की हिम्मत नहीं हुई। कुछ देर तक चुपचाप खड़ा रहा। फिर अन्दर से किसी के दौड़कर आने की थप-थप आवाज नजदीक आती गई।

"अरे बड़का भैया, आप? मझले भैया कहाँ हैं?" दरवाजा खोलते ही सुरेश ने पूछा।

"मैं नहीं जानता, सुरेश। मैं तो अपने दोस्त गोबर्धन के यहाँ चला गया था। वहाँ से निकलने में कुछ देर हुई, लेकिन रास्ते में पानी बरसने लगा। कहाँ गए हैं वीरेश, सवेरे तो थे... मुझसे तो मुलाकात नहीं हुई...।"

वीरेश को लेकर पहले से ही सशंकित था नीलेश, यद्यपि उसकी हरकत से मन-ही-मन बेहद नाराज भी। उसे महसूस हो रहा है कि घर के अन्दर ही एक अजीब प्रतिद्वन्द्वी भी निकल आया है उसका-तुम डाल-डाल मैं पात-पात ! किन्तु अपनी अनभिज्ञता जताने के सिवाय क्या करे ? इस समय तेजी से शैलजा भी आ गई और पीछे-पीछे जीरादेई भी।

"चलकर भीतर देखो, तुम लोगों की वजह से अम्मा की आँखें सूजकर लाल हो गई हैं।" "अरे तो मैंने क्या कर दिया? मैं तो शहर ही में गोबर्धन के यहाँ था... इतना घबराने की क्या बात है..." नीलेश अपनी सच्चाई और घटना की अतिसाधारणता सिद्ध करने के लिए नाराजी का प्रदर्शन कर रहा था, जबकि माँ की हालत सुनकर परेशानी भी हुई उसे।

"नाहीं, ए बाबू," जीरादेई बोलीं, "जमाना बड़ा खराब है, इसमें बाहर थोड़े ही निकलना चाहिए। गोली छूट रही है। बच्चा, तुम बड़े हो, तुम जैसा करोगे तो देखा-देखी छोटे भी वैसा ही करेंगे। तुम्हारे जाने के बाद मझला भी निकल गया। तुम्हारे बाबूजी चिन्ता में अपने कमरे में पड़े है. महतारी आँसू बहा रही हैं... मैं कभी गलियारे तक बाहर आती हैं और कभी भीतर जाती हैं। सभी बच्चे बेचैन हैं. किसी को कुछ अच्छा थोडे ही लग रहा है। चलो भीतर अपनी अम्मा को चेहरा

दिखाओ कि उनको ढाढ़स बँधे... कपड़ा बदलकर खाओ-पीओ..." जीरादेई की बात समाप्त होते ही. नीलेश चपके से दुबककर गलियारे से भीतर पहुँचकर आँगन

पार करते हुए दक्षिणी बरामदे में चला गया, जहाँ आनन्दी एक चारपाई पर बैठी आँखें पोंछ रही थी। सीतानाथ ने कमरे से ही उसे जाते हुए देखा, किन्तु कुछ बोले नहीं। लेकिन सब कुछ जानने की उनकी जिज्ञासा को शान्त किया शैलजा ने सूचना देकर।

"बाबूजी, नीलेश हैं, अपने दोस्त गोवर्धन के यहाँ चले गए थे। गोवर्धन ने किसी काम से बुलाया था, यहाँ जल्दी में किसी को बता नहीं पाए। वहीं भोजन के लिए रोक लिया तो देर हो गई। लौटते समय पानी बरसने लगा...।"

शैलजा ने पिता की नाराजी कम करने के लिए, अपनी कल्पना का सहारा लेकर परिस्थिति

की व्याख्या को और भी वास्तविक बना दिया था। सीतानाथ ने पूछा, "वीरेश भी होंगे ?" "नहीं बाबूजी, वीरेश कैसे होते ? गोवर्धन के दोस्त थोड़े ही हैं वीरेश ! धीरेश बता रहा था, कोई बड़ा लड़का आया था, उसी के साथ गए हैं वीरेश....।"

"आते ही होंगे, वह भी...।" सीतानाथ ने और भी धीमी आवाज में कहकर मुँह फेर लिया। "बाबूजी, पानी इतना बरसा है कि उनकी चप्पल भी टूट गई। यह चप्पलें हाथ में लेकर आए हैं, इसीलिए तो और भी देर हो गई..." पिता को बात में लगाने और बहलाने का शैलजा का प्रयास सफल नहीं हुआ और सीतानाथ ने बेमन से 'अच्छा' कहकर करवट विपरीत दिशा में बदल ली। उधर नीलेश माँ के पास बैठकर लगभग मिमियाए-फुसफुसाए हुए स्वर में समझा रहा थाः

"अम्मा, मैं कहीं गया थोड़े ही था, इस तरह घबराओगी तो कैसे काम चलेगा? गोवर्धन को तो जानती ही हो, इस समय अपने व्यापार में फँसा है। पहले अक्सर हमारे यहाँ आता था, तुमने उसे नाश्ता कराया है, खाना खिलाया है। वह भी बड़ा खातिर-बात करता है, जाने पर इतना खुश हो जाता है, जैसे सगा भाई आ गया हो। हम लोगों की बड़ी चिन्ता रहती है उसे, मुझसे कह रहा था, बाबूजी की कचहरी बन्द होने से सामान, रुपया-पैसा जिस चीज की जरूरत हो, वह भेजवा देगा। तो उसी के यहाँ गया था, अम्मा, आराम से बैठा था... हाँ, कुछ लापरवाही हो गई मुझसे...."

"वह मझला... वीरेश... गुदड़ी बाजार में खूब गोली चली है...।" आनन्दी के मुँह से और कोई बात ही नहीं निकली और वह जोर-जोर से बिलखने लगी। नीलेश की तो एक बात भी उसके कान के अन्दर नहीं गई थी।

सहसा वह चौकन्नी होकर, गर्दन उठाकर सामने देखने लगी, क्योंकि इसी समय सुरेश की तेज आवाज बाहर की तरफ से आने लगी थी, "कहाँ थे मझले भैया अभी तक ? जानते हैं क्या बजा है ? कितना भींग गए हैं, क्या लगा है यह सब... चलिए भीतर जल्दी... यह लो, आपकी तो चप्पल ही गायब है... भीतर चलिए, यहाँ खड़े होकर क्या करेंगे ?"

वीरेश किसी सजायफ्ता कैदी की तरह सिर झुकाकर अन्दर घुसा। उसने किसी तरफ देखा नहीं... उसका एकमात्र उद्देश्य था चुपचाप अन्दर जाकर गुसलखाने में घुसकर बन्द हो जाना, किन्तु सफलता नहीं मिली सिर्फ इस वजह से कि इसी समय सीतानाथ आश्वस्त होकर चैतन्य हो गए। दिन-भर यह डर के मारे मुर्दे की तरह पड़े रहे थे। भयावह काल्पनिक आशंकाएँ कभी-कभी मूर्त दिखाई दे जातीं। भगवान राम और शिव के नाम का जाप तथा रामायण की चौपाइयों का मन-ही-मन पाठ कोई सन्तोष नहीं दे पाया था। किन्तु अब भय के हट जाने से उसके रिक्त स्थान को भरने के लिए प्रचंड क्रोध दौड़ पड़ा। वह उठ बैठे और तड़पकर बोले :

"वीरेश ! चलो इधर..."

वीरेश के गुसलखाने की दिशा में बढ़ते कदम रुक गए। फिर वह सिर झुकाए ही घूमकर सीतानाथ के कमरे की तरफ चल पड़ा, परन्तु कुछ पहले ही उसे रुकना पड़ा, क्योंकि सीतानाथ प्रशंसनीय फुर्ती से खड़ाऊँ पहनकर उठ खड़े हुए और बरामदे में आकर लड़के को फटकारने लगे:

"कहाँ थे भाई तुम अब तक ? क्या समझते हो सीतानाथ यह सब बरदाश्त कर लेंगे ? ठीक

है नीलेश बाहर पढ़ते हैं. कॉलेज में हैं, एक साल बाद यूनिवर्सिटी में जाएँगे, मगर, तुम्हारी क्या हरती है जी? नीलेश बिना बताए चार दिन भी घर से बाहर रहें तो कोई परवाह नहीं, तुम्हारा तो है। हाई स्कूल अभी किया नहीं, अकेले कभी बाहर गए नहीं, सवेरे कुछ दंड बैठक कर लेते हो एक घंटा क्या, एक सेकेंड भी लापता होना बरदाश्त नहीं होगा। तमने अपने को समझ क्या रखा तो समझने लगे बड़े हो गए। छाती आगे निकालकर अकड़कर चलने लगे। साफ-साफ बताओ, कहाँ रहे अभी तक ?"

सीतानाथ सिमटे जमे, घने स्याह बादलों की तरह गरज तड़प रहे थे। घर में इधर-उधर डोलती जीरादेई और शैलजा को अब पास आने की हिम्मत नहीं हई और वे जहाँ थीं. यानी दक्षिणी बरामदे में ही खड़ी सशंकित भाव से टुकुर-टुकुर देखने लगीं। कभी सिर को उठाते और कभी झुकाते। नीलेश का भी उठने का साहस नहीं हुआ। किन्तु, आनन्दी के निरन्तर बहनेवाले आँसू पता नहीं कय सूख गए और वह गर्दन उठाकर एक तटस्थ दर्शक की भाँति सबकुछ देखने, सुनने लगी।

सीतानाथ को ऐसे समय सिर्फ अपना क्रोध दिखाई देता, जिसको शान पर चढ़ाकर वह अक्सर अपनी सामान्यता और स्वाभाविकता प्राप्त कर लेते थे। उनका ध्यान एक क्षण के लिए भी वीरेश के हुलिए की तरफ नहीं गया, जो चुपचाप पहले की तरह सिर झुकाए खड़ा था।

"साफ-साफ बताते क्यों नहीं, जी? मुझे एकदम सही जवाब चाहिए। समझ लेना, मैं तुम्हारी महतारी नहीं हूँ कि रोने लगूँगा और तुम बच निकलोगे। इस घर में झूठ और बहानेबाजी नहीं चलेगी। तुम

सीतानाथ के लड़के हो, जो कचहरी में भी झूठ नहीं बोलते। मैंने आज तक कोई झूठ मुकदमा नहीं लिया, चाहे कोई खाए या नहीं खाए। क्यों गीदड़ की तरह खड़े हो ? सीतानाथ के लड़के होकर सच बताने की हिम्मत नहीं है तुममें? बोलते क्यों नहीं... चोरी करके आए हो या डकैती डाल के या बदकारी, जनाकारी करके...?"

"मैं गुदड़ी बाजार गया था," अब जाकर वीरेश के मुँह से आवाज निकली।

"गुदड़ी बाजार ? काहे, वहाँ क्या था?" सीतानाथ की तड़प में कमी आ गई। अब चेहरे पर अचम्भे की रेखाएँ उभर आई थीं और मुँह खुल गया था।

"वहाँ पुलिस ने गोली चला दी थी..."

"गोली चला दी थी ! फिर तुम वहाँ क्यों गए थे, रोकने या खाने ?" सीतनाथ जिरह करने लगे।

"पुलिस गोली चलाकर भाग गई थी... पब्लिक, दुकानदार भी भाग गए थे। लाशें पड़ी थीं, घायल

"वे बातें कर रहे थे..." "तो? आप चुप क्यों हो गए? सर, एक समय पर आपने कहा था, "डॉ.

"घायलों को डॉक्टर के यहाँ कौन पहुँचाता ? लाशों का दाह-संस्कार कैसे होता ? उनको मुर्दाघाट कौन ले जाता ?"

"उनके तुम कौन हो, भाई ? रिश्तेदार या नातेदार ?" विभा

"रिश्तेदार को भी बुलाया गया था..."

"तो आप महाब्राह्मण हैं या अग्नि देने वाले डोम? वहां आपका क्या काम है?"

"मेरे साथ पढ़नेवाले जगदम्बिका बुलाने आए थे। और भी लड़के आए थे। मैं भी उनके कुछ रिश्तेदारों को बुला ले आया, शहीदों की लाशों को उठाया...मुर्दाघाट पहुँचाया। वहाँ सबकुछ मिल गया... पंडा, डोम, लकड़ी... और भी सामान पास ही मिल गए...।"

"अच्छा !" सीतानाथ के मुँह से और कोई शब्द नहीं निकला। उनके तो होश-हवास ही उड़ गए थे वास्तविकता का भान होने पर। और पहली बार उन्होंने गौर किया अपने लड़के के हुलिए पर-कई बार अखियाना सिर से पैर तक... बाल बिखरे, चेहरा धूमिल, मटमैला, कुर्ते की बटन टूटी

हुई, बनियान का ऊपरी हिस्सा फटकर लटकता हुआ, नीचे दाहिने पैर का पैजामा फटा हुआ, जैसे नीचे से किसी ने फाड़कर धीर दिया हो, जिससे टखने का हिस्सा दिखाई दे रहा था। याएँ-दाएँ की उभरी हुई हड्डी भी कट-छिलकर ललछऊँ नजर आ रही थी। और तो और, कपड़ों पर ऊपर-नीचे कई जगह कीचड़ और खून के धब्बे पानी में घुले, फीके और फैले।

"तो यह सब करके आए हो तुम ! इसी दिन का इन्तजार था तुम्हें। पढ़ाई-लिखाई इसीलिए कर रहे थे। तो ठीक है करो, बेशक करो... सीतानाथ तुमसे कुछ नहीं कहेंगे। सीतानाथ कौन होते हैं जी ? तुम मामूली लड़के थोड़े हो ! भूचाल आया, सभी लड़के बचकर निकल आए और तुम्हारे ऊपर पूरी दीवार ही गिर गई। सिनेमा का इश्तहार सभी लड़के लूटते हैं, सभी लड़के लेकर आ गए और तुम एक्के के पहियों के नीचे चले गए। निहायत चुल्ली हो तुम ! मैंने सोचा, ऐसे हादसों से बचकर निकल आए तो इसमें प्रभु की मर्जी है, उनकी कृपा है, यह तुमसे कोई अच्छा काम कराना चाहता है। और भैया हैं कि वहाँ पहुँचकर मुर्दा ढो रहे हैं। इसमें तुम्हारा दोष नहीं है, तुम्हारे लक्षणों का दोष है ! तुम समझ-बूझकर कोई अच्छा काम करते कैसे, भाई ? तुम तो आला दर्जा के फितूरी हो... तुम्हारे दिमाग में तो चौबीसों घंटे खुराफात की बातें चक्कर काटती रहती हैं..."

"मैं कोई खुराफात करने नहीं गया था... गांधीजी के आन्दोलन में शामिल होने गया था...जब लोग मारे जा रहे थे, उनको बचाना मेरा फर्ज था..." अपने पिता की बातों के विरोध में वीरेश की आँखें क्रोध से बाहर निकली जा रही थीं। वह मुँह फुलाकर बोल रहा था और उसकी आवाज धीमे-धीमे भों-भों निकल रही थी, जैसे ग्रामोफोन का कोई पुराना घिसा हुआ रेकॉर्ड। इसके साथ ही आँसू की धार भी झर-झर निकलकर गालों पर प्रवाहित।

वीरेश पहली बार सीतानाथ की किसी बात का जवाब दे रहा था। वह उसे छोटा समझकर दबाने की कोशिश कर रहे हैं और शाही की तरह अपने काँटे, खड़े कर दे रहा है वह। उन्होंने जिद में पुनः क्रोध का सहारा लिया और दहाड़ने लगे:

"जंग के मैदान में गए थे तो रो क्यों रहे हो, भाई? गांधीजी के आन्दोलन में गए थे ! क्या गांधीजी हिटलर हैं या हिन्दुस्तान के वाइसराय कि उनका हुक्म न मानने से फाँसी पर चढ़ा दिए जाते ? जाकर पूछो गांधीजी से, जवाहरलाल से कि क्या उन्होंने कभी अपनी जिन्दगी में हलाक कांग्रेसियों की लाशें उठाई हैं? अरे, आन्दोलन करने के लिए अक्ल भी तो चाहिए? वे लोग अच्छे-अच्छे स्कूल-कॉलेज में पढ़ते हैं, विलायत जाकर बारिस्टरी पास करते हैं, लौटकर बारिस्टर बनते हैं। अंग्रेजों की तरह अंग्रेजी बोलते हैं, हाईकोट में बहस करते हैं, पब्लिक में स्पीच देते हैं और उसके बाद अपने बँगले में जाकर टोस्ट-मक्खन खाकर और सन्तरा-अनार का जूस पीकर आराम फरमाते हैं। यह नहीं कि सीतानाथ की तरह दो-दो, चार-चार रुपयों के लिए कचहरी के लिए पचासों चक्कर लगाते हैं। तुम्हारी हैसियत क्या है जी...?"

वह पता नहीं कब तक वीरेश की फिंचाई करते, लेकिन बीच में आनन्दी की तरफ से ऐसी रुकावट पेश की गई, जिसकी किसी ने सपने में भी कल्पना नहीं की थी। वह दक्षिण बरामदे से ही तेज मोटी आवाज में बोली :

"ए नीलेश, जाओ मझले का हाथ पकड़कर ले आओ यहाँ... उसे मार डालेंगे लोग..." परन्तु, सहसा नीलेश की हिम्मत नहीं हुई और जब वह बगलें झाँकने लगा तो आनन्दी स्वयं उठकर क्रोध से मुँह सिकोड़े किसी नाटे पहलवान की हाथों की जुम्बिश के साथ आँगन पार करके वीरेश के पास पहुँची, अपने हतप्रभ और चकित पति की ओर बिना देखे वीरेश का बायाँ हाथ मजबूती से पकड़कर उसे गुसलखाने की ओर घसीट ले गई यह कहती हुई :

"क्या हत्यारे की तरह खड़े होकर चुपचाप सुन रहे हो? मुँह में जाबी लगी है? चुपचाप नहाओ, अपनी सफाई करो... कपड़े, साबुन भेजवाती हूँ...।"

सीतानाथ दो-चार क्षण तक अपनी पत्नी की तरफ देखते रहे. फिर किसी पराजित साँढ की तरह पीछे घूमकर लडखडाती चाल से अपने कमरे में चले गए। फिर तो सबके अन्दर उत्साह आ गया। छत पर जाकर छिपे लड़के भर-भर नीचे उतर आए। शैलजा तेज आवाज में बोली:

"सुरेश, तुम्हें सुनाई नहीं देता ? डाँट तो तुम लोगों पर पड़नी चाहिए। घर में क्या जरूरत है. इसकी फुरसत ही नहीं है। अपने मझले भैया के कपडे लाकर क्यों नहीं देते ?"

"ला तो रहा है, दीदी." सुरेश गुस्से में बोला। फिर कमरे में घुसकर वीरेश का कर्ता-पैजामा, बनियान लेकर बाहर निकला और शैलजा को पिनककर घूरता हुआ गुसलखाने की ओर निकल गया। देखा-देखी धीरेश. उमेश और रमेश भी सक्रिय हो गए एक साबुन, दूसरा तीलिया और तीसरा मलिया में तेल लेकर दौड़ा। एफ

"ए बबुनी, मैं बोरसी में कोयला जला देती हूँ, तुम हल्दी पीस दो थोड़ा। बबुआ निकलें तो घाव में हल्दी लगा देना गर्म करके। बाद में हाथ-पैर भी सेंक लेंगे, बड़ा ठंडा गया है बेचारा।"

शैलजा दया और करुणा की मूर्ति बनी हुई थी। उसने आँखें मलका और मटका तथा सूखी नाक सुड़ककर हाथ के विविध संचालन के साथ अर्थपूर्ण संकेतों द्वारा जो कुछ बताया, उसे समझने में जीरादेई को कोई भी कठिनाई नहीं हुई-यानी वीरेश ने अकेले ही कई मुर्दे कंधे पर लाद-लादकर मरघट पहुँचाया था और अब बहुत थक गया है बेचारा !

फिर आँगन में चहलकदमी करते सुरेश को डाँटा शैलजा ने, "क्या बात है सुरेश, तुम्हें किसी बात की फिक्र नहीं... क्या गुसलखाने तक मझले भैया के लिए खटपटी नहीं पहुँचा सकते ? उसके बाद गंगाल से पानी लेकर आँगन को झाड़ से साफ कर दो..."

"हाँ बबुआ... बाबूजीवाला बरामदा, बाहर गलियारे में भी दो लोटा पानी गिरा देना...हाँ, लाला के यहाँ दुकान खुलवाकर दो आने का धूप-दशांग भी ला देना, बोरसी में डालकर रख दूँगी तो सारा घर शुद्ध-पवित्र हो जाएगा..."

दादी के अतिरिक्त सुझावों से सुरेश शोले की तरह भड़क गया, "जाइए, एक काम भी नहीं करूँगा मैं। सवेरे से दौड़ रहा हूँ। जब देखो, एक आने का नमक लाओ, एक आने की हींग। जब आप लोग दिन में छत के कमरे में फों-फों सो रही थीं, मैं दो बार चारों ओर गया उन लोगों को खोजने। ऊपर खुली छत पर देर तक खड़ा सड़क देखता रहा कि अब आते होंगे। बड़का भैया को मैंने ही पहले देखा, फिर मझले भैया को। दीदी तो तवा पर सूखे चने मसाले में भूनकर कटर-कटर खा रही थीं..."

"अरे कैसा बेईमान है, मुँह सूना हो रहा था, चार दाने तवे पर गर्म करके खा लिए तो चारों ओर बदनाम कर रहा है। आधी मुट्ठी चने इसे भी दिए थे... अधिक थे ही नहीं ! तो क्या करती ?" "ए बेटी, काम तो करता है यह बच्चा, लट्टू की तरह नाचता रहा है बाहर-भीतर..."

"नाचता रहता है तो कौन अहसान करता है? घर में रहते हैं लोग तो मौका पड़ने पर सभी करते हैं। फिर ध्यान भी तो रखा जाता है... घर में कोई भी सामान आता है, आम, लीची, खरबूजे... सबसे अच्छे-अच्छे छाँटकर अम्मा इसके हिस्से में रखती हैं। कपड़ा-लत्ता सबसे अच्छा इसके लिए बनता है..."

"अरे तो क्या हुआ... सबसे शौकीन भी तो है... जाओ बच्चा, दो-चार लोटा पानी गिरा दो... हाँ, दशांग लाना न भूलना...अरे, बड़का बाबू कहाँ गए ?"

अब कोई प्रतिवाद न करके सुरेश धोती खोंटकर और बाल्टी में गंगाल से पानी निकालकर झाड़ू से आँगन को धोने लगा। सीतानाथ के अपने कमरे में जाने के बाद नीलेश चुपके से बाहर निकल गया सिर झुकाकर। उसे गुस्सा भी आ रहा था और रुलाई भी। लेकिन क्या करे, कुछ भी समझ में नहीं आ रहा। कुछ देर तक बाहर खड़ा वह नम्रता के घर की तरफ देखता रहा, फिर धीरे-धीरे

भगजोगिनी की गली की दिशा में चल पड़ा।

पानी बन्द होने पर स्थिति की भयावहता। फिर लौट आई है। शाम तेजी से उतार पर और सन्नाटा था चारों ओर पसरा सायें-सायें। वह अपनी सैंडिल पहनकर पानी और कीचड़ से बचते हुए तेजी से चलने की कोशिश कर रहा है. जो आसान नहीं। बमपलिस गली का पानी निकल गया है, फिर भी शेष है

कीचड़ और कचरा जिसके बीच में बने हुए ईंटों के मार्ग से भगजोगिनी के बरामदे में पहुँचने में बहुत दिक्कत नहीं हुई, जहाँ मच्छरों के झुंड ने उसका स्वागत किया। नीचे नालियों में और बाहर पूरी गली में मेंढकों और झींगुरों की ध्वनियाँ। दो बार दरवाजा खटखटाने पर भगजोगिनी की सास ने दरवाजा खोलते हुए झनककर पूछा :

"का है भैया, कौन हैं आप ? क्या चाहते हैं? शान्ति से रहने क्यों नहीं देते ? घर में कोई मरद-मानुष नहीं है, इसीलिए जब देखो, कोई भी ऐरा-गैरा नत्थू खैरा बिना पूछे अन्दर घुस आता है। समझ लीजिए, मैं दस मर्दों के बराबर हूँ..."

"आप गलत समझ रही हैं," नीलेश ने अपना परिचय देने के बाद बीस रुपए निकालकर उसे थमाते हुए कहा, "रमाशंकरजी ने कहलवाया है, घबराने की जरूरत नहीं, जब तक छूट नहीं जातीं, आपके परिवार का पूरा ध्यान रखा जाएगा। गोपालराम आए थे यहाँ ?"

"गोपालराम ? जो बहुत बड़बड़ बोलते हैं। ए भइया, सिखा रहे थे झंडा उठाने न जाओ। हमारी बहू किसी की बातों में आनेवाली थोड़े ही है, बड़ी समझदार है, फटकार दिया। समझिए बाबू, आज कई औरत लोगों के साथ चौक में झंडा उठाने गई, धर ली गई। जेहल में पुलिस कह रही थी-माफी माँग लो। बोली मेरी बहू पुलिस से- 'क्यों माँगें... गांधीजी ने कहलवाया है, जान भले ही चली जाए, माफी न माँगना।' तो ए भइया, पुलिस हार गई... बाद में सभी औरत लोगों को जेल से छोड़कर कहने लगी- पैदल जाओ। अभी तो आई है मेरी बहुरिया... पानी में भीग गई थी... कीचड़-काँदो पैर में, साड़ी में लिथड़ गया था..."

"यह तो अच्छा हुआ... रमाशंकरजी मिलेंगे तो बता दूँगा..." वह लौट चला उसी रास्ते आश्चर्य करता हुआ कि सरकार इतनी जल्दी स्त्रियों को कैसे छोड़ देगी? क्यों गुदड़ी जबार में निरपराध लोगों को मार देने के अपराध-बोध से ? या उसके गद्गद सन्तोष से ? शायद जेल में जगह ही न हो

55 हर क्षण गाढ़ा होता शाम का धुँधलका पैरों की बेड़ी सिद्ध हो रहा है। सामान्य रूप से आगे बढ़ना कठिन और कभी पैर इधर-उधर होकर कीचड़ में पड़ जाते। जो कुछ हो रहा था, उसकी बजह से घर जाने की इच्छा नहीं हो रही थी उसकी। लेकिन इस खतरनाक समय में कीचड़-भरी और अन्धकार-डूबी सड़क पर निश्चिन्तता के साथ टहला भी नहीं जा सकता, जबकि सड़ी हुई गर्मी और उमस में बाहर भी तर-तर पसीना बह रहा है।

फिर भी, हिम्मत करके दोनों किनारों के मकानों के बीच में वह मालगोदाम तक गया और उसके सामने कुछ देर तक खड़ा भी रहा। वहाँ काफी खुलापन है, कुछ हवा भी लगी। वर्षा की ही तरह क्या अँधेरा भी सुरक्षा का अहसास दे रहा है? जैसे वह पुलिस को रोक लेगा या लापरवाह और निश्चिन्त बना देगा।

वह खड़ा रहा यह आत्मसन्तोष करते हुए कि देश के लिए कुर्बानी हेतु उसमें पर्याप्त हिम्मत है। और इतना सोचते ही उसके पाँव लौटने लगे, मानो एक महान कर्तव्य की पूर्ति हो गई हो। चाल में कुछ तेजी भी-कदम सही कैसे पड़ रहे हैं? अन्ततः अपने घर के बरामदे में पहुँचकर वहाँ पड़े तख्त पर वह चुपचाप बैठ गया। कुछ देर बाद दरवाजा धड़ाम से खुला लालटेन की ललछऊँ धूमिल-सी रोशनी को रास्ता देते हुए।

"कौन है, बड़का भैया ?"

"हाँ सुरेश...।"

"कहाँ गए थे भैया आप ? अम्मा का हाल तो आप जानते ही हैं. झट रोने बैठ जाती हैं। अभी दिन का बचा दाल-भात सानकर और प्याज-लहसुन-मिर्चा से छौंककर खिला चुकी हैं मझले भया को। यह तो खा नहीं रहे थे. कहने लगे पेट में हल्का-हल्का दर्द है। जब अम्मा ने कहा, कुछ न खाने से दर्द हो रहा है तो खाया उन्होंने अधिक नहीं। अब अम्मा आपके लिए परेशान हो रही

"अच्छा सुरेश, चल रहा हूँ। वीरेश अब क्या कर रहे हैं इस समय ?"

"यह तो छत के आखिरी कमरे में सो रहे हैं। भीतर से दरवाजा भी बन्द कर लिया है-कहा है कोई जगाए नहीं।" "और बाबूजी ?"

"कमरे में लेटे हैं। दीदी ने मकई का सत्तू घी-चीनी में सानकर दिया था, उसमें से थोड़ा लेकर एक गिलास पानी पीया है। अम्मा का हाल-चाल पूछ रहे थे तो साफ-साफ दीदी ने कह दिया, 'वीरेश भैया को जो डॉट पड़ी है उससे बहुत नाराज हैं, अम्मा। उनके सिर में दर्द है, लौंग पीसकर लगाई

गई है...।" "सुरेश, जरा पानी ला दो, पैर में कीचड़ लगा है...।"

"भैया, आधी बाल्टी पानी मिलेगा... बहुत कम है पानी... सँभालकर खर्च कीजिएगा। महरा आज नहीं आया, बाबूजी ने पूरा पानी भरा। उसी में आँगन और बरामदे की धुलाई भी खूब हो गई।" "क्यों ? किसने की धुलाई ?"

"दादी कहती हैं आप लोग न मालूम कहाँ-कहाँ से आते हैं और हाथ-पैर धोए बिना उसी जूते-चप्पल में भीतर चले जाते हैं। मझले भैया के तो सभी कपड़े भी फेंकवा दिए।" "क्यों ?"

"मुर्दाघाट से आए थे, खून-वून भी लगा था..."

"ओह..."

"भैया, मैं साबुन, पानी, तौलिया लाता हूँ, सैंडिल बाहर ही एक किनारे रख दीजिए... कल मैं साफ कर दूँगा। घर में खटपटी है, उसे ही पहनकर अन्दर जाइएगा, उसे भी ला दूँगा..."

"सुरेश, तुम मेहनत बहुत करते हो.... सबका खयाल रखते हो..."

"कहाँ भैया ?" सुरेश दाँत खोलकर हँस पड़ा, "दीदी की जब से शादी हुई है, उनकी कोई बात टालने में बड़ा संकोच होता है। जब ससुराल फिर चली जाएँगी तो सोचकर अफसोस होगा। सफाई-दफाई, फींचने-कचारने का बड़ा शौक है उन्हें, फिर यह नहीं देखतीं कि घर में पीने का भी पानी है या नहीं। हुक्म चला देंगी आँगन धो डालो। दादी की तो बात ही न पूछिए, वह चाहती हैं, सारा घर बाहर तक साफ कर दिया जाए, जैसा पूजा-पाठ, भंडारा के दिन होता है। मैंने पानी बचाने की कोशिश तो की, पर कितना बचता ? मैं तो चाहता हूँ जल्दी तगड़ा होना, तब देखिएगा घर में पानी की कमी नहीं होगी और बाबूजी को एक गगरा भी नहीं भरना पड़ेगा। दूध भी खूब पी रहा हूँ...हाँ, इधर कचहरी बन्द होने से एक चम्मच भी नहीं मिल रहा है..."

नीलेश हँसते हुए बोला, "सुरेश, तुम्हारी बातें बड़ी दिलचस्प होती हैं। तबीयत खुश हो गई, दिन-भर की मनहूसियत दूर।"

"मैं वकील नहीं बनूँगा, भैया। काफी बोलने पर भी अधिक पैसा नहीं मिलता... मेरी भी बाबूजी की ही आदत है न... झूठ बोलना नहीं होगा मुझसे फिर मेरी वकालत क्या चलेगी ?"

"तो क्या करोगे, आजादी का आन्दोलन ?"

"अम्मा करने देंगी तब न ? सच कहता हूँ भैया, अम्मा न रोएँ तो हम सभी भाई आसानी

से आन्दोलन में शामिल हो जाएँगे, तब आजादी भी जल्दी मिल जाएगी...।"

नीलेश ने जोरों का ठहाका लगाया। फिर जल्दी ही गम्भीर होकर बोला, "अच्छा, अब जाकर पानी ले आओ फटाफट।"

हाथ, पैर, मुँह अच्छी तरह धोने के बाद, खटपटी पहनकर नीलेश अन्दर जाकर ऑग में विली चारपाई पर चुपचाप बैठ गया। इस बीच बादल छंट गए थे और बारिश के बाद तारों-भरा नीला आकाश उभरकर ताप का अतिरिक्त भभका नीचे भेजने लगा। आनन्दी दक्षिण बरामदे में ही बैठी बेना डुला

रही हैं। सीतानाथ भोजन के बाद अपने कमरे में ही मसहरी के अन्दर सोए हुए हैं। अब चौके में जीरादेई और शैलजा खाना खाकर उठने की तैयारी कर रही हैं।

"भैया, अम्मा पूछ रही हैं आप क्या खाएँगे, ताजी रोटी, दाल, शोरवेदार तरकारी ? दिन का बचा दाल-भात छींका हुआ भी रखा है... भात खाने का मन हो तो रोटी नहीं सेंकी जाएँगी..." "नहीं सुरेश, मैं भात नहीं खाऊँगा...बस एक रोटी, थोड़ी दाल और सब्जी भी बहुत कम। शाम को भूख तो थी, लगता है गर्मी की वजह से गायब हो गई...।"

भोजन के बाद नीलेश एकदम ऊपर की खुली छत पर सोने के लिए चला गया, जहाँ एक बँसखट रखी हुई है-साथ में एक हल्की दरी और तकिया भी लेता गया। जीरादेई और शैलजा भी छत के दूसरे कमरे में चली गई थीं।

आनन्दी का काम देर तक चलता है। पहले शैलजा सहयोग करती थी, लेकिन शादी के बाद आनन्दी ने मना कर दिया है कि ससुराल में जाकर तो सब करना ही है, यहाँ तो आराम कर लो। अब उसका स्थान किसी हद तक सुरेश ने ले लिया है। अगर बरसात और जाड़ा नहीं है तो बड़ा पलंग आँगन में ही डाला जाता है, जिसको बिछाना किसी दूसरे के बूते का नहीं। उस पर उमेश और रमेश भी सोते हैं, इसलिए उनकी रात्रिकालीन आदतों के कारण सिर्फ आनन्दी ही जानती है कि दो छोटी-छोटी गद्दियों का जमावड़ा कहाँ हो, मोमजामा कैसे रखा जाए, सीधा या तिरछा और ऊपर कौन-सी चादर बिछाई जाए यानी गलती से नई धुली किसी दूसरे की चादर न डाल दी जाए। सुरेश की छोटी चारपाई पर धीरेश भी सोता है।

सुरेश अब बड़ा हो रहा है, कुछ दूसरे काम तो कर ही सकता है। तीनों छोटे भाई पहले ही खाते हैं और दूसरे की चारपाई या किसी भी खाली जगह पर लटक जाते हैं। फिर तो उनको उठाना बड़ा कठिन। लेकिन सुरेश धैर्यपूर्वक उनको उठाता है, कभी डॉट-डपट या ठुनुकियाने की जरूरत भी पड़ जाती है। एक हाथ में लालटेन और दूसरे हाथ से नींद में मतवाले भाइयों को बारी-बारी से गुसलखाने तक ले जाकर निबटवाना, हाथ-मुँह धुलवाना और वापस सही बिस्तरे पर लाकर सुलाना सुरेश सीख गया है। जब तक वह पलंग के बगल में अपनी चारपाई बिछाएगा, दोनों पर चार-चार डंडों में बँधी मसहरियाँ लगाएगा, सभी कमरे बन्द करके गलियारे के दरवाजे पर भीतर से ताला लगाएगा, स्वयं हाथ-पैर मुँह धोकर 'अम्मा सोने जा रहा हूँ,' कहने के बाद अपने बिस्तरे पर लेटेगा-इस बीच आनन्दी पनडब्बा से एक पान लगाकर जर्दा के साथ खाकर शौचालय जाती है और लौटकर हाथ-पैर धोने और कुल्ला करने के बाद खाने बैठती है, बहुत धीरे-धीरे इत्मीनान से एक-एक कौर मुँह के अन्दर डालती हुई। लेकिन आज सुरेश को अपनी चारपाई पर बैठकर रसोई की ओर टुकुर-टुकुर देखते हुए पाकर आनन्दी बोली :

"सोते क्यों नहीं सुरेश ? इतना सब कर चुके हो... थक गए होगे...।"

अम्मा, आज शोरवेदार सब्जी बहुत अच्छी बनी है... दीदी तो मिर्चा झोंक देती हैं...।"

" "बार-बार मुँह जुठारना ठीक नहीं है, बेटा। अच्छा, एक कटोरी में थोड़ी-सी देती हूँ... रात भी काफी हो गई है...।"

"रोटी-दाल मत देना...छौंका भात तो खत्म हो गया होगा

"बचा तो बहुत है। उन्हीं लोगों का दिन का खाना है, इस समय भी कुछ नहीं लिया है। नुकसान न करे..।"

लेकिन सुरेश इसके जवाब में कुछ न कहकर फर्ती से उठकर रसोईघर में बैठ चुका था। आनन्दी थाली का ढक्कन हटाकर कड़ाही में रखे ठोंके भात को उँगलियों से उठाकर नाक के पास दो बार ते गई। फिर उसने एक करछल से दो बार निकालकर एक तश्तरी में रखा और उसी में शोरवा के साथ सब्जी परोसकर सुरेश की तरफ इशारा किया।

सुरेश ने प्रसन्न होकर तश्तरी अपनी तरफ खींच लीं। छींका भात उसे बहुत पसन्द था। और यह पहले ही मजे का खा भी चुका था। आलू की शोरवादार सब्जी का वैसा शौकीन तो घर में अन्य कोई था भी नहीं, जो नाम सुनकर ही नाक-भीं सिकोड़ लेते हैं। उसने खूब पसन्द से खाया और दो मिनट बैठा भी रहा सिर झुकाकर इस उम्मीद में कि माँ होने के नाते आनन्दी एक करछुल और डाल देंगी। लेकिन उधर कठोर सन्नाटा देखकर पानी जल्दी-जल्दी पीकर उठ जाना ही उचित समझा

सुरेश ने। "अम्मा, सोने जा रहा हूँ...।"

"हाँ, सो रहो... सवेरे जल्दी उठना रहता है...।"

"और पानी दूँ ?"

"पानी ले लिया है...सो रहो चुपचाप। मैं भी रसोई का सामान ठीक-ठाक करके आती हूँ।

चिन्ता लगी है, पानी घर में नहीं है। रात-विरात काम पड़ा तो क्या होगा ? देखें, सवेरे महरा आता

है कि नहीं। एक गगरा पानी छिपाकर रख दिया है दक्षिण बरामदे में.."

"देखा है मैंने, अम्मा।"

"तुम लोगों से कोई चीज छिपी थोड़े ही रहती है! खर्च तो नहीं किया उसमें से ?"

"अरे नहीं अम्मा। अच्छा हुआ तुमने दीदी को नहीं बताया...।" "क्यों दोष लगा रहे हो उस बेचारी पर?" आनन्दी को हँसी आ गई।

भोजन के बाद आनन्दी कुछ देर तक रसोईघर में खटर-पटर करती रही और बर्तनों का संगीत सुनते-सुनते सुरेश को नींद आ गई। लेकिन गर्मी इतनी थी कि महसरी के अन्दर वह रात-भर कराहता और छटपटाता रहा।

सुबह, यानी जब अँधेरा फट रहा था, आनन्दी की नींद उचट गई। उसने चौंककर इधर-उधर देखा, लेकिन सुरेश अपने बिस्तरे पर था नहीं। उसकी मसहरी उठी हुई थी। लेकिन कुछ क्षण बाद ही वह गुसलखाने की तरफ से आता दिखाई पड़ा धीरे-धीरे कराहते हुए।

"क्या हुआ, सुरेश ?"

"मैंने बाहर का ताला खोल दिया है..." लगा दिया ह

"तुम कराह क्यों रहे हो ?"

"अम्मा, जो गगरा-भर पानी रखा है न, उसमें से कुछ ले जा रहा हूँ।"

"साफ-साफ बताते क्यों नहीं? इतनी जल्दी उठने की जरूरत क्या थी ?" "अम्मा, कोई खास बात नहीं... पता नहीं कैसे कुछ कै हो गई। पेट में दर्द हुआ था।"

"अब पेट का दर्द कैसा है ?"

"अम्मा, कुछ -कुछ हो रहा है..."

"मैं पानी गिरा दूँगी, आराम करो। धीरेश के साथ सोने से तुम्हें आराम भी तो नहीं मिलता। हाथ-पैर बहुत फेंकता है। ठीक से करवट ले नहीं पाते. खाना पचे कैसे ? रहो. मैं धीरेश को अपनी चारपाई पर ले लेती हैं. तुम्हारी खाट बरामदे में लगा देती हैं। वहीं आराम करो... अभी गर्म पानी की बोतल देती हैं. लेटकर सेंक लेना."दिके चिनत नथ

"मैं उठा देता है खाट..." इतना कहकर सरेश ने मसहरी इंडों के साथ लपेटकर अन्दर रखने के बाद धीरेश को उठाकर बड़े पलंग पर लेटाया। फिर अपनी खाट को बरामदे में एक कोने में डाल और उस पर निखहरे लेटकर कराहने लगी में

"बहुत दर्द है ?"

सुरेश से कोई उत्तर नहीं मिला। आनन्दी जल्दी-जल्दी आग जलाने लगी। अँधेरा पूरी तरह फट गया था। पक्षी चहचहाने लगे थे। लेकिन इस समय भी हवा गुम-सुम। नीले आसमान में जल-शून्य पतले बादल की एक लम्बी, हल्की पट्टी फैल गई है।

इसी समय सीतानाथ आँगन में आकर खड़े हो जाते हैं। उनके दोनों हाथ कमर पर टिके हुए। कौतुक के साथ रसोई की ओर देखते हुए पूछते हैं:

"सवेरे-सवेरे आग क्यों, शैलजा की अम्मा ?"

"लड़का पेट के दर्द से घंटे भर से जोर-जोर से कराह रहा है, एक बार गुसलखाने में जाकर के भी कर चुका है, इस घर में किसी को कुछ नहीं सुनाई देता ! यही तो हमारा हाथ-गोड़ है, अब किसको महरा के घर भेजूँगी, एक बूँद भी पानी नहीं है।"

"अरे तो चिन्ता काहे करती हो... मैं फौरन कुएँ से पानी भरकर हाजिर करता हूँ।"

पहले घर में एक स्थायी नौकर था, मगर बीमार होकर उसके गाँव जाने के बाद, चौका-वर्तन करनेवाली का पति इस इस घर में भी दोनों जून पानी भरने लगा। हरिजी के गोलेवाला कुआँ यहाँ से कुछ भी दूर नहीं, लेकिन इस घर में पानी का खर्चा भी कम नहीं। जब महरा नहीं आता या बीच में पानी घटने से त्राहि-त्राहि मच जाती है तो सीतानाथ दोनों गगरे लेकर कुएँ पर पहुँच जाते हैं। एक प्रतिष्ठित वकील कुएँ से पानी भरे, यह किसी को अच्छा नहीं लगता, दोनों लड़के भी संकुचित हो जाते हैं। परन्तु सीतानाथ को इसकी परवाह नहीं है कि कोई क्या कहता है, क्या सोचता है। वह आँगन में खड़े होकर कहते हैं :

"जब तक प्रभु चाहता है, महरा आता है। वह काहे नहीं आएगा? और जब प्रभु की ही इच्छा नहीं है तो महरा कैसे आए, भाई? प्रभु की जब तक इच्छा थी, इस घर में नौकर शान से रहा, और जब उनकी इच्छा नहीं रही तो हट्टा-कट्टा नौकर भी बीमार होकर चला गया, कोई रोक नहीं सका। प्रभु रामचन्द्र जैसे सर्वशक्तिमान जब राज-पाट छोड़कर चौदह वर्ष तक वन-वन घूमते रहे तो सीतानाथ की क्या हस्ती है जी? दो गगरा पानी भर दिया तो क्या हो गया?" लेकिन वह गगरा लेकर बाहर जाने को हुए कि महरी आ गई और कुछ ही देर बाद उसका पति भी।

"क्या बात है दाई, तुम लोग जब चाहो बैठ जाती हो?" आनन्दी ने फौरन सवाल किया। "गोली चल रही थी, कैसे आती ?"

"कहाँ गोली चल रही थी... वह भी गुदड़ी बाजार में, दोपहर में गोली चली। सवेरे तो आ सकती थी। तुम तो उधर रहती भी नहीं...।"

"पुलिसवाले तंग करते हैं जी। आज भी तो सन्नाटा है। बचकर किसी तरह आ रहे हैं..." "शैलजा की अम्मा, छोड़ो इन बातों को। जल्दी ये लोग काम करें और घर जाएँ।"

धीरे-धीरे लोग एक के बाद एक उठने लगे। महरा दोनों गगरे कुएँ से भरकर काँवर पर ले आता। दो बड़े गंगाल, कई बाल्टियाँ, रसोई के लिए पीतल की एक बाल्टी, एक गगरा, मिट्टी का एक मजबूत कुंडा और लोहे के गगरे। इस बीच कोई कुल्ला-मंजन करके नहा ले तो कोई हिसाब नहीं-लेकिन सीतानाथ को छोड़कर शायद ही कोई सवेरे नहाता हो, चाहे सड़ी गर्मी ही क्यों न पड़ रही हो। सुरेश कभी-कभी जरूर उत्साहित हो जाता, लेकिन आज तो वह गर्म पानी की बोतल सेंकने के बाद और भी बेचैन होकर जल्दी-जल्दी करवट बदल रहा था बीच-बीच में कराहते हुए।

महरा-महरी काम करके जल्दी चले गए। महरी कहती गई, "मलिकाइनजी, सुना है आज गोरों

की फौज आनेवाली है, गोली चलेगी। संझा को हम लोग नहीं आएँगे, पानी सँभालकर खर्च कीजिएगा। ठीक-ठाक रहेगा तो कल भोर में आएँगे..."

"अरे भाई, ऐसा न करो। चाहे और घर करो या न करो, यहाँ जरूर आ जाना। लड़के की तबीयत खराब है, मेरी भी ढीली है। बड़ी लड़की कुछ दिनों के लिए आई है, तुम लोग नागा करोगे तो उस पर बड़ा बोझ आ जाएगा।"

"हमारे भी तो बाल-बच्चे हैं... हमें गोली लग जाए तो उनकी देखभाल कौन करेगा ?" "तुम लोगों को गोली कौन मारेगा ? उनके घर भी तो चौका-वर्तन करनेवाली की जरूरत है। आ जाना, मैं कहती हूँ कुछ नहीं होगा तुम लोगों को..."

बिना कुछ जवाब दिए जब दोनों चले गए तो आनन्दी कुछ क्षणों तक उनकी ओर घूरती ही रह गई। फिर पास आई शैलजा से बोली, "ए बेटी, हलुवा बना लो... कुछ रोटियाँ भी सेंक लेना... और कोई झंझट न करो। चाहो तो अपने लिए और दोनों बड़े लड़कों के लिए दोस्ती बना लेना। मैं सुरेश को देखती हूँ। बड़ा छटपटा रहा है, क्या करूँ समझ में नहीं आता, आस-पास कोई डॉक्टर भी नहीं है। जो दौड़-धूप करनेवाला है, वही पड़ गया तो कौन जाएगा कहीं। देख नहीं रही हो, सभी कान में रुई डालकर पड़े हैं। किसी को फिक्र नहीं है कि क्या होगा, किसी ने आकर पूछा भी नहीं, कहो भैया तुम्हारी तबीयत कैसी है? कितने कठकरेजी हैं इस घर के मर्द।"

शैलजा ने नाश्ता बनाने में कुछ अतिक्ति उत्साह और उदारता से काम लिया और दोस्ती की जगह छोटी-छोटी खास्ता पूड़ियाँ और आलूदम पेश कर दिए। वीरेश खूब सोया था रातभर ओर इस समय अनोखी ताजगी का अनुभव कर रहा था। गोलीकांड में मारे गए शहीदों की अन्त्येष्टि में उसने जो

योगदान किया था, उससे वह स्वयं इस समय गर्व, खुशी और शहादत के भाव से भरा है। और पिताजी की कल की डाट ने उसे और भी गरिमा और ऊँचाई दे दी है-फिर ऐसे अनुकूल माहौल - में भूख क्यों न लगे !

सुरेश की कराहट सुनी थी जरूर वीरेश ने, लेकिन कल उसने उच्च राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर जो कष्ट सहे, उनके सामने पेट-दर्द का कष्ट उसे अत्यन्त महत्त्वहीन और साधारण लगा। फिर घर के लोग भी तो कुछ करें, स्वयं दुःख बरदाश्त करें या बीमार की तीमारदारी करें। उसने एक बड़ा काम किया है और उसको हक है कि इस समय निश्चिन्तता के साथ डटकर नाश्ता करे और पुनः सो जाए ताकि अगली कुर्बानियों के लिए उसका स्वास्थ्य कायम रहे। और यही किया भी उसने। अर्थाभाव में भी ले खास्ता पूड़ियाँ, ले खास्ता पूड़ियाँ। तत्पश्चात उसी कमरे में दरवाजा भीतर से बन्द करके लम्बी तानकर सो गया।

नीलेश को भी भूख थी, लेकिन एक तो उसकी खुराक कम है, फिर अहसास भी है उसे कि कितनी मुश्किल से यह सब बन रहा है। परेशान तो कर रही हैं उसे वीरेश की हरकतें। कितनी उद्धत गम्भीरता और शायद नाराजी के साथ वह नाश्ता कर रहा था। किसी से एक शब्द भी नहीं बोला और न किसी की तरफ भूल से भी देखा। क्या हो गया है इसे ?

"ए बाबू, कुल्ला-मंजन करके पूड़ी का एक छोटा टुकड़ा मुँह में डालकर पानी पीओगे ? दूँ ?" आनन्दी ने सुरेश से गिड़गिड़ाती हुई आवाज में पूछा।

"अभी नहीं... बस पानी ...।"

आनन्दी उसको चिन्ता से कुछ क्षणों तक देखती रह गई। फिर रसोईघर से एक गिलास पानी लाकर सुरेश को देती हुई बोली, "जल्दी ठीक हो जाएगा... घबराओ नहीं। क्या करें, हर चीज पर तो बज्जर पड़ गया है, घर में अमृतधारा भी नहीं कि दो बूँद पानी में डालकर दे देती तो जल्दी

आराम मिल जाता । तुम्हीं तो सबके लिए दौड़नेवाले, अब तुम्हारे लिए कौन दौडे ?" सुरेश बैठकर एक ही साँस में गिलास भर पानी पी गया। उसके पश्चात सिर झुका और माथे

पर हाथ रखकर कुछ देर बैठने के बाद 'ओओ' करता हुआ गुसलखाने की तरफ भागा। आनन्दी भी पीछे-पीछे दौड़ी। जब वह नाली पर बैठकर उल्टी करने लगा तो आनन्दी उसकी पीठ को सहलाती हुई बोली, "इत्मीनान से कर लो... जल्दी ठीक हो जाएगा..."

जब यह कर चुका तो आनन्दी ने हाथ-पैर धुलाकर उसे कुल्ला कराया, फिर उसका हाथ पकड़कर बिस्तरे तक ले गई। सुरेश बैठकर बोला, "अम्मा, लगता है. पेट में पानी भर रहा है.... गड़-गड़ कर रहा है..."

"जाओगे? जाओ. रोकना ठीक नहीं है. सवेरे भी तो नहीं गए हो। चलो, लोटा रख देती हूँ...।"

"नहीं, मैं लेकर चला जाऊँगा।"

लौटकर साबुन से हाथ मलते और पैर धोते समय भी वह कराहता रहा। साथ में उसके आनन्दी लगी रही। पकड़कर विस्तरे पर लेटाती बोली वह, "अब आराम से सो रहो... अच्छा हुआ, अन्दर जो अदरज-कदरज था, सब निकल गया।"

"अम्मा, लोटा भरकर रख दो... पेट बोल रहा है..."

"दबाकर रखो कुछ देर तक... घर में कुछ है ही नहीं..." आनन्दी ने घबराकर इधर-उधर देखा। जब वह चला गया तो आनन्दी ने धीरेश से गिड़गिड़ाकर कहा, "बेटा, भइया की तबीयत बहुत खराब है... देख ही रहे हो। लाला के यहाँ चले जाओ, कहना भैया को कै-दस्त हो रहे हैं; अमृतवारा दे दो। वह न हो तो कपूर ले लेना।"

"अम्मा, मैं नहीं जाऊँगा, लाला मुझे अबे-अबे कहता है।"

..." "अरे चले जाओ बेटा, अबे-अबे कहने दो, उसी की जबान खराब होगी। लो, पैसा देती

हूँ लाला की दुकान बन्द थी शहर की अन्य दुकानों की तरह। यद्यपि वह भी कल गुदड़ीं बाजार गया था सामान लाने, लेकिन उसे जान और खाली बोरे के साथ लौट आना पड़ा। धीरेश जब घर से निकलकर सड़क पार लाला की दुकान को जा रहा था, उसी समय पुलिस की यह कुख्यात लॉरी स्टेशन की तरफ से आई। सशस्त्र सिपाहियों ने उसे घूरकर देखा तो वह डरकर पिनपिनाता पीछे भागा और उसके अपने बरामदे में पहुँचने तक लॉरी सड़क से भर्र-भर्र करती हुई दूसरी दिशा में निकल गई। वह कुछ देर तक वहीं खड़ा रहने के बाद बाहर निकला और अत्यन्त सतर्कतापूर्वक सड़क की दोनों दिशाओं में झाँकने के पश्चात लाला की दुकान की तरफ बढ़ गया।

लाला देर से निकला और बिगड़कर बोला, "पुलिस बन्दूक लेकर घूम रही है और तुम लोगों को सामान की सूझ रही है? मरवाएगा क्या मुझे? भाग यहाँ से।"

धीरेश मुँह लटकाकर लौटने लगा तो नम्रता ने अपना दरवाजा खोलकर उसे बुलाया। नाव यात्रा से घर आने पर नम्रता को हल्का ज्वर आ गया था, आज कुछ आराम होने पर लॉरी की भर्राहट सुनकर ऊपर छत पर पहुँची तो उत्सुकतावश, वहाँ से धीरेश को देखकर कुछ देर तक खड़ी रह गई।

"क्या बात है, धीरेश ? बनिया क्यों डाट-फटकार रहा था तुम्हें? क्या कुछ खरीदने गए थे ?" "दीदीजी, वह हमेशा अबे-अबे कहता है। सुरेश भैया को दस्त-कै हो रही है, अम्मा ने अमृतधारा लाने भेजा था..."

"तुम इतने छोटे हो... और कोई नहीं मिला?"

"सुरेश भैया ठीक रहते हैं तो वही सब काम करते हैं। बड़े भैया बनारस में कॉलेज में पढ़ते हैं, उनसे काम के लिए कोई नहीं कहता। मझले भैया थक गए हैं, कल गुदड़ी बाजार में मुर्दा उठाकर जलाने ले गए थे गंगाजी।"

"क्या ?" नम्रता की आँखें अचम्भे से बाहर निकल आई, फिर सँभलकर जल्दी से बोती,

"अच्छा, तुम जाओ घर, मैं देखती हैं, अमृतधारा मिल गया तो मैं जल्दी ही लेकर आऊँगी।"

नम्रता बेहद घबरा गई और अपने घर के अन्दर जाकर अपनी माँ को बताए बगैर अमृतधारा की छोटी-सी शीशी खोजने लगी. जिसे यह 'ओरिएंटल बाम' के साथ ले गई थी इलाहाबाद की यात्रा में। बहत खोजने पर दोनों ही शीशियाँ उसके बक्से की गहराई में एक बादामी कागज में लपेटकर रखी मिल गई।

इस बीच सुरेश की हालत काफी गम्भीर हो गई। उसे छः-सात दस्त हुए और करीब उतनी ही उल्टियाँ भी। उसके गाल धँस गए, उसकी आँखों के नीचे गड्ढे बन गए। अन्त में पेशाब भी बन्द हो गया।

"हाय, मेरे लड़के को हैजा हो गया है। अब मैं किसके पास जाऊँ ? एकदम ताकत नहीं है उसमें, चला नहीं जा रहा है उससे। सभी बेपरवाह बैठे हैं... सभी स्वार्थी हैं।" आनन्दी लड़के के माथे को सहला-सहलाकर रो रही थी। जिसे अभी तक मामूली बीमारी समझकर निश्चिन्तता-भरी लापरवाही बरती जा रही थी, उसके हैजा घोषित होते ही भय और आतंक फैल गया-सबके मुँह सूख गए। सीतानाथ कमरे से उठकर बाहर आ गए, लेकिन उन्हें समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करें ? कभी बाहर जाएँ, सड़क को निहारें, फिर भीतर आकर आँगन में

खड़े हो जाएँ। बीच-बीच में आश्वासन-भरे शब्द मुँह से निकल जाएँ, "कोई बात नहीं सुरेश... हिम्मत

रखो, सब प्रभु की लीला है, जल्दी ठीक हो जाएगा...।"

अजीब स्थिति थी। बाहर शहर में हड़ताल, गोलीकांड के बाद पुलिस का बढ़ता खौफ, अस्पताल दूर और एक्का-ताँगा आदि किसी वाहन की अनुपलब्धता, आस-पास भी कोई डॉक्टर नहीं। जब सुरेश

बरामदे में ही सबकुछ करने पर मजबूर हो गया तो सीतानाथ ने झाड़ू उठा लिया और गंगाल -से पानी निकाल-निकालकर सफाई-दफाई करने लगे।

जीरादेई ने अब नीचे उतरकर किसी डॉक्टर के यहाँ से दवा लाने के लिए कहा और सबकी तरफ बारी-बारी से देखा, जैसे कोई एकदम नया सुझाव प्रस्तुत कर दिया हो। शैलेजा ने नीलेश और वीरेश को जगाया और स्थिति से अवगत किया। वे दोनों ही कमजोर नींद से पूरी तरह पहले ही जाग चुके थे। सभी बातें उन्हें मालूम भी थीं क्योंकि आँगन की बातें और छत पर होनेवाली खुतुर-फुसुर उन्हें सुनाई पड़ जाती थी-फिर भी वे निष्क्रिय बैठे रह गए, जैसे लकवा मार गया हो। किसी ऐसे संकट में, जब चारों ओर कोई रास्ता नहीं दिखाई देता, भय और घबराहट की कोई सीमा नहीं रहती, जैसे बीच नदी में कोई तैराक एकदम थक और अशक्त होकर अपने को लहरों के सहारे छोड़ दे कि डूबना ही है तो डूब जाए।

किसी गम्भीर बीमारी में सेवा-तीमारदारी करना वैसे भी सबके वश की बात नहीं। यदि ऐसा कार्य का अनुभव या पारिवारिक प्रशिक्षण अथवा स्वभावगत गौलिक व्यावहारिक क्षमता न हो तो युद्धभूमि में सिर कटाने या आन्दोलन में छाती पर गोली खाने की घोषणा करनेवालों या विद्वतार्पूण सिद्धान्तवादी बहसें करने को हमेशा तैयार लोगों की अक्ल जल्दी ही गुम हो जाती है, यहाँ तक कि कुछ बावनवीर तो ऐसे अवसर पर सहानुभूति का एक शब्द भी नहीं निकाल पाते। वे किसी बहाने से ऐसे स्थलों से टल जाते हैं अथवा ऐसी ही फिराक में रहते हैं।

कुछ देर बाद नम्रता आँधी की तरह आई, "चाचीजी, चाचीजी...।" उसने गलियारे से ही पुकारना शुरू कर दिया था।

आनन्दी ने चौंककर और किंचित उत्सुकता और आशा से देखा। फिर वह उत्तरी बरामदे में चली गई, जहाँ नम्रता हाथ में अमृतधारा की शीशी लिए हुए खड़ी थी। "

चाचीजी. शीशी खोजने में देर हो गई। सुरेश का क्या हाल है ?" "बेटी, बड़ा खराब है। पेशाब बन्द हो गया है. देह में कोई ताकत नहीं रह गई है।" आनन्दी

रो रही थी।

"चाचीजी, पानी में दो बूँद डालकर दे दीजिए...हमारे पिताजी ने कहा है, सिर्फ अमृतयात के सहारे नहीं रहा जा सकता। उधर स्टेशन से चौक जानेवाली सड़क पर गुप्ता घड़ीसाज की दुकान से सटा हुआ मकान रामचरित्तर शर्मा वैद्यजी का है। बहुत ही गरीब हैं, गरीयों की ही दवा करते हैं, लेकिन बहुत काबिल हैं। बाहर से आने पर मुझे बुखार आ गया था, मजबूरी में वहीं से पिताजी दवा ले आए थे, बहुत जल्दी आराम मिल गया। उनके यहाँ किसी को भेजकर दवा मँगा लीजिए...।"

सीतानाथ भी पास आ गए थे। जब आनन्दी शीशी लेकर चली गई तो नम्रता ने उनसे भी रामचरित्तर वैद्य के मकान का पता बताते हुए कहा, "चाचाजी, किसी को वैद्यजी के यहाँ भेज दीजिए। इधर गली से जाने पर आसानी होगी, जहाँ गली, सड़क से मिलती है, वहीं घड़ीसाज की दुकान और वैद्यजी का मकान है। और कोई डॉक्टर न मिलने पर वैद्यजी अच्छे रहेंगे। हमारे बाबूजी भी आ रहे हैं, मालगोदाम के पास उनके एक मुवक्किल हैं, वह एक्का भी चलाते हैं। घोड़ा है उनके पास। बाबूजी वहाँ जाकर उनसे एक्का तैयार रखने को कहेंगे... फायदा दवा से नहीं हुआ तो एक्का से अस्पताल ले जाएँगे।"

"अरे पुलिस...!"

"कुछ नहीं होगा, चाचाजी... बहुत होगा, पुलिस गोली ही तो मारेगी..."

उसकी गर्दन गर्व से तन गई और चेहरा तमतमा गया। सीतानाथ उसे घूमकर तेजी से जाते हुए आश्चर्य से देखने लगे। उनको सहसा लगा कि गहरे धुंध को छाँटकर सूरज ऊपर आ गया हो। हृदय पर जो दबाव था वह हट गया। वह आँगन में आकर बोले:

"वाह, क्या लड़की है बाबू रतनसिंह की खूबसूरत, बुद्धिमान और निहायत हिम्मती। आकर सारी मायूसी दूर कर गई। हाँ, ठीक है, यहाँ लड़के की जान संकट में है और तुम अपनी जान के डर से घर में दुबके बैठे हो। सुन्न पड़े हो, कुछ सोच नहीं रहे हो कि ऐसे समय में क्या करना चाहिए। सिर्फ अपनी ही जान के लिए सोचनेवाले की कोई जिन्दगी होती है? यह इंसान क्या जो दूसरे की जान के लिए न सोचे ! अब देखिए न, इस घर के बड़े-बड़े लोग हाथ-पर-हाथ रखकर बैठे रहते हैं, और दूसरे घर की एक लड़की धीरेश को बुलाकर सब हाल जान लेती है, खुद अमृतधारा लेकर आती है, इत्मीनान से बैठने की सलाह देती है, एक काबिल वैद्य का नाम बताती है और अस्पताल जाने की हिम्मत देती है। वाह, क्या शख्सियत है बाबू रतनसिंह की और उनके खानदान की ! इसीलिए कहा गया है, दुःख-संकट अकेला नहीं कटता है, अकेले काटना बेवकूफी है। मोहल्ले में, पड़ोस में, समाज में मिल-जुलकर रहिए, उनको अपना दुःख-सुख बताइए, उनके दुःख-सुख जानने की कोशिश कीजिए। तब सबकुछ आसान कर देता है प्रभु। शैलजा की अम्मा, कुछ रुपए दो, मैं वैद्यजी के यहाँ जाता हूँ..."

सीतानाथ धोती और बनियान पहने ही थे, ऊपर एक कुर्ता डाल तथा पाँवों में पम्प-शू पहनकर बाहर निकल गए। सड़क से यथासंभव दूरी बनाकर बायाँ किनारा पकड़ लिया उन्होंने। कितना सन्नाटा ! बाहर से तो वह गली रोज ही दिखाई देती है, परन्तु उसके अन्दर कभी भी नहीं गए हैं * सीतानाथ। दिन में भी अन्धकार। जगह-जगह कूड़े के ढेर, जिनका एक सूअर घूम-घूमकर मुआइना कर रहा है। इक्का-दुक्का आदमी घरों से निकलकर इधर-उधर जा भी रहे हैं, आश्चर्य से उनको * घूरते हैं, मगर कोई बोलता नहीं।

गली के मोड़ पर यह ठिठकते हैं। वहीं एक मकान के चबूतरे पर बैठा स्टाम्प-फरोश गुप्ता खाँस रहा है। वह सुबह स्टेशन के पास सड़क के किनारे एक बक्सा लेकर बैठ जाता है और दिन में वही दुकान कचहरी के पास चली जाती है। सीतानाथ उसको पहचानते हैं, लेकिन वह इस बदबूदार,

मनहूस गली में रहता है, यह अचम्भेवाली जानकारी है उनके लिए।

"यकील साहब, इधर काहाँ ? कोई खास बात ?" स्टाम्प फरोश सलाम करते हुए पूछता है।

"आई, इधर कोई वैद्य रहते हैं, पंडित रामचरित्तर शर्मा ?"

"जी हाँ. वकील साहब, पास ही में हैं. चलिए मैं बता देता है..."

स्टाम्प-फरोश गुप्ता अपने मकान से नीचे उतरकर सीतानाथ को सड़क तक वैद्यजी के घर के सामने पहुंचाकर लौट जाता है। सीतानाथ आगे बढ़कर दरवाजा खटखटाते हैं। कुछ देर में दरवाजा खुलता है. और सामने एक लम्बा-चौड़ा अधेड़ व्यक्ति दिखाई देता है, जिसके माथे पर चन्दन का टीका और जिसकी गझिन अधपकी मैंछें उसके होंठों पर छाई हुई हैं। यह सिर्फ एक मटमैली खददर की धोती पहने हुए है, ऊपर बनियान, कुर्ता कुछ भी नहीं, जिससे छाती पर के चितकबरे बाल झींवों की भाँति दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

"वैद्यजी आप ही हैं- पंडित रामचरित्तर शर्मा ?" सीतानाथ कुछ हिचकिचाकर पछते हैं यह सोचते हुए कि ऐसे व्यक्ति को तो अक्सर देखा है उन्होंने सड़कों पर चहलकदमी करते... खददर का कुर्ता, पैरों में घिसी चप्पलें, जहाज की तरह हिलते-डोलते।

""हाँ आइए, अन्दर आ जाइए..." रामचरित्तर शर्मा मूँछों के भीतर पतले, नकियाए स्वर में बोलते हैं। सीतानाथ को वह अच्छी तरह पहचानते हैं, लेकिन एक होशियार डॉक्टर की तरह तटस्थता बनाए रखकर सिर्फ मूँछों में ही मुस्कुराते हैं।

"वैद्यजी, तेरह वर्ष के मेरे लड़के को सुबह से ही उल्टी-दस्त हो रहे हैं। पेशाब बन्द है, कोई

ऐसी दवा...."

"और कोई खास बात ?"

"इससे अधिक खास बात ?"

"घबराइए नहीं, बहुत अच्छी दवा है मेरे पास। आप कुछ देर खड़े रहिए...।"

वैद्य घर के अन्दर गायब हो गए और बहुत जल्दी, संभवतः पाँच-सात मिनट में, कागज की एक पुड़िया के साथ हाजिर होकर बोले :

"इस पुड़िया में चार गोलियाँ हैं, एक गोली जाते ही दे दीजिए, ईश्वर चाहेगा तो एक ही गोली से सब बन्द हो जाएगा। ऐसा न हो तो एक घंटा बाद एक और गोली दे दीजिए। बन्द होने पर बची गोलियाँ भी तीन-तीन घंटे पर खिला दीजिए। पानी माँगने पर एक-एक, दो-दो चम्मच ही पिलाइए। शाम को माँगने पर पतली खिचड़ी खिलाइए... अधिक मात्रा में नहीं...।"

"कितना दे दूँ वैद्यजी ?"

"एक गोली चार आनाशाही

पड़े। सीतानाथ एक रुपया का सिक्का वैद्यजी के हाथ पर देने के बाद फौरन घूमकर वापस चल

उनको वापस आते देखकर रतनसिंह पहले ही उनके दरवाजे पर आकर खड़े हो गए थे, "भाई साहब, दवा दे दीजिए, असर देख लेते हैं, नहीं तो बच्चे को अस्पताल लेकर चलेंगे। एक्का तैयार करने को कह दिया है..."

सुरेश को एक बार और दस्त-उल्टी हुई थी और वह निर्जीव-सा पड़ा था। आनन्दी धीरे-धीरे उसकी पीठ सहला रही थी और पास ही जीरादेई खड़ी टुकुर-टुकुर देख रही थीं।

"चाची, घबराने की बात नहीं है. ये चार गोलियाँ हैं, एक फौरन दे दीजिए... प्रभु सब ठीक कर देंगे..."

उधर गोली दी गई और इधर सीतानाथ झाड़ू लेकर फैली गन्दगी को धो-धोकर साफ करने तगे। लेकिन पानी की कमी पड़ गई तो दोनों गगरे लेकर कएँ पर चले गए। धोती खोंट ली थी

उन्होंने और कुर्ता उतार दिया था। दोनों भरे गगरे उठाए और मुँह बाईं तरफ घुमाए वह अन्दर आकर गंगाल में पानी डाल देते. फिर खाली गगरे लिए हुए नंगे पैर धम-धम की आवाज के साथ फिर कुएँ पर चले जाते।

यह समय धुकधुक प्रतीक्षा का था। हर व्यक्ति चुप एक-दूसरे की ओर न देखते हुए। अब अप्रतिरोध्य भय और घबराहट में भी कुछ कमी आ गई थी, जिसका कारण सकारात्मक चिकित्सकीय प्रयासों एवं आश्वासनों की मन के अँधेरे में टिमटिमानेवाली आशा की रोशनी है। वही रोशनी 18 सीतानाथ के साथ भी, कुएँ तक जाती और आती है।

तीनों छोटे लड़के नीचे आने की मनाही के बाद छत पर सीढ़ी के पास खड़े होकर नीचे देख रहे हैं, किसी अटकी पतंग की तरह। शैलजा पर भी प्रतिबन्ध है, जो बारी-बारी नीचे झाँक रही है। "अम्मा, नीचे आऊँ ?"

आनन्दी ने हाथ से ही मनाही का संकेत दे दिया। सीतानाथ जान-बूझकर देरी कर रहे हैं। वह धीरे-धीरे कुएँ तक जाते हैं, धीरे-धीरे पानी भरते और धीरे-धीरे वापस आते हैं। जब घर में पानी लबालब हो गया तो उन्होंने चार-छह गगरे और लाकर आँगन में गिराया। अन्त में वह बाहर * गलियारा और बरामदा धोने लगे।

वह पसीना-पसीना हो रहे हैं। चेहरे पर थकान। और समय बीमारी को पीछे छोड़ते हुए आगे बढ़ रहा है। बाहर धो-धाकर, उन्होंने भीतर आकर पूछा:

"चाची, क्या हाल है ?"

"हाँ, बाबू, गोली देने के बाद तो कुछ नहीं हुआ...।"

"ठीक है," कहकर वह फिर बाहर चले गए, जैसे कोई जरूरी काम छूट गया हो। और अब नाली के उस भाग से, जो पत्थरों से ढका नहीं था, झुक झुककर पेड़ों से गिरे पत्ते और तिनके निकालकर सड़क के किनारे रखने लगे। वह धूप में तपते हुए, समय को बीमारी से अधिक-से-अधिक निए दूर ले जाने की कोशिश कर रहे थे, जहाँ से वह दिखाई ही न दे हमेशा के लिए दफन होने के बाद।

और वह शुभ अवसर भी आ गया, जब सुरेश ने अचानक कहा, "अम्मा, पेशाब...।" शिक आनन्दी ने चहककर कहा, "अच्छा... अच्छा... वहीं रहो, हँड़िया ला रही हूँ..."

कम ही सही, जब सुरेश पेशाब कर चुका तो आनन्दी खुशी की गुदगुदी से व्याकुल हो गई और हँड़िया को यथा स्थान रखकर अपने स्वभाव के विपरीत गुस्से में चिल्ला पड़ी :

"शैलजा बेटी, क्या हो गया है तुम लोगों को, बाहर जाकर मना क्यों नहीं करती, दिन-भर नाली ही साफ होती रहेगी? धूप तेज हो गई, पुलिस की मोटर घूम रही है..."

यह अवश्य है कि सीतानाथ पर उसे शुरू से ही गुस्सा आता रहा था कि हर काम ईश्वर के 15 सहारे छोड़कर निश्चिन्त हो जाते हैं और हाथ-पैर नहीं हिलाते हैं। लेकिन अब वह अपराध-बोध से व्याकुल हो उठी है कि अपने पति पर उसने आज भारी अन्याय किया है।

शैलजा को तो जैसे पर लग गए और यह कहना मुश्किल है कि पहले वह उतरी या उसके आप पैर। उसकी बात से सीतानाथ की चेतना जैसे लौट आई और वह महसूस करने लगे कि सफाई का कोई काम

शेष न रहने के बावजूद वह किए जा रहे हैं। फौरन भीतर जाकर आँगन में खड़े होकर बोले धीमे स्वर में :

"हो गया न ?"

"ए बाबू, बच्चा पानी माँग रहा है, दे दें न ?"

"हाँ चाची, पंडित रामचरित्तर वैद्य ने कहा है कि पानी थोड़ा-थोड़ा दीजिए... एक बार में एक-दो

चम्मच से अधिक नहीं।"

वह गुसलखाने में जाकर साबुन से मल-मलकर हाथ धोने लगे। फिर आँगन में आकर तेज

आवाज में कहा उन्होंने :

"धाची. पंडित रामचरित्तर शर्मा।" वह बेतहाशा हँसने लगे आँखों में आँसू आने तक। फिर गम्भीर होकर चहकती आवाज में बोले. "निहायत काबिल डॉक्टर !" पीछे घूमकर उसी

तत्पश्चात वेश भूषा में बाहर की तरफ चल पड़े और लोग कुछ सोचे-समझें, उसके पहले ही वह सड़क पार नम्रता के घर की तरफ जाते दिखाई पड़े।

नम्रता ने पहले ही देख लिया था, इसलिए उसने झटपट बाहर का कमरा खोल दिया और अपने पिता को भी सूचना दे दी।

"भाई साहब, क्या हाल है? एक्का मँगवाएँ?" रतनसिंह ने बाहर निकलकर बरामदे में खड़े सीतानाथ से पूछा।

"अरे तौबा कीजिए, अब इसी इक्के पर कचहरी साथ-साथ चलेंगे।" सीतानाथ ठहाका मारकर हँस पड़े।

"अच्छा..." रतनसिंह कंपित होंठों में मुस्कराने की कोशिश करते हुए दुर्बल संशय भाव से उनको घूर रहे थे।

"अच्छा ही नहीं, अच्छा, अच्छा, अच्छा।" सीतानाथ ने विदूषक की तरह मुँह बनाते हुए कहा। अब हँसने की बारी रतनसिंह की थी। उन्होंने तो उन्मुक्त खिलखिलाहट की एक लम्बी लकीर ही खींच दी, हिलती और उछलती।

"अच्छा तो भैया, सीतानाथ, चलते हैं, कुछ आराम-वाराम किया जाए न ! हाँ, आप सब लोगों को बहुत-बहुत शुक्रिया, खास तरह से नम्रता बिटिया को। जब बच्चे को अस्पताल ले जाने की बात उठी तो मैं पुलिस से डर रहा था तो नम्रता ने कहा, 'चाचाजी, पुलिस क्या करेगी, अधिक-से-अधिक गोली ही तो चलाएगी।' वाह! अरे भैया, अब मेरी समझ में यह बात आई-अगरचे लोग मौत से ही डरेंगे तो आजादी की लड़ाई कैसे लड़ेंगे? अब मेरी समझ में आया कि भगतसिंह क्यों फाँसी पर चढ़ गए ! वाह ! वाह !"

वह लौट चले अपने घर की तरफ होंठों पर विश्वास-भरी काँपती मुस्कुराहट के साथ।

शैलजा कई बार गलियारे के दरवाजे तक दौड़कर बाहर झाँक चुकी है। धीरेश, उमेश और रमेश गिलास में पानी लेकर आँगन में प्रतियोगिता कर रहे हैं कि किसका कुल्ला सबसे आगे जाकर चैम्पियन बनता है। और सुरेश लेटे-लेटे क्षीण दृष्टि से उनकी लीला देखकर मुस्कुराने की कोशिश कर रहा है। आनन्दी रसोईघर की नाली के पास बड़ी बाल्टी में पानी लेकर माँजे हुए बर्तनों को खंगालने की कोशिश कर रही है।कृष्ण

सीतानाथ लौटकर आँगन में खड़े हो जाते हैं और सुरेश की तरफ देखकर चहकती आवाज में पूछते हैं, "ठीक है न?" लेकिन कोई जवाब न पाकर अपने कमरे में लौट जाते हैं, "अरे, वीरेशजी कहाँ हैं, दिखाई नहीं देते।"

तीनों छोटे लड़के ऊपर दौड़ पड़ते हैं, जहाँ वीरेश अपने शयन कक्ष में देर से चुपचाप बैठा है। यह अब भी गम्भीर है नाराजी से, जैसे ऐसा करने का उसे अधिकार है। सूचना पाते ही वह उठकर चल देता है अकड़कर। गर्दन तनी और टेढ़ी। मुख पर अवज्ञा का यह भाव कि अब वह किसी का भी बरदाश्त नहीं करेगा, चाहे वह कोई भी हो।

"वीरेशजी, कौन कहता है तुमने गलती की? तुमने सोलहो आने सही काम किया है। तुम इंसान हो, ऊँचे दर्जे के इंसान। अरे, इंसानियत के मुकाबले जान क्या चीज होती है भाई ? कौन कहता है, तुम छोटे हो, नासमझ हो, गैर-जिम्मेदार हो ? अरे गांधी, जवाहरलाल सोने के थोड़े ही बने हैं, वे भी तुम्हारी ही तरह हाड़-मांस के इंसान हैं। वे भी बच्चे थे। अरे, तुम गलत काम कर ही नहीं सकते, सच्चाई से डिग ही नहीं सकते। तुम खुद-मुख्तार हो, जाओ हँसो, गाओ, गुनगुनाओ,

मेहनत करो। गलती तो सीतानाथ की ही थी...।"

सीतानाथ की वाणी अवरुद्ध हो जाती है, वह आँखें पोंछने लगते हैं। वीरेश का किला ढह गया है और यह सिर झुकाए वहाँ से भाग खड़ा होता है, बाल रुदन जैसी सिकुड़ी आँखों और विके होंठों के साथ।

नीलेश डर रहा था. सीतानाथ शायद उसे भी बलाएँ। फिर वह खुली छत पर जाकर टहलने लगा। परिवार में खुशी का माहौल लौट तो आया है, लेकिन वह स्वयं दुःखी है। ऐसा क्यों हुआ, जब सबकी चिन्ता करनेवाला उसका छोटा भाई, गम्भीर बीमार था, वह छत के एक कमरे की कुर्सी * पर जड़ होकर बैठा रह गया ? यह सही है कि वह देशभक्त है, देश की आजादी के लिए सबकुछ करने को तैयार है, लेकिन क्या बात है कि भाई की बीमारी दूर करने के प्रयासों में उसकी कोई भूमिका नहीं, कुछ भी योगदान नहीं ? जो राष्ट्र के बड़े मोर्चे पर लड़ता है, उसे समाज और परिवार के छोटे मोचों को महत्त्वहीन समझने का अधिकार मिल जाता है? या उसकी देशभक्ति दिखावा-पर है और दरअसल वह स्वभाव से एक भगोड़ा है। नहीं, नहीं... वह घबरा गया। नहीं, वह आज से और अभी से घर के लोगों की छोटी-छोटी तकलीफों को दूर करने का प्रयास करेगा और राष्ट्र के बड़े मोर्चे पर अपनी सार्थक भूमिका निभाने के लिए कल सवेरे ही वैरिया निकल जाएगा, जहाँ आजादी की एक निर्णायक लड़ाई होनेवाली है। इस संकल्प के साथ ही ताजी विपुल हवा उसके फेफड़े में आसानी से भरने और निकलने लगी। आत्मविश्वास से होंठ परस्पर चिपक गए और गर्दन तनकर टेढ़ी हो गई।

44

आधी रात के पश्चात आकाश में बादलों की एक हल्की परत चारों ओर फैल गई और सुबह तक उसके ऊपर रुई की तरह सफेद और हल्के, दूसरी परत के बड़े-बड़े टुकड़े भागते हुए दिखाई देने पथ लगे, मानो किसी मैदान में घुड़दौड़ हो रही हो। हवा भी तेज चल रही है सुखद, जिससे जल्दो उठनेवालों की भी नींद समय से नहीं खुली और उन्हीं के बीच से होता हुआ नीलेश गलियारे का विदरवाजा धीरे से खोलकर पूरब दिशा में निकल गया।

नफीस और राममूरत, काजीपुरा के पास उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे तब वे तीनों ऊँचे बाँध पर बनी रेल पटरी की पगडंडियों के रास्ते से बढ़ चले। राममूरत उम्र, कद और ताकत में कम होने की वजह से सबसे आगे चल रहा है। उसकी चाल में कोई धमधमाहट नहीं है नफीस की तरह, जो सबसे लम्बा, तगड़ा और फुर्तीबाज है। दोनों के बीच में चलनेवाला नीलेश उन्नीस नहीं है और उसका कसरती शरीर भी निकलकर खिल गया है। लेकिन तीनों साथियों के चेहरे समान रूप से 18 उत्साह से दप-दप कर रहे हैं।

तीनों ही धोती में हैं, लेकिन नीलेश कुर्ता और बाकी दोनों उटुंग कमीज पहने हैं। नफीस और एक राममूरत गले में लाल अँगोछा लपेटे हुए हैं, जो शायद तेज धूप से बचने के लिए हो। लेकिन सबकी चाल और हाथों की जुम्बिश में अद्‌भुत तालमेल है। वे लगभग एक ही समय और एक ही शैली प में अपने सिर कभी बाएँ और दाएँ घुमाकर चौकन्नापन से देखते हैं। वे रमाशंकर के जोर देने पर गाँवों में आजादी के लिए होनेवाले संघर्ष में मदद देने के लिए निकले हैं और इस समय रेल की 18 पटरी पकड़कर सुरेमनपुर स्टेशन होते हुए वैरिया जाना है।

गंगा और घाघरा नदियों के मध्य स्थित बलिया भूमि के वाशिन्दों में वैसी ही छोटी-बड़ी तरंगें उठ रही हैं। सवेरे से ही गाँवों से छोटे-छोटे जुलूस निकलते हैं, जो एक जगह एकत्रित होकर बड़ी

प्रबल लहर की तरह आगे बढ़ते हैं। रास्ते में और कई जोशीले समूह मिलकर जुलूस को लम्बे-चौडे छोडो' जब सफर लम्बा हो तो राष्ट्रीय गान हिम्मत, जोश, धैर्य और अनुशासन देता है। नद का रूप देते हैं। हाथों की मुट्ठियाँ आसमान में लहराती हैं, नारे गॅजते हैं, 'अंग्रेजो । भारत छोड़ो-

लहराएँगे, फहराएँगे

प्यारा तिरंगा देश का

विदेशी राज मिटाएँ

प्यारा तिरंगा देश का, प्यारा तिरंगा देश का।

प्रश्न है कि जब गांधी, नेहरू, आजाद और पटेल पहले से ही गिरफ्तार हैं और इस जिले के भी सभी प्रभावशाली नेता अन्दर हैं तो जनता के इस विशाल क्रान्तिकारी आन्दोलन का नेतृत्व कौन कर रहा है ? किसने बनाया आन्दोलन का कार्यक्रम ? बम्बई में गिरफ्तारी के पहले दिया गया नेताओं का भाषण, खास तरह से महात्मा गांधी का 'करो या मरो' सन्देश, बचे-खुचे फरार नेताओं और कार्यकर्ताओं के जन-सम्पर्क, जोतकर उपजाऊ बनाए गए खेतों की तरह क्रान्तिकारी किसान आन्दोलनों द्वारा संघर्ष और क्रान्ति के विचार से फैलाई गई जागरूकता, बड़े-बड़े शहरों के जन-प्रदर्शनों में भाग लेने के बाद गाँवों में फैलकर जन-अभियानों को प्रभावित करनेवाले नौजवान-छात्र-यही है नेतृत्व और यही हैं कार्यक्रम।

और सबसे बड़े सम्बल हैं राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन की महान, उदात्त और क्रान्तिकारी परम्पराएँ, खास तरह से महात्मा गांधी द्वारा बताए गए असहयोग, सत्याग्रह, कौमी एकता, साम्प्रदायिक सद्भाव, अस्पृश्यता उन्मूलन, अहिंसात्मक प्रतिरोध, नारी उत्थान, स्वदेशी, सादगी, स्वाभिमान और जनसेवा के रचनात्मक विचार और कार्यक्रम। इसलिए लोग जान गए हैं कि आजादी की लड़ाई कैसे और किन हथियारों से लड़ी जा सकती है। जहाँ कोई नेता नहीं है, वहाँ स्वयं ही लोग दल बनाकर और अपने ही बीच में से किसी को नेतृत्व सौंपकर निकल पड़ते हैं नारे लगाते हुए। कोई बड़ा नेता न होने पर भी उन्होंने महान जिम्मेदारियाँ सँभाल ली हैं। जुलूस चलने के पहले कोई स्थानीय नेता संक्षिप्त भाषण देता है:

"तो ए भाई, अब हम एक आजाद राष्ट्र हैं। समझ लीजिए, किसी का कोई जाति-धर्म नहीं, जाति-धर्म है तो हिन्दुस्तानियत, भारतीयता। तो ए भाई, हमारे नेता हैं, गांधी, नेहरू, आजाद, जयप्रकाश नारायण। उन्हीं के हम सिपाही हैं। वे आज जेल में हैं, लेकिन वे वहीं से हमें प्रेरणा, उत्साह दे रहे हैं। हम चल तो रहे हैं अपनी अहिंसात्मक लड़ाई के लिए मैदान में, पर ध्यान रहे, आप कोई ऐसा काम न करें जिससे

जेल में हमारे नेताओं को दुःख हो। मिल-जुलकर लड़ें और मिल-जुलकर ही कष्ट सहें और कुर्बानियाँ दें। हिंसा किसी भी हालत में न करें। हम जानते हैं अंग्रेज हुकूमत अपने क्रूर, घृणित हिंसात्मक अत्याचारों द्वारा हमको दबाने, हमको तोड़ने की कोशिशें कर रही है-वह चाहती है हम, हमारा आन्दोलन हिंसात्मक होकर टूट-बिखर जाए। हम उनके जाल में नहीं फँसेंगे। हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन के जो उसूल हैं, उन्हें हम किसी भी हालत में नहीं छोड़ेंगे।

अंग्रेजो, भारत छोड़ो, इंकलाब जिन्दाबाद।"

जोरदार नारे लगते हैं। फिर वही व्यक्ति आगे कहता है:

"देश के क्रान्तिकारी वीरो, ध्यान से सुनिए... पहला काम तो यह है कि रास्ते में शराब, गांजा-भाँग की जो दुकानें मिलें, उन्हें बन्द कराइए। पहले हाथ जोड़कर दुकानदार से कहिए कि वे नशा का सामान बेचना बन्द कर दें और अपने हाथ से सबके सामने उनको फेंक दें, नष्ट कर दें। अगर वे नहीं मानेताना बन्द करते स्वयं करें, जैसा सन् इक्कीस के असहयोग आन्दोलन में किया

गया था। फिर आगे बढ़िए...तो ए भाई, परिस्थितियाँ बदल गई हैं, जन-जन में जागरूकता फैल गई है, यह आजादी की 'करो या मरो' वाली अन्तिम लड़ाई है, इसलिए हम असहयोग के कुछ नए तरीके इस्तेमाल कर रहे हैं। ब्रिटिश हुकूमत को कायम रखनेवाली हर चीज को नष्ट करना आज जरूरी हो गया है। तार काट दीजिए, रेल की पटरी उखाड़ दीजिए, डाकखाने के कागज-पत्र जला दीजिए, थानों और दूसरे सरकारी दफ्तरों पर अधिकार करके कागज-पत्र नष्ट कर दीजिए और ऊपर तिरंगा झंडा फहरा दीजिए। हर थाने से जो बन्दूकें वगैरह मिलें, उन्हें ले लीजिए... लेकिन उनका इस्तेमाल हिंसा करने के लिए न कीजिए..."

जोरदार नारे लगते हैं। फिर भाषण चालू होता है:

"एक बात और सुन लीजिए। इस जुलूस में कोई भाई ऐसा हो, जो लूटपाट या किसी भी निजी फायदे की नीयत से चल रहा हो तो मैं साफ-साफ कह देता हूँ, वह इसी समय जुलूस से निकल जाए। चले वही जो आजादी के लिए लाठी, डंडा, गोली खाने को तैयार हो। मैं जानता हूँ, घोर गरीबी की वजह से कुछ लोग ऐसे काम करते हैं। लेकिन आजादी की यह लड़ाई गरीबी दूर करने के लिए भी लड़ी जा रही है। हाँ, आजादी कोई हवा में लटकानेवाली चीज नहीं है, अगर हम शोषण, अन्याय, गरीबी दूर नहीं करेंगे तो अंग्रेजों को हटाने से क्या फायदा? इसलिए, हर भाई को यह समझ लेना चाहिए कि आजादी मिलने का मतलब यह नहीं कि हर तरह की आजादी मिल गई। आजादी मिलने पर हमारा शासन अहिंसा, शान्ति, समानता और न्याय के सिद्धान्तों पर जरूर चलेगा, मगर गलत काम को बरदाश्त नहीं किया जाएगा। आप सभी एक स्वतन्त्र राष्ट्र के जिम्मेदार नागरिक की तरह काम करें और अपना सहयोग दें..."

बलिया जिला का समस्त क्षेत्र, पूरब से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण, उठ खड़ा हुआ है और सही अर्थों में समूचे हिन्दुस्तान की स्वातन्त्र्य आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व कर रहा है। छात्र सबसे आगे हैं जिनमें स्कूल के कम वय के बच्चों की भी संख्या कम नहीं है। कई अभियानों में स्त्रियों की प्रभावशाली भूमिका है। कोई पुराना बुजुर्ग या अधेड़ कांग्रेसी जब नेतृत्व करता है या जुलूस में शामिल होता है तो वह राष्ट्रीय पोशाक धारण कर लेता है-खद्दर की धोती या पैजामा, कुर्ता और गांधी टोपी। कुछ लोग ऐसे अवश्य हैं उग्रता में विश्वास करनेवाले, जो अहिंसा के तरीकों को नाकाफी समझते हैं, लेकिन उनके पास न कोई खास संघटन है और न ही जनता में असर इसलिए वे भी इस अनोखी क्रान्ति के रास्ते पर चलने को बाध्य हैं !

यह सही है कि आन्दोलन शुरू होने के समय सशस्त्र क्रान्ति में विश्वास करनेवाले कुछ नौजवानों ने एक गाँव में एक धनी-मानी व्यक्ति के घर में डाका डाला। जब काकोरी में क्रान्तिकारियों द्वारा ट्रेन में डकैती डाली गई, उसके बाद से ऐसी न मालूम कितनी वारदातें की गई हैं। क्रान्तिकारी आन्दोलन की परम्पराओं में इसका शुमार है, जिसका उद्देश्य नेक है और इस तर्क की पुष्टि करता है कि किसी महान लक्ष्य को यदि साधना है तो साधन के रूप में हिंसा आदि का इस्तेमाल करना अनुचित नहीं है। यह किस्सा सभी आन्दोलनकारियों को मालूम है कि सन् इक्कीस का असहयोग आन्दोलन इसीलिए बन्द कर दिया गया था कि चौरीचौरा में कुछ पुलिस सिपाहियों की थाने में आग लगाने से मृत्यु हो गई थी और पंडित नेहरू ने गांधीजी के निर्णय के प्रति अपनी असहमति भी व्यक्ति की थी। फिर भी 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में भाग लेनेवाली जनता पुरानी गलतियों से सीखकर सजग, सचेत और सावधान है।

डकैती हो या कोई अन्य हिंसात्मक कृति, जनता इसे पसन्द नहीं करती। भले ही मुट्ठी-भर लोग कुछ कर लें, लेकिन कोई नहीं चाहता कि हमारे गाँव में कुछ ऐसा हो। कई जुलूसों में, पन्द्रह-बीस हजार की भीड़ में कुछ लोग लाठी अथवा अन्य छोटे-मोटे हथियार लेकर चलते हैं, थाने से प्राप्त या गश्ती सिपाही से छीनी गई दो-एक बन्दूक भी होती हैं। लेकिन इनका इस्तेमाल शायद

ही कभी हुआ। संभवतः यह एहतियाती कार्रवाई है. यदि विदेशी हुकूमत द्वारा हमला किया गया तो डटकर मुकाबला किया जाएगा। लेकिन विशाल अहिंसक जन-समुद्र में दो-एक हथियार बहनेवाले तिनकों की तरह महत्त्वहीन लगते हैं।

कुछ समय पहले जो लोग एक सिपाही को देखकर डर जाते थे, वे ही दल-बल के साथ किसी थाने पर पहुँचकर थानेदार को बुलाते हैं:

"थानेदार साहब, बाहर आइए तो..."

"क्या बात है ? वहीं से बताइए न...!" थानेदार सकपकाकर कहता है।

"हम शान्ति से बात करना चाहते हैं। आपको कोई खतरा नहीं है..."

"आप लोग इतना बड़ा मजमा इकट्ठा करके क्या करना चाहते हैं ?"

"थानेदार साहब, आपसे हमारी कोई दुश्मनी नहीं है। आप तो हमारे भाई हैं। अब आपको माइम हो जाना चाहिए कि अंग्रेजों की सरकार खत्म हो गई है। जो भी बन्दूक, कारतूस, लाठी-डंडा मादि आपके पास हों, हमारे सुपुर्द कर दीजिए...और यहाँ से चले जाइए जहाँ जाना चाहते हों। शान्ति से अपने बाल-बच्चों और सामान को ले जाइए, कोई कुछ न बोलेगा। हम थाने पर कब्जा करेंगे, तिरंगा झंडा फहराएँगे, सभी सरकारी कागज नष्ट कर देंगे, अपनी आजाद सरकार कायम करेंगे। आप भी गांधी टोपी पहनिए और तिरंगा झंडा को अपनी सलामी दीजिए..."

यह अभूतपूर्व है। ऐसा किसी थानेदार या सरकारी अधिकारी ने पहले देखा नहीं है-देखा क्या, कल्पना में भी कभी सोचा नहीं है। थानेदार घबराकर या भीड़ को टालने की चालबाजी से कहता है एफ

"साहबान, यह क्या कर रहे हैं? हमारे भी बाल-बच्चे हैं, परिवार हैं, हमारी नौकरी चली जाएगी, बाद में फाँसी पर लटका दिया जाएगा... जाइए, घर पर आराम कीजिए..."

"थानेदार साहब, अब विदेशी सरकार है कहाँ, जो आप उससे डर रहे हैं ? हम आजाद सरकार की तरफ से आपको बरखास्त करते हैं। आप तीन-पाँच न कीजिए... हम गांधीजी के सिपाही हैं, किसी पर हाथ नहीं उठाते। हाँ, अगर आप नहीं मानते तो हम सत्याग्रह और संघर्ष करेंगे..."

परतन्त्रता और जुल्म-अन्याय से मुक्त होने के विश्वास, प्रयास और अनुभव से उज्ज्वल कुछ भी नहीं। उनके चेहरों पर जो चमक थी, उनकी तुलना सूरज की प्रखर किरणों से करने में कोई अतिशयोक्ति नहीं। या कहिए कि गुलामी के अन्धकार को भगाने के लिए एक साथ हजारों दीये या मशाल जल रहे हैं। आजादी की दीवानी आम जनता की ज्योतित नैतिक शक्ति का थानेदार और उनके सिपाही सामना नहीं कर पाए, जिससे उनकी हिम्मत इतनी कम हो गई कि उनके लिए अपने विनाशकारी हथियारों की सक्षमता पर भी विश्वास करना कठिन हो गया। जो होशियार थे, उन्होंने पहले ही अपने मुखबिरों से पता लगाकर हथियार इधर-उधर छिपाकर कोई बहाना गढ़ दिया। लेकिन कागज-पत्रों को वे बचा नहीं सके, न ही थानों पर तिरंगा का फहराया जाना रोक सके। अन्य कइयों को गांधी टोपी पहननी पड़ी और 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' का नारा लगाना पड़ा।

लोगों के दिलों में क्रान्ति के शोले दहक रहे हैं जिनमें सरकारी कार्यालयों, थानों, डाकखानों, स्टेशनों तथा अन्य स्थानों पर विद्यमान विदेशी हुकूमत के रेकॉर्ड, महत्त्वपूर्ण दस्तावेज, अन्य कागज-पत्र, टिकट, लिफाफे, पोस्टकार्ड, मनीऑर्डर, तार के फार्म वगैरह जलकर खाक हो गए। जो नोट मिले, वे या तो जला दिए गए या कार्यालय के साधारण कर्मचारियों और गरीबों में बाँट दिए गए। स्वतन्त्रता के भारत छोड़ो आन्दोलन में उन दिनों जो दृश्य दिखाई दिए उनका अन्दाजा शायद किसी महान

कलाकार द्वारा बनाए गए जन-विद्रोह या दावानल के कलात्मक चित्रों से लगाया जा सके। कहना तो यह चाहिए कि जनता स्वयं उच्चकोटि के कलाकारों के समान, समय और इतिहास को नया मोड़ देकर देश के जीवित चरित्रों और उनकी महान विविध संभावनाओं को निर्मित कर

रही थी, जो किसी अन्य कवि या आर्टिस्ट द्वारा संभव नहीं है।

क्रान्ति के इसी दौर में जनता ने स्वयं मुक्ति अभियान चलाने और उसके बाद कामचलाऊ आजाद शासन व्यवस्था कायम करने की जिम्मेदारी ले ली थी। अतः उसे एकजुट संघर्ष, साहस, बुद्धिमत्ता, दृढ़ता, सतर्कता, सतत जागरूकता, धैर्य, परस्पर सहयोग, त्वरित प्रबन्ध और निरन्तर परिश्रम की जो शिक्षा कुछ ही दिनों में मिल गई, यह वर्षों के प्रयास में संभव नहीं है। उसमें ऐसे-ऐसे व्यक्तियों ने आगे बढ़कर नेतृत्व सँभाला जिनके बारे में ऐसा कभी सोचा भी नहीं जा सकता। जिनको पहले कभी दब्बू, मरियल, सोझिया, गँवार, गरीब, शर्मीला, नासमझ, पिछड़ा, अथवा आवारा या उद्दंड समझा गया, वे कई हिम्मतियों और आदर्शवादियों से भी आगे बढ़ गए। उनमें गरीब तबके के ऐसे लोग भी थे, जो पढ़े-लिखे तो कम ही थे, किन्तु जिन्होंने वामपक्षीय राजनीति से प्रभावित होकर निरन्तर किसान आन्दोलनों में काम किया था और नए ढंग से लोगों को संघटित करने, समझाने-बुझाने, तर्क-वितर्क और बहस करने तथा वंचित-शोषित के पक्ष में आजादी की सोद्देश्य व्याख्या करते हुए प्रतिभाशाली भाषण देने में भी कुशलता प्राप्त कर ली थी।

ऐसे लोग अपने क्षेत्र की जनता के दुःख-सुख में खड़े हो जाते। चोरी डकैती या कोई और विपत्ति पड़ने के वक्त सबसे पहले पहुँच जाते। कोई जुल्म होने पर जनान्दोलन द्वारा उसका विरोध या प्रतिकार करने में लग जाते। परस्पर मतभेद, मनमुटाव या लड़ाई-झगड़ा में समाधान तथा परस्पर सौहार्द की पुनःस्थापना के लिए दिन-रात एक कर देते। उन्होंने साधारण किसानों, मजदूरों के हक में सूदखोरों, क्रूर जमींदारों के जुल्म के विरुद्ध कई आन्दोलन चलाए थे और कहीं-कहीं सफलता भी प्राप्त कर ली थी। आजादी के आन्दोलन के साथ ऐसे भी संघर्ष चलते रहते। एक-दूसरे का विरोध करते हुए नहीं बल्कि परस्पर सहयोग करते हुए, जिनमें किसान-मजदूरों की दिन-पर-दिन भागीदारी बढ़ती जाती थी, इसलिए आजादी के किसी विचार एवं व्यवस्था में उनकी उपेक्षा सम्भव नहीं थी।

रामचरन, एक ऐसा ही उभरता हुआ कार्यकर्ता है। यह वहीं शख्स है, जो कुछ वर्ष पूर्व सहतवार स्टेशन पर कुली मजदूर का काम करता हुआ चनरा के नाम से जाना जाता था और जिस पर बुढ़ाते प्वाइंट्मैन की कमसिन, खूबसूरत पत्नी जान छिड़कती थी। उन्हीं दिनों सदाशयव्रत के कारण भोलाराम नामक एक भूतपूर्व डाकू ने प्वाइंट्समैन की पत्नी का अपहरण कराया था, लेकिन उसने अपने सच्चे प्रेम पर अडिग रहते हुए नकार और निराशा देकर सदाशयव्रत की जीवनधारा विपरीत दिशा में मोड़ दी। रामचरन अब भी वैसा ही लम्बा, छरहरा और जीवन्त है और अब उसके काले चेहरे पर प्रौढ़ता की तरफ बढ़ता हुआ सुचिन्तित धैर्य और सिर तथा मूँछों में एक-दो बाल सफेद देखे जा सकते हैं।

रामचरन के जीवन में उस समय एक बड़ा परिवर्तन आया, जब प्वाइंट्समैन की अचानक मृत्यु के बाद सन्तानविहीन किनेरी ने अपने पति के स्वार्थी रिश्तेदारों को जमीन-जायदाद, पैसा-कौड़ी में अपना हक लिखित रूप से सुपुर्द करके चनरा के साथ रहने का ऐलान कर दिया। तब रामचरन उसको लेकर स्टेशन से दूर किसी देहात में चला गया, जहाँ उसने कुछ राजनीतिक सम्पर्कों के कारण किसान और मजदूर संघटनों में काम करना शुरू किया। किनेरी के प्रेम और सहयोग से वह खुश था, और राजनीति ने उसे बहुत कुछ सिखाया, जिससे जीवन के प्रति उसकी दिलचस्पी और समझदारी बढ़ती गई। मामूली पढ़ना-लिखना जानता था, अब वह अपने ज्ञान को बढ़ाने की कोशिश करने लगा। किसान सभा की बैठकों में सदस्यों के बीच सरल भाषा में लिखी पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ बाँटी जाती थीं। पहले वह भटक भटककर पढ़ता था, लेकिन नियमित अभ्यास से वह

गति पकड़ने लगा और कुछ समय बाद उनमें व्यक्त विचारों की गहराई में भी उतरने लगा। वह खुश हो जाता और गर्व से भी भर उठता इस खयाल से कि उसका जीवन दूसरे लोगों

से जुड़ा है और उसके साथी सिर्फ दबे-कुचले असहाय किसान-मजदूर ही नहीं बल्कि अन्य जागरूक और स्वाभिमानी लोग भी हैं जो आजादी और सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष करना जानते हैं, और अपने तथा सबके लिए एक ऐसा खूबसूरत समाज बनाना चाहते हैं. जिसमें सभी शान्ति, भाईचारे, और समता के बसलों पर चलते हए तरक्की करें। आगे चलकर, रामचरन अपनी इसी पृष्ठभूमि और अनुभव के साथ 'भारत छोड़ो' जनक्रान्ति में शामिल हुआ, उसकी सोद्देश्यता की धार को और भी पैना करते हुए-जब उस समय के प्रचलित नारों के साथ कुछ विशिष्ट नारे भी लगे :

अंग्रेजो, भारत छोड़ो ! महात्मा गांधी, जिन्दाबाद! इन्कलाब, जिन्दाबाद ! समाजवाद, जिन्दाबाद !

राजनीतिक आजादी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होते हुए भी उसमें आर्थिक और सामाजिक समता के स्वप्न जुड़ गए थे, जो बहुत चटक भले ही न हों, लेकिन जो देश-समाज की समस्याओं और उनके समाधान की रूप-रेखा और तरीकों की समझ दे रहे थे। इसी वजह से इस आन्दोलन में साधारण लोगों की भागीदारी सर्वाधिक थी। उनके उत्साह का अन्त नहीं था, जिसका एक सबूत यह है कि थानों और सरकारी कार्यालयों पर कब्जा होने के बाद फौरन जनता के बीच में से कर्मठ और बुद्धिमान व्यक्ति चुनकर पदाधिकारी बना दिए जाते ताकि शान्ति-व्यवस्था का काम गड़बड़ाने न पाए। मुक्त हुए क्षेत्र के प्रत्येक गाँव में स्वयंसेवकों की भर्ती की गई, जो रात को पहरा देते, अपनी देख-रेख में सामानों के मूल्य निर्धारित करके बाजार लगवाते और यह भी देखते कि गरीब-दुखिया को सताया तो नहीं जा रहा है और स्थिति का अनुचित लाभ उठाकर कोई गलत काम तो नहीं कर रहा है ?

आप कुछ ही दिनों में, लगभग पूरा जिला विदेशी शासन से मुक्त कर लिया गया। लगभग सभी थानों और सरकारी कार्यालयों पर अधिकार हो गया, लेकिन जिला मुख्यालय बलिया शहर की तरफ कूच करने में बैरिया थाना सबसे बड़ी बाधा बना हुआ था। वहाँ का थानेदार बड़ा काइयाँ था। उसने शुरू में

ही आए जुलूस को अपनी मीठी-मीठी बातों और आश्वासनों से बहला-फुसला लिया। उसने झट जुलूस की थाने पर झंडा फहराने की माँग स्वीकार कर ली और वादा किया कि दो-तीन दिन में थाना छोड़कर चला जाएगा। लोगों ने उसे तीन दिन की मोहलत दे दी। लेकिन उसने जिला मुख्यालय से कुछ और सिपाही और हथियार मँगाने के बाद झंडा उखाड़कर फेंक दिया।

इस धोखेबाजी से लोग काफी गुस्से में थे। लेकिन वे तत्काल उधर ध्यान न देकर और क्षेत्रों को मुक्त करने में लग गए। बाँसडीह तहसील, सहतवार तथा अन्य गढ़ों पर अधिकार करने के बाद बैरिया का भी नम्बर आ गया। लोगों का यह संकल्प था कि 18 अगस्त को वैरिया पर अधिकार करने के बाद दूसरे ही दिन जिला मुख्यालय पर धावा बोला जाए, जिस पर अधिकार होने पर छोटे-मोटे किले स्वतः ही ढह जाएँगे।

सवेरे से ही गाँव-गाँव से जुलूस निकलने लगे। लोग इकट्ठे होते, भाषण होते, नारे लगते। फिर राष्ट्रीय गान गाते हुए चल देते। जिले के अन्य कई क्षेत्रों से भी इस लड़ाई में शामिल होने के लिए नौजवान आए थे, जिनमें नफीस, नीलेश और राममूरत भी हैं।

तीनों साथी शुरू में रेल पटरी के किनारे-किनारे तेजी से चले थे, लेकिन बाद में गति धीमी पड़ गई। चेहरे पर थकान। इसका एक कारण था जगह-जगह पटरियों का उखाड़ा जाना, जो यदि रास्ते में आ जातीं तो कूद-फाँद करनी पड़ती। कहीं-कहीं पता नहीं क्यों पगडंगी के रास्ते को भी फावड़े-कुदाल से खोदकर अवरोध पैदा किया गया था।

"यार भूख लग आई है...।" नफीस ने पसीनियाए चेहरे को हाथ से पोंछते हुए सज्जनतापूर्वक

हँसकर कहा था।

बरदाश्त करना गर्व की बात हो। राममूरत और नीलेश भी हँसने लगे, एक खास शहीदाना ढंग से, जैसे ऐसे समय में भूख

"मुझे तो खयाल ही नहीं आया कि भूख भी लग सकती है। चलो नीचे उतरते हैं, आस-पास गाँव होगा, कुछ तो मिल ही जाएगा... भूजा-वूजा..."

"नहीं नीलेश, जल्दीबाजी न करो। सुरेमनपुर स्टेशन तक चुपचाप चले चलो, वहाँ से घूमेंगे तब देखा जाएगा।" नफीस ने गम्भीर होकर कहा।

"पहले लोग लड़ाइयों में दूर-दूर तक सफर करते समय क्या खाते होंगे ?" राममूरत ने कुछ

सोचते हुए पूछा।

"रोटी या चबेना..." नीलेश ने कहा।

"यार, इस समय सूखा चना भी मिल जाए तो मजा आ जाए।" नफीस हँसने लगा।

"भई, कल गुदड़ी बाजार की घटना में, श्मशान घाट पर मुझे बड़ी भूख लग आई। ऐसा क्यों होता है नफीस भाई ? मुझे अपने ऊपर बड़ा गुस्सा आया। सोचा, देखो मैं कितना कमीना हूँ, यहाँ लोग शहीद हो गए हैं और मुझे पेट की पड़ी है। तब अलग जाकर मैंने अपने ही गाल पर जोर का तमाचा मारा... लेकिन अपना तमाचा उतना जोरदार थोड़े ही होता है जितना कोई दूसरा मारे..."

नफीस ने अपनी हँसी को नियन्त्रित करते हुए गुस्से में कहा, "राममूरत, तुम आलतू-फालतू बहुत बोलते हो, यह मजाक का समय नहीं है, चुप्पे चलो..."

"लीजिए भइया... नाराज न होइए, अब कुछ नहीं बोलूँगा-" यह कहकर राममूरत दौड़ लगाने लगा, परन्तु अपने साथियों को वैसा करते न देखकर कुछ ही दूर बाद खड़ा हो गया और जब वे पास आ गए तो उन्हीं की गति से चल पड़ा।

हवा में उतनी तेजी नहीं रह गई है और पूर्वी क्षितिज पर गाढ़े बादल इकट्ठे होने के बाद ऊपर आकाश में फैल रहे हैं, जिनके नीचे शाम-जैसे हो आए धुँधलके में बाँध के दोनों किनारे गड्ढों तथा खेतों में बरसाती पानी नन्हीं-नन्हीं लहरियों में काँप रहा है। झीवे-झाड़ी, पेड़-पौधे, ताड़-खजूर, रेंड, बबूल, सभी जैसे तृप्त होकर सुख में विनम्र भाव से सिर झुकाकर खड़े हैं। मुँहजले स्टेशन, कटे-छितरे तार, उखड़ी सर्पीली रेल पटरियाँ, चारों ओर निर्जनता।

"आस-पास कोई आदमी-जन क्यों नहीं दिखाई दे रहा है? गाय-भैंस, चरवाहा कोई भी तो होता। क्या सभी बैरिया थाने पर झंडा गाड़ने चले गए? खैर छोड़ो... हाँ भैया राममूरत, तुम कुछ ऐसा सुनाओ कि शरीर में कुछ गर्मी और जोश पैदा हो।"

" हाँ, यह तो ठीक है..." नीलेश ने कहा।

"भाईजी, दौड़ते-हाँफते कुछ खास तो नहीं गाया जाएगा, हाँ, एक क्रान्तिकारी अखबार की दो

लाइनें सुन लीजिए :

सबको एक साथ कॉर्न लावा खाना चाहिए। अगर नहीं मिले तो भाग जाओ।

बोल दें धावा..

बोल दें धावा।"

"छोड़ो यार, इससे तुमने भूख की याद दिला दी... वह जगह भी दूर है यहाँ से, जिस पर धावा बोलना है..." नफीस ने कहा।

"ठीक है, अब चुपचाप चलते हैं..."

इसी समय हल्की झींसी पड़ने लगी। नफीस और रामूमरत ने अँगोछे से अपने सिर ढक लिए, लेकिन नीलेश के बाल जल्दी ही तर हो गए। खैर, बारिश शीघ्र ही बन्द हो गई, किन्तु इतनी ही

देर में रास्ता चिपचिपा और फिसलनवाला हो गया और चाल की तेजी में भारी रुकावट आ गई। जब वे सुरेमनपुर स्टेशन से दाहिने घूमकर आगे बढ़े और वैरिया के निकट पहुँचे तो गगनभेदी नारों की गुज उन तक पहुँचने लगी। जोश से उनके चेहरे पर तनाव आ गया और भीतर कुछ घबराहट भी कि पता नहीं क्या हो, क्योंकि बैरिया थाने के मामले में जनता एक बार धोखा खा चुकी थी।

गंगा और घाघरा के बीच पूर्वी द्वाबा क्षेत्र में ब्रिटिश शासन का एक महत्त्वपूर्ण किला था वैरिया थाना। वहाँ का थानेदार बड़ा ही धूर्त, जिद्दी और दबंग था, जिसका चेहरा पके सीपिया आम की गुठली की तरह पतला और चपटा, आँखें छोटी-छोटी, बिच्छूनमा मूँछें और दाहिनी तरफ गाल पर एक लाल मस्सा। उसने पहली बार झूठे आश्वासन देकर जुलूस को लौटा दिया था और जो समय मिला उसमें मुख्यालय से कुछ और सिपाही मँगाकर पूरी तैयारी कर चुका था, लेकिन जनाक्रोश में दूसरी बार जो जुलूस बना, वह आकार और जोश में और भी बढ़ा-चढ़ा। कुछ लोग क्रोध में अंगारों की तरह दहक रहे थे...इस थानेदार को दंड मिलना ही चाहिए, थाने की ईंट से ईंट बजा दी जाएगी। परन्तु स्वयं उत्तेजित होने के बावजूद जुलूस के नेताओं ने अपने भाषणों में राष्ट्रीय आन्दोलनों की गांधीवादी परम्परा पर ही चलने का संकल्प किया।

बढ़ी हुई गंगा और घाघरा नदियों में ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही हैं। आस-पास और दूर वन-प्रान्तर में ताल-तलैया का जल और ऊपर मेघाच्छादित आकाश काँप रहा है नारों से। पुरुवा हवा फिर तेजी हो गई है और बिजली बीच-बीच में चमक जाती है। और ऐसे ही वातावरण में द्वाबा के अन्न-जल-हवा से पले-बढ़े लम्बे और मजबूत लोग अभूतपूर्व क्रान्तिकारी उमंग और उत्साह से दृढ़निश्चयी कदम रखते हुए तिरंगा झंडा के साथ राष्ट्रगान गाते हुए दुबारा थाने की ओर जा रहे 言:

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा,

झंडा ऊँचा रहे हमारा...

जुलूस में एक किनारे दयाशंकर तथा कुछ परिचित नौजवानों को देखकर राममूरत ने पीछे मुँह घुमाकर फुसफुसाहट-भरी आवाज में अपने साथियों को बताया। वे उसी के पास पहुँचकर जुलूस में मिल गए। दयाशंकर पैजामा, गाढ़े का कुर्ता, पैरों में चप्पलों के साथ बालों को हाथ से सँवारते हुए गर्दन टेढ़ी करके चल रहा था। उसने मुस्कुराकर तीनों की ओर देखते हुए पूछा :

"किधर से आए?"

"रेल की पटरी-पटरी।"

"आज फैसला हो जाएगा..."

जवाब में तीनों ने अपनी मुट्ठियाँ हवा में लहराई। लोग धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे हैं। बीच-बीच में ऊपर बादल गरज रहे हैं और नीचे एक ही साथ या कुछ अन्तर से गम्भीर जनघोष, जैसे दो सिंह एक-दूसरे को ललकार रहे हों।

थाने के आगे जो चहारदीवारी है, उसकी ऊँचाई अधिक नहीं है और उसका फाटक भीतर से बन्द। थाने की इमारत के सभी कमरे भी बन्द दिखाई दे रहे हैं। लेकिन दरोगा सहित दस-बारह सिपाही बन्दूकों से लैस छत पर खड़े हो गए हैं। पहले जुलूस फाटक पर पहुँचकर जोर-जोर से नारे लगाने लगा। फिर परम्परा के अनुसार एक अधेड़ खद्दरधारी, गांधी टोपी पहने व्यक्ति ने कुछ आगे बढ़कर चिल्लाकर कहा :

"दरोगा साहब, शान्ति से नीचे आ जाइए... हम अब भी सबकुछ शान्ति से निबटाना चाहते

"साहबान, मैं नीचे नहीं आ सकता। आप लोग गुस्से में हैं और आपसे मेरी जान को खतरा है। मैं तो पहले ही आपकी बात मान चुका हूँ। आप बेकार में आए हैं, आपके कहने के मुताबिक

सबकुछ होगा...।" दरोगा ने भी ऊँची आवाज में जवाब दिया।

"थानेदार साहब, आप एक बार चकमा दे चुके हैं। हमने आपकी बात पर विश्वास किया और आपने धोखा देकर झंडा उखाड़कर फेंक दिया। आपने भारत के राष्ट्रीय झंडे का अपमान किया है। यह अक्षम्य अपराध है। फिर भी, हम यादा करते हैं, आपका कुछ नहीं बिगड़ेगा, आपमें किसी पर कोई उँगली भी नहीं उठाएगा...।"

"देखिए साहबान, झंडा हमने नहीं फेंका, तेज हवा में कहीं उड़ गया। आप हमारी बात मानिए और अमन-चैन के साथ लौट जाइए..."

"उड़ गया ? वाह थानेदार साहब ! अच्छा आप ही की बात मानकर दूसरा झंडा देते हैं, उसको ऊपर वहीं पर लगाकर फहरा दीजिए। और आपने पहली बार जो वादे किए थे, उन्हें फौरन पूरे कीजिए। आपने दो दिन का समय लिया था, आज चौथा दिन है। आज हर हालत में थाना खाली हो जाना चाहिए। अपने सभी हथियार हमारे सुपुर्द करके चले जाइए यहाँ से। हर जगह ब्रिटिश हुकूमत खत्म हो चुकी है, एक आप हैं जो ठकठेन कर रहे हैं। आपको इस थाने में रहने का कोई अधिकार नहीं है। आप सब लोग गांधी टोपी पहनिए, 'अंग्रेजो, भारत छोड़ो' का नारा लगाइए और थाना छोड़कर चले जाइए। अगर नहीं मानेंगे और अपनी वाली करना चाहेंगे तो जबरदस्त लड़ाई होगी..."

"आप धमकी दे रहे हैं। मैं भी कहता हूँ कि आप जो कुछ चाहते हैं, वह सब हो जाएगा। आप लोग यहाँ से चले जाइए, भीड़ रहेगी तो कुछ भी नहीं होगा। आपकी बातों से लगता है कि आप बलवा करने आए हैं। आप लोग रहेंगे तो कैसे हमारे जवान हथियार देने को तैयार हो सकते "

दयाशंकर और उसके साथ नफीस, नीलेश और राममूरत आगे बढ़ आए। दयाशंकर ने चिल्लाकर कहा :

"बहादुर क्रान्तिकारियो, दरोगा के धोखे में न आइए। यहाँ खड़े होकर बेकार बहस में समय को नष्ट करना बुद्धिमानी नहीं है। यह तो कार्रवाई करने का समय है, भीतर घुसकर थाने पर अधिकार कर लीजिए... आगे बढ़िए... इन्कलाब...!"

जैसे किसी बढ़ी हुई नदी की तेज लहरें ऊपर-नीचे उठती हुई ऊँचे कगार को काटने के लिए आगे बढ़ती हैं, उसी तरह एक के बाद एक नौजवानों के दल थाने की चहारदीवारी को फलाँगते हुए अहाते के अन्दर कूद पड़े और नारे लगाने लगे :

अंग्रेज सरकार, मुर्दाबाद।

आजाद सरकार, जिन्दाबाद।

करीब डेढ़-दो सौ नौजवान भीतर पहुँच गए थे। शेष विशाल भीड़ बाहर खड़ी थी। बाहर, भीतर दोनों तरफ नारे लग रहे थे। दोनों जगहों के नारों में तालमेल नहीं था, लेकिन उनकी आवाजें आकाश, पेड़-पौधों और थाने की इमारत को कँपकँपा रही थीं। अहाता कोई बड़ा नहीं था। उसमें दाहिनी तरफ एक स्थान तार से घेरकर बगीचा बना दिया गया था। बीच सहन में एक पक्का कुआँ था और कुछ पेड़ भी थे। और बाईं तरफ चहारदीवारी से सटाकर कुछ टिन के करकट रखे हुए थे छाने-छवाने के लिए। इस बीच अहाते के कुछ नौजवान चहारदीवारी के फाटक, इमारत के बन्द कमरे और बगीचे के टट्टर को तोड़ने की कोशिश करने लगे। तभी थानेदार अपनी ही जगह उछत, तपड़कर बोला :

"खबरदार ! तोड़-फोड़ बन्द करके दो मिनट में बाहर चले जाओ, नहीं तो गोली मार दी जाएगी।"

इस पर नौजवान और भी उत्तेजित हो गए और मुट्ठी बँधे हाथ ऊपर लहराते हुए चुनौती-भरे

मारे लगाने लगे :

थानेदार होश में आओ, चौरीचौरा याद करो। थानेदार नीचे उतरो, चौरीचौरा याद करो। हम अहिंसा के अनुयायी, पुलिस हमारे भाई-भाई। आजाद सरकार, जिन्दाबाद।

"फायर !" अचानक धानेदार ने तड़पकर अपने सिपाहियों को आदेश दे दिया। उसकी क्रूर आवाज नारों को भी चीरती हुई और हवा में लकीर बनाती हुई गूंज उठी। और उसी के साथ सिपाहियों की तनी बन्दूकों से गोलियाँ तड़-तड़ छूटने लगीं।

आगे बढ़ते हुए नौजवानों की भीड़ सहम गई, क्योंकि हर संभावना का स्पष्ट ज्ञान होने पर भी उन्हें उम्मीद नहीं थी कि इतनी जल्दी में यह सब हो जाएगा। सभी सोचते थे कि जैसे वाँसडीह तहसील मुख्यालय, सहतवार तथा अन्य थानों ने आत्म-समर्पण कर दिए थे, यहाँ भी वैसा ही होगा। भारतीय स्वातन्त्र्य जन आन्दोलन में सशस्त्र कार्रवाई में विश्वास करनेवाले क्रान्तिकारियों के कुछ साधारण प्रयासों को छोड़कर आमने-सामने बन्दूकों से लड़ाई की न कोई परम्परा थी और न ही इच्छा, फिर उसकी तैयारी का कोई प्रश्न ही नहीं। भारतीय क्रान्तिकारियों को पिस्तौल आदि हथियार प्राप्त करने में कितनी कठिनाइयाँ हुई थीं। ये कोशिशें कुछ बहादुर नौजवानों तक सीमित थीं और उनको व्यापक जन समाज का समर्थन प्राप्त नहीं था, इसी वजह से भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को क्रान्तिकारियों के सम्बन्ध में जनता की गलतफहमियाँ दूर करने के लिए असेम्बली बमकांड को अन्जाम देना पड़ा। परन्तु, महात्मा गांधी के आने के बाद स्वातन्त्र्य आन्दोलन जनता में तेजी से फैला, उसकी व्यापकता के समक्ष सशस्त्र क्रान्ति की अवधारणा अप्रासंगिक होती गई। निश्चय ही ऐसे दल थे और उसके बहादुर सदस्य भी, जो सदा पिस्तौल बन्दूक की फिराक में रहते, उसके लिए डकैती डालकर धन की व्यवस्था करते और अन्ततः उससे इतने बड़े देश की जनता के लिए कितने हथियार खरीदे जाते, इसकी कल्पना की जा सकती है।

दयाशंकर एक ऐसे ही क्रान्तिकारी दल का कर्मठ सदस्य था, जो सदा सशस्त्र क्रान्ति में विश्वास 'करता और कांग्रेस तथा अन्य दलों की आलोचना करता। बलिया में उसका दल बहुत छोटा था और हथियार के नाम पर सिर्फ उसी के पास एक पिस्तौल थी। जब 'भारत छोड़ो' आन्दोलन शुरू हुआ तो उस समय भी उसका दल सशस्त्र क्रान्ति का ही स्वप्न देख रहा था। संघटन तो प्रभावहीन या ही, हथियार भी कुछ नहीं थे पास में, इसलिए उसके दल के सदस्यों ने उस समय एक साधारण कोटि के बनिया के घर में डाका डाल दिया, जिससे कुछ रुपए और गहने मिले।

धन अधिक नहीं था, और उससे जल्दी कोई हथियार भी नहीं मिल सका, उसके लिए प्रयास जरूर हो रहा था, लेकिन कोई सफलता मिलने के पहले तेजी से आन्दोलन फैल गया जिस पर सशस्त्र क्रान्ति के सिद्धान्तों का कोई असर नहीं था। बाध्य होकर दयाशंकर और उसके कुछ साथी बाद में कुछ जन-

प्रदर्शनों में शामिल हुए इस उम्मीद में कि जब नपुंसक अहिंसा असफल हो जाएगी तो हिंसात्मक तरीकों से हस्तक्षेप करके हार को विजय में परिवर्तित कर देंगे। इस समय उसकी जेब में वही पिस्तौल थी, जो कुछ समय पहले उसे प्राप्त हुई थी और हमेशा उसके पास रहती थी।

. अप्रत्याशित गोली वर्षा होते ही उन्हें महसूस हुआ पहली बार कि वे निहत्थे हैं। उनमें से दो-चार नौजवान पीछे मुड़कर भागे और दीवार फलाँगकर उस पार निकल गए। बाहर भी बड़ा जुलूस सहसा यथम गया और किसी की अहाते के भीतर जाने की हिम्मत नहीं हुई। जो लोग प्रतिबद्ध नहीं थे

और तमाशबीन की हैसियत से यहाँ चले आए थे वे छूटने लगे। लेकिन प्रारम्भिक मय के बाद, एक गांधी टोपीधारी पुराने कांग्रेसी ने जोश से तमतमाएं चेहरे को जैसे और ऊँया करते हुए चिल्लाकर कहा :

"वीरो, देशभक्तो ! इस थानेदार ने अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों में हमें फंसाकर बड़ा धोखा दिया है। हम अहिंसा के पुजारी हैं, लेकिन कायर नहीं हैं। हम खड़ा होकर सिर्फ मरने नहीं आए हैं। व्यक्तिगत रूप से हम किसी के दुश्मन नहीं हैं, मगर हम विदेशी शासन को समाप्त करने आए हैं, इसलिए इस थाने को ध्वस्त करके इस थानेदार को गिरफ्तार करना जरूरी हो गया है। आपमें से कुछ लोग गाँवों में जाकर कहिए कि जो भी हथियार मिले, लेकर चले आएँ। यह निहत्यों पर गोली चलाकर अपने को बड़ा बहादुर समझता है, हम इस हुकूमत के अन्तिम किले की ईंट से ईंट बजा देंगे।"

भीतर अहाते में कुछ लोगों को गोली लग चुकी थी। पैर में, हाथ में और एक व्यक्ति की गर्दन में-तीनों ही नीचे गिर गए। लोग एक जगह इकट्ठे होकर लहर की तरह आगे बढ़ने की कोशिश करते, लेकिन गोलियों की बौछार उनका बढ़ाव रोक देती। तब ये नारे लगाने लगते और आगे बढ़ते लेकिन फिर उन्हें पीछे हटना पड़ता या बचाव के लिए इधर-उधर बिखरना पड़ता। और कई लोग धराशायी हो गए थे।

लेकिन लोगों का जोश कम नहीं हुआ, बल्कि और बढ़ गया। बीच-बीच में मौका मिलने पर जोर-जोर से नारे लगाते। सहसा अहाते के भीतर दयाशंकर 'हूँ' की आवाज के साथ गला फाड़कर हुंकार कर उठा, जैसे धुधुका बजाकर रण में आगे बढ़ने के लिए ललकारा जा रहा हो। इसके बाद उसने दौड़कर टिन का एक करकट उठा लिया और उसे ढाल बनाकर आगे बढ़ते हुए चिल्ला पड़ा, "करवट लेकर आगे बढ़ते हुए दौड़ो... चुप कर दो उनकी बन्दूक की आवाजें...मोड़कर तोड़ दो उनके हाथ !"

उनकी देखा-देखी कुछ और नौजवानों ने दौड़कर करकट ले लिए, जिनमें नीलेश, नफीस और राममूरत भी थे। राममूरत शारीरिक रूप से दुर्बल था, करकट उठा तो लिया उसने, लेकिन बहुत कठिनाई से वह आगे बढ़ पा रहा था, इसलिए पिछड़ गया। करकट तो अधिक नहीं थे, इसलिए कुछ ही नौजवान उसे लेकर आगे बढ़ रहे थे, लेकिन यह इतना आसान नहीं था, क्योंकि छत पर से कई बन्दूकें एक साथ आग उगल रही थीं। ये पैंतरा बदल-बदलकर दाहा की तरह हिलते हुए आगे बढ़ने की कोशिश कर रहे थे। वे

बीच-बीच में 'बढ़ चलो वीरो,' 'चढ़ चलो वीरो,' 'देश की कसम है वीरो,' हाँफ-हाँफकर बोलते जाते थे, जैसे ठेले पर बोरों का भारी बोझ ले जानेवाले मोटिया-मजूर बोलते जाते हैं। उनके पीछे निहत्थे भी हुँकारते-ललकारते चल रहे थे, जिनमें से कई गोली खाकर नीचे लुढ़क गए।

"अरे कायरो ! विदेशी हुकूमत के पिठुओ! देश के गद्दारो ! निहत्थी जनता पर गोलियाँ बरसा रहे हो, शर्म आती नहीं तुम्हें? रहो बताता हूँ मैं तुम्हें..." इन शब्दों के साथ पुलिस को ललकारते हुए दयाशंकर खड़ा हो गया। उसने बाएँ हाथ से टिन का करकट सँभालते हुए दाहिने हाथ से पिस्तौल निकाल ली। लेकिन ललकार के कारण थानेदार की उसकी तरफ नजर चली गई और उसने सिपाहियों से कहा, "उसको फायर करो... वह जो चिल्ला रहा है!" और दयाशंकर अपनी पिस्तौल से कुछ कर पाता, उसके पहले ही एक गोली करकट छेदकर उसके पेट में घुस गई और

यह एक कराह के साथ नीचे गिर गया। करकट हाथ से छूटकर दूसरी तरफ । "अरे, दयाशंकर भाई..." उसके पीछे चलनेवाला नफीस चिल्लाया।

दयाशंकर छटपटा रहा था, किसी तरह लड़खड़ाती आवाज में कहा उसने, "मेरी फिकर... न.. कऽऽरो... आऽऽगे...।" वह बेहोश हो गया।

"करकट ठीक नहीं है। उसे फेंक दो। लोग निशाना बन रहे हैं आसानी से..." कोई चिल्लाया पीछे से। "एक साथ मिलकर टूट पड़ी..." दूसरी जोशीली आवाज।

"अरे गद्दारो !" एक फटी आवाज में चिंघाड़ा।

सबने करकट फेंक दिए और ईंट-पत्थर जो भी मिले, उन्हें उठा-उठाकर पुलिस की तरफ फेंकने लगे। बहत-से लोगों ने पेडों की आड़ से मोर्चा संभाल लिया। अहाते के बाहर से भी ईंट-पत्थर फेंके जा रहे थे। अनेक लोग मारे गए थे और उससे अधिक घायल होकर पड़े कराह रहे थे या अचेत पड़े थे। अहाते के भीतर हर जगह खून-ही-खून। कहीं-कहीं एक का खून दूसरे के खून से मिल गया था और कीचड़-सा हो गया था।

कुछ देर तक इसी तरह लड़ाई चलती रही। ईंट-पत्थर भी अहाते में अधिक नहीं थे। कुछ लोगों ने दौड़कर बगीचे का टटर तोड़ दिया और उसके भीतर जो भी ढेले आदि मिले, उन्हें लाकर पुलिस को निशाना बनाने लगे। लेकिन इस कार्य में भी पहले जैसी तेजी नहीं रह गई थी। गोली वर्षा भी रुक-रुककर ही हो रही थी। एक तो डर कारतूस जल्दी खत्म होने का ही था। फिर तेज गोली वर्षा का यांछित परिणाम मिल रहा था और देशभक्तों की संख्या और शक्ति में कुछ कमी आ गई थी। सबसे जुझारू लोगों में अनेक शहीद हो गए थे-ऐसे साहसी नौजवान, जिन पर राष्ट्र हमेशा गर्व करेगा।

लेकिन जो बचे थे, वे हार मानने को तैयार नहीं थे। वे डटे हुए थे। उनकी चुनौती कायम थी। कुछ देर बाद ही, उनमें से चार-पाँच नौजवान झुककर थाने के पीछे उस जगह पर जा पहुँचे, जहाँ थानेदार का रिहाइशी क्वार्टर थाने की मुख्य इमारत के एकदम पास था। क्वार्टर की खिड़की के ठीक नीचे उनमें से दो सबसे तगड़े नौजवान एक-दूसरे से सटकर आगे इस तरह झुक गए कि दोनों की पीठ मिलकर एक चबूतरा बन गई। तत्पश्चात तीसरा नौजवान अकेले उस चबूतरे पर पहुँचकर उसी तरह आगे झुक गया। अन्त में चौथा नौजवान पहले चबूतरे से होकर दूसरे पर खड़ा हो गया। अब उसके लिए खिड़की पर चढ़कर क्वार्टर की छत पर पहुँचना आसान था। और वह फुर्ती से इस छत से थाने की छत पर कूद गया।

कुछ क्षण रुककर अपनी हँफनी को रोकने की कोशिश की। उसी बीच उसने अपनी कुर्ते की जेब से तिरंगा झंडा निकाल लिया और आगे की तरफ झंडा लहराते हुए दौड़ा।

उस जगह से सिपाही कुछ दूरी पर खड़े थे, लेकिन धम-धम की आवाज से सिपाहियों का ध्यान उधर चला गया। "अरे, ई कवन है रे, ई त ऽ झंडा फहरावत बा ऽ" यह कहकर एक सिपाही दौड़ा। तब तक वह नौजवान छत के किनारे खड़े होकर हाथ से झंडा लहराते हुए नीचे साथियों को सम्बोधित करते हुए बोला :

"बहादुर साथियो ! हमारा प्यारा तिरंगा यह लहरा रहा है। तुम सभी पीछे से ऊपर चढ़ जाओ...

"इन्कलाब, जिन्दावाद।

"आजाद भारत अमर रहे।"

"अरे, चुपचाप झंडवा दे दऽ, नाहीं तऽ गोलियों से छलनी करि देइब..."

वह नौजवान बन्दूक ताने आगे बढ़ते हुए सिपाही से हाथ में झंडा लिए ही लिपट गया। फिर उसने सिपाही के हाथ से बन्दूक छीनकर फेंक दी। दोनों में कुश्ती होने लगी लेकिन जल्दी ही नौजवान उसे पटककर उसकी छाती पर चढ़ बैठा। मगर दूसरा सिपाही भी पीछे-पीछे आया था और उसने संगीन से नौजवान की पीठ पर जोर से प्रहार किया, जिसके परिणामस्वरूप वह लुढ़क गया। चूंकि यह संघर्ष छत के किनारे ही हो रहा था, इसलिए नौजवान का शरीर छत से नीचे जाते हुए

दीवार से टकराया. अन्त में जमीन पर गिर गया. एक आवाज के साथ जैसे पेड़ से पका आम। नौजवान चढ़ने की कोशिश कर रहा था, किन्त कोशिश उसकी अधूरी ही रह गई। उसके सिर में इसके बाद दोनों सिपाही उधर दौड पडे. जिधर से नौजवान चढ़ा था। नीचे से एक और ही गोली लगी। उसने 'भारत

माता की जै' बोलने की कोशिश की, लेकिन यह भी अधूरी रही। वह कटे वृक्ष की तरह धराशायी हो गया।

संझा का अँधेरा तेजी से उतर रहा है। इसी समय बारिश भी होने लगी। बादल तो सर्वेरे मे ही घेर-घार मचाए हुए थे। बीच-बीच में हल्की बूँदा बाँदी हई थी. लेकिन लड़ाई में कुछ मालूम ही नहीं हुआ। अब बड़ी-बड़ी बँदें तेजी से गिर रही थीं. कभी हवा के दबाव से टेढी-तिरछी और कमी सीधी।

अहाते के भीतर और बाहर पूरा क्षेत्र एक युद्धभूमि की तरह दिखाई दे रहा था। अन्य लोगों की तरह नफीस नीलेश और राममूरत भी थक गए थे। शुरू-शुरू में कितना डर लगा था उन्हें। पश्चाताप करने लगे कि क्यों यहाँ आए ? कभी यह भी खयाल आया कि किसी तरह निकल चलें यहाँ से। लेकिन उनमें यह भी विवेक था कि यह तो किसी भी हालत में सम्भव नहीं है। और उस यय के विरोध में उनमें क्रोध और उत्तेजना का उद्गम होने लगा। दयाशंकर के गिरने पर तो वे आगे बढ़-बढ़कर संघर्ष में हिस्सा लेने लगे। उन्होंने खूब नारे लगाए, लोगों को ललकारा, खूब ईंट-पत्थर चलाए दौड़-दौड़कर। वे क्रान्तिकारी जोश और गुस्से तथा आत्म-बलिदान की भावना से सराबोर थे, अन्य किसी बात का उन्हें होश नहीं था। उन्हें आजादी की यह लड़ाई फुटबाल और हॉकी मैचों की तरह लगने लगी, जिनमें वे जी-जान से विपक्षी टीम को पराजित करने में लग जाते।

कई बार गोलियाँ सनसनाती हुई उनके कानों के पास से निकल गई थीं। कई लोग उनके पास गोली खाकर जोर की कराह के साथ नीचे गिर पड़ते। वे कुछ क्षणों तक सहम जाते, फिर दुगुने जोश से ईंट-पत्थर चलाने लगते। यह ऐसी लड़ाई थी, जिसमें सोचने का कोई मौका नहीं था। कोई ऐसा उपाय और साधन भी नहीं, जिससे वह प्रभावशाली ढंग से हमले का जवाब दे सकें। पुलिस ने छत पर अच्छी पोजीशन ले रखी थी और वे नीचे, निहत्थे और उसके आसान निशाने पर। फिर भी वे अपने सिद्धान्तवादी नारों और आत्म-बलिदान की कूब्बत पर डटे हुए थे। कुछ ऐसे देशभक्त थे, जो उपायहीन क्रोध और जोश में, मैदान में ठीक उसके सामने आकर ललकारने लगे और उनमें से सभी लोग मारे भी गए थे।

लोग घंटों लड़ते रहे थे, जिनमें से काफी लोग हताहत हुए थे, परन्तु फिर भी आजादी हासित करने की उनकी आकांक्षा समाप्त नहीं की जा सकी। पानी तेज पड़ रहा था और हवा भी तेज। अँधेरा इतना गाढ़ा हो गया कि कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। फिर भी थाने को घेरकर लोग खड़े थे कि कोई भागने नहीं पाए।

गोलीवर्षा भी बन्द थी। थानेदार को भी विश्वास था कि काफी लोगों के हताहत होने से लोग पस्त हो गए हैं और इस अन्धकार और बारिश में किसी को कुछ करने की हिम्मत नहीं पड़ेगी। यह संभव भी नहीं था। लेकिन थानेदार को डर यह था कि अन्धाधुन्ध गोलियाँ चलाने से कारतूस की काफी कमी हो गई थी और उम्मीद के विपरीत लोग मार खाने पर भी अभी डटे हुए हैं। यदि वारिश न होती अथवा

अँधेरा न होता तो? और कल सुबह मौसम साफ होने पर जब और भी लोग आ जाएँगे तो वे कितनी देर तक गोली चला पाएँगे ?

यही नहीं, थानेदार और पुलिस के सिपाही सभी थक गए थे। गर्दन, हाथ और कमर में बेहद तकलीफ थी। भूख अलग ! सहसा थानेदार एक खयाल से घबरा गया-ऐसी परिस्थिति में, जब समूचे देश में लोग आजादी के लिए दीवाने होकर अपनी जान कुर्बान कर रहे हैं, ये साधारण पुलिस कांस्टेबुल भी बगावत करके कांग्रेसियों से न मिल जाएँ ! ऐसी मानसिक हालत में उसकी सही

सोचने-समझने की शक्ति भी चली गई। कोई सिपाही कुछ भी कहता, उसे लगता वह गुस्से में बोल रहा है। कोई उसकी तरफ देखता तो उसे मालूम होता. वह घूर रहा है। अपने को आश्वस्त करने के लिए यह बार-बार उनको तिरछी दृष्टि से देखता। अचानक चौरीचौरा सम्बन्धी नारे को याद करके तो डर के मारे उसकी कँपकँपी छूटने लगी। 'थानेदार, होश में आओ, चौरीचौरा याद करो !' बारिश से जरूर कुछ ठंडक -सी मालूम हो रही थी. लेकिन यह पसीना-पसीना हो रहा था। वह अपनी आँखों के सामने देख रहा था कि थाने में आग लगी हई है और वह, सिपाही, उसके बाल-बच्चे भीतर बन्द कर दिए गए हैं। निश्चय ही यह उसका भ्रम था. लेकिन उसकी कल्पित वास्तविकता की भयावहता मे उसे डरा हुआ गीदड बना दिया। और इसी समय उसने एक फैसले पर पहुँचते हुए सिपाहियों से कहा:

"बहादुर जवानो ! समय बहुत खराब है, मगर आपने जो हिम्मत दिखाई, जो मेहनत की है, उसकी जितनी तारीफ की जाए, कम ही है। वक्त आने दीजिए, मैं सबको इनाम दिलाऊँगा। आपने अंग्रेज सरकार को, जिसका सितारा कभी नहीं डूबता, बचा लिया है। मगर, अब कारतूस बहुत कम हैं, ऐसी हालत में यहाँ रुकना खतरे से खाली नहीं है। आप लोग वर्दी उतारकर सादी पोशाक पहन तीजिए। बचे-खुचे कारतूस ले लीजिए अपने साथ... बन्दूकें भी... और चुपचाप निकल चलिए। पानी भी कुछ धीमा हो गया है, मैं अपने घर में तैयार होने को कहता हूँ। लोग अगल-बगल घेरे हुए हैं, मगर पिष्ठवाड़ा का रास्ता ठीक है। उधर खेत हैं, लबालब पानी है, कोई सोच भी नहीं सकता कि उधर से कोई जा सकता है। बस हमारे लिए बचने का यही रास्ता है। इस थाने को उसके हाल पर छोड़कर चल देना ही मुनासिब है। बाद में, मैं एक-एक को फाँसी पर लटकवाऊँगा..."

अहाते के अन्दर से सभी आन्दोलनकारी चहारदीवारी फाँदकर बाहर चले गए थे। उनकी चिन्ता यह थी कि हताहत लोगों को कैसे हटाया जाए। घायलों को अस्पताल और अन्य डॉक्टर, वैद्य के पास पहुँचाना, शहीद साथियों को उनके कुटुम्बजनों के सुपुर्द करना। अन्दर सहन में पानी भर रहा था, यद्यपि अन्धकार में कोई चीज स्पष्ट नहीं दिखाई दे रही थी। बहुत से लोग चले गए थे अपने घरों की तरफ, सुबह ही पूरी तैयारी के साथ लौटने के घोषित संकल्प के बाद। लेकिन सैकड़ों स्वातन्त्र्य सेनानी जमे हुए थे मैदान में।

रात बीत रही थी। लोग पेड़ों के नीचे खड़े थे, फिर भी पूरी तरह भींगे हुए। कपड़े बोरे की तरह भारी। लगातार बारिश से ठंड भी लग रही थी। धीरे-धीरे बारिश कम होने लगी, और उसके साथ ही ऊपर-नीचे और चारों तरफ फैली उसकी आवाज भी जिसके बाद झींगुरों और मेंढकों के तेज स्वर उभरने लगे। लेकिन थाना ठंडा और निस्पन्द खड़ा था।

तीनों मित्र भी कुछ और लोगों के साथ नीम के एक पेड़ के नीचे विराजमान थे। भारी थकान से चूर-चूर और उदास ! और इस स्थिति में, जब करने को उनके पास कुछ नहीं था, उन्हें अचानक तेज भूख परेशान करने लगी। नीलेश को अपने घर की याद आ रही है... उसकी माँ ने दाल-भात, आलू की भुजिया तरकारी की थाली परोस दी है और वह गपा-गप खा रहा है। बरसाती पानी की किरवाइन-सी महक को फाड़कर तेज भात-दाल और सब्जी की खुशबू उसकी नाक में घुसी आ रही

नफीस का मन भी अपने गाँव में ही डोल रहा है, कीमा डालकर पकाई हुई चने की दाल और भात खाने में कितना मजा आता है। अचानक उसे अपने गाँव के मकबूल चाचा की याद आने लगी जो 'करेला' कहने पर बहुत चिढ़ते हैं। एक बार उसने हँसते हुए पूछा था, "चाचा, पाकिस्तान में तो ऐसा जायकेदार करेला नहीं मिलेगा, वहाँ जाकर क्या खाएँगे?" इस पर वह इतना बिगड़े कि नफीस को दौड़ा लिया। यह सब सोचकर नफीस हँसने लगा। "क्या बात है, नफीस

"अरे, कुछ नहीं नीलेश...।"

राममूरत पास में पड़ी एक ईट खींचकर बैठ गया। ईंट भीगी थी, लेकिन उसका शरीर भी भीगा था, इसलिए कोई खास फर्क नहीं मालूम हुआ। पास ही में पानी की एक पतली धारा किसी सोते की तरह बह रही थी। उसने अपने घुटनों के बीच में अपना मुँह छिपा लिया। सहसा उसकी मुँदी आँखों में दयाशंकर के घरवाले दिखाई देने लगे और उसके घर का वह बड़ा बरामदा भी जहाँ दयाशंकर शाम-सवेरे एक कोने में दंड-बैठक किया करता था। और तभी राममूरत को लगा कि वह रो रहा है। उसके आँसू शीघ्र ही तेज धार में बदलकर उसके गाल से होते हुए किंचित खुले मुँह में जाकर नमकीन स्वाद और शीतल वर्षा जल के मुकाबले उष्मा के बहाव का अहसास देने लगे। उसका शरीर हिल रहा था। उसने अपने को रोकने की कोशिश की, जिससे उसका रुदन और भी

तेज हो गया मुखरित हिचकियों के साथ। "क्या बात है, राममूरत ?" नीलेश ने पूछा।च ाजा थोड़ कि

"कुछ नहीं... जाड़ा..." हिचकियाँ बढ़ गईं।

नीलेश और नफीस दोनों उसके पास आकर बैठकर उसका माथा और शरीर छूकर देखने लगे कि उसे बुखार तो नहीं है।

"तुम तो रो रहे हो। घर की याद आ रही है ?"

राममूरत आत्म-नियन्त्रण की कोशिश करने लगा, फिर कुछ देर बाद किसी तरह बोला :

"दयाशंकर... भाई... जिन्दा हैं..."

"कैसे मालूम हुआ तुम्हें, राममूरत ? बार-बार दयाशंकर का खयाल आ रहा है, कलेजा धक कर जाता है, मन कहता है, यह कैसे हो सकता है। वह तो कल ही मिले थे..." नफीस की आवाज काँप रही थी।

"यहाँ गाँव में कोई छोटा-मोटा अस्पताल भी है। एक-दो डॉक्टर और वैद्य भी हैं-उधर गया था तो कुछ लोग कह रहे थे। घायलों को अस्पताल पहुँचाने और शहीदों को उनके घरवालों के सुपुर्द करने की बात कर रहे थे..."

"नीलेश भाई, रुकिए, मैं आता हूँ..." यह कहकर राममूरत पानी और बिछलहर में पैर को सँभालते और थाने की इमारत की ओर देखते चहारदीवारी के पार चला गया अहाते में। समय आधी रात से अधिक हो गया था। पानी भी बन्द। और पश्चिम की दिशा में आसमान का एक छोटा नीला टुकड़ा उभर आया। अब पछुआ हवा चल रही है मन्द-मन्द ।

आकाश से कुछ-कुछ रोशनी आ रही है, लेकिन ऐसी नहीं कि झुककर किसी को पहचान भी सकें। कुछ घायल अब भी कराह रहे थे, लेकिन उनमें पहले जैसी तेजी नहीं थी, जैसे कोई बीमार बच्चा तकलीफ से रोते-रोते सोने लगता है। वह सहसा किसी से टकराया, एक कराह निकली, फिर शान्ति। राममूरत ने झुककर देखा। वह कोई मोटा स्वातन्त्र्य सेनानी तिरछे पड़ा था और उसके सिर पर गांधी टोपी अब भी चिपकी हुई थी।

इस तरह झुक झुककर दयाशंकर को खोजते हुए वह उस रिहाइशी मकान के पास पहुँच गया, जिस पर चढ़कर वह बहादुर नौजवान झंडा फहराने के लिए थाने की छत पर कूदा था। वहाँ एक नौजवान पड़ा था, जिसकी थाने पर चढ़ने की कोशिश नाकाम हुई थी। झुक कर उसे भी देखा राममूरत ने। एक मासूम किशोर था वह, दुबला-पतला जो चित पड़ा था और जिसकी बाँहें दोनों ओर छितरी हुई थीं। राममूरत काँपने लगा। देखते-देखते यह क्या हो गया ? दयाशंकर कहाँ हैं ? फिर उसे लगा कि दयाशंकर को मामूली चोट आई है और वह होश आने पर उठकर चले गए हैं यहाँ से !

वह खुश होने की कोशिश करता हुआ घूमकर वापस जाने को उद्यत हुआ कि उसकी नजर

रिहाइशी मकान की तरफ गई। वह डर गया, क्योंकि उसका दरवाजा खुला हुआ लगा। क्या कोई बन्दूकधारी सिपाही झाँककर देख रहा है? सिपाही पहले व्यंग्य से मुस्कुराता है, फिर उसकी तरफ

बन्दूक तानता है। वह भागना चाहता है चहारदीवारी की ओर, लेकिन उसके पैर जवाब दे जाते हैं, शरीर सुन्न हो जाता है। उसके अन्दर गुस्सा उठने लगता है। हाँ, वह आजादी के लिए लड़नेवाला देश का सिपाही है। वह छाती निकालकर हुँकारते हुए चिल्लाता है :

"मारो कायर...हमारे देश की आजादी को नहीं कुचल सकते... मारो-मारो..."

उसकी आवाज तेजी से ऊपर गूँजती हुई गायब हो जाती है। वह इन्तजार कर रहा है गोली का और हवा का एक झोंका उस दरवाजे के एक पल्ले को खड़खड़ा देता है। वह अचम्भे से आँखें फाड़कर उधर देखता है। क्या वहाँ कोई भी नहीं है? यह डरते हुए दुबककर दरवाजे की तरफ बढ़ता है। यह दरवाजे के पल्लों को छूकर देखता है, फिर अन्दर घुस जाता है। वह घूम-घूमकर मकान का मुआइना करता है। जनशून्य। आँगन और बरामदे में कुछ समान बिखरे हुए। एक कमरे में ताला लगा है और दूसरे कमरे में ताला लगा तो है, पर जल्दी में बन्द नहीं हो सका है।

उसका दिल तेजी से धड़क रहा है। यह खुशी है या डर? या दोनों की टकराहट ? यह तेजी से बाहर निकलने की कोशिश करता है, लेकिन अँधेरे में यह कैसे संभव है ? वह संभलते, लुढ़कते, बचते, झुकते थाने की इमारत को टटोल आता है। कोई दरवाजा बन्द, कोई उठेंगाया हुआ। और पिछवाड़े का दरवाज तो पूरा खुला। वह जाकर दरवाजे पर खड़ा होने की कोशिश करता है। कोई डिब्बा गिरा है, जिससे उसका पैर टकराता है। वह किसी तरह अपने को सँभालता है, फिर दरवाजे के चौखट पर खड़ा होने में सफल होता है। हवा का एक शीतल झोंका मुँह पर लगता है। सामने अनन्त अंधकार, खेत में खड़ी फसल की अस्पष्ट छायाएँ, फैले बरसाती पानी की हिलोर लेती ध्वनियाँ। वह लौट चलता है, लेकिन अब उसमें धैर्य नहीं है। वह चिल्ला पड़ता है:

"अरे भाग गए कायर...।"

उसकी पतली आवाज के कई शब्द उड़कर नफीस और नीलेश के पास पहुँचे, जो फाटक पर खड़े होकर सामने अन्धकार में देखते हुए उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

"क्या हुआ राममूरत ?" नीलेश चिल्लाकर पूछता है।

कोई जवाब नहीं देता है राममूरत, बल्कि गिरते-पड़ते उनके पास जब पहुँचकर, हाँफती-हकलाती आवाज में सबकुछ बताता है तो शोर मच जाता है। लोगों का दबा हुआ आत्मविश्वास लौट आता है और क्रोध और प्रतिशोध की भावना स्प्रिंग की तरह ऊपर उछलने लगती है।

"खाक कर दो थाने को।"

"अभी दूर नहीं गया होगा... पीछा करो।"

"हर एक को गिरफ़्तार करो।" -टी मैटिक सिमर

"हम उन्हें नहीं छोड़ेंगे..."

"खून का बदला खून..."

"नहीं-नहीं, हिंसा की बात नहीं..."

"देखिए, पीछे पानी-ही-पानी है। अँधेरा भी है। इसमें कुछ हो नहीं सकता। सबसे जरूरी है घायलों और शहीदों को यहाँ से ले जाना। सवेरा होने पर चार-पाँच घंटे बाकी हैं। एक दल तैयार रहे, अँधेरा फटते ही उनकी खोज में रवाना हो जाए..."

"लकड़ी के पटरे, चारपाई, बँसखट जो भी मिले, दौड़कर गाँव से ले आओ। और लालटेन, बैटरी भी..."

नारों के बीच में से कांग्रेस सेवा दल के कुछ स्वयंसेवक तथा अन्य क्रान्तिकारी नौजवान गाँव की तरफ छप-छप दौड़ पड़े।

हताहतों को पहचानकर होते-होते अँधेरा फटने लगा। आकाश एकदम साफ, नीला, विस्तृत, असीम जैसे रात में कुछ हुआ ही न हो। चिड़ियाँ चहकने लगीं. और उसके कुछ देर बाद भारी संख्या एकत्रित जनता थाने की इमारत को तोड़ने-फोड़ने लग गई। कुछ बुजुर्गों के मना करने पर धाने को ध्यस्त करने का काम छोड़कर सभी कागज-पत्र जलाकर ऊपर तिरंगा फहरा दिया गया। आकाश में उड़ता धुआँ इस क्षेत्र में ब्रिटिश हुकूमत के एक मजबूत किले के विनाश का सन्देश दूर-दूर तक ले जाने लगा।

कुछ लोगों के शरीर में गोलियाँ फँसी हई थीं। वे जीवित लेकिन अचेत थे और उन्हें बलिया शहर के सदर अस्पताल जल्दी ले जाने की सलाह दी गई। यह काम इतना आसान भी नहीं था। दयाशंकर भी ऐसे ही गम्भीर रूप से घायल व्यक्तियों में था।

दयाशंकर लम्बा और तगड़ा, शक्तिशाली बाँहें, छाती निकली हुई। उसकी आँखें बन्द थीं और सुन्दर रक्तहीन चेहरा अचेतावस्था में बाईं तरफ कुछ घूमा हुआ, जैसे सोया हुआ हो। गले तक उसके शरीर पर एक चादर डाल दी गई थी। सोचा यह गया कि बरसात की वजह से सड़क मार्ग ठीक नहीं है, यदि कोई व्यवस्था भी की जाए तो घायल मरीज को काफी हचका-धचका लगेगा-इसलिए गंगा नदी नजदीक होने से नाव द्वारा ले जाना उचित होगा। एक चारपाई में सिरहाने और पैताने की तरफ, दोनों ओर मजबूत दोहरी रस्सियाँ बाँधी गईं और उनके बीच एक लम्बा मजबूत बाँस फँसाकर डोली बना ली गई। इस चारपाई पर दयाशंकर को लेटा दिया गया।

जब वे चले तो सवेरा होने में आधा घंटा का समय बाकी था। साथ में चार और शिक्षित नवयुवक चले, जो दूसरे गाँव-ज्वार के होते हुए भी इलाहाबाद में यूनिवर्सिटी और कॉलेजों में पढ़ते थे। ये नौजवान कुछ और लोगों के साथ रात-भर हताहतों को ढोते रहे और उन्होंने जिद्द करके बुरी तरह से भीगे नफीस, राममूरत और नीलेश को दूसरे कपड़े धोती-कुर्ता-पहनने को दिए, उनके हाथ-पैर धुलाए, बार-बार मना करने पर भी जबरदस्ती बाजड़े का तिलवा और ठेकुए खिलाए और पानी पिलाया। इस संकट और त्रासदी में उनका धैर्य, परिश्रम, त्याग और स्नेह देखकर तीनों मित्रों की आँखें भर आई। नीलेश और नफीस के लिए तो कपड़े ठीक थे, परन्तु राममूरत नाटे कद का दुबला-पतला था, उसके लिए कुर्ता लबादा ही बन गया।

दयाशंकर का शरीर भारी था, इसलिए डोली को उठाना और फिसलन-भरे भीगे रास्ते में चलना आसान नहीं था। राममूरत नाटा था इसलिए उसे छोड़कर शेष नौजवान उस डोली के कहार बने। पानी, दलदल और झाड़ी-झंखाड़ से बचने के लिए कुछ घूमकर जाना पड़ा, फिर भी नदी दूर नहीं थी और तट पर पहुँचते अँधेरा छिन्न-भिन्न हो गया था और पूर्वी ललछऊँ और पश्चिमी अँधेरे क्षितिज के बीच तना था एक हल्का, नीला विशाल आकाशीय तम्बू। नाव पर चढ़ाते-चढ़ते सूरज का बड़ा लाल गोला किसी पर्दे के भीतर से उछलकर सामने आ गया, जिसकी फीकी सुनहरी आभा ने लेटाए गए दयाशंकर के मुख का स्पर्श कर लिया। एक क्षण के लिए लगा कि वह मृदु भाव से मुस्कुरा रहा हो।

"दयाशंकर भाई..." राममूरत ने भ्रमवश आगे झुककर कहा।

"नहीं राममूरत..." नीलेश ने धीमे स्वर में मना किया।

"जल्दी ले चलो..." नफीस बोला।

"अच्छा बाबूजी..." मल्लाह ने कहा।

गंगा का बहाव पूर्व दिशा की ओर है, जबकि बलिया शहर पश्चिम दिशा में। गनीमत यह है पुरुवाई चल रही है और लहरें भी ऊँची-ऊँची नहीं हैं, जो प्रातःकालीन धूप में सोने की तरह चमक रही हैं। नफीस घुटने के बीच सिर छिपाकर अपनी रुलाई को नियन्त्रित करने की कोशिश कर रहा है। वे दिन याद आ रहे हैं, जब वे दोनों सवेरे-सवेरे दौड़ते हुए कचहरी से आगे, सड़क

पर दूर-दूर तक जाकर वापस आते, यह अभ्यास करने के लिए कि यदि किसी क्रान्तिकारी कार्रवाई के बाद पुलिस पीछा करे तो ये बिना थके भागते जाएँ, भागते जाएँ। फुटबाल और हॉकी की टीमों में वे फुलबैंक के स्थान पर खेलते और दोनों ही खेलों में गेंद इस तरह उड़ाते. जैसे गुल्ली-डंडे के खेल में चम्पा मारा जाता है। दयाशंकर ने ही उसे राजनीति की ओर आकर्षित किया. यद्यपि वह बाद में

सदाशयव्रत से प्रभावित होकर कांग्रेस की तरफ चला गया और नीलेश तथा राममूरत से उसकी अधिक घनिष्ठता हो गई।

नीलेश की दृष्टि पानी पर जमी है। रात-भर जागने से उसकी आँखें लाल-लाल। थकान और सुस्ती के अलावा एक गहरी उदासी से भी मानसिक निष्क्रियता। जल पटल पर दयाशंकर का चेहरा बहा जा रहा है... कहाँ, किधर ?

सहसा वह चौंक पड़ा, लगा, दयाशंकर कुछ बोल रहा है नींद में बड़बड़ाहट की तरह। "दयाशंकर भाई...देखिए, हम हैं..." नीलेश ने गद्गद स्वर में कहा।

दयाशंकर की आँखें खुलीं, फिर बन्द हो गईं।

नफीस और राममूरत भी चैतन्य होकर उसकी तरफ झुक आए। नफीस ने कहा, "दयाशंकर... भैया, देखो, मैं नफीस हूँ। यह नीलेश और राममूरत हैं। थाना पर हमारा कब्जा हो गया है, थानेदार दुम दबाकर अपने सिपाहियों के साथ भाग गया है। थाने पर तिरंगा लहरा रहा है..."

दयाशंकर के होंठों में कुछ फरफराहट हुई। दायाँ हाथ हिला, जैसे उठाने की कोशिश कर रहा हो। लेकिन जो चील कुछ देर से जल में झपट्टा मार रही थी, अन्त में सफल हुई और अपना शिकार लेकर ऊपर उड़ गई आकाश में दूर, और दूर, सदा के लिए दूर।

45

बलिया के जिलाधीश सुरेश्वर प्रसाद बहुत परेशान हैं। उनका विश्वास डगमगा रहा है। उनके भीतर एक ऐसा अन्धकार फैल रहा है, जिसकी कल्पना भी नहीं की थी उन्होंने। क्या वह सूरज सदा के लिए अस्त होने जा रहा है, जिसकी रोशनी से वह भी दप-दप कर रहे हैं? वह अकेले घबराहट में घंटों सोचते रह जाते हैं। बीच-बीच में वह अपने को आश्वस्त करते हैं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, ऐसा कभी हुआ ही नहीं तो अब कैसे होगा ? सन् 1857 में भी लगा था... सूरज डूबा, डूबा, लेकिन राहू-केतु उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सके और उसी तेजस्विता के साथ वह चमकने लगा।

जिस दिन उनके एक अधिकारी ने गुदड़ी बाजार में गोली चलवाकर अनेक व्यक्तियों को हताहत करवा दिया, सुरेश्वर प्रसाद बहुत प्रसन्न हुए। आत्मविश्वास से छाती फूल गई। आँखों से भक-भक रोशनी निकलने लगी। सहसा उन्हें ब्रिटिश हुकूमत की अजेय शक्ति का अहसास हुआ। उन्होंने । फौरन उस अधिकारी की तरक्की कर दी और उसे एक कार पर कमिश्नरी मुख्यालय बनारस के लिए रवाना किया शीघ्रातिशीघ्र कुमुक भेजवाने की जरूरी हिदायतों के साथ। लेकिन अभी तक कुछ भी नहीं आया और न ही अधिकारी ने कोई सूचना ही भेजवाई। और ग्रामीण अंचल से जो सूचनाएँ मिल रही हैं, वे अशुभ, बेहद खतरनाक और निराशाजनक हैं। उन्हें लगा कि एक अपराजेय, विशालकाय लक्षबाह दैत्य की

एक-एक बाँह कटकर भूलठित हो गई है और अब उसकी गर्दन पर बार होनेवाला है। कैसे बचेगी वह गर्दन ?

अठारह अगस्त की बड़ी मनहूस रात है। घर में किसी को नींद नहीं आ रही है। भोजन के बाद ड्राइंग रूम में सुरेश्वर प्रसाद, उनकी पत्नी, जवान-किशोर बेटा और बेटी बैठे हैं। वे एक-दूसरे की तरफ परेशान दृष्टि से देखकर सिर झुका लेते हैं।

इन्हीं हथियारों से / 413

इस तरह कब तक चलेगा? जब ऊपर के लोग हाथ-पर-हाथ रखकर बैठे रहेंगे तो आप ही क्यों चिन्ता कर रहे हैं? आपको गुमसुम बैठे देखकर तो हमें बड़ी परेशानी हो रही है।" पत्नी के कहा।

वाहियात बात" कलक्टर सुरेश्वर प्रसाद ने गुस्से से अपनी पत्नी को देखा। "हाँ डेड इस्तीफा दे दीजिए इस नौकरी से मैं भी अपने देश की आजादी चाहती हैं। मुझे इन्दिरा गांधी बहुत अच्छी लगती हैं। माँ मर गई. पिता जेल में हैं, कैसी यहादुर हैं वे ।" बेटे ने भी अपनी बहन का समर्थन किया, "गांधीजी ने कहा है. आजादी के लिए मर मिटो।

लोग भी तुल गए हैं...।" "चुप रहो..." सुरेश्वर प्रसाद चिल्ला पड़े। फिर यह उठकर अपने बेड-रूम में जाकर लेट गए। आँखे मुदते ही उन्हें अपने व्यवहार पर पश्चाताप हुआ। उन्हें याद नहीं आता कि उन्होंने अपने बच्चों को कभी मारा-पीटा या डाँटा भी हो। आई.सी.एस. अधिकारी की सन्तान होने की वजह से उच्च प्रतिष्ठा. शान-शौकत मौन अनुशासन और आराम के माहौल में उनका लालन-पालन हुआ। अच-से-अच्छे स्कूल में पढ़ाई हई और घर पर भी ट्यूशन रखा गया। सौभाग्य से दोनों ही बो पढ़ने-लिखने में बहुत तेज और आज्ञाकारी थे और डॉट-फटकार का कोई मौका ही नहीं दिया उन्होंने। हाँ, कभी-कभी उन बच्चों पर दया जरूर आई उन्हें यह सोचकर कि साधारण वच्चों के साथ वे खेल नहीं पाते थे। शाम को वे कुछ देर तक आपस में खेलते, फिर बाहर लॉन या वरामदे में खड़े होकर बाहर की तरफ हसरत से देखते या कभी कमरे के अन्दर ही बैठकर पैर हिलाने लगते। इस समय भी दया आई उन्हें बच्चों पर... शायद वे डर गए हैं...।

लेकिन दोषी तो वही हैं। उन्होंने ही तो अपने बच्चों को दूसरे साधारण बच्चों के साथ खेलने से मना किया है। कलक्टर तो कलक्टर है, उसकी प्रतिष्ठा पर किसी सूरत में आँच नहीं आनी चाहिए। इसीलिए वे हँसी-खुशी में हल्ला-गुल्ला नहीं कर सकते। न ही जोर से हँस सकते हैं, न चिल्ला सकते हैं। वे गम्भीर रहें, कम बोलें, साधारण लोगों से मेल-जोल न बढ़ाएँ और अभी से घोर परिश्रम करें, ताकि आगे चलकर आई.सी.एस. की परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकें। लेकिन ऐसी शिक्षा, सलाह, अनुशासन और परवरिश के बावजूद ऐसे विचार उनके पास कैसे पहुँचे ? जिस पत्तत्त में खाओ, उसी में छेद करो। ऐसी बात कहने की हिम्मत कैसे हुई इनकी ? जब नौकरी छूट जाएगी तो मालूम पड़ जाएगा आटा-दाल का भाव !

यही सब सोचते-सोचते कुछ देर के लिए उन्हें झपकी आ गई...जिसमें दिखाई पड़ा कि चारों ओर धुआँ-ही-धुआँ है, जिसके बीच में उनकी साँस घुट रही है और वह छटपटा रहे हैं। वह चिल्लाने लगते हैं...कि उनकी नींद उचट जाती है। वह आँखें खोलकर, डर से कमरे की छत को देखने लगते हैं। उनका हृदय तेजी से धड़क रहा है और शरीर पसीने से लथपथ।

रात-भर ऐसा ही चलता रहा-कभी नींद और स्वप्न और कभी उचाट और दशहत। एक बार तो उन्हें बड़ा ही भयावह दृश्य दिखाई पड़ा... स्वयं उन्हें और उनके परिवारजनों को पकड़कर, आन्दोलनकारियों की एक विशाल, क्रुद्ध भीड़ के सामने लाया जाता है। जनता प्रतिशोध की माँग कर रही है। यही शख्स है जिसकी वजह से इतनी तबाही हुई है। इसी के आदेश से जनता पर जुल्म ढाए गए हैं। इसको और इसके परिवार के लोगों को सख्त-से-सख्त सजा मिलनी चाहिए। वे सभी काँप रहे हैं, पत्तों की तरह। लेकिन तभी एक लम्बा, दुबला-पतला खद्दरधारी, जिसके सिर पर गांधी टोपी है, आगे बढ़कर भीड़ से कहता है, "नहीं, हमारा मूल मन्त्र है अहिंसा। हमारा कोई दुश्मन नहीं है। इन्हें छोड़ दो..."

उनकी नींद फिर खुल जाती है। वह उठकर बैठ जाते हैं, फिर खड़े होकर टहलने लगते हैं। सवेरा होनेवाला है, खिड़की से बाहर की हवा के झोंके आकर शरीर और मन को सुख दे रहे हैं।

उनके होंठों पर स्वतः ही एक अनजान मुस्कुराहट खिल उठी है। पता नहीं कहाँ से आशा और उत्साह का कोई ज्वार उठकर उनमें अपूर्व स्फूर्ति ला देता है। उन्होंने होंठों में ही बुदबुदाकर दो-तीन बार कहा, "अहिंसा, अहिंसा...।"

किन्तु, सुबह करीब दस बजे ही पुलिस के गुप्तचरों ने सूचना दे दी कि बैरिया थाने पर आन्दोलनकारियों का अधिकार हो चुका है और पूरब तथा उत्तर की सड़कों से विशाल जुलूस चले आ रहे हैं जिला कचहरी की तरफ।

शहर के अन्दर भी भारी हंगामा हो रहा है। बात यह है कि शहर में दयाशंकर का शव आने के साथ ही यह खबर फैल गई कि बैरिया में सैकड़ों लोग शहीद हो गए हैं। स्त्रियों की चीख-चिल्लाहट और उत्तेजित लोगों के क्रोध-भरे शोरगुल के बीच फूल-मालाओं से ढके दयाशंकर के शव को अन्त्येष्टि के लिए ले जाने की तैयारी हो रही है।

इस बीच नीलेश कुछ देर के लिए अपने घर आया। आनन्दी तो कल से ही उसके लिए रो रही है। उसकी भी आँखें रात्रि जागरण और अपने दोस्त दयाशंकर के लिए रोने से ललछऊँ हो गई हैं। चेहरा उदास, स्याह और लटका हुआ, बाल बिखरे, गाल पर चोट का निशान, जो वैरिया घाने के अहाते में गिरने से लगी थी। शरीर पर भी अपना कपड़ा नहीं। खद्दर का कुर्ता मटमैला, कई सिकुड़नों से युक्त, भीगा और भारी

उसे देखकर आनन्दी जोर-जोर से रोने लगी। जीरादेई भी आँखें पोंछने लगीं। शैलजा फक चेहरा से उसे एकटक देख रही थी। वीरेश नीचे आकर खड़ा हो गया। सुरेश कई बार खिचड़ी खाकर खड़ा हो गया था, उसी ने पूछा

"कहाँ थे बड़े भैया अभी तक ? कहीं जाने के पहले बता तो देना था। मैं और मझले भैया कई जगह पूछ आए। सभी सोच रहे थे कि आपको पुलिस पकड़ ले गई है। आप लोग जाते हैं तो अम्मा जान छोड़ देती हैं...।"

"क्या बताऊँ सुरेश, मैं बैरिया चला गया था, वहाँ गोली चल गई, जिससे दयाशंकर भाई बुरी तरह घायल हो गए। हम उनको नाव से लेकर आ रहे थे कि रास्ते में उनका स्वर्गवास हो गया। आते वक्त कुछ देर के लिए पानी पड़ गया तो भीगने से कपड़ा भारी हो गया है, बदलने के लिए आया हूँ। हमारे अपने कपड़े तो कीचड़-पानी में खराब हो गए थे, वहाँ गाँव वालों ने पहनने के लिए दिए थे...।"

"आहि ए दादा... कौन लड़का है रे दयाशंकर... उसके माँ-बाप का क्या हाल होगा? आहि हे राम...।" जीरादेई छाती पीटकर रोने लगीं।

"दादी, रोइए नहीं, दयाशंकर शहीद हो गए हैं... शहीदों के लिए रोया नहीं जाता," वीरेश ने गम्भीरता से जीरादेई को देखकर कहाট সয়ে চাক ইকে নিট

सीतानाथ अपने कमरे में लेटे यह सुन रहे थे, वह धीरे-से उठकर बाहर निकल आए और बोले : "नहीं चाची, रोना-धोना नहीं, यह सब प्रभु की माया है। उन्हीं की इच्छा से इनसान जीता है और उन्हीं की इच्छा से चला जाता है। बस यही समझिए, नीलेशजी अपने मन से थोड़े गए, प्रभु उन्हें खींच ले गए। प्रभु चाहते थे कि नीलेश वहाँ जाएँ ताकि अपने दोस्त को लाएँ यहाँ। सब उन्हीं

की कृपा से हुआ है, नीलेश का कपड़ा-लत्ता दो, नहाएँ-धोएँ, कुछ नाश्ता-पानी करें..." "नहीं बाबूजी, मैं सिर्फ कपड़ा बदलने आया हूँ, बड़ा भारी हो गया है, चला नहीं जाता। अभी दाह-संस्कार के लिए घाट पर जाना है... लौटकर विस्तार से बताऊँगा..."

"अच्छा...।" सीतानाथ के मुँह से धीमी-सी आवाज निकली। वह गम्भीर रहते हुए भी कल नीलेश के लिए बेहद चिन्तित रहे और इस समय आने से परम प्रसन्न और उत्साहित. लेकिन अब फिर भय और आशंकाएँ लौट आई। कब खत्म होगा इन घटनाओं का सिलसिला ? वह हर दिन

सुबह उठकर उम्मीद करते थे कि सब ठीक हो जाएगा आज और खबर आएगी कि कचहरी खत गई है- फिर कुछ देर बाद यह सपना पानी के बुलबुले की तरह गायब हो जाता और फैल जाता वही सन्नाटा, घर में यही नून-तेल-लकड़ी की चिन्ताएँ।

रोज यह सब झेलते-झेलते उनका दिल उस भोयरे घाव की तरह दखने लगा, जो बार-बार ठोका लगने से ताजा होकर फैल जाता है। किन्तु आश्चर्य है कि आज मायूसी के समय एक गर्व का पी अनुभव हो रहा है उन्हें राख के अन्दर किसी छोटी-सी चिनगारी की तरह कि उनके अपने परिवार में यह सब हो रहा है और उनके लड़के वतन के लिए डंडा-गोली खाने को तैयार हैं, जबकि वह जिन्दगी-भर ब्रिटिश हुकूमत के पक्के भक्त रहे। बड़ा लड़का विदेशी सरकार से एक लड़ाई लड़कर आ रहा है अपने शहीद साथी के साथ-अगर उनका लडका ही शहीद हो जाता तो क्या होता? यह रोते ? नहीं नहीं. उन्होंने सिर को झटका दिया और इसके साथ ही उनके फेफड़ों में हिम्मत की हवा भरने लगी, छाती आगे निकल आई और मुख जोश-उत्साह से समतल होकर चमकने लगा।

"ठीक है, जा...हाँ भैया जाओ, अपना फर्ज करो..." इतना कहकर वह अपने कमरे में जाकर बैठ गए और बैठते ही उठकर फिर बाहर आकर अपने सुपरिचित नाटकीय आवाज में बोले: "चाची, बाबू रतनसिंह की बेटी नम्रता ने सुरेश की बीमारी के वक्त एक पते की बात कही

थी-उसके कहने का मतलब यह था कि फर्ज बहुत बड़ी चीज है, जान से भी बढ़कर। फर्ज करते समय अगरचे जान का खतरा हो तो फर्ज से मुँह मोड़कर भाग जाना चाहिए ? वतन की आजादी के लिए कुछ करना भी एक फर्ज है चाची। मृत्यु तो सिर्फ सोचने और महसूस करने की बात है चाची, उसकी ही चिन्ता की जाए तो इंसानियत का कोई बड़ा काम ही न हो।"

इतना कहकर वह फिर अपने कमरे के अन्दर चले गए, जबकि दक्षिण बरामदे में बैठी आनन्दी उनकी तरफ गुस्से से घूरती रही यह बुदबुदाते हुए कि 'यह हब-खब रहता नहीं कि क्या बोल रहे हैं, हमेशा लड़कों के लिए कुभाखा निकालते रहते हैं...'

वीरेश अतिशय जोश से भरा हुआ है कि जिस दयाशंकर को वह जानता है, जिसे वह इस शहर में न मालूम कब से देख रहा है और जो उसका आदर्श भी है, उसने देश की आजादी के लिए अपने जीवन का बलिदान कर दिया है। अपने बड़े भैया के प्रति सभी सिकुड़नें भी दूर हो गई हैं और यह स्वयं दौड़कर नीलेश के कपड़े लाता है।

"भैया, क्या मैं भी चलूँ ?"

" नहीं वीरेश, तुम यहीं बैठो, अम्मा को समझाओ... मैं अभी आता हूँ...।"

इसी बीच धीरेश दौड़कर बाहर निकल गया। उसने जल्दी-जल्दी एक-एक बात बताई थी नम्रता को। सिर्फ इसी उद्देश्य से गया था, जिसके बाद फौरन वापस घर आ गया ताकि नीलेश और घरवालों के

बीच होनेवाली कोई बात छूट न जाए। बात यह है कि कल नम्रता दो-तीन बार नीतेश का पता लेने के लिए उसके घर आई थी और उसने धीरेश से अकेले में कहा भी था कि जब नीलेश आ जाए तो वह सूचित कर दे।

कपड़े बदलकर नीलेश तेजी से बाहर निकला, लेकिन गलियारे में उससे नम्रता टकरा गई तो वह ठिठक गया। नम्रता उसे डबडबाई हुई आँखों से देख रही थी और उसने नीलेश के हाथ को स्पर्श करते हुए कहा :

"मुझे माफ करो...।"

"अरे... यह क्या मजाक है...।" नीलेश अपना हाथ पीछे खींचकर और कुछ टेढ़ा होकर उसके बगल से सर-सर बाहर निकल गया। इस तरह उपेक्षित और हतप्रभ, नम्रता का मुँह लटक गया और आँखों में आए आँसू गालों से होकर बहने लगे। जब वह पीछे घूमकर अपने घर लौटने लगी तो उसे स्वयं अपने व्यवहार पर बड़ा गुस्सा आया। परसों सुरेश की बीमारी के समय जब उसने देखा

कि सीतानाथ और आनन्दी परेशान हैं. फिर भी नीलेश ऊपर निश्चिन्त बैठा हुआ है तो उसे बड़ी निराशा हुई थी। उसे तो यह उम्मीद थी कि नीलेश ऐसे संकट में दौड़-धूप करेगा, बीमारी दूर करने के लिए प्रयास करेगा। उसके मन में विराजमान नीलेश की छवि धूमिल हई थी। परन्तु आज धीरेश से सब किस्सा मालूम हुआ तो वह अपने विचार के लिए अत्यधिक संकुचित हो गई। दरअसल वह पश्चाताप के साथ दयाशंकर के बारे में भी अपनी श्रद्धांजलि व संवेदना प्रकट करने के लिए नीलेश के पास गई थी।

नीलेश को होश नहीं था कि नम्रता की बात का कोई अर्थ निकाल सके। न यही समझ सका कि उसके मुँह से क्या निकल गया। वह तो सड़क पर तेजी से चला जा रहा था दयाशंकर के घर की तरफ। उसे अचम्भा जरूर हो रहा था कि इस समय शहर में पिछले दिनों की तरह सन्नाटा नहीं है। दरअसल उसे यह भी नहीं पता था कि शहर की जनता में बैरिया थाने के पतन और शहर के उत्तर और पूरब में विभिन्न सड़कों से विशाल जुलूस जिला मुख्यालय की तरफ बढ़े आने की सनसनीखेज खबर फैल चुकी है। आ

जिलाधीश सुरेश्वर प्रसाद की घबराहट जब काफी बढ़ गई तो उन्होंने अपने बैंगले पर ही पुलिस कप्तान तथा कुछ अन्य उच्चाधिकारियों की बैठक संकटकालीन स्थिति पर विचारार्थ बुला ली। लेकिन देर तक विचार-विमर्श के बाद भी वे किसी नतीजे पर पहुँच नहीं पाए। वे चारों ओर से घिरते जा रहे हैं, जैसे सूरज को काले बादल घेरने लगते हैं और उनके लिए कहीं भागने का भी रास्ता नहीं है। हर व्यक्ति ने अपना सुझाव दे दिया है लेकिन विभिन्न सुझाव एक-दूसरे से टकरा रहे हैं, जिनको जिलाधीश तौल रहे हैं और अन्य चुपचाप प्रतीक्षा कर रहे हैं कि अन्तिम फैसला क्या होता है। और जैसे किसी

अन्धकाराच्छन्न तहखाने में किसी अज्ञात सुरंग की रोशनी दिखाई दे जाए, वैसे ही क्षीण प्रकाश से जिलाधीश का मुख प्रदीप्त हो जाता है और होंठों पर मुस्कुराहट खिल उठती है। वह धीमी किन्तु दृढ़ आवाज में कहते हैं :

"आप लोगों के सुझाव कीमती हैं, मगर मेरा मानना है कि अब कोई कार्रवाई करना ठीक नहीं होगा। हमारे पास बहुत कम सिपाही और हथियार हैं और कमजोर कार्रवाई हमेशा ही नुकसान पहुँचाती है। इसलिए हमें कोई दूसरा तरीका सोचना चाहिए। मैंने कमिश्नरी को पत्र भेजवाया है, इसलिए कुछ ऐसा किया जाए कि जो कुछ होने जा रहा है टल जाए और हमें इन्तजार करने का मौका मिल जाए...।"

"यह कैसे हो सकता है? मेरा तो यह कहना है कि आगे बढ़कर हम गोली चला दें तो जूता-चप्पल हाथ में लेकर या छोड़कर ये लोग भाग चलेंगे। गीदड़ हैं ये लोग, जोश में आए तो चल दिए ये लोग निहत्थे। हाँ, जब वे नजदीक पहुँच जाएँगे और सारी भीड़ इकट्ठी हो जाएगी तो सँभालना मुश्किल होगा...।"

जिलाधीश ने पुलिस कप्तान के कथन का अपने ढंग से प्रतिवाद किया, "इस बात में वजन तो है, मगर इसे कुछ दूसरे नजरिए से भी देखा जाए। हिन्दुस्तान एक बड़ा देश है, जिसमें बलिया समुद्र की एक बूँद की तरह है। हिन्दुस्तान में फौज की बड़ी-बड़ी छावनियाँ हैं, हर जगह जापान से लड़ने की तैयारियाँ हो रही हैं, अगर फौज यहाँ नहीं पहुँच पा रही है तो उसके कुछ कारण हो सकते हैं। इसलिए इस समय धीरज से काम लेने और इन्तजार करने की जरूरत है। यह तो तय है कि यहाँ भीड़ आ रही है, हर तरफ से आ रही है, हमारी हालत यही हो सकती है, जो बाँसडीह की हुई, सहतवार की हुई, वैरिया की हुई। मैं चाहता हूँ कि ऐसा हादसा यहाँ न हो और भीड़ भी मान जाए..."

तिरछी दृष्टि से देखा "वाह, कमाल है ! ऐसा भी कहीं हो सकता है?" पुलिस कप्तान ने असहमति की नाराज

"कुछ तो करना होगा, जिससे कुछ समय मिल जाए और इस कचहरी और दफ्तर का कोई नुकसान न हो। यह सोचना सही नहीं है कि वे गीदड हैं। ये आजादी के लिए लड़ रहे हैं और अपनी जान कर्बान भी कर रहे हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि वे अहिंसा और सच्चाई को माननेवाले हैं इसी वजह से हमारा एक आदमी भी मारा नहीं गया है। इस समय हम भी अहिंसा पर चलेंगे, उसे के हथियार से हम उनसे लड़ेंगे..."

"यह और भी खतरनाक होगा।" पुलिस कप्तान ने नाराजी से कहा। "हम उनकी अहिंसा और सच्चाई का इस्तेमाल, हुकूमत को बचाने और उसकी मलाई के लिए करेंगे...।"

हर दस या पन्द्रह मिनट पर चिन्ताजनक सूचनाएँ आ रही थीं। बलिया कचहरी तक आनेवाली हर सड़क और गली बड़े-बड़े जुलूसों से भरी थी. जैसे बाढ़ आने पर नदी में गिरनेवाले नाले उल्टे बहने

लगते हैं। दो-चार सौ लोग नहीं बल्कि हजारों लोग और परी तैयारी के साथ। प्रत्येक जुलूस में आगे-आगे एक व्यक्ति तिरंगा झंडा लेकर चल रहा है और उसके पीछे दो-दो या तीन-तीन व्यक्तियों की अनगिनत कतारें। कभी राष्ट्रीय गान और कभी नारे। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उनमें सभी गांधीवादी ही हैं, मजे की संख्या उन लोगों की भी है जो अहिंसा-हिंसा के चक्कर में न पड़कर अवसर आने पर जबरदस्ती सत्ता छीन लेने को तैयार हैं। गाँवों में, खास तरह वैरिया में जो कुछ हुआ था, उससे लोग सतर्क हैं, इसलिए पीछे-पीछे कुछ लट्ठधारी भी चल रहे हैं। कुछ लोगों के पास छोटे-छोटे हथियार भी हैं, जैसे गुप्ती, कटार वगैरह, जो छिपाकर रखे गए हैं, किसी प्रोते में या कुर्ता-कमीज के नीचे टेंट में खोंसे हुए। उनमें कुछ ऐसे कल्पनाशील क्रान्तिकारी भी हैं जो छोटे-छोटे डिब्बों में मिर्चा की बुकनी लेकर चल रहे हैं और एक जुलूस में तो एक सैंपेरा भी ताया गया, जिनका सदुपयोग लड़ाई के समय दुश्मन पर छोड़कर किया जाना है।

लेकिन इन जुलूसों के नेता और प्रेरणा तत्त्व अहिंसा, सच्चाई, असहयोग और सत्याग्रह के आदर्शों पर दृढ़तापूर्वक चलनेवाले लोग ही हैं। सभी हिम्मत, धैर्य, आत्मविश्वास और उत्सर्ग की भावना से लबालब मजबूत कदम रखते आगे बढ़ रहे हैं। हाथों में जुम्बिश, मुट्ठियाँ बँधी हुई। आकाश लगभग साफ, हवा मन्द, फिर भी गर्मी, उमस और पसीना। नारों की आवाजों से वृक्षों के पक्षी उड़ गए हैं। घास चरते जानवर सिर झुकाकर चुपचाप खड़े हो गए हैं, जैसे मौन सहानुभूति प्रकट कर रहे हों। पृथ्वी जैसे डोल रही है और आकाश काँप रहा है। और स्वातन्त्र्य के एकमात्र लक्ष्य की ओर बढ़ते हुए असंख्य देशभक्त गा रहे हैं

सिर पर बंधा हुआ स्कार्फ़ बाज़ के पंख का है।

शहीदों की टोली निकली...

अनुशासित ढंग से कदमों के एक साथ उठने-गिरने की आवाज से किसी सेना के आगे बढ़ने 'का आभास होता है। पिछले दिन पानी बरसने से धूल नहीं उड़ रही है, बल्कि बीच-बीच में टूटी सड़क पर कीचड़-पानी मिल जाने पर कतार बिगड़ जाती है, किन्तु उसे पार करते ही पुनः वैसी ही बन जाती है चीटियों की तरह। सबसे आगे खद्दरधारी बुजुर्ग, उसके बाद यूनिवर्सिटी-कॉलेज और स्थानीय स्कूलों के छात्र और असंख्य किसान-मजदूर सामान्य ग्रामीणजन, जो सिर पर अँगोछा या दुपट्टा बाँधे हुए हैं पगड़ी की तरह। उनमें ऐसे-ऐसे लोग हैं, जिन्हें आज तक जुलूसों में देखा नहीं गया-लम्बे, काले, गर्मी और पसीने से चमकते हुए। चेहरे पर अनजान आश्चर्य, जोश और निश्चय के भाव। मटमैली मिरजई या कुर्ता अथवा गाढ़े की अधबँही बनियान और उटुंग धोती।

कुछ चमरीधे जूते पहने हैं और अधिसंख्य लोग नंगे पैर हैं फटी बेवाइयों के साथ। जब दूरी थी, जुलूसों की विशालता और भयावहता का, उनके क्रोध, जोश और संकल्प का अन्दाज नहीं लग पाता था, लेकिन पास आते ही सरकारी अधिकारियों के होश-हवास उड़ गए।

लगा कि किसी ज्वालामुखी के फटने से उसका लावा हर सड़क, गली-कचे और पगडंडी से बहा चला आ रहा हो। लोग अपने प्रिय नारों के साथ जिलाधीश से फौरन आत्म-समर्पण की माँग करने लगे। और जिलाधीश इसी समय जिला कांग्रेस के अध्यक्ष तथा दो अन्य प्रभावशाली कांग्रेस

पदाधिकारियों को जेल कार्यालय में बुलाकर उनसे बातचीत कर रहे थे अत्यन्त विनम्र भाव से । "सच कहता हैं, मेरे दिल में आप लोगों के लिए बड़ी इज्जत है। आपके अहिंसा उसलों की अहमियत मैं समझता हूँ, कद्र करता है। हम भी हिंसा और खून-खराबा नहीं चाहते, अमन-चैन कायम हो. यही हमारी ख्वाहिश है। कचहरी के पास एक बड़ा जुलूस आकर खड़ा है, मरने-मारने को तैयार हैं। फिर भी मैंने अपने सिपाहियों को मना कर दिया कि वे अपनी ओर से कुछ भी न करें। आप भी चाहते होंगे कि हिंसा और बदअमनी न हो, गांधीजी का आन्दोलन बदनाम न हो। मैं आपसे यह कहने आया हूँ कि आप चलकर कह दें कि लोग शान्ति से लौट जाएँ...."

जिलाधीश जब तक बोलते रहे, जिला कांग्रेस के बुजुर्ग अध्यक्ष उनको अपनी प्रखर निगाहों से देखते रहे, फिर शान से गर्दन टेढ़ी करके जवाब में बोले, "वाह जिलाधीश महोदय, आपने यह आन्दोलन शुरू होने के बहुत पहले हमें गिरफ्तार कर लिया बिना किसी अपराध के। ऊपर से हम पर अमन-चैन भंग करने और हुकूमत के विरुद्ध बगावत करने का आरोप है। जेल में आप लोग हमें हर प्रकार की तकलीफें देते हैं, खाने की, सोने की, पहनने-ओढ़ने की। एक अखबार पढ़ने को मिलता था, वह भी बन्द कर दिया गया। मुझे तो कुछ नहीं मालूम कि बाहर क्या हो रहा है। लेकिन आपकी इस बात पर हमें विश्वास ही नहीं है कि सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलनेवाले हमारे लोग किसी प्रकार की हिंसा करेंगे। यह झूठा आरोप है। हम भी आजादी के लिए लड़नेवाले सिपाही हैं, जिन्हें आपने बन्दी बना लिया है और आप मुझी से चाहते हैं कि उनके पवित्र जोश पर ठंडा पानी डालूँ और उनसे पीठ दिखाकर यहाँ से चले जाने के लिए कहूँ?" ऐसी बात नहीं है... आप चलकर देखिए कि लोग लाठी-बन्दूक लेकर आए हैं। हम तो खुद हर चीज बातचीत से सुलझा लेना चाहते हैं। आपकी तरह अहिंसा में मेरा भी विश्वास है।"

आपकी अहिंसा?" कांग्रेसाध्यक्ष ने व्यंग्यपूर्वक मुस्कुराकर कहा, "मैं बताता हूँ। हमारी अहिंसा शासकों का हृदय-परिवर्तन करके देश की आजादी प्राप्त करना चाहती है, जबकि आपकी अहिंसा मजबूरी की अहिंसा है, और उसका उद्देश्य विदेशी गुलामी को बनाए रखना है।"

"गलत समझ रहे हैं आप। मैं ब्रिटिश हुकूमत का एक मामूली प्रतिनिधि हूँ, मैं किसी को आजादी नहीं दे सकता। हिन्दुस्तान एक बड़ा मुल्क है, आजादी दिल्ली से मिलेगी, जहाँ मरकज की सरकार है। यह जंग का समय है, उसके खत्म होने के बाद आजादी मिलेगी, ऐसा मैं सोचता हूँ। मैं तो चाहता हूँ कि इस बड़े मसले को हम इस छोटे-से जिले में हल करने की कोशिश न करें।"

*"मेरी समझ में नहीं आ रहा है, जिलाधीश महोदय कि अपने कैदी पर आप अपना मन्तव्य थोपकर उसके साथ जोर-जबरदस्ती क्यों कर रहे हैं? मुझे तो स्वयं मालूम नहीं कि कांग्रेस का कार्यक्रम क्या है। आन्दोलन के लिए कांग्रेस कोई कार्यक्रम तैयार करती, उसके पहले ही गांधीजी, नेहरूजी, आजाद, पटेल

और असंख्य कांग्रेसियों की गिरफ्तार कर लिया गया। उसी के विरोध में जनता खड़ी हो गई है। कांग्रेस ने तो पहले ही अंग्रेजों से हिन्दुस्तान छोड़ देने के लिए कहा है। हमारे साथी और समस्त देशवासी अब विदेशी गुलामी वरदाश्त नहीं करेंगे। दिल्ली की बात दिल्ली में होगी और बलिया की बलिया में होनी चाहिए। और बलिया का आन्दोलन भी समूचे देश की स्वतन्त्रता लडाई का अभिन्न हिस्सा है। आप यहाँ का अपना तख्त जनता को सौंप दीजिए। हाँ. मैं अवश्य आश्वासन देता हैं कि यहाँ कोई हिंसा नहीं होगी क्योंकि हिंसा द्वारा प्राप्त आजादी हमें स्वीकार नहीं है। जिलाधीश का चेहरा स्याह होकर छोटा पड़ गया। एक तो पहले से ही बनाई गई योजना की

विफलता और विशाल, उत्तेजित भीड के संभाव्य हमले का बढ़ता हुआ भय। गर्मी तो थी, और बाहर से चपरासी कमरे की छत पर लगे पंखे की रस्सी खींच खींचकर हया भी कर रहा था फिर भी जिलाधीश के चेहरे पर पसीने की छोटी-छोटी बूँदें दिखाई देने लगीं। उन्हें विश्वास था कि योडी विनम्रता और चिकनी-चुपड़ी बातों से कांग्रेस के नेता उनका कहना मान लेंगे, लेकिन यहाँ तो उती से जवाब दिया जा रहा है। इसमें भी उम्मीद की एक क्षीण-सी रोशनी जरूर थी कि कांग्रेसाध्यस किसी भी हालत में हिंसा नहीं होने देंगे... अब मतलब साधने के लिए कुछ और झुकना पड़ेगा। यह तो जुआ है, अपना दाँव चल देने की जरूरत है। कटनीति तो तलवार की ऐसी धार है. जिस पर चले बगैर कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता।

"मैं शान्ति के लिए कुछ भी कर सकता हैं। आप ऊँचे उसूलवाले एक महान व्यक्ति हैं, आपके सामने मैं कुछ भी नहीं हैं। आपको जेल में देखकर मुझे पहले से ही बड़ा कष्ट है। अब तो मैं एक सण के लिए भी आपको अन्दर नहीं देखना चाहता। आप इसी समय से आजाद हैं। आप अब कैदी नहीं हैं। अब आप मेरी मदद कीजिए, मुझे तो कोई रास्ता नहीं सूझ रहा है। इसीलिए आपके पास आया हूँ। मैं सच कहता हूँ, आप ही की तरह में भी खून-खराबा नहीं चाहता। शान्ति से सारी

बातें तय करना चाहता हूँ..." हैं।" "मेरे अकेले के आजाद होने का कोई अर्थ नहीं है। आप हमारे साथियों में फूट डालना चाहते

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। आप अकेले रिहा नहीं होंगे, जिनको कहेंगे, वे सब रिहा कर दिए जाएँगे...।"

"हमारे सभी साथी, सभी देशभक्त नौजवान और सभी तरह के राजनीतिक कैदी आजाद होने चाहिए। वे आज से आजाद नागरिक होंगे, किसी के गुलाम नहीं। फिर आपको कबूल करना होगा कि जिला का शासन आप नहीं चला सकते, आपका हृदय परिवर्तन हो गया है और आप शुद्ध मन से यहाँ का प्रशासन जनता के सुपुर्द कर रहे हैं।"

जिलाधीश सुरेश्वर प्रसाद का चेहरा काठ की तरह दिखाई देने लगा। कांग्रेस के जिला अध्यक्ष इस सीमा तक चले जाएँगे, उन्होंने सोचा भी नहीं था। यदि यह सब कर दिया जाए तो यहाँ ब्रिटिश हुकूमत का क्या बचा रह जाएगा? क्या उनके झुकने का यह नतीजा है कि कांग्रेस के नेता इतनी दबंगई से बोल रहे हैं ? उन्होंने अपनी विनम्रता को न छोड़ते हुए भी एक दृढ़ शासक की कूटनीतिक आवाज में कहा :

"आप जो चाहते हैं, उसी के मुताबिक मैं करता हूँ। मैं सभी कैदियों को छोड़ देता हूँ जैसा आप चाहते हैं। आप जिले का शासन चलाना चाहते हैं तो शौक से चलाइए। यह जिम्मेदारी मैं आपको सौंपता हूँ। हर चीज आप सँभालिए, कानून, अमन-चैन, स्वास्थ्य, सफाई, व्यापार, सबकुछ। आपके काम में कोई दखल नहीं दिया जाएगा। हाँ, जैसे मैंने आपकी सभी बातें मान ली हैं; आप भी मेरी एक छोटी और मामूली बात मान लीजिए। रेलवे फाटक के उधर शहर में आपका पूरा कंट्रोत होगा, मगर फाटक के इधर कचहरी के छोटे-से इलाके में आप कोई दखल न दीजिए...।"

"क्या अर्थ हुआ ऐसे अधूरे कार्य का ?" कांग्रेसाध्यक्ष गम्भीर रहने की कोशिश करने पर भी अपनी हँसी रोक न सके।

सुरेश्वर प्रसाद फौरन ताड गए कि उनकी बात का अनुकूल असर हुआ है। निश्चय ही कांग्रेसाध्यक्ष इसे अपनी जीत समझ रहे थे. जबकि सबकुछ हारे हुए को जीत की प्रतीक्षा में बदत्तने का यह दाँव था। लेकिन सौ फीसदी ऐसा ही होगा. यह भी नहीं कहा जा सकता। दरअसल जिलाधीश का भी विश्वास कुछ-न-कुछ डगमगा गया था- शायद ब्रिटिश हुकूमत का अन्त ही न आ गया हो। इसलिए कहना उचित होगा कि चालाकी-भरे उनके प्रस्ताव में सिर्फ एक ही धार नहीं

है। और मन-ही-मन खुश तो यह भी हुए, लेकिन ऊपर से कुछ कठोर बनते हुए कांग्रेसाध्यक्ष की आँखों में सीधे देखते हुए उन्होंने कहा

"आप जैसे बड़े अस्तियत को मैं क्या समझा सकता है? आप सत्य, अहिंसा को माननेवाले * आप हदय परिवर्तन में विश्वास करते हैं, फिर भी आपको मुझ पर यकीन नहीं है तो में अपनी किमती ही कहूँगा। मैंने तो आप पर यकीन करके ही सबकुछ आपको दे दिया है. आपको ओडकर कोई मामुली नेता होता तो में परवाह नहीं करता और दूसरा रास्ता पकड़ता। क्या आप है कि मैं झूठ कह रहा है. मैं याद में आपको धोखा दे देगा? मैं तो कहता है कि आज से आप अपने को जिलाधीश समझिए... यया अब भी आपको मेरी बातों पर यकीन नहीं है?"

"है! क्यों नहीं है ?" कांग्रेसाध्यक्ष का चेहरा पवित्र जोश से चमकने लगा, "में महात्मा गांधी का शिष्य हूँ। मेरा विश्वास है कि हर व्यक्ति की आत्मा में ईश्वर का अंश होता है, यह आत्मा जब जागृत हो जाती है तो साधारण मनुष्य देवत्य की ऊँचाई छूने लगता है। जब हम अंग्रेजों जैसे निर्मम, कर शासकों के

हृदय-परिवर्तन में विश्वास करते हैं, तो आप पर अविश्वास करेंगे ? आप तो भारतीय हैं, इस देश की मिट्टी, हवा, पानी से आप भी बने हैं। मेरा पक्का विश्वास है कि आपका हृदय-परिवर्तन हो गया है और आप सच्चे मन से हुकूमत हमारे सुपुर्द कर रहे हैं। मैं तो आपको पक्का देशभक्त मानता हूँ, एक ईमानदार देशसेवक!"

कांग्रेसाध्यक्ष नेक, ईमानदार, त्यागी और भावुक इंसान थे। असहयोग आन्दोलन के जमाने से ही वह कांग्रेस में थे और उसकी हर लड़ाई में जेल गए। गांधीजी के नेतृत्य में चलाए जानेवाले आन्दोलनों में कूटनीति, चालबाजी, धूर्तता, येईमानी का कोई स्थान नहीं था। हर चीज सुती यी और कोई भी बात छिपाई नहीं जाती थी। जिला कांग्रेसाध्यक्ष भी सच्चाई के इन्हीं हथियारों से सदा तड़े थे, इसलिए उन्होंने जिलाधीश के आश्वासनों पर सहज विश्वास कर लिया। स्वातन्त्र्य आन्दोलन के इतिहास में एक नई बात हो रही है, यह सोचकर वह खुश थे और प्रेम, सौहार्द और उत्साह से उनका मुँह इतना फूल गया कि चालयाज जिलाधीश को उनसे नजरें मिलाने की हिम्मत नहीं हुई और वह सिर झुकाकर धीमी आवाज में बोले:

"मेरी दिक्कत भी समझ लीजिए। खैर, पहले में यह कहना चाहता हूँ कि आप जैसा सच्चा इंसान आज तक नहीं देखा। हाँ, मैं... मेरी दिक्क्त यह है कि आपसे किए गए सभी फैसले निजी हैं अभी तक। मुझे अब जाकर अपने अफसरों से बातचीत करनी पड़ेगी और उनकी भी मंजूरी लेनी पड़ेगी। मुझे सब अधिकार है और वह मुखालफत नहीं करेंगे, फिर भी उनको सब बताना और उनका साथ तेना जरूरी होगा, ताकि आगे कोई गड़बड़ी नहीं हो। हाँ, आपकी तरफ से कोई भी ऐसी-वैसी बात नहीं होनी चाहिए कि हम दोनों जिन फैसलों पर आए हैं, वे बेकार हो जाएँ। इसीलिए मैंने कहा कि आप फाटक के उधर अपनी हुकूमत चलाइए और इधर न आकर हमें कुछ दिनों का मौका वैरिए, जिससे हम हर चीज दुरुस्त कर लें, कागज-पत्र, हिसाब-किताब तैयार कर लें। आप बेफिकी से अपनी हुकूमत चलाइए। ठीक है न?"

* "ठीक है, में तो वचन दे ही चुका हूँ कि में शान्ति और व्यवस्था कर लूँगा। हमारी हुकूमत भी सुचारू रूप से चलेगी।"

कुछ ही देर में जेल का फाटक खुल गया और सभी बन्दी नारे लगाते हुए निकल आए। तब विशाल जनसमूह और पास आ गया। ऐसा लगा कि एक कगार के चारों ओर अछोर, अनन्त जन बहरा रहा है। उसी कगार पर खड़े होकर काध्यक्ष ने जनसमुद्रको सम्बोधित किया:

इस बहादुर जिले के बहादुर साथियो, सबसे पहले मैं आजादी के लिए आपको हार्दिक बधाई देता है। हमें आज से आप स्वतन्त्र है। अंग्रेजों की गलामी खत्म हो गई है। अगर आपने इतना च्छा संघर्ष न चलाया होता, महान कुर्बानियों न दी होतीं तो ये दिन देखने को न मिलते। इसी वजह

से. यहाँ की हुकूमत ने आपके सामने घुटने टेक दिए हैं, और शासन करने के अधिकार कांग्रेस को यानी आपको सौंप दिया है। यह आपकी महान उपलब्धि है, मैंने तो इसके लिए कुछ भी नहीं किया, मैं तो जेल में था

प्राप्त "मुझे आप पर गर्व है। मेरा जीवन धन्य हो गया कि आप जैसे यहादुर लोगों का नेतृत्व मुझे हुआ है। आपको रास्ता दिखानेवाला कोई नहीं था, आपको कोई विशेष कार्यक्रम नहीं दिया गया था, ऐसे समय में आपने चुनौती स्वीकार की, आप स्वयं नेता बन गए, आपने स्वयं कार्यक्रम बनाया और सूझबूझ, बहादुरी तथा अनुशासन के साथ आगे बढ़ते हुए कामयाबी हासिल की। आपके आन्दोलन में हर जाति, धर्म और वर्ग के लोगों ने भाग लिया। आपने हिन्दुस्तानियों की अटूट एकता का जो उदाहरण प्रस्तुत किया है, उसकी मिसाल दुर्लभ है। प्रशंसा की यात तो यह है कि आप गांधीजी के सिद्धान्तों पर अडिग रहे।

"तो ए भाइयो, एक बार फिर मेरी बधाई स्वीकार कीजिए। हाँ, अब आपसे सिर्फ एक अपील करूँगा। आप समझ लीजिए कि इस आजादी के साथ हम पर भारी जिम्मेदारियाँ आ गई हैं। में यह ऐलान करता हूँ कि हमारी आजाद सरकार भी सत्य, अहिंसा पर चलकर स्वावलम्बी पंचायत शासन प्रणाली लागू करेगी। अब यहाँ का आपका काम खत्म हुआ और आप शान्ति से अपने गाँव लौट जाइए। ध्यान रहे यहीं जाकर बेहद चौकसी बरतते हुए हर गाँव में आजाद पंचायतें कायम कोजिए, जो यहाँ शासन-प्रशासन, स्वास्थ्य-सफाई आदि का काम देखेगी। गरीब-दुखिया को कोई सता नहीं पाए, अपराध का कोई कर्म न होने पाए और हर जगह स्वच्छ सुशासन कायम करने की कोशिश की जाए। हमको भी यहाँ शान्ति चाहिए, जिससे हम भी सम्पूर्ण जिला प्रशासन की स्पष्ट रूप-रेखा तैयार कर सकें। उसके बाद हम हर गाँव से एक-एक प्रतिनिधि यहाँ बुलाकर विशेष संभा करेंगे, जिसमें हमारे आगामी कार्यक्रम और फैसलों की पुष्टि की जाएगी..."

"नहीं-नहीं, हम इतने से सन्तुष्ट नहीं हैं...।" विशाल भीड़ के बीच से किसी ने चिल्लाकर कहा

"ठीक है, जो लोग मुझ पर, कांग्रेस पर और गांधीजी के सत्य-अहिंसा सिद्धान्तों पर विश्वास रखते हों, ये लौट जाएँ अपने-अपने गाँव। परन्तु जो लोग कुछ अलग ढंग से सोचते हों, वे टाउन-हॉल में आ जाएँ, कुछ देर बाद यहाँ सभा होगी और यहाँ सभी शंकाओं का समाधान किया जाएगा। एक बात समझ लीजिए, हम इस समय ऐसा कुछ भी नहीं चाहते, जिससे हमारी एकता और मिली आजादी को कोई नुकसान पहुँचे। बस, टाउन हॉल मेंऱ क्रोन ए

काफी लोग कांग्रेसाध्यक्ष का आदेश पाकर अपने-अपने गाँव लौटने लगे। शेष यचे वही, जो इस समय ठोस, निर्णायक कार्रवाई चाहते थे, जिससे सरकारी मुख्यालय पर पूरी तरह कब्जा हो जाए और कचहरी पर तिरंगा झंडा लहराने लगे। इनकी भी संख्या हजारों में थी और इनमें भी अधिसंख्य लोग समाजवादी पार्टी के नौजवान, कार्यकर्ता और किसान-मजदूर थे। यह भीड़ कुछ ही देर बाद शहर के अन्दर प्रवेश करने लगी, बाढ़ के पानी की तरह। जहाँ देखो, यही

शहर के लोगों को पूरी स्थिति का पता लग चुका है। भीड़ को देखकर उनके चेहरे पर भय, आतंक और तनाव कुछ भी नहीं। हर व्यक्ति हँस-मुस्कुरा रहा है। सम्भ्रान्त घरों की पर्दानशीन औरतें भी कुछ देर के लिए बाहर निकंत और पूँघट उठाकर इधर-उधर देखतीं और भीतर चली जातीं। कामवाली मजदूरिनें निर्भय स्वतन्त्रतापूर्वक दोनों हाथ फेंकती हुई तेजी से आने-जाने लगीं। मोहल्लों के पुरुषजन बाहर गोल बाँधकर बतकुचन में मस्त। बच्चे आकाशपक्षियों की तरह दोनों हाथ के डैने फैलाकर चीखते-चिल्लाते हुए सड़कों पर दौड़-भाग रहे हैं, अथवा मुँह खोलकर सुखपूर्वक हवा पी रहे हैं। प्रत्येक घर के सामने बातों की जलेबी छन रही है। "सुना है, बाहर के भी क्रान्तिकारी आए हैं

"अरे मैं तो खुद अपने घर से चलकर वहीं गया था। अपनी आँखों से देखा कुछ नौजवान हाथ में पिस्तौल लेकर आगे बढ़ रहे हैं

सुनते हैं कांग्रेस के अध्यक्ष...

"भाई साहब, अब उन्हें जिला कलक्टर कहिए..."

"जिला कलक्टर तो यो भी कहे जाते थे...इनको आजाद जिला कलक्टर कहिए..."

"आजाद के बाद देशभक्त जोड़ दिया जाए तो मेरे खयाल में बात एकदम साफ हो जाएगी।"

ही तो आजाद देशभक्त जिला कलक्टर ने सख्त हुक्म निकाल दिया है कि कल से कचहरी, दफ्तर, स्कूत और बाजार खोल दिए जाएँ"

"अरे, जाकर देखिए न, कुछ दुकानें खुल भी गई हैं..."

"वाह, यह तो खुशखबरी है। चलिए साहब, यह तो बड़ा अच्छा काम हुआ ।"

"अरे तो, अपनी आजाद सरकार है न? न लाठी का डर न गोली का।"

"आपको मालूम होना चाहिए कि स्टेशन के पास सब्जीवाली अपनी सब्जी की टोकरी लेकर बैठ गई है।"

"मैं अभी जाकर दो सेर आलू लाकर रख देता हूँ...।"

शहर में प्रवेश करनेवाली आन्दोलनकारियों की भीड़ के आगे सदाशयव्रत अन्य स्वतन्त्र साथी कैदियों के साथ आगे-आगे चल रहे हैं। उनके चेहरे पर अन्य साथियों की तरह चमक और मुस्कुराहट नहीं है, क्योंकि जेल में उन्हें कई दिनों तक बुखार आया था, जो उत्तर तो गया है, लेकिन कमजोरी की वजह से

बदन में थरथराहट हो रही है। यह खद्दर की अपनी घोती दोहरा करके लुंगी की तरह पहने हुए हैं और उनकी चाल में भचकन है। ঠোঁট কম হাত দিত

"जै रामजी...।" अचानक एक व्यक्ति उनके पास आकर हाथ उठाकर धीमे स्वर में बोला।

"जै रामजी। आपको पहचाना नहीं, मिले होंगे कभी...।" सदाशयव्रत ने अचम्भे से उस व्यक्ति को देखा।

"आप अपने भोलाराम को भूल गए... सहतवार स्टेशन के पास कुछ दिन मेरे घर में रहे ये..." यह व्यक्ति तिरछी अर्थ-भरी दृष्टि से देखकर कुटिल भाव से मुस्कुरा रहा था।

सदाशयंव्रत ने उसे गौर से देखा... चेहरे की रेखाएँ कुछ-कुछ पहचानी-सी लगीं, फिर अचानक

जैसे अंधेरे में रोशनी जल उठी और यह पहचान गए

"तुम मरियल-यीमारिया, इतने मोटे कैसे हो गए? अनग्राहित कहाँ हैं?"

अनग्राहित तो चले गए ऊपर। कहीं पकड़ गए, लाठी-भाता खा गए। जब आप चले गए २. याँसडीह के एक हकीम की दवाई से बड़ा फायदा हुआ। येरामी ठीक हो गई, ताकत आ गई तो पुराना काम-धन्धा शुरू...।" वह हंसने लगा।

"यहीं तुम क्या करने आए हो ?" सदाशयव्रत ने गंभीर होकर उसको पूरकर देखा।

"ऐसे ही ... हमको भी कुछ झरन-सुरन मिल जाए।"

झरन-झुरंन ? क्या मतलब ?" सदाशयव्रत उसकी बात समझ नहीं पाए।

"अब छोड़ो, उसको, भोलाराम ने अपना स्यर और धीमा करके कहा, "अरे हाँ, उसको पहचाना नहीं? जब जेल से छूटकर बुजुरुग भाषण दे रहे थे न, तो एक लम्बा, काला मनई बीच में चिल्लाकर नहीं बोला था

कौन है ? में नहीं जानता

भोलाराम अपना मुँह उनके कान के पास ले जाकर फुस-फुस बोला, "अरे इतनी जल्दी भूत गए... आपकी थी न यह... किनेरी ? यही पैटमैन की खरीदी हुई मेहरारू उसका एक आशुक नहीं था, वही है। एक मामूली कुती-मजूर था, अब तो किसान-मजूर का नेता बन गया है। खूब बोलता

भाई। बुढ़ऊ तो जल्दी हैं बोल गए उनके रिश्तेदार गाईको जान से मार देना चाहते थे। हर जमीन-जायदाद क्या, मुझे उनकी एक कौड़ी भी नहीं चाहिए। मैं तो रामचरन के लिए जीती है रहे थे. जमीन-जायदाद पैसा-कौड़ी में हक माँगेगी। बडे पक्के आकमाकमाई होती. रामचरन के लिए ही तो एभाई अनी को क्या चाहिए-दो ही नगर दस्तखत कराके रिश्तेदार खुशी-खुशी चले गए, आशूक-माशूक मियाँ-बीवी बन गए...

सदाशयव्रत का मुख धीरे-धीरे सुलगती अँगीठी की तरह लाल होता गया। भोलाराम धीमे-कर्म बोल रहा था, लेकिन उसकी आवाज, टेढी मुस्कुराहट और आँखों के इशारों में जो ग्यारे और अश्लीलता थी, वह सदाशयव्रत के लिए असह्य हो गई। ऐसे गम्भीर अवसर पर ऐसी हरकी यात करने की हिम्मत कैसे हुई इसकी।

"आप यहाँ से चले जाइए..." लाल-शाल आँखों से घूरते हुए सदाशयव्रत के मुँह से किसी तरह आवाज निकली।

"क्या हुआ? जी-मन ठीक है न?" भोलाराम सकपकाकर उन्हें देखने लगा।

"जाइए अपने गाँव... जाइए...।"

"अच्छा जाता हूँ...।"

इसी समय सुरंजन शास्त्री ने, जो जेल से छूटकर साथ-ही-साथ चल रहे थे, आगे बढ़कर भोलाराम का गट्टा पकड़ डपटकर कहा, "कौन हो जी तुम ? सदाशयव्रतजी, यह शख्त कौर है, जो आपको अपनी फुस-फुस बातों से परेशान कर रहा है ?"

"नहीं छोड़ दीजिए... कोई खास बात नहीं..." सदाशयव्रत ने हाथ हिलाकर भी मना किया। सुरंजन शास्त्री ने उसे छोड़ दिया और यह इधर-उधर देखकर भीड़ में गायब हो गया। सदाशयव्रत चुपचाप चलने लगे। उनका सिर झुका हुआ था। यह अचानक क्या हो गया है, यह वीक से समझ नहीं पा नहीं पा रहे थे। अभी कुछ समय ही पहले क्या थे और अब क्या हो गए हैं वह। हो, यह तो अपने पुराने जीवन से बहुत दूर चले आए थे और किनेरी को भी लगभग भूल चुके थे। उन्हें याद आया कि किनेरी के लिए कितना दुःख सहा था उन्होंने। फिर कैसे उस पीड़ा से उबरे और आश्रम के स्वामीजी और महात्मा गांधी के विचारों से प्रभावित होकर अपने प्यार को राष्ट्रप्रेम और मानवप्रेम की तरफ मोड़ दिया। तब से उन्होंने हर स्त्री और पुरुष को सम्मान से देखा और उसके साथ सम्मान का व्यवहार किया। उनका संकल्प था कि वह किसी से कुछ नहीं लेंगे। जिस स्त्री को पूरे मन-प्राण से चाहा, वही जब नहीं मिली तो उन्हें न कोई और स्वी चाहिए और न ही सुख-ईश्वर से उनकी यही प्रार्थना थी कि इतनी नैतिक शक्ति और हिम्मत मिले उन्हें जिससे वह अपना सर्वस्य इस देश को और मानव जाति को अर्पित कर सकें।

लेकिन भोलाराम की बातों ने आज तक की उनकी उपलब्धियों को नष्ट कर दिया। पता नहीं कहाँ से एक जबरदस्त तूफान आ गया उनके अन्दर, जिसमें उनका मन एक तिनका की तरह कहाँ-कहाँ उड़ता रहा। उन दिनों का दृश्य चटक रंगों के साथ सामने उपस्थित हो गया, जैसे कत की ही घटना हो। उनका हृदय तेजी से धड़कने लगा-वह डर गए और रुआंसे हो गए। उनकी असह्य पीड़ा फिर उभर आई ताजे घाव की तरह। और सबसे विचित्र बात तो यह है कि इसी के साथ ही उस लम्बे काले व्यक्ति के प्रति ईर्ष्या और घृणा का अनुभव करने लगे, जिसकी सिर्फ एक झलक शुरू में देखी थी और जिसके प्रति प्रतिद्वन्द्विता और शत्रुता को टालने और भुलाने में उहें कई वर्ष लग गए थे। उनका जीवन एक नदी के नियरे, शान्त और स्वच्छ जल की तरह प्रयाहित था, लेकिन इसी में अब कैसे ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही हैं, जिससे तल में बैठी आकांक्षाएँ ऊपर

आकर उसको गैदला और दूषित कर रही हैं पहले महसूस हुआ था कि भोलाराम ने उनका घोर अपमान कर दिया है। एक चोर-डकैत का

उनके जैसे त्यागी-तपस्वी के साथ ऐसा व्यवहार? लेकिन बाद में उन्हें यह सोचकर काठ मार गया कि कभी तो यह भी थे और उनकी तुच्छ वासनाओं के लिए भोलाराम कहाँ तक जिम्मेदार है? क्या हर मनुष्य की तच्छ आकांक्षा जीवन के अन्त तक उसका पीछा करती है या जनकी ही बनावट ऐसी है जिसमें कोई अच्छाई टिक नहीं सकती? सोचते-सोचते उनका हर कर्म हो गया, किर भी न कोई याह मिला और न ही अन्त। उन्होंने अपनी अवांछित भावनाओं को नियन्त्रित करने की कोशिश की, यह सोचते हुए कि ये क्षणिक और अस्वाभाविक हैं, मगर वह तुच्छ वासनाओं के प्रबल चकोह में फँस गए।

दिन के करीब तीन बजे होंगे। भीड़ शहर में प्रवेश कर गई थी। जब तक लक्ष्य दूर या तो जोश और तनाव था, किन्तु लक्ष्य सिद्ध हो जाने की घोषणा के बाद उससे सहमत न होने पर भी लोग लापरवाह-से हो गए, और एक ऐसा इत्मीनान और हँसी-खुशी का माहौल बन गया, जिसमें भूख भी लग आई। जो लोग जेल से छूटे थे, वे कुछ देर के लिए अपने घर अथवा किसी रिश्तेदार या मित्र के यहाँ चले गए, इस इरादे से कि यहाँ कुछ खा-पीकर टाउन-हॉल में पहुँच जाएँगे। जुलूस के किसान-मजदूरों में कुछ लोग अपने साथ लाए भूजा को चबाने लगे। पैसेवाले कई लोग हलवाइयों की दुकानों पर पहुँचे, जिनकी संख्या तीन से अधिक नहीं थी और जो मौका का लाभ उठाते हुए जल्दी-जल्दी खोल दी गई थीं। पुराने सख्त लड्डू, पेड़ा, लकठा और बताशा को छोड़ उनके पास कुछ नहीं था, लेकिन बड़ी ही फुर्ती से आलू काटकर रसेदार सब्जी चढ़ा दी गई और पूड़ियों छनने तगीं। फिर भी अधिसंख्य लोग सुबह से ही अपने घर से रूखा-सूखा खाकर चले थे, उनके पास न पैसे थे और न ही चना-चबेना, इसलिए वे भूख मारकर धीरे-धीरे चलते हुए टाउन-हॉल पहुँचने

एक-डेढ़ घंटे याद सभा आरम्भ हुई। टाउन हॉल भर गया था और जिनको जगह नहीं मिली, वे बाहर सड़क पर खड़े हो गए। एक तख्त पर एक चादर बिछाकर मंच बना दिया गया, जिस पर कांग्रेस के

जिला अध्यक्ष और कुछ नेता बैठ गए थे। सदाशयव्रत आग्रह करने पर भी मंच पर नहीं बैठे। वह मंच के नीचे एक कोने में सिर झुकाकर खड़े थे, जैसे इसी अवस्था में सोच रहे हों। यह घर नहीं गए थे, यद्यपि उनका भतीजा सभी समाचार सुनने के बाद उन्हें खोजते-खोजते आया था। उनकी हालत भूचाल से क्षतिग्रस्त उस मकान की तरह थी, जिसमें अनेक दरारें आ गई हों और जिसके सामान दय-बिखर गए हों।

वहीं उपस्थित असंख्य साधारण लोगों के बीच में होते हुए भी सदाशयव्रत उनसे कटे हुए थे, जैसे उन्हें अलग किसी अँधेरी खाई में उल्ल्टा लटका दिया गया हो। शारीरिक हरकत तो उनकी पहले से ही सही नहीं थी। फिर भी वह भतीजा के कई बार आग्रह करने पर भी घर नहीं गए, लेकिन यह भी नहीं कहा जा सकता कि सिर्फ कर्तव्य-पालन के लिए वह यहीं आए थे। दरसअल एक अत्यन्त तुच्छ ईष्र्याभाव से नियन्त्रित होकर उन्होंने टाउन हॉल की तरफ प्रस्थान किया था। वह रामचरन को ठीक से देखना चाहते थे कि क्या बात है उस व्यक्ति में, जो प्यार के मामले में उन्हें पराजित करने के बाद यहाँ भी चुनौती देने आ पहुँचा है? कांग्रेसाध्यक्ष से क्या कहता है वह ? ऐसे साधारण व्यक्ति में कोई योग्यता है भी या नहीं? ययों पूर्व, प्यार में उपेक्षा मिलने पर, निर्मम पीड़ा का भरपूर वार स्वयं अपने ऊपर झेलकर स्वाभिमान, शान और गरिमा से पराजय को भी स्वीकार किया था उन्होंने। जिसे प्यार किया था, उसको सुख-स्वातन्त्र्य का अधिकार देते समय, एक बार भी उनके मन में अपने प्रतिद्वन्द्वी की शक्ति को अजमाने या नीचा दिखाने का खयाल नहीं आया। लेकिन इतने समय बाद और अधिक उम्र हो जाने पर अब क्या हो गया कि यह ईष्र्या-द्वेष,

और प्रतिशोध की अग्नि में भस्म हो रहे हैं। आ सो व हु च परन्तु अपनी वर्तमान स्थिति का कारण जानने के लिए तर्क-वितर्क करने की मानसिक क्षमता

भी नहीं रह गई थी उनमें। यही ऊँचाई से वह पंक में गिरकर लियंड़ गए थे और उनकी साँस घुट-घुट जा रही थी। अचानक यह चींक गए और उनके कानों में कांग्रेस जिलाध्यक्ष की आवाज जनसम्बोधन के साथ प्रवेश करने लगीश्किम

मैं अहिंसात्यक संघर्ष और ऐतिहासिक सफलता के लिए आपको फिर बधाई देने के बाद कहना चाहता हूँ कि विदेशी हुकूमत आपके सभी अवसर और अधिकार छीनकर, आपको हर तरह से विपन्न और असहाय बनाने की कोशिश करती रही हैं, फिर भी ऐसी परिस्थितियों में जब आपने संघटित होकर संघर्ष करते हुए उसको पराजित करने में सफलता प्राप्त की है तो स्वतन्त्रता के बाद सभी अवसर मिल जाने पर आप देश को कितना आगे ले जाएँगे, यह आसानी से समझा जा सकता है। में पहले ही कह चुका हूँ कि इस आजादी के साथ आपके और हमारे कंधों पर भारी जिम्मेदारियों आ गई हैं। अब आपको दिखा देना है कि संघर्ष में आप जितने जागरूक और साहसी हैं, उतने शान्ति के समय शासन-प्रशासन चलाने में सक्षम और बुद्धिमान हैं। में फिर कहता हूँ कि अपने दूसरे साथियों की तरह यह

आजादी लेकर अपने गाँव जाएँ और स्वशासन में सुशासन के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करें। हाँ, किसी भाई को मेरे सुझाव पर कुछ कहना था। मेरा अनुरोध है कि इस सभा में यह भाई यदि मौजूद हों तो खड़े हो जाएँ और निःसंकोच अपनी बात साफ-साफ कहें। अब कोई किसी का मातहत और गुलाम नहीं है, सभी बराबर हैं और आगे जो काम होगा, वह मिल-जुलकर, सभी की राय और सहमति से ।"

मंच से कुछ ही दूरी पर बैठे लोगों के बीच में से एक लम्बा और काला व्यक्ति, जिसके सिर पर एक मटमैला दुपट्टा लिपटा हुआ था, उठकर खड़ा होने के बाद, हल्की मुस्कुराहट के साथ विनम्र और स्पष्ट आवाज में बोला, "मैं ही था अध्यक्षजी, मेरा नाम रामचरन है। में किसानों-मजदूरों के बीच में काम कानेवाला मामूली कार्यकर्ता हूँ। मेरा यह कहना है कि हमें इसी समय शासन पूरी तरह अपने कब्जे में ले लेना चाहिए। उनको कुछ दिनों का समय देना ठीक नहीं है, हमारी यह अधूरी जीत खतरा पैदा कर सकती है।"

"इसका मतलब है कि इस जीत से आप सन्तुष्ट नहीं हैं। इसको आप जीत नहीं समझते, क्योंकि यह शान्ति से मिली है। यही जब हिंसा का प्रयोग करके, खून बहाने के बाद मिलती तो आप खुशं होते।"

"यह बात नहीं है, अध्यक्षजी। में हिंसा एकदम नहीं चाहता। मेरा सिर्फ यही कहना है कि बार-बार इतनी जनता इकट्ठी नहीं होगी। उन्होंने मजबूरी में कुछ अधिकार तो दे दिए हैं, पर सारी शक्ति अपने हाथों में रखी है। इस समय वे कमजोर हैं, इसी समय हमें उन पर दबाव बनाकर सभी अधिकार हाथ में ले लेना चाहिए। ऐसा न करने पर उन्हें तैयारी का मौका मिल जाएगा और जब बह ताकतवर हो जाएँगे तो कुछ करना यड़ा मुश्किल हो जाएंगा

सदाशयव्रत लगातार घूर रहे थे रामचरन को। विनम्र भाव से बोलने पर भी, उसकी आवाज में दृढ़ता और आत्मविश्वास की खनक थी। एक मामूली-सा गया-गुजरा आदमी अध्यक्ष महोदय से बकैसी ढिठाई से जयान सड़ा रहा है, जैसे विद्वान और उनसे बड़ा राजनीतिक नेता हो। उसकी हर बात; उसका चेहरा और उसकी मौजूदगी तक बरदाश्त के बाहर हो गई। द्वेष, क्रोध और प्रतिशोध की भावना तो पहले ही से थी उनमें, अब उसकी ऊँची-ऊँची लपटें उठने लगीं। यह उसकी शारीरिक शक्ति का अनुमान लगाने लगे और सहसा एक नई लपट की भाँति यह खयाल उनके दिमाग में उठा कि इस उम्र में भी यह उछलकर एक मूसा जड़ दे तो बच्चू धराशायी हो जाएँ और सारी क्रान्तिकारिता झड़कर यहीं गिर जाए

"कौन-सा तीर मार लेना चाहते हैं आप?" कांग्रेसाध्यक्ष ने व्यंग्यपूर्वक पूछा-अध्यक्षजी, क्षमा चाहता हूँ। मैं बहस नहीं करना चाहता, में तो अपना विचार रख रहा है।

आप माने या न मानें। अभी तक यहाँ की विदेशी सरकार का जो रवैया रहा है. उससे उन पर विश्वास किया जा सकता कता है? गुदड़ी बाजार में निहत्थे सोग थे, उन पर क्यों गोली चलाई गई ? बेरिया में

भी अहिंसा पर चलते हुए समझा-बुझाकर काम करना चाहते थे. वहीं भी धोखा हुआ, अन्धाधुन्ध गोलियों चलाई गई, सी सोग मर गए

मुझसे यह नःबताइए, में सब सुन चुका हूँ। आप जो कुछ भी कह रहे हैं, उससे अर्थ यही विकलता है कि सत्य-अहिंसा का मार्ग सही नहीं है। लेकिन साफ-साफ सुन लीजिए, मैं महात्मा गांधी का शिष्य हूँ। अहिंसा, सच्चाई, प्रेम-सीहार्द में मेरा दृढ़ विश्वास है। हो, दूसरों की सद्वृत्तियों पर विश्वास है मेरा। हर व्यक्ति में ईश्वर का अंश है, जिसका नाम आत्मा है। अहिंसा, सत्याग्रह द्वारा आत्या जगाई जा सकती है, फिर तो बड़ा-से-बड़ा क्रूर व्यक्ति भी देवता यन जाता है। आप यह क्यों नहीं समझना चाहते कि आप ही के अहिंसात्मक संघर्ष का नतीजा है कि जिलाधीश ने मेरे पास आजादी का प्रस्ताव रखा, में तो नहीं कहने गया उनसे ? उसने बार-बार बचन दिया है तो क्या मैं उस पर अविश्यास करूँ? जो लड़ना नहीं चाहता, उससे जबरदस्ती बजनी कसै ? आपके कहने से सिद्धान्तों की यलि देहूँ?

"में अहिंसा छोड़ने को कहीं कहता हूँ? हिंसा तो उन्हीं की तरफ से होती है। हमारे पास कौन-से हथियार हैं? कुछ लाठियों हैं तो उनसे गोलियों का मुकाबला हो सकता है? अहिंसा का यह तो मतलय नहीं कि हम विरोधी के छल-कपट को न समझें। उनके झूठ पर एतयार कर लें और सन्तुष्ट होकर बैठ जाएँ ? उनको हमला करने, हिंसा करने का और मौका दें? हम अगर यहाँ के शासन पर पूरा कब्जा कर लें तो हमारा आगे का रास्ता खुल जाएगा, हम आगे बढ़कर पास के दूसरे जिलों को आजाद कराने में अपनी मदद देंगे। अगर हम कुछ नहीं करेंगे तो यहीं सीमित रहकर बैठे रहेंगे और धोखा खाकर सबकुछ खो देंगे..."τα που τράπλε

"अच्छा, अब चुप रहिए," कांग्रेसाध्यक्ष गुस्से से ऊँची आवाज में बोले, "में समझ गया कि आप फंसाना चाहते हैं। हमारे बीच फूट डालने के अलावा और क्या कह सकते हैं इसे ? आपको मालूम होना चाहिए, इस देश में आज जो भी संघर्ष हो रहा है, वह गांधीजी और उनके उसूलों के नेतृत्व में हो रहा है। कांग्रेस के सेनानायक गांधीजी हैं और में कांग्रेस का एक सिपाही हूँ। लेकिन आप लोगों ने मुझे जिला का सेनानायक चुना है। क्या किसी सेना में परस्पर विरोधी विचार के दो सेनानायक हो सकते हैं? यदि आपको मेरा नेतृत्व स्वीकार नहीं है तो मैं एकता के लिए सहर्ष हट जाता हूँ। आप नेतृत्य संभालिए, और जैसा चाहते हैं, वैसा कीजिए।"

"नहीं, नहीं, आप न हटिए, आपके नेतृत्व में हमारा पूरा विश्वास है।" सभा के बीच से कई व्यक्ति हाथ उठाकर चिल्ला पड़ेमधाने

फिर तो जोर-जोर से नारे लगने लगे

महात्मा गांधी, जिंदाबाद।

सत्य-अहिंसा, जिन्दाबाद

आवाज़: हिंदुस्तान ज़िंदाबाद। अंग्रेज़ बेकार में भारत छोड़कर चले गए। यह सही है।

इसी समय किसी ने आकर सूचना दी कि शहर में गवर्नमेंट स्कूल के पास कुछ अफसरों के घर में लूटपाट हो रही है। তাঁর যেন হার চলনী চিরজী

अब पूछिए इन्हीं महाशय से। कहीं चले गए? यही सब तो चाहते हैं आप? इसी को क्रान्ति कहेंगे आप

रामचरन इस बीच बैठ गया था, फिर उठकर बोला वह, "यह नहीं चाहता मैं। यह हो सकता है कि ब्रिटिश हुकूमत के खात्मे के लिए जो लोग यहाँ आए हैं, वे कुछ न होते देखकर बदत्ता लेने

पर उतर आए हों। जिन्होंने लाठी-गोली चलवाई, वे अब भी आराम से सुरक्षित बैठे हैं, इससे लोग गुस्से में आ गए हों। मेरा विश्वास है, ये लुटेरे नहीं हैं। मैं जाकर लोगों को मना करता हूँ। मैं यहाँ यह भी साफ कह देना चाहता हूँ कि में आन्दोलन में फूट नहीं चाहता। हमारे सेनानायक आप ही हैं, आप जो भी कहेंगे, फैसला करेंगे, उस पर मैं चलूँगा, सभी चलेंगे।

'तो जाइए, सोगों को रोकिए, कोई भी गलत काम न हो। शान्ति-व्यवस्था कायम कीजिए। हम अब आजाद हैं और हमें आजाद नागरिक की तरह मिल-जुलकर काम करना चाहिए।"

46

किन्तु, शहर के लोग-कुछ कांग्रेसी, समाजयादी, क्रान्तिकारी, देशभक्त कार्यकर्ता एवं कुछ अन्य सामान्य जन भी क्रोध में थे। हर जगह असन्तोष था कि जिन संघर्षों और कुर्बानियों के कारण चारों ओर से क्रान्तिकारी जनसमुद्र उमड़कर आया, उसके उद्देश्य को आराम से जेल की रोटी तोड़नेवाले परम्परावादी नेताओं ने निष्फल कर दिया। उन्हीं की बजह से वे जेल से छूटे और उन्हीं को ये बेमतलब शान्ति का पाठ पढ़ाने लगे। शान्ति जब पहले नहीं तोड़ी गई तो अब क्यों ऐसा होगा ? हिंसा हुई तो किसने की? फिर, यह कोई पुराने किस्म का सत्याग्रह तो नहीं। यह जनक्रान्ति है, आँधी ही नहीं महाआँधी है, इसमें कुछ टूट-फूट तो होगी ही। पुराने के विध्वंस के बाद ही तो नए का निर्माण होगा ? क्रान्ति, अन्यायी सत्ताधारी, गद्दारों, धोखेबाजों और चापलूसों को नहीं छोड़ती। जिन लोगों ने अनेक लोगों को शहीद किया, उनको क्यों छोड़ देना चाहिए ? उन्हें क्यों नहीं दंड मिलना चाहिए? ऐसा न करना क्रान्ति के साथ धोखा होगा। क्रान्ति को बीच में रोककर लक्ष्यभ्रष्ट करना शुद्ध आत्म-समर्पण है।

चर्चाएँ गर्म होकर शीघ्र क्रियात्मक विन्दु पर पहुंच गई। कचहरी और टाउन-हॉल की सभाओं में शामिल न होने की वजह से रमाशंकर, राममूरत, नफीस, नीलेश आदि कई नौजवानों को कुछ मालूम नहीं था, परन्तु जब वे दयाशंकर के दाह-संस्कार से शहर लौटे और उन्हें सबकुछ ज्ञात हुआ तो उनकी निराशा और क्रोध का अन्त नहीं था।

रमाशंकर ने आगबबूला होकर कहा, "हमें ऐसी शान्ति स्वीकार नहीं। हम तो अहिंसक हैं ही, कहीं हमने हिंसा की है? क्या हमारी अहिंसा स्वयं मरने और विजय मिलने पर जुल्म करनेवालों को अभयदान करने के लिए है? ताकि वे फिर तैयार होकर हमें मार सकें? में समझ गया कि उस कपटी जिलाधीश ने हमारी अहिंसा को हमारी कमजोरी और निष्क्रिय सिधाई समझकर हमारे अध्यक्षजी को ऐसा पाठ पढ़ा दिया है कि उस पर विश्वास कर लिया है उन्होंने। नहीं, हम किसी को नहीं छोड़ेंगे..."

"अध्यक्षजी वचन दे चुके हैं..." नीलेश उनके दान में भुनभुनाया।

"क्या करें भाई, वह हमारे नेता हैं, उनका आदेश तो हमें मानना ही है, लेकिन मुझे अच्छा नहीं लग रहा है। बहुत-से लोग तो लौट गए हैं, फिर भी काफी लोग हैं। ये लोग गरीव तो हैं, मगर देशभक्त हैं, अपनी जान की परवाह न करके, अपने जिले की आखिरी लड़ाई लड़ने के लिए आए हैं। ये बिना लड़े हुए चले जाएँगे झूठे आश्वासन लेकर। एक योद्धा का इससे अधिक अपमान क्या हो सकता है ? हमारे लिए शर्म की बात तो यह है कि वे हमारे मेहमान हैं, हम उन्हें कुछ खिला-पिता नहीं सके। तभी से भूखे-प्यासे हैं। ए नीलेशजी..." रमाशंकर माथे पर हाथ रखकर कुछ सोचने लगे।

"जी, बताइए..."लाल सरकारी एन नि"नीलेशजी, नफीसजी, राममूरतजी, आप लोग और भी नौजवानों को ले लीजिए, और

धूम-घूमकर बाहर से आए देशभक्तों से कह दीजिए बिना खाए वे न जाएँ, तहसीली स्कूल में उनके खाने का इन्तजाम है। गोवर्धन सेठ के यहाँ बड़ी-बड़ी दरियों हैं. दूसरे सेठों के यहाँ भी हैं. मेरे यहाँ है लेकिन बड़ी नहीं है, खैर, जहाँ से मिलें ले आइए और दोहरा तिहरा करके लम्बाई में बिछा दीजिए बैठकर खाने के लिए। इन्हीं लोगों के यहाँ गैस बत्तियाँ भी मिल जाएँगी, दो-चार जलवा दीजिए। पत्तल भी मिल जाएँगे गुदड़ी बाजार में। इतना न करेंगे सोग ? हाँ, यह सब आप लोगों को करना है। और

रमाशंकर जल्दी-जल्दी सोचकर बोल रहे थे, इसलिए हॉफ गए। कई बार गहरी साँस लेकर स्थिर होने के बाद बोले, "हाँ, जो रूखा-सूखा बन सकेगा, उससे अपने मेहमानों का प्रेम और इज्जत से स्वागत करेंगे। आप लोग अपने-अपने घर में, हमारे घर में, अपने मित्रों, परिचितों के घरों में और साधारण लोगों के घरों में भी जाकर कह दीजिए कि अपने यहाँ एक सेर, दो सेर रोटी-सब्जी, पूड़ी-सब्जी, जैसा साधन और कूबत हो, बना लें। हम सेठों से भी कहेंगे कि वे अपने यहाँ हलवाई बिठाकर पूड़ी-सब्जी बनवा दें, अगर यह न हो सके तो भारत भंडार या स्टेशन के एक-दो हलवाइयों के पास आटा, आलू, घी वगैरह भेजवा दें। मुझे डर है, कुछ सेठ और धनी-मानी लोग डर के मारे मदद करने में नाकुर-नुकुर कर सकते हैं। जो भी मदद दे, उससे लेना है, किसी से जबरदस्ती नहीं। गद्दारों से बिलकुल नहीं... हाँ, सेठोंबाला काम मुझ पर छोड़ दीजिए, जाइए, जल्दी कीजिए, समय नहीं हैनिभा कि का

"इस शहर में कई अन्यायी अफसर और अंग्रेजों के चापलूस रहते हैं, उनके बारे में क्या होगा?" आसपास इकट्ठी भीड़ में से किसी ने चिल्लाकर पूछा।

"उन्हें फाँसी पर लटका देना चाहिए...".

"नहीं, ऐसी भाषा न बोलिए, यह हमारी भाषा नहीं है। हाँ, उन्हें दंड जरूर मिलेगा और अभी। उन्हें पकड़िए, लेकिन हिंसा नहीं, उनसे पूछताछ की जाएगी, उन्हें दंड मिलेगा, पहले उन पर मुकदमा चलाया जाएगा।

टाउन हॉल की सभा से जय रामचरन अपने साथियों के साथ उठकर चला गया तो सदाशयव्रत धीरे-से निकलकर उसके पीछे चल पड़े। वह अपने वश में नहीं थे और कुछ भी समझ नहीं पा रहे थे कि क्यों ऐसा कर रहे हैं। उनकी भवें सिकुड़ी थीं, आँखें सामने देखती मालूम होने पर भी पीछे देख रही थीं, और पैर न चाहते हुए भी आगे बढ़ रहे थे

आकाश लगभग साफ है और शाम की यची, फीकी धूप वृक्षों की पुलुई को छू रही है। गर्मी और उमस के पसीने में तेज पुरुवा हया राहत तो पहुँचा रही है, मगर आश्चर्य है कि सदाशयव्रत इस समय हर चीज से बेखबर कई वर्ष पहले सहतवार स्टेशन रेलवे क्यार्टरों के पास पहुँच जाते हैं, जहाँ वृद्ध प्वाइंट्समैन की पत्नी बाहर खड़ी तरह-तरह की भंगिमाओं से अपने प्रेमी को रिझा रही है। उन्हें लगता है, एक पवित्र, रहस्यमयी ज्योति उनके सामने नृत्य कर रही है। उन्हें मूर्छा-सी आने लगती है। उनके अन्दर एक चिराग जलने लगता है, जिससे निपट अन्धकार-भरा उनका हृदय आलोकित होकर एक अनजान मधुर पीड़ा से उच्छ्वसित होने लगता है और उनकी आँखें अकारण ही भर आती हैं।

ऐसा ही पहली बार महसूस हुआ था... और इतने वर्षों बाद आज ठीक वैसा ही नहीं हो रहा है उनके अन्दर ? समय, उम्र, हताशा, पश्चाताप, नवसंकल्प, राष्ट्रप्रेम-कुछ भी इस ज्योति को मिटा सका है? क्या आज भी उसमें यही तेज और ताप नहीं है, जिसमें वह जल रहे हैं? उस दिन और आज के बीच कौन-सा बदलाव आ गया है उनमें? जिन उपलब्धियों पर उन्हें गर्व है, ये क्या उन्हीं की यासनाओं के ही रूप नहीं हैं? आज जो कुछ है, यह तो व्यतीत को ही भूलने का एक कृत्रिम आवरण है, जिसे किसी ने आकर जबरदस्ती हटा दिया है और यह अपने को नग्न, आहत, मर्माहत

छटपटाते हुए देख रहे हैं।

16.00 το μ टाउन-हॉल की सभा की कार्रवाई सुनते हुए उन्हें पहली बार महसूस हुआ था कि उत्त लम्बे और काले व्यक्ति ने उन्हें पंचित और पराजित कर दिया है। जिसे उन्होंने प्यार किया, उसी के सुख का खयाल करके यह भाग आए थे। किस तरह तपड़ते रहे थे वह । और उसी तंड़पन में त्याग का

महत्त्व समझ में आया कि यदि वह स्वयं सुखी नहीं हैं तो दूसरों को तो सुखी कर सकते हैं! उनका प्रेम पवित्र और महान है, अगर उन्हें नहीं मिला तो यह दूसरों को दे तो रहे हैं। लेकिन जब वह परमं सन्तोष से बुलन्दियों की ओर सफर कर रहे थे, इस व्यक्ति ने सामने आकर उन्हें शक्तिहीन दिया है बालि की तरह। उसने ऊपर से टींग खींचकर उन्हें धराशायी कर दिया है। यह महसूस करने के लिए कि वह महान नहीं, तुच्छ, स्वार्थी और घमंडी हैं और वास्तव में उनका राष्ट्रप्रेम और मानयताप्रेम, एक पराजितः और भगोड़े व्यक्ति की शेखी और बड़बोलापन है। उन्होंने त्याग क्या किया, वह तो आज भी इच्छाओं के दास हैं और नाली के कीड़े की तरह बिलबिला रहे हैं। जबकि उसने अपने पुरुषार्थ से उन्हें हर मोर्चे पर पराजित करके सुख प्राप्त किया है, उस सुख से अपने को और प्रखर किया है और उन्हें दंडित करने आ गया है कि उनके जैसा अकुशल, अनाड़ी, अयोग्य और कुरूप, हारकर और सभी अधिकार खोकर भी क्यों अभी तक प्यार करने का दुस्साहस किए कर

उन्होंने भय और आतंक से महसूस किया कि सचमुच वह तो उसके सामने कहीं नहीं टिकते। विजेता यह यूँ ही नहीं है। उनसे लम्बा और तगड़ा है, काला होने पर भी उसकी लम्बी और खूबसूरत नाक, बड़ी-बड़ी आँखें, दृढ़ निश्चयी होंठ, फिर भी वाणी में विनम्रता, एक ऐसे व्यक्ति की, जो अपनी शक्ति को पहचानता है। उनकी विनयशीलता तो आत्महीनता को ढकने का प्रदर्शन और पाखंड है। वह अपनी घृणा को न्यायोचित सिद्ध करने के लिए ही उसको तुच्छ समझना चाहते थे उसकी हर बात में नीचता देखने या खोजने को तैयार, जबकि स्थिति इसके ठीक विपरीत है। और अब उस राजनीति में भी उनको अपदस्थ करके नीचे ढकेल दिया है उसने, जो उनका अपना क्षेत्र है, जिसमें लगातार परिश्रम और त्याग से एक प्रतिष्ठित स्थान बना लिया है उन्होंने। उसने यह भी सिद्ध कर दिया है कि उसमें नेतृत्व के सभी गुण हैं, यह अपना विचार दृढ़ता से किन्तु विनम्र शब्दों में प्रकट कर सकता है। स्वयं वह तो एक अच्छा भाषण भी नहीं दे सकते, यदि कुछ बोलेंगे भी तो स्पष्ट ढंग से अपने को अभिव्यक्त भी नहीं कर सकते और पूरी तरह असमर्थता का अहसास होने पर निष्क्रिय मौन, मुस्कुराहट एवं महानता में खो जाते हैं, जो वास्तविक संघर्ष और सार्थक, सक्रिय तर्क-वितर्क से भागने का ही प्रपंच है। उनके साना

सबसे खरायः हालत उस समय हो गई जब उन्होंने महूसस किया कि उस व्यक्ति द्वारा व्यक्त विचार और सुझाव एकदम सही, व्यावहारिक, स्पष्ट, प्रखर, नए और दूरदर्शितापूर्ण हैं। पहले तो उन्होंने अपने को समझाने की कोशिश की कि हू-ब-हू यही विचार पहले उन्हीं के दिमाग में आए थे, लेकिन शीघ्र ही अपने को बहलाने का यह खयाल लक्ष्यच्युत बाण की तरह धराशायी हो गया। तब हर बात साफ-साफ दिखाई देने लगी कि उनमें सोचने-समझने की न कोई बुद्धि है और न कोई योग्यता। अहिंसा में उनका विश्वास है जरूर, किन्तु उसके सम्बन्ध में भी कभी सोचा नहीं कि नई परिस्थितियों में उसे कैसे लागू किया जा सकता है। वह तो एक नकलची हैं, आँख मूंदकर अनुकरण करनेवाले। पिछलग्गू किस्म के आदमी हैं वे इसलिए कि उन्होंने बचपन और जवानी का बहुत समय बरबाद किया और बाद में जब समय मिला भी तो कुछ नया नहीं सीखा, अपने ढंग से सोचकर प्रखर नहीं बनाया अपने को, ताकि आगे बढ़कर लोगों को रास्ता दिखा सकें।

यह देख रहे हैं कि एक व्यक्ति ने उनका नाका-नाका बन्द कर दिया है-और कुछ क्षणों के लिए आत्महीनता से जड़ हो गए। फिर उससे निकलने की कोशिश में उनके अन्दर अनेक विस्फोट

होने भयावह और विनाशकारी। इस व्यक्ति को जीवित रहने का अधिकार कार्य है? उसे माफ कैसे किया जा सकता है ? जब उसने बरबाद कर दिया है उनको, तो उसे स्वयं बरबाद होने से क्यों बचना चाहिए? एक निहायत असफल व्यक्ति की ईर्ष्या एवं प्रतिशोध के क्रियात्मक परिणाम की व्याकुलता से भरी आँखों की हिंस्र चमक के साथ, यह उस व्यक्ति और उसके दल के पीछे-पीछे चलते गए थे, जहाँ एक डिप्टी कलक्टर के घर को लूटा जा रहा था

अधिक लोग नहीं हैं सिर्फ तीन-चार सी लोग, जिनमें असली काम करनेवाले कम ही हैं। सामानों की सुटाई हो चुकी है और बाहर खड़ी घर की भयभीत महिलाओं को गहने उतारकर देने का आदेश दिया जा रहा है।

"भोलाराम, तुम यहाँ ? किसने कहा तुम्हें आने को ? चुपचाप चले जाओ यहाँ से। हाँ, एक बात सयको बता देना चाहता हूँ, जनाना लोगों पर कोई आँच नहीं आने पाए।" रामचरन अच्छी तरह भोलाराम को पहचानता था

भीड़ में से एक नीजयान ने आगे बढ़कर गुस्से से तमतमाकर हाथ नचाते हुए कहा, "यह बदला है...दंड दिया जा रहा है। इन लोगों ने हमारे बहादुर साथियों को मार दिया है, विद्यार्थियों पर लाठी बरसाई है... इन्हें आराम से नहीं बैठने देंगे

"जिसने अन्याय किया है, करवाया है, उसे पकड़ा आपने

"वह तो पहले ही भागकर कचहरी में छिप गया है।के ভয়ে

"किसके कहने से आप लोग यह कर रहे हैं?"

"शहर के हमारे अध्यक्षजी हैं, उन्होंने हुक्म दिया है। आप कौन हैं जी बीच में टाँग अड़ानेवाले हैं

"मैं इस शहर का नहीं हूँ, गाँव का एक कार्यकर्ता हूँ। आपका ही एक भाई है, साथी हूँ। जब असली अपराधी भाग गया तो आप किससे बदला ले रहे हैं? आप नहीं जानते, में कई लोगों को जानता हूँ, जो दूसरे काम के लिए यहीं आए हैं और गलत फायदा उठा रहे हैं। जोश में, गुस्से में आपको कुछ नहीं मालूम होगा। में टाउन-हॉल की सभा से आ रहा हूँ, जिला के अध्यक्षजी ने कहलवाया है कि कोई भी गलत काम नहीं होना चाहिए, लूटपाट और हिंसा नहीं होनी चाहिए। उन्हीं के कहने से मना कर रहा

हूँ। इन स्त्री लोगों को माता-बहन समझकर, इज्जत से कचहरी पहुंचा दीजिए, आप नहीं जाएँगे तो में पहुंचवा दूँगा..."

ढोंगी! पाखंडी ! भीड़ के पास खड़े सदाशयव्रत का क्रोध से बुरा हाल हो गया। उनकी आँखें आग उगलने लगीं, नथुने फड़कने लगे। वहाँ अपनी चालबाजी से, एक विवाहित स्त्री को अपने जाल में फंसाकर हथिया लिया और यहीं नारी रक्षक बना हुआ है। टाउन-हॉल में अध्यक्षजी की आलोचना कर रहा था और यहाँ उलटिया मारकर उनका समर्थक बन गया है। पता नहीं किस उद्देश्य से आया है यहाँ ! अध्यक्षजी ठीक ही कह रहे थे कि फंसाकर आन्दोलन में फूट डाल देगा, उसे किसी गड्ढे में ढकेल देगा। दंड तो इसे मिलना ही चाहिए। यह बार-बार अगल-बगल और अपने पीछे देखने लगे, परन्तु भीड़ और आस-पास कोई भी परिचित नहीं दिखाई पड़ा

पास में यहाँ और दो अफसरों के मकान थे, लेकिन वे तो सपरिवार गायब थे, इसलिए ताले तोड़कर सूटपाट करने का सुझाव कार्यान्वित नहीं हो सका। शहर में कुछ और जगहों-अंग्रेज सरकार के भक्तों और सहायकों के घरों पर प्रयास किए गए, लेकिन कहीं भी असती व्यक्ति मिला नहीं, यस बाहर ही कुछ तोड़-फोड़ की गई या कुछ सामानों का अपहरण।

रामचरन अपने साथियों के साथ उस अफसर की बुर्कानशीन औरतों को कचहरी पहुँचाने चला गया और सदाशयव्रत वहीं खड़े रह गए। वह आगे बढ़कर उसका गला दबा देना चाहते थे, लेकिन उनके पाँचों को जैसे लकया हूँच गया। यह चिल्ला-चिल्लाकर उसे फटकारना भी चाहते थे, लेकिन

उनके मुँह से आयाज ही नहीं फटी। यह देर तक बड़े उसी दिशा में घरते रहे. जिधर रामचरन गया था। होश उन्हें तब आया, जब किसी ने उनसे पूछा

"अरे आप ? यहाँ चुपचाप क्यों खड़े हैं? मुझे बताया गया कि यहाँ लूटपाट हो गई है, औरतों की बेइज्जती भी हुई है

"रमाशंकरजी, आपके पास बन्दूक होगी? बन्दूक नहीं, पिस्तील सही..."

"क्या करेंगे आप यह सब ? आप ही की तरह में भी कांग्रेसी हूँ, सत्य-अहिंसा की ही नीति पर चलता हूँ। मुझे तो गुस्सा इसलिए आया कि जिन लोगों की वजह से जनता पर इतना जुल्म हुआ, ये लोग आराम से बैठे हैं। पर लूटपाट, हिंसा के लिए तो मैंने नहीं कहा था, बस पकड़कर ले आने के लिए कहा था, जिससे उन पर मुकदमा चलाया जा सके..."

"मैं एक आदमी का काम तमाम करना चाहता हूँ...।"

"आप? आप स्वयं अहिंसा की मूर्ति हैं, दयावान हैं, बहादुर हैं, आप करेंगे यह ? बताइए, कौन है वह ? आप हमारे आदर्श हैं, आपसे मैंने खुद बहुत कुछ सीखा है। किसी ने आपका अपमान किया है, कुछ कहां है तो बताइए...

रमाशंकर अचम्भे से आँख फाड़े सदाशयव्रत को देख रहा था, जिनकी आँखों में पागलपन का भाव था और जिन्हें होश नहीं था कि कहीं खड़े हैं और क्या कह रहे हैं।

"एक काला, लम्बा आदमी है, औरतों को लेकर यहाँ से गया है। वैसा दुष्ट और पाखंडी आदमी कोई नहीं है...उसे सख्त सजा मिलनी चाहिए...

"क्या आप रामचरन को कह रहे हैं? उसको तो मैं जानता है, रास्ते में मिला था यह। उसने तो बड़ा अच्छा काम किया है औरतों को बचाकर। यह नहीं पहुँचता तो पता नहीं क्या हो जाता। वह तो बड़ा अच्छा कार्यकर्ता है, बड़ा कर्मठ, बड़ा समझदार। हम लोगों के साथ है। एक गरीब मजदूर था, अब किसानों में काम करता है। उनका संगठन चलाता है। बाँसडीह और सहतवार में उसके संगठन ने बड़ा अच्छा काम किया। वहाँ सफलता मिली, मगर हिंसा नहीं हुई। वह दुःखी था कि आजादी की लड़ाई बीच में रोक दी गई। वह अपने साथियों के साथ उन औरतों को कचहरी में पहुंचाकर उधर से ही अपने गाँव निकल गया होगा। मैंने बहुत रोका, भोजन करके जाओ, आराम करके जाओ, मगर हँसकर बोला, अब मेरा काम नहीं है यहाँ, औरों को खिलाइए-पिलाइए।"

"चला गया ?"

"जी हाँ, निकल गया होगा कभी। इस आन्दोलन ने गरीब जनता के बीच में से कई लोगों को आगे बढ़ाया है, अनुभव दिया है, निखारा है। ये लोग राजनीति को, उसके व्यवहार को जिस गहराई से समझते हैं, यहाँ तक तो कई विद्वान भी नहीं पहुँच पाते। आप घर चलिए, थोड़ा आराम कीजिए, बहुत थक गए हैंा

"नहीं रमाशंकरजी, आप अपना काम कीजिए, मैं थोड़ा घूमूँगा, फिर घर जाऊँगा।"

सदाशयव्रत आगे बढ़ गए। शाम हो चुकी है। चारों ओर शोर, जैसे कोई मेला लगा हुआ है। चिड़ियों की चहचहाहट, पुरुषों के बोलने, पुकारने, हँसने, औरतों के चिचियाने और बच्चों के किलकारी मारने तथा रोने की आवाजों से अजीब घॉउज मॉउज हो रहा है। करीब दस दिनों के बाद जीवन लौट आया है विविध रंगों में।

क्यों जा रहे हैं सदायशव्रत गंगा-तट की ओर ? पाँव चले जा रहे हैं, भचकन के साथ। आश्चर्य है, उनके अन्दर अब ईर्ष्या-द्वेष, घृणा, क्रोध, प्रतिशोध और हिंसा के विस्फोट नहीं हो रहे हैं-यह भी अहसास उन्हें उस समय हुआ, जब वे कगार पर बैठकर धुंधलके में तरंगित होकर बहती गंगा के स्याह जल को

देखने लगे। उनके हृदय के संकुचन और कलुष का कोई भी चिह्न शेष नहीं है अब, और उसकी जगह पर एक असीम शान्ति और करुणा फैल गई है। जैसे बुरी तरह हिल-कॉपकर

होने के निकट पहुंचा कोई गयोन्नतपर्वत भूचाल के जाते ही पहले की तरह शान से खड़ा धाई दे रहा हो। न कोई असर और न कोई निशानी। क्या यह संभव है?

उन्हें अब याद आया, जैसे ही रमाशंकर ने बताया कि रामचरन यहाँ से चला गया है, उनके हायपर पता नहीं कैसे भय, आतंक, पूणा, प्रतिशोध आदि का असहनीय बोझ हट गया, जैसे दिल के मरीज को दौरा समाप्त होने पर राहत महसूस होती है। नियति और समय ने तो उन्हें अलग कर दिया था। वह इतनी दूर चले आए थे कि उसकी याद भी आत्मिक ज्योति में बदल गई बी-रामचरन और उसके सुख-सौभाग्य के बारे में तो उन्होंने सोचा भी नहीं। फिर यह कैसे हो गया कि भोलाराम और उसे देखते ही उनके अन्दर पुराना समय जीवित तो हुआ ही, साथ ही आत्महीनता, आत्म-पराजय तथा प्रतिशोधात्मक द्वेष के बयंडर से उनको बुरी तरह झकझोर गया, जिसका अनुभव तो उन्हें उस समय भी नहीं हुआ था।

वास्तव में उनके प्यार में ही कोई खोट है। यह अपने को ही प्यार करते रहे, इसलिए अपना सर्वस्व नहीं दे सके। उन्हें अपने त्याग पर घमंड क्यों है? अपने को दूसरों से ऊँया क्यों समझते हैं वह ? और जब उनको चुनौती मिली तो उनकी महानता का खोखलापन प्रकट हो गया-वह बौखला गए और अपनी तुच्छताओं की नुमाइश करने लगे।

उनका शरीर काँप रहा था। उनका माथा आगे झुककर छाती से सट गया। आगे उनके दोनों हाथ जुड़ गए और उनकी आँखों से आँसू गिरने लगे।

उधर घरों में जब मालूम हुआ कि बाहर से आए लोगों के लिए भोजन बनाना है, तो रसोई की ऐसी उत्साहजनक गतिविधियों शुरू हुई, जो आज तक कभी देखने में नहीं आई थीं। लेकिन दरियों, पेट्रोमैक्स बत्तियों और बर्तनों को इकट्ठे करने में कुछ दिक्कतें हुई। गोवर्धन के यहाँ इस तरह के सामान अधिक थे। उसके पिताजी रामतीता कमेटी के अध्यक्ष थे और अन्य सार्वजनिक समारोहों में यह आगे-आगे रहते। शादी-ब्याह तथा अन्य पारियारिक जरूरतों के अवसरों पर भी उनके यहाँ से सामान उदारतापूर्वक दे दिए जाते। लेकिन इस समय जय जगदम्बिका और राममूरत सामान के लिए गए तो बहाना बनाकर इनकार कर दिया गया।

शहर का व्यापारी वर्ग अजीय दुविधा, अनिश्चय और भय की हालत में था। शहर में इतनी बड़ी भीड़ का आना, जेल से कैदियों का छोड़ा जाना, इयर लूट-पाट और कचहरी में उपर अफसर और पुलिस पहले की तरह मौजूद। सच्चाई क्या है? फिर भीड़ का क्या ठिकाना? जब वह बिगड़ेगी पा अनियन्त्रित

होगी अथवा उसमें कुछ ही लोगों की नीयत खराब होगी तो वे किधर जाएँगे? जो राष्ट्रभक्त और राजनीतिक रूप से जागरूक व्यापारी थे, वह भी विशेष सतर्कता बरत रहे थे। वैसे भी जानते हैं कि धन पर सैकड़ों-हजारों लोगों की नजर रहती है, और दूसरों की नजर से बचाने के लिए अनेक नाटक और प्रबन्ध करने पड़ते हैं। यदि पैसे को बचाने और बढ़ाने के लिए विशेष प्रपास करने पड़ते हैं तो यह भी सही है कि पैसा निकालने से निकल जाएगा और लापरवाह, या निश्चिन्त अथवा असमर्थ होने पर यह लूट लिया जाएगा। पैसा ही ऐसी चीज है जिसका स्थिर रहना भी खतरनाक है, जो अगर नहीं बढ़ता तो पटने लगता है-इसलिए कोई भी अस्वाभाविक बात होने पर वे चौकन्ने हो जाते हैं।

महाराजलक्ष्मी विशेष सतर्कता बरत रही थी। घर में सबसे बड़ा डर गोवर्धन की भावुकता और उदारता से ही है। इसीलिए उसे घर के अन्दर रहने के लिए कहा गया है, एक मिनट के लिए भी बाहर न निकले। फिर दोनों चौकीदारों और चार मोटिया मजदूरों को बुला लिया गया है। चौकीदार कह देते हैं:

"मालिक का जी अच्छा नहीं है। वही सब जानते हैं, दो दिन बाद आइएगा ।" "काम इस समय है तो दो दिन बाद आकर क्या करेंगे? मुँह देखने

"जाकर भीतर कहो तो ? रमाशंकर बाबू ने भेजा है-यताना

एक एक चौकीदार भीतर गया और कुछ देर बाद लौटकर बोला, "सामान दो ही लोग जानते हैं, तो बड़े मलिकार हैं, ये पहले से ही श्रीमार हैं। दूसरे छोटे सरकार हैं, उनका भी जी ठीक नहीं है। उन्होंने माफी माँगी है इस समय।"

सामान्य लोगों से सहर्ष सहयोग मिल गया था। राममूरत और जगदम्बिका निराश होकर चले गए थे, लेकिन कुछ अन्य व्यापारियों और अन्य

नकलनबीसिन विशेष रूप से उत्साहित हैं। चूंकि वह इस शहर में अकेली महिला हैं, जो आन्दोलन के समय पुलिस का वेला खा चुकी हैं, अतः उनको इसका हक भी है। वह आज विशेष रूप से पड़ोस के हर घर में पहुँचकर असाधारण विस्तार से बता चुकी हैं कि कैसे वह खड़ी थीं और कितनी तेजी से एक ईंट का बड़ा टुकड़ा आकर लगा था, जिससे ऐसा घाव बन गया, जो अब तक नहीं सूखा है। इसी के साथ उन्होंने यह भी कह दिया है:

"तंगी का दिन है, पर मेरे यहाँ आटा, चावल सबकुछ है। मजे का आटा पिसवाकर रख दिया था, जो चाहे ले जाए। बाहर से आए हैं तो सबको कुछ-न-कुछ पकाकर खिलाना चाहिए कि नहीं ? इससे बड़ा पुण्य क्या होगा ?"

"हजारों लोग हैं, कितना कोई बनाएगा, यहूजी ?" भगजोगिनी की सास ने कहा था।

"ए दाई, तुम कहाँ बनाओगी-खाओगी? बर्तन माँजकर घर से अपनी पतोह को बुलाती आओ। तुम दोनों मदद दे दोगी, ऊपरी-झापरी काम कर दोगी तो बड़ी कड़ाही है ही, थी की भी कमी नहीं तो में जल्दी-जल्दी पूड़ियाँ छानती जाऊँगी।"

"अरे नहीं जी, छोटा बच्चा है, इसी समय रोना शुरू करता है। उसकी माई जब तक उसके पास बैठकर, आधा घंटा थपकी देकर नींद बाला गाना नहीं सुनाएगी, वह सोएगा नहीं। साँझ होते ही वह अउँजा जाता है। हर काम रोकर करता है। खाना माँगेगा तो रोकर, पानी मांगेगा तो रोकर। खा-पीकर सोने के लिए चोकरने लगता है। कुछ हो तो दे दीजिए, घर पर बना लेंगे..."

"ठीक है, ले जाओ। मैं तो कह रही थी, तुम लोग आ जाते। तुम सभी भरपेट पूड़ी-सब्जी खा लेते। हाँ, बच्चेवाली की परेशानी में जानती हूँ। कुछ बच्चे गऊ की तरह बैठे रहते हैं, कुछ बहुत तंग करते हैं, कोई काम ही नहीं करने देते। सेर, दो सेर जितना आटा चाहो ले जाओ..."

शाम बीतने के बाद अँधेरा होते ही लगभग पूरा शहर एक बड़े रसोईघर में तब्दील हो गया। जिन गरीब घरों में भरपेट अपने खाने की कमी थी, वहाँ भी पर्याप्त उत्साह देखा गया। लेकिन कई सक्षम लोगों के घरों में भी कुछ-न-कुछ घटा हुआ था। किसी के यहाँ लकड़ी नहीं, किसी के यहाँ नमक या हींग या जीरा ही नहीं। ऐसी स्थिति में औरतें दौड़ा देतीं अपने बच्चों या जवान लड़कियों को, अथवा स्वयं पहुँच जातीं पड़ोसिन के यहाँ। इसमें स्वाभिमान की बात कहाँ आती है, अपने लिए थोड़े ही माँगा जा रहा है सामान ? यह तो देश का काम है, कथा, यज्ञ, प्रयोजन में कैसा हमारा, कैसा तुम्हारा म

"चाचीजी, धनिया होगा थोड़ा? कांग्रेसियों के लिए शोरवेदार सब्जी बना रही हैं अम्मा। बनिया के यहीं भी नहीं है..." कोई बच्चा दौड़कर पड़ोस से माँगता है।

"अरे, थोड़ा ही बया है। ले जाओ, हमारा काम चल गया है। बनिया भी सस्ता सामान दे रहे हैं। मेरे पास भी नहीं था, मोहल्लेवाले बनिया के यहाँ नहीं मिला तो स्टेशन के पास से ले आया हमारा नौकर। यहाँ तो खूब मिल रहा है, जितना चाहे ले लो।"

लकड़ियों के मामले में थोड़ी दिक्कत हो गई। बरसात की वजह से तो वैसे ही सील जाती हैं, जहाँ पर्याप्त सुरक्षा नहीं है, वहाँ काफी गीली। फूंकते फूंकते दम निकल गया, आँखें सूजकर लाल

हो गई। धुओं का अन्त नहीं, जो हर कमरे में घुस गया और भीतर के लोग परेशान होकर याहर भाग गए। जहाँ सकड़ी नहीं थी, गोठा जलाया गया, मगर उसकी भी हालत कोई बहुत अच्छी नहीं थी। शहर में ओं-ही-धुओं हो गया, जो बहुत देर तक उमड़ता-घुमड़ता रहा।

नम्रता अत्यन्त प्रसन्न है। एक तो स्वयं नीलेश आकर उससे अनुरोध कर गया है कि वह मोहल्ले के घरों में देख ले कि जो तैयार हो गया उसे अपने यहीं इकट्ठा करा ले, जहाँ से यह तथा अन्य नौजवान ले जाएँगे। उसने यहाँ अपनी माँ और नौकर के सहयोग से यह काम बखूबी किया, हाथ ही दूसरे घरों में घूम-घूमकर काम कराया भी। कुछ दिक्कतें थीं, यद्यपि बर्तनों की कमी नहीं की। बात यह है कि कई घरों में आटा न होने से चावल-दाल ही तैयार किया गया। कहीं पूड़ियाँ हाथी के कान की तरह बड़ी और कहीं छोटी-छोटी। इसी तरह कहीं सब्जियों मुजिया और कहीं स्सेदार। रोटियों भी मोटी-मोटी या पतली।

इस परिश्रम, उत्साह, व्यस्तता और हल्ला-गुल्ला में भी नम्रता के खयाल से नीलेश एक पल भी नहीं हटा। वह कभी अकेले और कभी अपने साथी नौकरों के साथ आता जरूरी काम से, नम्रता को भी हिदायत देता, फिर चला जाता। उसके आने पर नम्रता और भी व्यस्त हो जाती, जैसे बात हुरने की भी फुरसत नहीं हो उसे। लेकिन उसके हृदय की धड़कनें तेज हो जातीं और उसे जाते हुए देखती रह जाती ठगी-सी। तेजी से आते-जाते कभी टकरा-सी गई उससे या कभी उसके हाथ का स्पर्श हो गया उसके हाथ से। वह नहीं बता सकती कि यह अनजान में हुआ अथवा एक या दोनों के प्रयास से। लेकिन दोनों को देखकर ऐसा लगता, गोया वे एक-दूसरे को पहचानते भी न हों। यह कहना कठिन है कि देशप्रेम उनके प्यार को या प्यार उनके देशप्रेम को अथवा दोनों ही ज्ञान पर चढ़ाकर एक-दूसरे की धार को तेज करके चमका रहे हैं।

शहर में चारों ओर शोर था। असंख्य लोगों की पगध्यनियों, बातचीत, हँसी, कहकहे, इधर-उधर भटके साथियों को पुकारने की आवाजें। परों या बाहर बच्चों की धप-यप दौड़ या चीखना-चिल्लाना। खाना बनानेवाली गृहिणियों का हटर-हटर बतियाना, पुकारना, हिदायतें देना। उकई या पीढ़े या बोरे पर बैठीं असंख्य गृहिणियों के हाथ आटा की सोइयों बेतते एक साथ संचालित हो रहे हैं। चूड़ियाँ खनक रही हैं, वक्ष हिल रहे हैं जिसके बीच सम्बद्ध-असम्बद्ध बातों के मधुर, छोटे टुकड़े, स्वेद-शोभित तमतमाए मुख से निकलकर तैर रहे हैं। और इन सबमें और अलग भी, अनगिनत अनुभवहीन नौजवानों तथा उत्साही कार्यकर्ताओं के घरों और तहसील स्कूल के बीच आने-जाने की आवाजें, त्वरित बड़-बड़, प्रबन्ध सम्बन्धी मतभेद या गड़बड़ी होने पर आपसी नोंक-झोंक, बहसें और झासाहटें।

इसके बाद भोजन शुरू हुआ, जो देर तक जारी रहा। चपड़-चपड़ खाना, गला खखारना, खानेवातों का माँगना और खिलानेवालों का पूछना, पानी पीकर डकारना, उठकर हँसते-खिलखिलाते हुए जाना। हर आवाज अलग थी, फिर भी सभी आवाजें मिलकर एक बड़ी आयाज बनकर उठती हुई आकाश में टेंग गई थी-राष्ट्रीय एकता, संघर्ष और विजय के उत्तांत एवं उत्सव का जनस्वर।

दूसरे दिन शहर खाली हो गया, जैसे पानी से भरा छेदवाला बर्तन। खाना-पीना करने के बाद भी लोग रातभर मते रहे हो-हासा करते हुए लोगों के अलग-अलग रास्ते थे. अलग-अलग गाँव, एक के बाद एक दल बनाकर निकलते गए। बहुत से लोग भोर होने के चक्त रवाना हुए। इनमें कई नाराज और विचारों के भी तिथे जिनका यात था कि सत्ता के साथ समझौता करके

धोखा किया गया है। सत्ता अपनी जगह आनन्द से है, आजादी का एक झुनझुना बजाने के लिए दे दिया है उसने जिसको लेकर नेतागण शान्ति के उददेश्य को भूलकर गस्त हो गए हैं। इस गुसो की अभिव्यक्ति रात्रि के अन्तिम पहरों में हो गई, जय सभी बुजुर्ग नेता अपने घरों में निद्रा निमग्न थे।

परन्तु, शहर के अधिसंख्य लोगों को भी ज्ञात ही नहीं हुआ कि बीजगोदाम लूटा जा रहा है। पहले कुछ नारे लगे थे, कुछ चिल्लाहटें सुनाई पड़ी थीं, अन्त में खामोशी छा गई। अन्न का एक-एक बोरा बीन लिया गया, बिना किसी झगड़ा-झंझट के। कौन कितना ले गया और कैसे, इसका हिसाब बताना संभव नहीं। रात अँधेरी थी, गर्मी और उमस की सीमा नहीं-पसीने की गंध, तरह-तरह की पगध्वनियों, दम लगाने के समय काँखाने-कूँखने के अस्फुट शब्द, धम-धम, थप-थप, भड़-भड़ 'उठा लऽऽ,' 'बच के भाई,' 'कोनिया के निकल जाऽऽ' जैसी हिम्मत बंधानेवाली टिप्पणियाँ।

हिदायतें देनेवाले स्थानीय किस्म के क्रान्तिकारी नेता थे, जो बाहर खड़े बीच-बीच में हाथ से इशारे करते या धीमे स्वर में बोलते। धोती-कुर्ता के अलाया उनके सिर पर अँगोछा या दुपट्टा इस तरह बंधा हुआ था, जिससे पूरा चेहरा देखना कठिन। आजादी मिल जाने से, पुलिस या गुप्तचर विभाग के किसी आदमी या उसके मुखबिर का भय न होने पर भी चेहरा छिपाने का प्रयास क्यों किया गया ? क्या पुराने अभ्यास से? अथवा इस डर से कि आजादी थोड़े दिन की है और इस भीड़ में जरूर कोई-न-कोई उनका आदमी होगा ? अथवा अहिंसा आन्दोलन में लूटपाट के अनुचित समझे जाने की आशंका से? संभव है ये तीनों कारण सही हों अथवा गलत, किन्तु यह तो सही ही कि टाउन-हॉल की सभा में जब एक गुप्तचर चुपचाप कुछ नोट कर रहा था तो कुछ लोगों उसे पकड़कर पीट दिया था। ऐसी स्थिति में यह तो कहा ही जा सकता है कि गुप्तचर जैसा अवांछित तत्त्व तो यहाँ शायद ही मौजूद हो। हाँ, वहाँ भोलाराम और उसके कुछ डकैत साथी अवश्य सक्रिय थे, जो जीवन में कभी भी पुलिस के मुखबिर नहीं रहे, बल्कि असली मुखबिर गिरफ्तारी के है ने लिए अवश्य उनके पीछे पड़े रहते थे।

लेकिन काफी लोग गाँव और शहर के वे गरीब लोग ही थे, जिनको दो जून भरपेट भोजन नहीं मिलता और जिनके चिथड़े से कपड़े उस समय फैले अन्धकार से भी काले थे। जिन छोटे-मोटे नेताओं ने उनसे यह कहा था कि आजादी मिलने के बाद गरीबी दूर हो जाएगी और घी-दूध की नदियों बहने लगेंगी, वे परेशान भी थे। सुनहरा सपना दिखाकर वे लोगों को ले आए थे, और अब जो आजादी मिली थी, उसको कैसे सिद्ध करें? इसलिए भोजन के बाद बचे लोगों को बीजगोदाम का रास्ता दिखा दिया गया,

जिससे कुंठा, क्रोध और निराशा के निकलने का मार्ग मिल गया और नेतृत्व को इस बात का सन्तोष कि उनकी उपयोगिता तो सिद्ध हुई।

अगला दिन एक अलसाई सुबह लेकर आया। उमस और गर्मी बरकरार। आकाश पर बादलों की एक अपर्याप्त, छोटी हल्की चादर। लोग देर से सोए थे, लेकिन सुखद अशान्ति ने भी ठीक से सोने नहीं दिया। फिर सवेरै-सवेरे ही तेज और पतली आवाज वाली एक अधेड़, फुर्तीबाज सुरहिन ने 'ले नेनुआ हरा-हरा' चिल्ला-चिल्लाकर रही-सही नींद भी हिरन कर दी। लोग अचानक उठ बैठे। फिर उन्होंने इधर-उधर देखा कि यह क्या हुआ, चारों ओर तो उजाला फैला हुआ है। और अपूरी नींद की अधूरी विस्मृति के कारण सबकुछ जल्दी ही याद आ गया और वे जमुहाई लेकर खड़े हो गए।

अहा, नेनुआ खाने की आजादी और वह भी आजादी के समय का नेनुआ। जैसे सदियों से तरस रहे हों नेनुआ के लिए। वैसे खाया था पहले नेनुआ, लेकिन वह गुलामी के समय का नेनुआ था-कड़वा, बिना स्वाद का। अब तो सभी आजाद हैं, अब इस नेनुए में जो ताजगी, स्वाद और मिठास होगी, उसके क्या कहने। और गजब की बात तो यह है कि नेनुआ बेचनेयाली विजयीपुर

मेली देवी है. जिसका बहादुर मर्दनीला गदड़ी बाजार में शहीद होकर देश का मस्तक धाकर गया। गम तो है चमेली देवी को मगर लोगों के यह बताने पर उत्साहित भी है कि उसके पति की नी व्यर्थ नहीं हुई है और उसके और दूसरे शहीदों की वजह से देश आजाद हुआ है।

का। मुस्किल तो यह है कि सभी आज नेनुआ ही खाना चाहते हैं और यह भी चमेली देवी की टोकरी नेनुआ हल्का होता है और पिछली रात में अगड़म-यगड़म खाने और जागरण की वजह से हह पेट के लिए सर्वथा उपयुक्त और मुफीद ।

गई, इमेली के परिवारयाते भी लगे हैं। एक टोकरी भरकर ले आई थी, जो जल्दी ही खाली हो लेकिन उसका जवान लड़का दो बार उसकी टोकरी फिर भर चुका है। दिक्कत यह है कि चमेली परिचय प्राप्त करके सभी आँसू-भरी आँखों से उसे देखते हैं और उसका नेनुआ थोड़ा-बहुत चाहते हैं। नई नहीं है चमेली इस शहर के मोहल्लों के लिए, इसलिए पैसा न होने पर उधार खरीदना भी लगाते रहे हैं लोग, मगर आज किसी की हिम्मत नहीं हो रही है, सभी चाहते हैं कि उसे अधिक-से-अधिक पैसा मिल जाए।

बाद में तो और भी सब्जीवाले आ गए। इनमें गरीब लोग थे, जिनकी दुकानदारी हड़ताल के समय बरबाद हुई थी। खेतों से साग-सब्जी निकलने पर ग्राहकों के पास पहुँचाने की समस्या। और यदि सुक-छिपकर किसी तरह पहुँचाया या इक्का-दुक्का कोई ग्राहक ही खेत तक आ गया तो बहुत सस्ते में देना पड़ा। बहुत-सा सामान बरबाद हो जाता था। आज बेखौफ घर से निकलना हुआ है, बेवकर पैसा आए तो आराम से दाल-भात, भुजिया तरकारी बने और भरपेट खाया जाए।

दिन चढ़ने पर तो आस-पास के गाँवों और नदी पार से दूध, दही, घी बेचनेवालियों, कई मनिहारिनें और चूड़ीहारिनें भी दिखाई देने लगीं। और इस समय उन स्वी, पुरुष और बच्चों का भी उल्लेख करना उचित है जो भिखमंगा शब्द से विभूषित किए जाते हैं, जो कई दिनों से गायब थे और आज पता नहीं किन बिलों और खोतों से निकलकर चारों ओर फैल गए हैं। और दोपहर बद तो डमरू बजाकर बन्दर का तमाशा दिखानेवाला, बीन बजानेवाला संपेरा के अलावा एक भालू बता भी दिखाई देने लगा, जो नाच कराने के बाद युबखने और बड़े-बड़े बालों वाले अपने काले जानवर से छोटे बच्चों के पिछाड़ सैंधवा रहा था, ताकि भविष्य में उनके फोड़े-फुंसी न निकलें। मतलब यह कि अब गुलशन आजाद और आबाद था-गुल, युतयुत, भैवरों, मधुमक्खियों के साथ। बस्तुतः अब शहर पर से दबाय, तनाव, भारीपन और योझ गायब होकर सबकुछ हल्का-हल्का और स्वाभाविक लग रहा है।

नाश्ता के पहले से ही और शाम तक हर घर में और बाहर भी, परिवारजनों, मोहल्लेयासियों, पड़ोसियों, मित्रों, सहेलियों के जमावड़ों में लगातार चर्चाएँ जारी हैं। बातें-बातें-यातें। बीच-बीच में हँसी और चुटकुले। कुल मिलाकर अचम्भे, गर्व और खुशी की चहचहाहट। निश्चय ही, उन्होंने जो कुछ देखा है, वह अविश्वसनीय है उन्हीं के लिए ऐसा इसके पहले न हुआ और न आगे होने की ख्मीद है। अभी कुछ दिनों पहले तक समझा जाता था कि हिन्दुस्तानी एक होकर, मिल-जुलकर काम नहीं कर सकते, फिर ऐसे लोग अंग्रेज हुकूमत का बाल बाँका भी नहीं कर सकते। लेकिन इन कुछ ही दिनों में ही यह सब हुआ, जिसे उन्होंने आँखों से देखा ही नहीं, बल्कि जिसमें उनकी सक्रिय भागीदारी भी रही। और जिन्होंने हिस्सा भी नहीं लिया और अपनी चमड़ी बचाकर दूर ही हे वे भी अब इस तरह कह रहे हैं जैसे सबसे अलगी पंक्ति में वे भी थे। और इनमें भी जो सच औरठ में कुछ अन्तर रखने का तेहाज रखना चाहते हैं. ये भी आन्दोलन के महत्वपूर्ण लोगों और शहीदों के प्रति अपने सपरिचय या घनिष्ठता या मैत्री अथया रिश्तेदारी का उल्लेख करने से बाज कोई नहीं आते।

हर व्यक्ति अपना अनुभव सुना रहा है. चाहे वह कितना ही मामूली क्यों न हो। उददेश्य

है कि हम भी किसी से कम देशभक्त नहीं। यह न समझा जाए कि आन्दोलन के प्रति हम उदासीन या उसके विरोधी रहे। हमने सबकुछ अपनी आँखों से देखा। अपने पाँवों से चलकर गए और उसके शामिल हुए। हमारी राय से बहुत-सी घटनाएँ हई और स्वयं हमने मुकाबला किया या देशासोथा। उदाहरण के लिए, नकलनबीसिन के बगल के पड़ोसी धुरंधर पढ़ाक, चलते-फिरते 'चैम्बर्स शब्दको और बी.ए. प्रथम वर्ष के तीन-साला विद्यार्थी गिद्धेश्वर प्रसाद के महत्त्वपूर्ण अनुभव को बड़ी दिलचस्पी से सुना गया। अपने घर के सामने सहन के जमावड़े में नकलनबीन की छत की रक आँखों से टेढ़ा-ऊँचा संकेत करते हुए पतली आवाज में कहा उन्होंने :

"उस दिन की बात है, जब विद्यार्थियों पर लाठीचार्ज हुआ था। मैं तो था ही, यहीं बाहर सीना तानकर खड़ा था। अचानक, साहय, पुलिसवाले दौड़ते हुए आए। उन्होंने मुझे देखकर एक बड़ा-सा पत्थर का

टुकड़ा चलाया मेरी ओर। करीब सी-डेढ़ सी मील की रफ्तार से देला फेंका गया था। लेकिन ब्रिटिश हुकूमत की पुलिस इतनी निकम्मी है कि ठीक से निशाना भी नहीं साध सकती। तस्य में था, और देला लगा ऊपर भाभीजी को। मेरा खून खौलने लगा, मुट्ठियाँ तन गई, भारतीय महिता पर यह अत्याचार ! मैंने उसी समय प्रतिज्ञा की कि इस विदेशी हुकूमत को जब तक जड़ से नहीं उखाड़ फेकूँगा, चैन से नहीं बैठूंगा। वही हुआ न अब ?"

उसी जमावड़े में खड़ा, एक नया नौजवान वकील मन्नूलाल, व्यंग्य की टेढ़ी मुस्कान से दूसरों को देखने लगा। यह और गिद्धेश्वर प्रसाद कभी सहपाठी रह चुके थे, और अब आगे निकलकर वकील बन जाने पर भी दोनों की दोस्ती बरकरार थी। उस दिन दोनों को धनेश्वरी देवी के मकान के सामने, पान की दुकान पर खड़े सिगरेट का धुओं उड़ाते समय पुलिस सिपाही उधर ही आहे नजर आए। बस हुआ यह कि दोनों सिगरेट फेंककर अपने घरों की तरफ पूरी ताकत से दौड़ लगाने लगे, जिसमें कक्षाओं में पीछे रहनेवाले गिद्धेश्वर प्रसाद आगे निकल गए और जब पुलिसकर्मी वहीं पहुंचकर चारों ओर देलेबाजी करने लगे, वे दोनों घरों के अन्दर सुरक्षित पहुंच चुके थे। 6

इन अनुभवों में बड़ा स्वाद था। जिसके पास नहीं था, वह अनोखी दिमागी कीमियागिरी से दूसरे के अनुभवों को अपना बनाकर पेश कर रहा था। और भयंकर बेकारी की जिन्दगी व्यतीत करनेवाले एक दुबले-पतले और मरियल से प्राइवेट ट्यूटर ने ऐलान कर दिया कि शहीद दयाशंकर को पिस्तौल चलाने, कुश्ती लड़ने और पंजा लड़ाने की कला उसी ने सिखाई थी। लोगों ने सराहा कि देश में कैसी-कैसी प्रतिभाएँ छिपी हैं।

संगीत गोष्ठियाँ तो न मालूम कब से बन्द थीं, लेकिन उनके दो महत्त्वपूर्ण सदस्य कलाकार सुद्दीलाल और परमात्मानन्द जब सुबह साढ़े दस बजे अप्रत्याशित रूप से पहुँच गए तो सीतानाय ने बड़े ही उत्साह से उनका स्वागत किया, क्योंकि यह एक विशेष कारण से बेहद प्रफुल्लित थे। बात यह कि उनके दो मुवक्किल जुलूस में आए थे, जो समय निकालकर उनसे भी मिले थे और बकाया मेहनताना और कुछ अग्रिम इस आशा से दे गए कि कचहरी जल्दी ही खुलेगी और वफीत साहब पुरानी यातों को भूलकर नई परिस्थितियों में डटकर पैरवी करेंगे और बड़े लड़के के आन्दोलनकारी होने की वजह से उनकी बात का वजन भी काफी होगा।

शहर के रईस और तेजी से यूढ़े हो रहे तबला विशेषज्ञ परमात्मानन्द ने आते ही कहा-"पैषा, मैंने किसी का क्या बिगाड़ा है? लोग कहते हैं कि में रईस और अंग्रेजों का मददगार हूँ। बाप जमीदार और रईस थे और काफी जमीन और जायदाद छोड़ गए तो हमारा क्या दोष है? और भाई मेरे, धन्दा में अपने मन से थोड़े ही देता हूँ, ये लोग आकर जबर्दस्ती ले जाते हैं। इसी से नाराज सेकर लोगों ने मेरे घर में तोड़-फोड़ की और कुछ समान उठाकर ले गए। में तो ऊपर छत के कमरे में यन्द डर से काँप रहा था। खैर भाई जान, सामान रहे चाहे जाए, में इसकी परवाह नहीं करता। हाँ, मैं आन्दोलन करनेवालों का ताजिन्दगी शुक्रगुजार रहूँगा कि उनकी वजह से मेरा वर्षों पुरान

कब्जा दूर हो गया।

पक्के गाने के धुरन्धर गया सुददीलाल खूब हंस रहे थे और उनकी हंसी उनके आलाप की तरह ही थी दानेदार जो रुकने का नाम ही नहीं लेती। कद उनका पाँच फीट आधा इंच से अधिक वहीं जिसमें पौन फीट तो उनकी गर्दन होगी। गम्भीर होने पर यह क्रोध तथा घृणा से होंठ विचकाकर "अंग्रेज लोगों की असलियत तो मैं जानता है। देखने में ही लम्बे-चौड़े होते हैं. लेकिन अन्दर हे एकदम खोखले। अरे, हमारे देश के दूध-दही, हवा-पानी में जो बात होती है, वह अंडा-मुर्गी में कहाँ ? में तब छपरा में एक अंग्रेज डिप्टी कलक्टर का पेशकार था। हाकिम तो वह अच्छा था, मगर अपने मातहतों से बड़ा खराब बर्ताव करता। मैंने खूब कसरत-कुश्ती की थी। एक दिन जब उसने बदसलूकी की तो मैंने आगे बढ़कर उसका गट्टा पकड़ लिया और लगा ऐंठने। फिर तो मैंने उसकी कनपटी पर दो घूसे भी जमाए और वहीं से नी-दो ग्यारह फरार!"

लोग इसी तरह, हर जगह घूम-टहलकर या बैठकवाजी करके जश्न मना रहे हैं। लेकिन करीव सभी चर्चाओं में रमाशंकर का नाम और कृतित्व जरूर आता। अनेक व्यक्तियों ने देखा था और जिनोंने देखा नहीं तो सुना अवश्य था कि नेताओं की गिरफ्तारी के बाद शहर में जब से आन्दोलन शुरू हुआ है, रमाशंकर ही हर कार्य, गतिविधि, विरोध और संघर्ष के प्रेरणास्रोत रहे हैं। यह दुःख, संकट और जुल्म के समय दिन-रात लोगों के साथ खड़े रहे हैं। दौड़ते रहे हैं, ढाढ़स देते रहे हैं, मदद पहुँचाते रहे हैं। यह छोटे-से-छोटे व्यक्ति के साथी हैं, जिसके साथ जमीन पर बैठकर प्रेम से खाते हैं, फिर उसके साथ चल देते हैं, जहीं जाना जरूरी हो और करने लगते हैं, जो करना जरूरी हो। गुदड़ी बाजार गोलीकांड के बाद, उनकी हिम्मत, संगठन-शक्ति, व्यापक सम्पर्क क्षमता, जनप्रेम और जनमैत्री, निरन्तर परिश्रम और नेतृत्व योग्यता का परिचय किसको नहीं मिला है?

जीवन और राष्ट्रीय स्वाभिमान से भरपूर, साहसी लेकिन अनुभवहीन और ऊपर-खाले पैर रखते हुए भी जिस व्यक्ति ने देश की आजादी के मार्ग पर निरन्तर अग्रसर होते हुए अपनी जान कुर्यान कर दी, उसके साथ मतभेद होते हुए भी रमाशंकर के दुःख का अन्त नहीं था। वह दयाशंकर के रोते-बिलखते परिवारजनों के बीच सगे परिवारजन की तरह शोकग्रस्त होने पर भी हिम्मत बेंघाते। और निरन्तर सक्रिय। और जय सभी जेल का फाटक खुलने पर खुशी-खुशी कचहरी की तरफ भागे जा रहे थे, यह कुछ साथी नौजवानों के साथ दयाशंकर के दाह-संस्कार में व्यस्त रहे।

"ए भाई, गुस्सा देखा आपने उस समय रमाशंकर का? उन्होंने कहा था, खून-पसीना तो लोगों ने बहाया और यहीं जालिमों को अभयदान देकर चले आए। ऐसा सन्त और महात्मा बनने से क्या फायदा? यह कैसी लड़ाई कि हारा हुआ ही उसका सुख लूटे? यह तो ऐसा ही है कि नियमित दवा खाने से जब बीमारी दूर होने को आई तो मरीज कोर्स पूरा किए बिना ही, दवाई छोड़कर तन्दरुस्ती की खुशी मनाने लगे ?"

क्या हर बात गरीबों की दृष्टि से ही सोचते हैं रमाशंकर? लगभग सभी निश्चिन्त हो गए हैं, जो प्राप्त हो गया है, उसे पर्याप्त समझ सन्तुष्ट और खुश हो रहे हैं। लेकिन साधारण लोग तो पहले भी गरीब थे और आज भी गरीब हैं। उनसे तो पूछा ही नहीं गया कि वे क्या चाहते हैं। उनको क्या मिला और आगे भी क्या मिलेगा ? यह तब सोचकर रमाशंकर गुस्सा गए। उनकी आँखों से आग निकलने लगी। उन्होंने ही बाहर के गरीबों और शहर के गरीबों को खोज-खोजकर भोजन कराया। बाद में उनको बीजगोदाम का रास्ता सुझा दिया।

यह कुछ दूरी पर अँधेरे में बेंत की तरह खड़े सबकुछ देख रहे थे। वह एक शब्द भी नहीं बोले। दुःख और करुणा में डूबे हुए थे वह। एक प्रश्न बार-बार उनके हृदय को विदीर्ण कर रहा था कि पो इस धरती को हरा-भरा और खूबसूरत बनाता है और उसकी ऊंचाइयों को आधार देता है। कत तो अपने को जानता भी नहीं। यदि पूरी आजादी मिल भी गई तो क्या होगा इनका ? अपनी शक्ति

को पहचान पाएँगे कि नहीं? और यह हासिल भी होगा, जो इन्हें सबसे पहले मिल जाना चाहिए। इस हंसी-खुशी और गप सड़ाका के बीच एक अधेड औरत मामूली साड़ी के ऊपर ओढ़े हुए

से सफेद चादर का अधघूँघट बनाए और पैरों में जनाना स्लीपर पहनकर इधर-उधर पकी तरह उधिया रही है। परेशान तो वह कई दिनों से थी, मगर मौका आज मिला है उसे। बेटी की बीमारी जिसका रोजगार बरबादी के कगार पर है, यह क्या करें? कई वैध-हकीम की दया करा चुकी है, मगर बेटी का शरीर नमक की तरह गल गया है। बुखार उत्तरने का नाम नहीं लेता, खाँसी और उग्र हो गई है, जिसके साथ खून भी आता है कभी-कभी। अन्त में हकीम को गाली देती हुई वह चौक के बड़े डॉक्टर के यहीं गई थी कल, जिसको जुलूस के दिन रमाशंकर के कहने पर पित्तपित्री बुलाकर ले आया था। डॉक्टर कांग्रेसी था, जेल का फाटक खुलने और आजादी मिलने से खुश था। यदि ऐसा न भी होता तो यह बुलाने पर जरूर चला आता। उसने लयंगलता उर्फ देला की फिर परीक्षा करने के बाद कहा:

"माताजी, इनके मामले में लापरवाही हुई है। मैंने दवा शुरू की थी, मगर आपने उसे छोड़कर दूसरों को दिखाया। इस तरह घबराकर जल्दी-जल्दी डॉक्टर बदलना तो ठीक नहीं है। इसमें नियमित दवा करानी चाहिए। मरीज को अच्छा खाना, स्वच्छ हवा-पानी और पूरा आराम मिलना जरूरी है। आप क्यों नहीं समझतीं कि इनको दिक की बीमारी है और वह भी बिगड़ गई है। यह खुद ठीक से खाती-पीती नहीं और चिन्ता करती हैं। मेरा कहना मानिए, इन्हें पहाड़ ले जाइए..."

"पहाड़ पर ? काहे डॉक्टर साहय?" श्यामदासी डर के भाव से देखने लगी।

"यहीं तो दवाई भी ठीक से नहीं मिलेगी, इलाहाबाद, बनारस दौड़ना पड़ेगा। पहाड़ पर, नैनीताल के पास एक जगह है भवाली, यहीं का हवा-पानी बड़ा अच्छा है। यहाँ इसी मर्ज का एक अच्छा अस्पताल है। पैसा तो लगेगा माताजी, थोड़ा-बहुत में मदद कर सकता हूँ। इस अस्पताल में एक डॉक्टर मेरे दोस्त

हैं, उनको लिख दूँगा। उन्हें ले जाइए, ठीक से दवा होगी तो बच सकती हैं, तन्दरुस्त हो सकती हैं। फिलहाल के लिए दवा लिख देता हूँ। मेरी दुकान खुली है, मंगवा लीजिए, पैसा नहीं लगेगा। बुखार कम हो जाएगा, खाँसी भी... लेकिन पहाड़ ले जाने के बारे में सोचिएगा जरूर..."

डॉक्टर के जाने के बाद ठेला की माँ ने छाती पीटकर कहा, "हाय, मैं तो लुट गई। अब क्या कसै ? कहाँ जाऊँ? किससे मागूँ? जो कुछ बचाकर रखा भी है तो उसे खर्च कर दूँ? फिर रिश्तेदार ? जब माल नहीं तो गहकी क्यों आएगा? पुराना गहकी क्यों पहचानेगा ? अरे, इन कांग्रेसियों ने सब चौपट कर दिया। आग लगे ऐसी आजादी पर। आजादी हमें रोटी देगी? रहियों की इज्जत तो अंग्रेजों के जमाने में होती थी, मेहनताना भी खूब अच्छा मिलता था, इन गँवारों की तरह नहीं, जो बिना पैसा दिए ही सब मजा लेना चाहते हैं.. दुःख-दर्द, बीमारी हैरानी ऊपर से..."

यह माथे पर हाथ रखकर रोने लगी। कुछ देर बाद सिर उठाकर ठेला की तरफ देखती हुई गुस्से में बोली, "इस नादान छोकरी को बार-बार समझाया कि उन दगाबाजों के चक्कर में न पड़े। रंडी की लड़की इश्क करने बैठेगी तो हो चुका धन्धा। यह तो भूखों मरने का इन्तजाम है। ठीक ही कहा है, घोड़ा घास से यारी करेगा तो खाएगा क्या? साफ-साफ बता, वह तो चला गया, अपनी पसन्द की मौअत पा गया, जाने के बाद एक बार भी नहीं पूछा तो उसके लिए क्यों युतका चुआ रही है। और वह दूसरा है, जो मुँह गोल-गोल कर जनखों की तरह बोलता था, वैसा बेईमान और दगाबाज खोजे नहीं मिलेगा... क्या-क्या कसमें खाता था, अब कारोबार में खूब पैसा पीट रहा है, एक यार भी खयाल नहीं आया होगा कि कैसी है देला रानी...।"

"खबरदार, उनका नाम मेरे सामने न लो... जिनको गाली देती थी, उनसे मदद की उम्मीद करती हो ! शर्म नहीं आती तुम्हें ? साफ बता देती हूँ, मदद क्या, आइन्दे उनमें से किसी का नाम भी लिया

तुमने... तो जिन्दा नहीं पाओगी। यह भी सुन लो में आज से कोई भी दवा नहीं खाऊँगी." अन्त में यह हाँफने और खाँसने लगी।

"अच्छा, मेरी बिटिया, छोड़ो उनको और हँसी-खुशी से दवाई खाओ, अच्छा खाना-पीना लो, हाँ, खूब हबककर खाओ, आराम करो, गाओ-गुनगुनाओ। रंडी की लड़की हो तो अपने उसूल को समझो। उसूल छोड़ने से कोई भी इज्जत नहीं रह जाती, आदमी गिर जाता है। अगर साधु-फकीर का उसूल होता है तो रंडी का भी तो होता है। अच्छा, एक बार कह दो कि अब उसका खयाल नहीं करोगी..." वह आगे झुककर ढेला का बाल सहलाने लगी।

"मैं नहीं लाती किसी का खगाल अपने मन में...।" ढेला तेज रोती हुई बोली।

"अरे हरामजादी ! फिर रोती क्यों है? क्या उसके पीछे सती होगी ?" श्यामदासी स्वयं रोती हुई इतने जोर से चीखी कि अपनी ही आवाज से डरकर फौरन बाहर की ओर देखने लगी। फिर प्यार से बेटी को पुचकारती हुई बोली :

"न रोओ, मेरी रानी विटिया। यह न सोचो कि में रंडी हूँ तो अपनी बच्ची को प्यार नहीं करती। मेरे अन्दर भी महतारी का दिल है। तुम्हें देखकर मेरा कलेजा फटता है। तुम कोई चिन्ता न करो, मेरे पास जो भी रुपया-पैसा है, गहना-गुरिया है-सब लगा दूँगी। मैं बेच दूँगी अपने को, तुमको पहाड़ लेकर जरूर ही चलूँगी। घर के मर्द लोग मेहनत-मजदूरी करेंगे, दूसरों के यहाँ तबला, सारंगी, मँजीरा बजाकर अपना पेट पालेंगे... तुम कोई फिक्र न करो मेरी बेटी, चुप रहो..."

दूसरे दिन जब सचमुच बुखार और खाँसी में कमी आ गई तो श्यामदासी बाहर निकल पड़ी। शहर में अब भी ऐसे लोग थे, जो कुछ वर्ष पहले तक उस पर जान छिड़कते थे और अब सूखकर छुहारा हो जाने पर भी बाजार में दिल और पैसा बड़ी उदारतापूर्वक लुटाते थे। वह रिश्ता दूसरे रूप में बना हुआ था यानी जब पिंड छुड़ाने का समय आया तो लड़की तैयार हो गई और वे परवाने की तरह मर-मिटने के लिए बार-बार आने लगे।

जानती है श्यामदासी कि इन रईसों में कुटेव, लफ्फाजी और पैसे के अलावा और कुछ नहीं होता। लेकिन कामधेनु गाय की तरह उनकी इज्जत बाजार में बढ़ती ही जाती है। हाँ, लड़की के बीमार होने पर उन्हें जरूर मजबूरी में घटिया जगहों पर भटकना पड़ रहा है, मगर क्या बीमारी हैरानी हमेशा रहती है ? जब समय लौटेगा तो ? तब तो गरज पड़ने पर मुँह के बल दौड़े चले आएँगे ! ये लोग बड़े स्वार्थी होते हैं, आगे की सोचकर रिश्ता भी नहीं तोड़ना चाहते, सूदखोर बनिया की तरह कि यदि इस समय कुछ दे-दिला देंगे तो आगे उसका दुगुना-तिगुना भी तो वसूल लेंगे।

ऐसी ही आशा और विश्वास के साथ वह शहर का चक्कर लगा रही है। बड़े दुर्भाग्य के दिन होते हैं ये एक वेश्या के लिए, मगर यह तो दुनिया का नियम है, कभी गाड़ी पर नाव और कभी नाव पर गाड़ी ! आजादी के बाद लोग निकले माटों की तरह घूम रहे हैं, परन्तु इसकी किसी को परवाह भी नहीं कि कौन कहाँ आ-जा रहा है। यदि किसी का ध्यान उसकी तरफ गया भी तो उसने यही समझा कि कोई विधवा मुवक्किल है जो मौका मिलने पर अपने वकील से सम्पर्क करने निकली है।

निस्सन्देह इन दिलफेंक रईसों की बात ही अलग है। इनकी नजरें बड़ी सन्देही लेकिन पारखी होती हैं, खास तरह से जब स्त्री का मामला हो। काना-ऐंचा की तरह बराबर टेढ़े-तिरछे घूरते जाते हैं कि कोई दाना चुगनेवाली चिड़िया तो नहीं है। वैसे भी यदि देह-धजा, चाल-ढाल, अदा-जुम्बिश जानी-पहचानीगोलाकार हथियारों से हो तो धोखा होने का सवाल ही नहीं उठता-लेकिन यह खूसट इस समय दरवाजे पर क्यों उपस्थित है ? यह देशभक्ति के जुनून का समय है, इस समय इसका क्या काम ? फिर यह इज्जत-आवरूवाले का घर है, पतिव्रता पत्नी और बड़े-बड़े जिम्मेदार लड़के हैं, हुक्म बजानेवाले आदमी-जन हैं। अजीब कमबख्त औरत है, कहला दिया कि अकेले में जरूरी बात करनी है !

पहले तो देखकर माथा ठनका था कि कोई बयालिया मामला है, मगर कुछ देर बाद मन में फुलझड़ियाँ भी छूटने लगीं कि लड़की के बारे में खुशखबरी तो नहीं है । येला-चमेली की एक ताजा खुशबू आने लगी। नहीं, इन्तजार में बैठाए रहना ठीक नहीं है। पर, जय यात सुनी तो सवकुछ बेजायका हो गया, मुँह में कड़वा-कड़वा फैल गया।

"अरे भाई, यह तो बड़ा खराब समय है, हड़ताल की वजह से हर काम-धन्धा ठप। दाने-दाने को मोहताज हैं। भूखों मरने की नौबत आ गई है..."

"पुरानी बातों का कुछ तो लेहाज कीजिए... जब-जब आए, पूरी खिदमत हुई। बीमारी-हैरानी तो सबको होती है, राजा-महाराजा, नवाब-रईस कोई भी नहीं बचा है। दवा-दवाई तो पानी की तरह है, पानी न मिलने पर पौधा सूख जाता है, वही मिल जाए तो देखिए फिर हरा-भरा होकर लहलहाने लगता है और चारों ओर खुशबू फैल जाती है। सही इलाज होने पर वही शरीर, यही शयाव, वही जलया। बगीचा तो आप ही लोगों के लिए लगाया गया है, उसे हरा-भरा रखेंगे, तो आप ही न ताजी हवा और खुशबू का लुत्फ उठाएँगे !"

"अरे, धीरे बोलिए भाई, जो भी इज्जत बची है, वह सरेआम लुट जाएगी। हमको तो दोनों ओर का खयाल रखना है, एक ओर आपका तो दूसरी ओर इन लोगों का। किस्मत में दो नावों पर चढ़ना ही लिखा है तो बेशक उसके लिए भी तैयार हूँ, बस बीच-पच्चीस दिन की मोहलत दे दीजिए, मैं खुद आपके दर पर हाजिर हो जाऊँगा। इस समय तो जहर खाने के लिए भी पैसा नहीं है।"

ऐसी और चार जगह जाने, वहाँ देर तक इन्तजार करने, धड़कते दिल से बात करने और खोखले वादों, सीख-सुझावों और उपदेशों के उपहारों से बेहद निराश होकर थक गई थी श्यामदासी। लेकिन उम्मीद का छिछोरापन मशहूर है, उस घास की तरह, जिसे भले ही काट दिया जाए लेकिन जल्दी ही वह फिर उसी तरह उग आती है। इसी वजह से गोवर्धन के यहाँ जाने का विचार करने लगी, जिससे ढेला का सम्बन्ध तुड़वाने में वही जिम्मेदार भी है !

ढलान की ओर पानी के बहाव की तरह इस समय उसके सभी तर्क गोबर्धन के पक्ष में ही प्रस्तुत हो रहे थे। पैसेवालों के कोई उसूल नहीं होते, उनकी मुहब्बत दिल की नहीं, चमड़ी की होती है, मगर उस नौजवान के पास पैसा था तो उसूल भी। बड़ा ही नेक और मरव्यती। जहाँ मुँह से बात निकली भी नहीं कि पूरी करने के लिए दौड़ पड़ा। मोटे-मोटे होंठ गोलाई में घुमाते हुए बोलता था, जैसे कोई आदमी नहीं बल्कि उसका दिल, प्यार और दर्द में बोल रहा हो। और इस समय भी कह दें तो वह इन्कार नहीं करेगा, ढेला के लिए सबकुछ कुर्बान करने को तैयार हो जाएगा !

इन्हीं विचारों से उत्साहित होकर जब वह डगमग चाल से जल्दी-जल्दी जा रही थी, सड़क के किनारे एक खाले स्थान में उसका एक पैर चला गया और वह लड़खड़ाकर सँभलते-सँभलते नीचे गिर गई। मुँह

से कराह निकली, 'आहि ए मैया।' कुछ लोग दौड़ पड़े। यह संयोग की बात है कि रमाशंकर और नफीस उसी समय स्टेशन की तरफ से एक जरूरी काम निबटाकर उधर से गुजर रहे थे। बात यह है कि आज सवेरे स्टेशन फूंक दिया गया था, रेल के टिकट चारों ओर बिखरे थे, जिन्हें इकट्ठे करके छोटे-छोटे बच्चे खेलने में मस्त। लेकिन दिन चढ़ने पर लफंगे किस्म के दो नौजवान स्टेशन के पूरब में कटहरनाला के पास खड़े होकर आने-जानेवाले ग्रामीण पदयात्रियों से कर वसूली करने लगते। उनको दो हैट मिल गए थे शायद डिप्टी कलक्टर के घर में लूटपाट से-और उन्हें सिर पर धारण करके अपने को आजाद सरकार के अधिकारी बता रहे थे।

समाचार मिलते ही रमाशंकर गुस्से में दौड़े हुए गए थे, नफीस को साथ में लेकर, जो उस समय उनके यहाँ आया हुआ था। रमाशंकर ने जाते ही उन किशोर नौजवानों को पकड़ा, बहुत डाँटा-फटकारा, कठोर दंड देने की चेतावनी दी, फिर प्रेम से समझाया भी। और अन्त में कहा कि

वे नई आजाद सरकार के स्वयंसेवक बनें बहुत जल्दी समय आएगा, जब उन्हीं जैसे नौजवानों को आगे बढ़कर देश का शासन सँभालना पड़ेगा। आजाद होने का मतलब यह नहीं कि आप कुछ भी करने के लिए आजाद हैं। इसका तो मतलब है और जिम्मेदार, विनम्र और मजबूत होना, कुछ ऐसा काम करना, जिससे देश की इज्जत बढ़े और देश में एकता और खुशहाली आए।

लड़के वादा करने के बाद चले गए, तो वहाँ से लौटते समय एक स्त्री को नीचे गिरते हुए देखकर रमाशंकर घबरा गए। अचम्भा तो उस समय हुआ, जब नजदीक आने पर चेहरा जाना-पहचाना लगा। तब आई जुलूस वाले दिन की याद, जब इशरतगंज में इसकी लड़की आकर नारे लगाने के बाद खाँसी के साथ खून की कै करते हुए गिर पड़ी थी।

"घबराइए नहीं, कहाँ जा रही हैं? बहुत चोट तो नहीं आई न ?... मैं सहारा देता हूँ..."

गनीमत है कि सँभलते-सँभलते गिरने से चोट अधिक नहीं थी। वह आसानी से उठ भी गई। रमाशंकर और नफीस ने भीड़ को हटाया और घर पहुँचाने के लिए उसके साथ चल पड़े। उसका घुटना छिल गया था और भचककर चल रही थी। और शरमाकर हँसने की कोशिश में बहते अनजान आँसुओं के बीच उसके होंठ बेचारगी के भाव से फैल गए।

"मैं चली जाऊँगी...।"

"नहीं, हम आपके घर पहुँचा देते हैं... चोट अधिक हो तो डॉक्टर के यहाँ से दवा भी ला देंगे..."

"मैं ठीक हूँ बाबू साहब..."

रास्ते में रमाशंकर ने कायदे से पूछ-पूछकर लगभग सभी बातें जान लीं। उसने रोग और भवाली जाने की समस्या को छोड़ यह नहीं बताया कि कहाँ-कहाँ गई थी और कहाँ जाना चाहती थी। अब वह खुलकर रोई। रमाशंकर ने रोने दिया। बाद में वह स्वतः ही चुप हो गई तब रमाशंकर ने कहा :

"आप चलकर आराम कीजिए, फिक्र न कीजिए। मैं कोशिश करूँगा, कुछ हो जाए जल्दी ही। इस समय तक गाड़ी-वाड़ी बन्द है, उम्मीद है पहले जैसा सबकुछ जल्दी हो जाएगा। मैं एक-दो दिन में ही आपको बताऊँगा।"

श्यामदासी को पहुँचाकर और नफीस को विदा करने के बाद वह सीधे गोबर्धन के यहाँ पहुँचे, जिससे वह मन-ही-मन अप्रसन्न थे कि उसके यहाँ से बर्तन और दरी के लिए इन्कार कर दिया गया था। लेकिन ढेला और गोवर्धन का किस्सा उनसे छिपा नहीं था। यह पता था उन्हें कि गोबर्धन ने अपने पिता के व्यापार को सँभाल लिया है और इस बीच उसकी फर्म ने अच्छा लाभ कमाया है।

अपने बैठक में रमाशंकर का स्वागत करते हुए गोबर्धन ने कहा, "जो कुछ पहले था वह छोड़ चुका हूँ मैं। कारोबार के अलावा और किसी बात के लिए फुरसत नहीं मिलती। दुकान पहले से ही चौपट है, इधर कोशिश कर रहा हूँ फिर भी घाटा हो रहा है। फिर इसमें मैं ही नहीं हूँ, मेरे पिताजी हैं, माताजी हैं, मेरे परिवार के लोग भी हैं, किसी बात के लिए सबकी रजामन्दी चाहिए..."

गोवर्धन ने समझा कि रमाशंकर पुराना चन्दा फिर जारी करने का आग्रह करेंगे या दरी-बर्तन न मिलने की शिकायत करेंगे, इसीलिए उसने माने-मतलब से पहले ही अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी। रमाशंकर ने आश्चर्य से देखा कि यह सीधा-सच्चा व्यक्ति इतना चालाक कब से हो गया ? उन्होंने भी साफ-साफ बात कहना उचित समझा।

"देखिए गोवर्धनजी, यह सब सुनने नहीं आया हूँ मैं। और न कुछ सुनाना ही चाहता हूँ। यह तो आप सही समझते हैं कि मैं किसी काम से ही आपके पास आया हूँ, मगर वह निजी नहीं है। कांग्रेस पार्टी से भी कुछ लेना-देना नहीं। बात सिर्फ इतनी है कि इशरतगंज की श्यामदासी की पुत्री लवंगलता तपेदिक से बुरी तरह बीमार है, डॉक्टर ने उसे भवाली ले जाने की सलाह दी है, उसके

पास इतना पैसा नहीं है कि वह अपनी लड़की को यहाँ भेजकर उसका लम्या इलाज कर सके। क्या आप कुछ कर सकते हैं ?"

देखने लगा। गोवर्धन का चेहरा फक पड़ गया। फिर यह आश्चर्य से आँखें फैलाकर रमाशंकर को एकटक

"यह इंसानियत का काम है. मेरे पास इस समय साधन नहीं है. लेकिन आप नहीं करेंगे तो मैं किसी-न-किसी तरह उसका इन्तजाम कर लूँगा। इसलिए आप स्पष्ट जवाब दे दीजिए कि आप कर सकेंगे या नहीं।"

गोवर्धन अब सिर झुकाकर और माथे पर उँगली रखकर कुछ देर सोचने के बाद बोला: "कारोबार के सम्बन्ध में में ही फैसला लेता हैं। लेकिन घर के अन्य छोटे-छोटे खर्च या अन्य समस्याओं के बारे में मेरी पत्नी, पिताजी की राय और सहमति लेकर फैसला करती हैं। न वे लोग मेरे बीच में बोलते हैं और न मैं ही उनके फैसलों के बारे में कुछ कहता हूँ..."

"ठीक है...फिर भी मैं कहूँगा कि आप अपनी पत्नी से राय-बात करके कल सवेरे आठ बजे तक मुझे बता दीजिए। अपने किसी आदमी के हाथ अपना पत्र देकर मेरे घर भेज दीजिए, मैं इन्तजार करूँगा। अगर मंजूरी नहीं मिलती तो किसी को भेजने की जरूरत नहीं, मैं समझ जाऊँगा कि आपकी क्या राय है।"

"मैं कोई वादा नहीं करता... अगर मंजूरी मिलने में दिक्कत नहीं हुई तो मैं सवेरे पत्र भेज दूँगा या स्वयं आपके पास पहुँच जाऊँगा। लेकिन एक बात मैं चाहूँगा कि व्यवस्था हो जाने पर भी किसी को भी इसके बारे में मालूम न होने पाए, चाहे वही व्यक्ति और उसके परिवार के लोग ही क्यों नहों।"

"ठीक है, मेरी ओर से कुछ नहीं होगा... हाँ, आपकी तरफ से कुछ हुआ तो इसकी जिम्मेदारी मेरी नहीं। मैं सवेरे जवाब की प्रतीक्षा करूँगा और सहमति बन जाती है तो डॉक्टर से मिलकर पता लगा लूँगा कि हर महीना कितना खर्चा होगा और कब तक ? फिर आपसे मिलकर तय हो जाएगा कि क्या कैसे होगा ?"

रमाशंकर के जाने के पश्चात गोवर्धन दुःख में डूब गया। सकारात्मक सोच के कारण अथवा अच्छा समय आने पर, दुर्व्यवहार, अपमान, बेवफाई, दगाबाजी, सभी कुछ भूल जाता है, लेकिन प्यार का यह रिश्ता, जिसमें सद्भावनाओं का आदान-प्रदान हुआ हो, शायद ही भूलता हो। ढेला के व्यवहार ने उसके दिल को तोड़ ही दिया। बाद में उसने पश्चाताप किया, अपने दिल और दिमाग को दूसरी दिशा में मोड़ा, लेकिन ढेला की याद उसके हृदय के किसी नरम कोने में अब भी विद्यमान है, उसका स्पष्ट अहसास आज रमाशंकर की बात सुनकर ही हुआ।

*साथ ही, यह सोचकर वह आतंकित हो गया कि हर तरह का सम्मान, अधिकार, सुविधा और स्वतन्त्रता देने पर भी महाराजलक्ष्मी को वह स्थान प्राप्त नहीं है। ढेला और महाराजलक्ष्मी में क्या यही फर्क है जो हृदय और बुद्धि में या स्वतन्त्रता और दन्धन में अथवा उत्सर्ग की आकुलता और आत्मरक्षा की चतुराई में ? लेकिन अब ऐसी याद और भावना का क्या मतलब है, जब उसकी उपयोगिता और सार्थकता ही नहीं है? क्या इसीलिए उसकी गम्भीरता और व्यापारिक कार्य-संलग्नता है या महाराजलक्ष्मी से बचने का बहाना मात्र अथवा ढेला को भूलने का यत्न ?

महाराजलक्ष्मी कुशाग्रबुद्धि, मेहनती, परिश्रमी और महत्त्वाकांक्षी स्त्री है-प्रतिस्पर्धा और ईर्ष्या की भावनाओं से भरी हुई। हर क्षेत्र में सर्वोच्च रहना उसे पसन्द है। वह हर नई बात जानने को उत्सुक रहती है और सीख भी लेती है जल्दी। उसे साफ-सुथरा और सजा हुआ घर पसन्द है और अच्छा भोजन तथा पहनना-ओढ़ना भी। इसीलिए इन्हीं कार्यों में निपुण भी है वह। स्कूल में, सर्वोच्चता की उसकी महत्त्वाकांक्षा नम्रता को लेकर देखने में आई, लेकिन हिन्दी को छोड़कर अन्य

विषयों में यह कठिन परिश्रम करने पर भी कुढ़ती रही। लेकिन शादी तय होने पर नम्रता के प्रति उसका दृष्टिकोण इसलिए बदल गया कि उसका रिश्ता एक धनी-सम्पन्न, प्रतिष्ठित खानदान में और एक सुन्दर, सुशील तथा शिक्षित वर से हो रहा है, उससे पहले हो रहा है और ऐसा घर-वर पाने की यह कल्पना भी नहीं कर सकती।

परन्तु सुहागरात की प्रथम मुलाकात में ही, पूर्व प्रेम के सम्बन्ध में पति की आत्मस्वीकृति और साथ में एक साफ-सुथरा, आदर्श दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने का प्रस्ताव, आश्वासन एवं दृढ़ संकल्प उसके हृदय पर भारी आघात था-बासी, खोखला और पुरुपोचित्त पाखंड से भरा नाटक ! और कुछ ही देर में उसका देखा हुआ हसीन, सुमधुर स्वप्न, पाला-खाई पुष्प-कली की भाँति विना प्रस्फुटित हुए ही मुरझाकर सूख गया।

उसके बाद उनका दाम्पत्य जीवन दो विरुद्धों का सामंजस्य ही कहा जाएगा। गोबर्धन व्यापार में खोकर सबकुछ भूलने की कोशिश करने लगा और महाराजलक्ष्मी वास्तविक अधिकारिणी होने पर भी वंचित और अपदस्थ यानी हृदय के बाहर घर-गृहस्थी तथा अन्य घरेलू क्षेत्रों में अधिकाधिक अधिकार और शक्ति संग्रह करने लगी, जो मृगमरीचिका ही है उसके लिए। बाहर सुव्यवस्था, अनुशासन, समृद्धि, चमक और रोशनी लेकिन भीतर गहन अँधेरा। कभी-कभी ईर्ष्या और प्रतिशोध का पागलपन, लेकिन किसके प्रति ?

प्रतिबद्धता, सेवा, परिश्रम और उत्साह से भारतीय गृहिणी असंभव को प्राप्त कर लेना चाहती है और कभी-कभी सफल भी हो जाती है। खैर, इन गुणों से महाराजलक्ष्मी ने अपने ससुर-सास का हृदय जीत लिया। उनके स्वास्थ्य में तेजी से सुधार हुआ और कारोवार में सक्रिय दिलचस्पी लेने लगे। गोवर्धन भी खुश और सन्तुष्ट। यह सोचता, क्या न दे दें उसे? किस तरह और सुखी करें उसे ? उसने अधिक-से-अधिक दे भी दिया था, जो एक पति दे सकता है अपनी पत्नी को, सिवाय उस मामूली हृदय के, जिसके लिए हर पत्नी छटपटाती रहती है और जिसकी कमी वह फौरन महसूस कर लेती है। महाराजलक्ष्मी मैके से ही पति के लिए अथाह असीम प्यार लेकर आई थी और गोबर्धन ने भी सोचा था और प्रयास भी किया ईमानदारी से कि सबकुछ ठीक हो जाए, जिससे उसकी प्यार की रोशनी पत्नी के दिल तक पहुँच सके। और सबकुछ होते हुए भी यही सिर्फ एक बात नहीं हो पा रही है तो यह सन्तोष तो है ही कि जो नहीं दिया जा रहा है, उसकी काफी हद तक क्षतिपूर्ति की जा रही है।

महाराजलक्ष्मी हृदय और बुद्धि की धनी है, इसलिए प्यार के सौदे में थोड़ा भी कम स्वीकार्य नहीं है उसे। और उसे उतना तो चाहिए ही, जितना वह उसको दे रही है! लेकिन गोबर्धन में कभी भी ऐसा कुछ नहीं देखा, जिसकी वजह से पूरा विश्वास कर सके उस पर। उसको लेकर सदा शंका और अविश्वास से घिरी रहती है वह। वह सदा उसी के बारे में सोचती और उसके पीछे पड़ी रहती। यह गोबर्धन को कोई भी ऐसा मौका नहीं देती, जिससे वह किसी प्रकार की कोई कमी महसूस कर सके। वह उसे हमेशा काम के लिए उत्साहित करती और स्वयं सहयोग देती जिससे वह खाली बैठकर पुरानी यादों का शिकार न हो जाए। सदा यह जानने के फिराक में रहती वह कि शहर में कहाँ जाता है गोवर्धन और बाहर की व्यापारिक यात्राओं में क्या दिनचर्या रहती है उसकी। इसीलिए वह मुनीम या एक-दो खास कर्मचारी या चौकीदार को खुश रखती और घुमा-फिराकर पूछकर उनसे सारी जानकारियाँ ले लेती।

ईर्ष्या उसमें अवश्य है लेकिन एक प्रतिस्पर्धी व्यक्तित्व में यह मात्रा स्वाभाविक ही कही जाएगी। परन्तु दाम्पत्य जीवन की परिस्थितियों में उसकी धार और तेज हो गई, जिससे कभी-कभी वह बेहद परेशान हो जाती। एक बार तो उसे नीलेश से भी ईर्ष्या हो गई यह सोचकर कि गोबर्धन की शादी पूर्व गतिविधयों में नीलेश की भी सहभागिता अवश्य रही होगी। और इसकी पुष्टि का तर्क

प्रकारान्तर से, शादी के बाद नम्रता से बात करके मिला। फिर भी वह नीलेश के प्रति कटु नहीं हो सकी, क्योंकि जब कभी अवसर आया, नीलेश ने उसका पक्ष लिया। वैसे नीलेश पुरुष है, दूर रहता है, और उसका कार्य-क्षेत्र भी अलग बस एक ही संभावना थी कि उसके राष्ट्रीय विचार और कार्य से कहीं गोबर्धन प्रभावित न हो जाए, लेकिन अपने हस्तक्षेप से महाराजलक्ष्मी ने, उसकी जो भी गुंजाइश थी, समाप्त कर दी।

नीलेश के पक्ष में भावनाओं का असन्तुलन उस समय हुआ, जब महाराजलक्ष्मी ने बनारस से लिखा उसका पत्र पढ़ा, जिसमें उसे पूज्य देवी और माँ की इज्जत देते हुए याद किया गया था। तब उसे महसूस हुआ कि यह तो इस दुनिया में अकेली है, ऐसा कोई भी नहीं, जिससे अपने मन की बात कर सके। क्या उसके इस अभाव की पूर्ति नीलेश कर सकता है? वह अमिमूत होकर एकान्त में रोने लगी। आज तक किसी ने भी उसको यह इज्जत नहीं दी, ऐसी आत्मीयता नहीं प्रकट की। इसीलिए तो बनारस से आने पर, जब नीलेश उससे मिला तो वह बेहद अपनत्व से भरकर उसके पास दौड़ी गई और उसके बालों पर हाथ फेरने लगी जैसे वह कोई छोटा बच्चा हो। कुछ न समझकर नीलेश ने उसकी भावनाओं को चरित्र की कसौटी पर कसकर जब नाक-भौं सिकोड़ ली, तब यह अचानक उससे अलग होकर बगल की कुर्सी पर बैठ गई। फिर भी, वह नीलेश पर अविश्वास नहीं कर सकी, उसको दोष नहीं दे सकी, बल्कि अपने ही व्यवहार के अनौचित्य को स्वीकार करती हुई अपना दुःख, अपनी समस्या खुलकर बताने लगी, जैसे नीलेश उसका कोई राजदार सहेली हो। यहाँ तक कि नीलेश से उसने किसी लेडी डॉक्टर के पास उसे ले जाने का अनुरोध किया।

लेकिन, जब गोवर्धन ने अपनी सफाई देकर, रमाशंकर के अनुरोध का हवाला देते हुए भवाली में इलाज खर्चा भेजने की बात कही तो महाराजलक्ष्मी का चेहरा रक्तहीन होकर छोटा पड़ गया और वह पति को देखती रह गई।

"रमाशंकर को तो कोई जवाब देना पड़ेगा। मैं बता चुका हूँ कि पुराने जीवन से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। फैसला तुम्हें ही करना है। चाहो तो पिताजी से पूछ लो। मंजूर न हो तो जवाब साफ-साफ दे दिया जाएगा।"

महाराजलक्ष्मी कुछ नहीं बोली और उठकर वहाँ से चली गई। उम्मीदों की क्षतिग्रस्त इमारत, जिसकी मरम्मत वह एक-एक ईंट जोड़कर कर रही थी, कुछ ही क्षणों में ध्वस्त हो गई। आखिर वही सही है, जो पहली रात अनुभव किया था उसने और जिससे उबरने का लगातार उठते-गिरते संघर्ष कर रही थी। कितना बड़ा धोखा हुआ है उसके साथ और अब इस सम्बन्ध में फैसला लेने को उसी से कहा जा रहा है, जैसे जिसको फाँसी देनी हो, उसी से कहा जाए कि गले में फंदा लगा लो। इस जीवन से छुटकारा पाने का खयाल तो पहले भी कई बार आया था, किन्तु पति के वादे तथा इस वजह से भी कुछ कर न सकी कि समय बीतने पर स्वतः ही सबकुछ खत्म हो जाएगा। इसकी तो खैर कल्पना ही नहीं थी कि भीतर से वह इतना मजबूत है। वह न कभी खत्म हुआ और न ही कभी खत्म होनेवाला है।

वह अपने कमरे में कुछ देर तक बैठी रही। फिर एक फैसले पर पहुँचकर लौट आई। "मुझे क्यों ऐतराज होगा ?" उसने गोबर्धन से कहा।

कोई जबरदस्ती नहीं है..."

"मेरी तरफ से कोई बाधा नहीं है। आप दे दीजिए, जो देना चाहते हों। बाबूजी से राय लेना उचित नहीं है, उसकी जरूरत नहीं है। कोई भी नहीं चाहेगा कि विपरीत फैसले से किसी का अहित हो और उसका दोष भी लगे।"

"तुम नाराज तो नहीं हो...?" "मैं नाराज होऊँगी क्यों? किसलिए ?" एक ट्रेन चार्जक ग़ा

"अच्छा-अच्छा, समझ गया। में तो अपने वर्तमान जीवन से खुश हूँ और कारोबार को फैलाने में अपना पूरा ध्यान लगा रहा हैं। मैंने तो सोचा भी नहीं था कि इस तरह कोर्ड प्रसंग आ जाएगा। मझे तो कुछ पता भी नहीं था। लेकिन क्या कहा जाए, अगर रमाशंकर की बात काटता है और कुछ हो जाता है तो उसका दोष हम लोगों पर ही आ जाएगा। हमारी स्थिति भी अब बरी नहीं

...तो मैं कल सवेरे रमाशंकर के पास स्वीकृति भेज देता हैं..." "ठीक है...।" महाराजलक्ष्मी ने कहा।

परन्तु, तटस्थ और गम्भीर रहने की हर कोशिश के बावजूद गोवर्धन के होंठों और आँखों में आई अवश मुस्कुराहट और चमक से महाराजलक्ष्मी के मन में फैला अंधकार और भी घना हो गया। और रात में जब गोवर्धन सो गया तो वह चुपके से उठकर दवे पाँव बाहर निकल कमरे का दरवाजा धीरे से उठेंगाते हुए सबसे ऊपरी छत की सीढ़ी की तरफ चल पड़ी। छत की चहारदीवारी ढाई फीट से अधिक ऊँची नहीं है। वह पीछे की तरफ चहारदीवारी से सटकर खड़ी हो गई। रोशनी कहीं. भी नहीं है, न ऊपर आकाश में और न ही नीचे धरती पर। उसके अन्दर भी नहीं। इसी अन्धकार में अपने अन्धकार के साथ, अनन्त अन्धकार में छलाँग लगाने का समय आते ही उसे मितली आने लगी जोरों से। वह नीचे फर्श पर बैठ गई और उल्टी करने लगी।

कुछ देर बाद जब तबीयत स्थिर हुई तो उसे खयाल आया। वह क्यों भूल गई थी कि उसके अन्दर तो एक सूक्ष्म-सी रोशनी विद्यमान है। ऐसा लगा कि उसके जीवन को एक रचनात्मक आधार मिल गया है जिसके लिए वह सबकुछ सह सकती है। यह उठी और वापस छत से नीचे उतरने लगी।

48

आरम्भ में ही डुगडुगी द्वारा ऐलान करा दिया गया था कि रेलवे लाइन के इधर जनता की सरकार है और यदि कोई समस्या या परेशानी हो तो उसके सम्बन्ध में जिला कांग्रेस के अध्यक्ष के नाम लिखित आवेदन-पत्र भेजें कांग्रेस कार्यालय में, सबका समाधान यहीं से होगा। हाँ, कांग्रेस अध्यक्ष ही जिले की जनता सरकार द्वारा प्रशासक नियुक्त किए गए हैं, जिनका दायित्व कानून-व्यवस्था लागू करके शासन-कार्य चलाना है। यह आजादी किसी की दया या दान से नहीं, बल्कि असंख्य संघर्षशील जनता की कुर्बानी और बल-बूते से मिली है। यहाँ की जनता ने जो कुछ किया है, वह कोई अललटप्पू क्रान्ति नहीं है, वह उसका सजग और सचेत कार्य है, जिसके द्वारा केन्द्रीय राष्ट्रीय नेतृत्व के 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव को अमली जामा पहनाया गया है और उसके प्रयत्नों एवं उपलब्धियों को देश के दूसरे हिस्सों में चलाए जा रहे ऐसे ही विशाल आन्दोलनों का साथ, सहयोग और समर्थन मिला है और मिल रहा है। वस्तुतः यह भारतीय जनता की पूर्ण स्वतन्त्रता की आकांक्षा-पूर्ति का एक मजबूत कदम है, जिसका गहरा असर पड़ा है और ब्रिटिश हुकूमत की जड़ें बुरी तरह हिल गई

लेकिन विदेशी हुकूमत के जिला कलक्टर सुरेश्वर प्रसाद अब भी अपने को जिला प्रशासक मानते हैं। उनका तर्क है कि यदि उनको किसी ने इस पद से हटाया नहीं और उन्होंने स्वयं किसी को लिखकर दिया नहीं, तो दूसरा व्यक्ति कैसे प्रशासक हो सकता है? उन्होंने अवश्य कुछ कह दिया और कुछ सुविधाएँ और आजादी दे दी, लेकिन इस जवानी कार्रवाई से स्थिति में कौन-सा विशेष फर्क हो जाएगा ? असली शक्ति-पुलिस, हथियार, खजाना, जरूरी कागज-पत्र, सब तो उन्हीं के पास हैं। चारों ओर उनके गुप्तचर अब भी सक्रिय हैं, उनके अधिकारी और कर्मचारी सम्पर्क के लिए उन जगहों पर दौड़ रहे हैं, जहाँ हुकूमत की पूरी ताकत कायम है अब भी। थानों पर कब्जा

कर तार काट, रेलवे पटरी उखाड़, सभी कागज-पंत्र जला और कर्मचारियों को भगाकर अब आन्दोलनकारियों के पास पंगु उत्साह, खोखली शेखी और सामूहिक असहायता के सिवाय क्या बचा है ? अतः दूसरों को अधिकारी होने का भ्रम थमाकर स्वयं अपने हाथ में पूरी शक्ति रखकर सही मौके की प्रतीक्षा करना बुरा सौदा नहीं है। दोहरा शासन तो अंग्रेजों की कूटनीति की श्रेष्ठ परम्परा रही है, जिस पर चलते हुए इतने बड़े देश पर आसानी से कब्जा कर लिया गया और उसी का अनुसरण करके आज उन्होंने विदेशी हुकूमत को बचा लिया है, जिसकी आगे चलकर दिल्ली और लन्दन में भूरी-भूरि सराहना की जाएगी, ऐसा दृढ़ विश्वास भी है उनका।

सुरेश्वर प्रसाद अहिंसा, सत्याग्रह वगैरह को कमजोरों का कमजोर हथियार मानते हैं, जिसमें बुद्धि, राजनीति, तर्क, विज्ञान, कूटनीति, आधुनिक प्रगति के सिद्धान्तों का कोई स्थान नहीं है। अहिंसा पर चलकर आप एक साँचे में फिट हो जाइए और कोल्लू के बैल की तरह चलते रहिए। न कोई नया सीखिए और न कोई नया कार्य कीजिए और स्वयं पिछड़कर और मात खाकर अपनी नैतिकता और सच्चाई का डंका पीटते रहिए। अहिंसा के शान्ति सिद्धान्त का तो स्वयं उन्होंने भी इस्तेमाल किया एक खूबसूरत चाल के रूप में जिस पर उन लोगों ने विश्वास भी कर लिया, जिसका अर्थ यह हुआ कि राजनीति में सच्चे लोगों के लिए सत्य व अहिंसा एक बेवकूफी का हथियार है। जय-पराजय, प्रतिद्वन्द्विता और शक्ति की दुनिया में अहिंसा के हथियारों से प्रारम्भिक, सीमित सफलता तो प्राप्त की जा सकती है, लेकिन चौमुखी विजय प्राप्त कर एक नई दुनिया नहीं बनाई जा सकती। वह नौकरी से जरूर बँधे हैं, लेकिन भीतर से वह किसी से कम देशभक्त हों, ऐसा नहीं है। यदि वह विदेशी हुकूमत के कलक्टर न होकर राष्ट्रीय आन्दोलन के नेता होते तो उनकी योजना में दुष्टों, चालबाजों और अपराधियों से शान्ति-समझौता करके उनको नैतिक रूप से उठाने, उनका हृदय परिवर्तन करने और स्वयं को इस कृत्य के लिए महान समझने की आत्म-प्रवंचना का कोई स्थान न होता।

सुरेश्वर प्रसाद अपने ही तर्क से मुग्ध होकर मुस्कुराने लगे। वह तत्काल एक सख्त और चालाक अधिकारी से रूपान्तरित होकर, बुद्धिमान राजनेता बन गए और अपने विचार और कार्य के गहरे प्रभाव का स्वप्न देखने लगे। उनको दोनों ही रूप एक-दूसरे के विपरीत होकर भी बहुत प्रिय लगे, विजेता की भूमिका में होने के कारण। वह अत्यन्त प्रसन्न होने के बाद अधीरता से सोचने लगे कि यहाँ से भेजा हुआ अधिकारी तो उसी दिन बनारस पहुँच गया होगा, लेकिन उसकी सूचना अभी तक क्यों नहीं मिली ?

लाल मगर साधारण जनता शहर और गाँवों की तथा उनके नेता खुश थे कि उनका आन्दोलन हर जगह अपने सिद्धान्तों से भटका नहीं और सत्ता पक्ष की क्रूरता और धोखेबाजी के बावजूद संयम रखा गया निरन्तर। गर्व उनको इस बात का भी था कि लोगों ने हँसते-हँसते जान दे दी, लेकिन सत्ता पक्ष के किसी भी व्यक्ति की जान नहीं ली। आपस में मतभेद थे, बहसें भी हुई, गलत समझ से इक्का-दुक्का अनुचित घटनाएँ भी हो गईं, फिर भी कुल मिलाकर साधारण जनता राष्ट्रीय आन्दोलन की उच्चतम परम्पराओं और आदर्शों पर ही चली। और जब सर्वोच्च नेता का आदेश हुआ तो अपने-अपने गाँव लौटकर पंचायत व्यवस्था के अनुसार शासन का काम-काज चलाने की कोशिश करने लगे।

पंचायतों द्वारा काम चलाने का अनुभव ग्रामवासियों को कुछ तो था ही, जिसमें नए विचार और नई जरूरतों का भी समावेश किया गया। जगह-जगह स्थानीय शासन परिषदें कायम कर ली गई, जिनमें उन्हीं लोगों को सदस्य और पदाधिकारी तथा स्वयंसेवक बनाया गया, जो शिक्षित, बुद्धिमान, देशभक्त थे और जिन्होंने आन्दोलन में बढ़कर हिस्सा लिया था। इन परिषदों में सर्वाधिक ध्यान रखा गया शान्ति-व्यवस्था और आपसी सौहार्द का। हर धर्म, जाति और वर्ग के लोग आपसी एकता

बनाए रखें। कोई भी गडबडी और अपराध की घटनाएँ न होने पाएँ। इसलिए यदि कुछ हुआ भी तो मिल-जुलकर सुलझा लिया गया। चोरी और छिनैती की कुछ मामूली वारदातें होने पर स्वयंसेवकों ने दौड़-धूप करके अपराधियों को पकड़ लिया. उनसे सामान वापस कराए और उनको शपथ दिलाई गई कि भविष्य में ऐसा कोई काम नहीं करेंगे।

फिर भी, यह स्वैच्छिक, कामचलाऊ और सीमित व्यवस्था थी। जिन गाँवों में जेल से छूटे हुए नेता और कार्यकर्ता तथा अनुभवी प्रतिवद्ध आन्दोलनकारी अधिक संख्या में थे, वहाँ की पंचायतें या शासन परिषदें अधिक संगठित और जागरूक थीं। लेकिन कोई केन्द्रीय कार्य पद्धति एवं नियम-कानून न होने से आपसी तालमेल का भी अभाव था। फिलहाल ऐसी योजना भी बनाना संभव नहीं था, जिसके अनुसार आजाद देश के नए सामाजिक और आर्थिक क्रिया-कलापों की परिस्थितियाँ उत्पन्न करके प्रगति और विकास के मार्ग पर चला जा सके। विदेशी हुकूमत का पुराना तन्त्र जिला स्तर पर समाप्त हो चुका था, उसकी जगह पर नया आजाद तन्त्र कैसे कायम हो, यह परेशान करनेवाली समस्या थी।

ऐसी परिस्थिति में एक किंकर्तव्यविमूढ़ता भी व्याप्त थी। अब क्या किया जाए? आगे का काम कैसे होगा ? जो काम ठप है, वह कैसे फिर चालू होगा? कई स्थानीय कार्यकर्ताओं ने आपस में विचार-विमर्श करके यह सवाल उठाया कि क्यों न रेल की पटरियों और तार जोड़ दिए जाएँ। लेकिन समस्या है कि यह करके होगा क्या? और होगा भी कैसे ? कुछ जगहों पर तार ही काटकर घर ले गए हैं कुछ लोग ! रेल पटरियों को जोड़नेवाले कल-पुर्जे भी गायव !

"आस-पास के गाँवों में डुगडुगी पिटवा दी जाए कि जो तार और पटरी के कल-पुर्जे ले गए हों, वे वापस कर दें।"

"एक बात सोचने की है, हमारे जिले से सटे जो अन्य जिले हैं, वहाँ भी विदेशी हुकूमत खत्म हो गई है? अगर नहीं खत्म हुई हो तो क्या पटरियाँ जोड़कर अंग्रेजी हुकूमत को फिर बुलाना चाहते हैं?" किसी ने आपत्ति की।

"अरे, अभी कुछ न किया जाए। जिले से जो हुक्म आएगा, उसी के अनुसार काम होगा।" "हाँ, अंग्रेज जब देश से चले जाएँगे, तभी पटरियाँ बनेंगी।"

"अरे, बलिया शहर में कांग्रेस अध्यक्ष अपनी शासन परिषद् के सहयोग से नया कानून-कायदा बना रहे होंगे। ऐसे काम में समय तो लगता ही है। कोई दाल-भात का कौर तो नहीं कि दोबार मुँह चलाकर पेट में डाल लिया। जहाँ फैसला हुआ, आदेश हर जगह तो पहुँच ही जाएगा।"

"अगर फिर अंग्रेज आएँ तो ऐसी गत बनाई जाएगी कि पानी पीने की जगह नहीं मिलेगी, सीधे इंग्लैंड का टिकट कटाना पड़ेगा सी लाइसे

"ठीक है, हर आदमी तैयार रहे..."

परन्तु, इक्कीस अगस्त की सुबह, दोहरे शासन के दो प्रशासकों के बीच टकराहट का अवसर उपस्थित हो गया। बाहर से सूचना की हर क्षण व्याकुलता से प्रतीक्षातुर सुरेश्वर प्रसाद को बीस अगस्त की रात में खबर मिली कि जिस अधिकारी को कमिश्नर कार्यालय में सम्पर्क के लिए भेजा गया था, यह बचते-बचते किसी तरह बनारस पहुँच गए हैं और अगले दिन लौट आनेवाले हैं। सुरेश्वर के अन्दर खुशी की लहर दौड़ गई। अनचाही पराजय के पश्चात अनेक आशंकाओं से घिरे हुए वह जैसे जी उठे। चेतना और आत्मविश्वास लौटते ही वह क्रोध से बेचैन हो गए और कमिश्नरी से फौज आने के पहले अपनी सत्ता प्रमाणित करने के लिए फौरन कार्रवाई हेतु व्याकुल हो उठे, ताकि उन पर आरोप न लगे कि वह अन्त तक निष्क्रिय बैठे रहे। और दूसरी मनोवैज्ञानिक स्थिति के कारण ही, जो हार को जीत दिखाने की अधीरता से उत्पन्न हो जाया करती है, इक्कीस अगस्त की सुबह सशस्त्र पुलिस की वही लॉरी रेलवे लाइन के उस पार शहर में चक्कर लगाने के लिए भेज दी गई,

जो स्टेशन के सामने से गुजर मालगोदाम की तरफ जाती हई देखी गई. गोलियों की फुलझड़ियाँ भी छोड़ती हुई, जिसके परिणाम स्वरूप दो व्यक्ति स्वर्ग सिधार गए।

इस अकल्पित घटना से लोगों की खयाली निश्चिन्तता, खुशी और उम्मीदों में खलल पड़ गया। अचानक एक सन्नाटा फैल गया इस खबर के बाद कि बाहर से भारी संख्या में पुलिस और फौज कचहरी में पहुँच गई है। लेकिन दो-तीन घंटे के बाद भी जब फौज दिखाई नहीं पड़ी और लॉग ने भी दुबारा चक्कर नहीं लगाया तो चेहरों पर हल्की चमक और मुस्कुराहट दिखाई देने लगी। चर्चात और बहतें फिर शुरू हो गई लेकिन धीमी आवाजों में। एक गपबाज आशावादी व्यक्ति ने तो यहाँ तक ऐलान कर दिया कि बेचारे पुलिसवाले अपने परिवारजनों से मिलने देहात जा रहे थे तो कुछ लोगों ने हमला करने की कोशिश की, जिससे मजबूर होकर उन्हें गोली चलानी पड़ी। क्या बेचारे पुलिसवालों को अपने माँ-बाप से मिलने का अधिकार नहीं ?

परन्तु, अधिसंख्यक लोग नाराज थे और राजनीतिक नेताओं और कार्यकर्ताओं से तरह-तरह के सवाल करने लगे। क्या विदेशी हुकूमत के तथाकथित जिलाधीश द्वारा यह घृणित हरकत कराई गई है या यह

उन्हीं के किसी विरोधी और शरारती अफसर का कार्य है ? अब समय आ गया है कि आजाद सरकार की ओर से उन नकली कलक्टर की गिरफ्तारी का वारंट निकले, क्योंकि उसने एक समझौता करके उसी का उल्लंघन करने का अपराध किया है। फिर भी, इस उत्तेजना के बीच भी, एक फुसफुस अफवाह एक जगह से दूसरी जगह जाने लगी कि फौज आनेवाली है और जिन लोगों ने आन्दोलन में भाग लिया है, उन्हें गोली से उड़ा दिया जाएगा।

लगभग सभी महत्त्वपूर्ण कार्यकर्ता और नेता अपने-अपने गाँव चले गए थे, कुछ लोग जिले के दो-तीन बचे हुए थानों पर कब्जा करने के लिए गए थे। रमाशंकर तथा अन्य शेष पदाधिकारी ऐसी अफवाह का खंडन करते और आश्वासन देते; लेकिन जब लोगों की शंकाओं का समाधान करते-करते आजिज आ गए तो रमाशंकर के नेतृत्व में कुछ लोग आजाद सरकार के अध्यक्ष के पास पहुँच गए।

खद्दर की धोती और बनियान पहने, तख्त पर विराजमान चरखा पर सूत कात रहे थे अध्यक्षजी। चरखा रोककर सभी बातें सुनने के बाद बोले:

"समझाइए लोगों को। धैर्य से काम करने की जरूरत है। मेरा विचार है, लॉरी भेजने में लापरवाही हुई। परन्तु, इसमें कलक्टर सुरेश्वर प्रसाद का कोई हाथ नहीं होगा, शायद किसी दूसरे अधिकारी की मनमानी और शरारत है।"

"अध्यक्षजी, फौरन पूछा जाना चाहिए कि इस समझौते का क्यों उल्लंघन हुआ ? चाहे जिसकी वजह से हुआ हो, इसके लिए सुरेश्वर प्रसाद ही जिम्मेदार हैं और उन्हीं से स्पष्टीकरण माँगना चाहिए।" रमाशंकर ने कहा।

जिलाध्यक्ष ने कुछ क्षण रमाशंकर को घूरने के बाद कहा, "उत्तेजित होने का समय नहीं है यह।

ठंडे दिमाग से सोच-विचारकर आगे बढ़ने की जरूरत है। ऐसा न हो कि तैश में कुछ कर दिया और

सारा गुड़ गोबर हो जाए। मैं कल परिषद की जरूरी मीटिंग बुलाऊँगा। उसमें कलक्टर महोदय को आमन्त्रित किया जाएगा और सबके सामने उनसे सारी स्थिति स्पष्ट करने के लिए कहा जाएगा। उनसे पूछा जाएगा कि यदि वह समझौता समाप्त करना चाहते हैं तो साफ-साफ बताएँ, हम दोनों तरह से तैयार हैं, वह लड़ना चाहते हैं तो पीछे हटनेवाले नहीं हैं हम। अब सन्तुष्ट हैं आप ?"

"मेरे असन्तुष्ट होने की ही बात नही है, शहर की जनता असन्तुष्ट और नाराज है। तरह-तरह की बातें कह रहे हैं...।".

"क्या कह रहे हैं, मैं भी सुनूँ।"

"कह रहे हैं, कचहरी पर उसी समय कब्जा कर लेना चाहिए था। छोड़ देने का नतीजा है कि

उनकी ऐसी हिम्मत हो गई। हथियारबन्द लॉरी पहले भी घूमती थी और आज भी घूम रही है. फिर अन्तर क्या रहा? फिर कैसी आजादी मिली ? कहाँ है आजादी ? कलक्टर ने यह अन्दाजा लगाया है कि जो कुछ दे दिया गया है उससे काफी सन्तुष्ट हैं ये लोग, और आगे कुछ करने-धरनेवाले नहीं हैं। एक दिन बाद ही ऐसी घटना का तो मतलब है कि दाल में कुछ काला है। भीतर-ही-भीतर खिचड़ी पक रही है...।"

"खिचड़ी पक रही है? दाल में काला है? क्या मतलब है इसका ?" अध्यक्षजी नाराजी से काफी गम्भीर हो गए।

"मैं लोगों की बातें बता रहा हूँ। कह रहे हैं कि शहर में फौज आनेवाली है। फौज आते ही आन्दोलनकारियों को गोली से उड़ा देगी !"

"गोली से उड़ा देगी ? आप लोग दहशत फैला रहे हैं। क्या समझते हैं कि फौज से मैं डर जाऊँगा ? उसकी वजह से अपने सिद्धान्तों से डिग जाऊँगा ? पुलिस-फौज से गांधी के सिपाही न पहले डरे हैं और न कभी डरेंगे। मैं नहीं सोचता कि फौज आएगी, किन्तु मान लेते हैं कि आ भी गई तो मैं पहला व्यक्ति होऊँगा उसका प्रतिरोध करनेवाला, पहले मैं गोली खाऊँगा...।"

जोश की उत्तेजना से अध्यक्ष का चेहरा तमतमा गया था। उन्होंने सबकी तरफ देखा, लेकिन सभी सिर झुकाकर बैठे रहे। फिर अध्यक्ष ने शान्त होकर धीमे स्वर में कहा :

"यह मत सोचिए कि मैं चीजों को नहीं समझता। आप तो स्वयं आजाद सरकार की परिषद में है, कांग्रेस पार्टी के कर्मठ सदस्य हैं, क्या आप भी अहिंसा को कमजोरों का हथियार समझते हैं, पलायन का बहाना ? यह मत सोचिए कि उनका प्रस्ताव इसलिए स्वीकार कर लिया मैंने कि हमें पूर्ण स्वतन्त्रता मिल रही है। बलिया तो एक छोटा-सा जिला है, देश तो बहुत बड़ा है, जहाँ विदेशी हुकूमत अभी भी बनी हुई है। क्या आप इतना ही सोच सकते हैं कि समूचे देश को आजाद किए बगैर इस छोटे-से जिले की अधूरी आजादी से हम सन्तुष्ट हो जाएँगे, निश्चिन्त होकर बैठे रहेंगे ? मान लीजिए कि हमने कचहरी पर कब्जा कर भी लिया होता तो क्या हमारी लड़ाई खत्म हो जाती? फौज तो तब भी आती। बोलिए, क्या मैं गलत कह रहा हूँ... हाँ, निस्संकोच कहिए...।"

"अध्यक्षजी, अगर उस समय हमने कचहरी पर कब्जा कर लिया होता, तो इससे जनता की हिम्मत कितनी बढ़ती ? देश के दूसरे जिलों में रहनेवाली जनता के सामने भी एक आदर्श उदाहरण होता, और वे भी हमारी मदद से उसी आदर्श तक पहुँचने की कोशिश करते। हाँ, फौज तो आती जरूर, लेकिन हम उसका मजबूती से मुकाबला करते और जरूरी नहीं कि उनकी फौज जीत ही जाती, हम भी तो जीत सकते थे..."

"कैसे जीत सकते थे एक प्रशिक्षित और अनुशासित सशस्त्र सेना से ?"

"कुछ हथियार तो हमें कचहरी पर कब्जा करने के बाद मिलते। फिर फौजियों को घेरकर उनसे भी उनके हथियार छीन सकते थे...।" इस बार राममूरत ने हिम्मत करके जवाब दिया, जो रमाशंकर के साथ आए प्रतिनिधिमंडल का एक नौजवान सदस्य था।

अध्यक्षजी ने किंचित आदर्श-भरे कुतूहल भाव से राममूरत को देखा, फिर मुस्कुराते हुए कहा, "मुझे खुशी है कि आप जैसे नौजवान हमारे आन्दोलन के साथ हैं। लेकिन इस विचार से मैं सहमत नहीं हूँ। एक तो हमारे आन्दोलन का यह चरित्र नहीं है, यह हिंसा का रास्ता है, मगर इसके लिए भी आपकी तैयारी नहीं है, प्रशिक्षण नहीं है, इसलिए अपना रास्ता छोड़कर दूसरे रास्ते पर चलने के खतरे-ही-खतरे हैं। गुस्से और जोश ठीक से विचार करने के बाद ही कोई कार्रवाई की जानी चाहिए। बैरिया में जिस तरह का क्रूर आप जो भी कहें और करें, लेकिन सभी स्थितियों पर व्यवहार वहाँ के थानेदार ने किया, उसकी जितनी निन्दा की जाए कम है। और हमारी जनता ने जिस बहादुरी से और शान से उसका सामना किया, वह स्वर्णाक्षरों में लिखी जानेवाली घटना है।

बैरिया कांड से लोग गुस्से में थे, उसकी वजह से खून-खराबा हो सकता था, फिर कलक्टर सुरेश्वर प्रसाद मेरी बात मानकर सभी बन्दियों को रिहा करने को तैयार हो गए, हमें स्वतन्त्रता दे दी, तो मैंने सोचा कि जो चीज यहाँ संघर्ष करने पर मिलती, यह बिना संघर्ष किए मिल रही है, तो इसे ले लेना चाहिए और जो समय मिले उसमें हर बात पर विचार करके और अपने को आर संगठित तथा मजबूत करके आगे का संघर्ष चलाना चाहिए...।"

"लेकिन समय कहाँ मिलेगा ? उन्होंने पुलिस की लॉरी भेज दी..." राममूरत ने गुस्से से कहा। "हाँ, यह निन्दनीय हरकत है। यह किस वजह से हुआ है, मैं कल उनसे मीटिंग में पूछूँगा। स्थितियों का स्पष्टीकरण हो जाना चाहिए। यदि वह कोई ऐसा कारण बताते हैं जिससे हमें भी सन्तोष मिले और इस शान्ति समझौते को आगे बढ़ाने का वायदा हो, तब भी हम अपने प्रतिनिधियों की एक बड़ी सभा परसों बुलाएँगे और अपनी दृढ़ शर्तों और प्रस्तावों के साथ उनके पास जाएँगे और उन्हीं के अनुसार चलने के लिए उन पर दबाव डालेंगे। यदि वह कल की सभा में सन्तोषजनक उत्तर नहीं देते तो परसों से हमारा संघर्ष आरम्भ हो जाएगा। हम उनसे पूरी तरह असहयोग करेंगे और सत्याग्रह द्वारा उनको अपनी गद्दी छोड़कर यहाँ से चले जाने के लिए कहेंगे। लेकिन अहिंसक तरीके से ही यह संघर्ष होगा, जिसमें अपने उच्चतम सिद्धान्तों और परम्पराओं का

दृढ़ अनुशासन होगा।" "अहिंसक तरीकों को वे कमजोरी और बेवकूफी समझते हैं..." रमाशंकर ने इस ढंग से कहा, जैसे कोई चुनौती दे रहे हों।

अध्यक्ष का चेहरा फिर काफी गम्भीर हो गया। लेकिन आत्म-नियन्त्रण के बाद सहज भाव से बोले, "हमें इसकी परवाह नहीं कि वे क्या सोचते हैं हमारे तरीकों के बारे में। हाँ, यदि आप भी उन्हीं की तरह सोचते हैं तो यह चिन्ता की बात है। लेकिन, जो लोग कहते हैं कि अहिंसा का अर्थ एक गाल पर थप्पड़ खाने के बाद दूसरा गाल आगे कर देना है, तो उनकी बुद्धि को क्या कहें ? अहिंसा कायरता और पलायन की प्रवृत्ति को छिपाने का कोई साधन नहीं है। पुराना विचार है अहिंसा, लेकिन आज के परतन्त्र भारत में, जहाँ अनेक धर्म, जातियाँ, वर्ग, गरीबी, भेदभाव हैं, राजनीतिक परतन्त्रता है, अहिंसा एक विशेष उद्देश्य और कार्यक्रम लेकर आई-एक-दूसरे को प्यार करने का, स्वावलम्बी बनने का, अन्याय का विरोध करने का और स्वतन्त्रता प्राप्त करने का। शान्ति. और अहिंसा के माहौल में ही ये विचार और प्रोग्राम सफल हो सकते हैं। आज साम्प्रदायिक सद्भाव कितना जरूरी है। हाँ, यह हमारी राष्ट्रीयता और आजादी के लिए जरूरी है। जातियों का आपसी मेलजोल भी कितना जरूरी है, यह अहिंसा के विचार की समझ से ही संभव है। हिंसा तो समझदारी दूर करके सबकुछ बिखरा देगी। शान्ति और अहिंसा हवा में लटकी चीज नहीं है, उसका मजबूत आधार है, वह बदले हुए समय में आजादी, मानव एकता और मानव प्रेम का और समता तथा न्याय के आधार पर सामाजिक उन्नति का ठोस विचार और कार्यक्रम है। व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा और स्वार्थ की कोई जगह नहीं है उसमें। अहिंसा के ये ही उद्देश्य और कार्यक्रम हमारी स्वतन्त्रता और राष्ट्रीयता की परिभाषा प्रस्तुत करते हैं और इनका परित्याग हमारी राष्ट्रीयता के लिए विनाशक सिद्ध होंगे। जो व्यक्ति अहिंसा को नहीं समझता और उसका मजाक उड़ाता है, उसे आन्दोलन से दूर ही रहना चाहिए..."

अध्यक्ष का चेहरा अपूर्व तेजस्विता से दप-दप कर रहा था। निश्चय ही उनकी बातों का अच्छा असर पड़ा था प्रतिनिधिमंडल के सदस्यों पर। अन्त में अध्यक्षजी ने कहा: को समझाइए और आगे की लड़ाई के लिए तैयार रहिए।"

"ठीक है, जाइए, लोगों परन्तु कलक्टर सुरेश्वर प्रसाद को निश्चित सूचनाएँ मिल रही थीं, जिनसे उनके उत्साह का अन्त नहीं था। उनका अधिकारी बनारस में कमिश्नर से मिलकर और फौरन आवश्यक कार्रवाई

का आश्वासन पाकर जब वापस आ रहा था, जिले की सीमा के अन्दर सड़क पर गड्ढा खोदकर शुद्ध जनता ने उसकी कार गिरा दी और उसे गिरफ्तार कर लिया। वह बार-बार माफी माँग रहा था और अपने को निर्दोष घोषित कर रहा था, तो जनता ने भी कोर्ड शारीरिक क्षति न पहुंचाकर अन्ततः मुक्त कर दिया उसे. जिसके बाद गाँव में ही उसे छिपने का आश्रय मिल गया। मुखबिर से प्राप्त इस विश्वसनीय, अकाट्य खबर से सरेश्वर का रहा-सहा तनाव गायब हो गया और उसके त्यान पर ऐसा क्रोध हावी हुआ, जिसमें फौरन शहर में प्रवेश करके सैकडों आन्दोलनकारियों को भून देने की बफादार इच्छा उत्पन्न हो गई। फिर भी व्यावहारिक चालाकी के साथ पर्याप्त साहस के अभाव का योग होने की वजह से ही वह वैसा कर न सके, लेकिन कांग्रेस अध्यक्ष द्वारा भेजा गया आजाद परिषद की सभा में

उपस्थित होने का लिखित आमन्त्रण उन्होंने अवश्य ठुकरा दिया वादाखिलाफी का उल्टा आरोप लगाते हुए।

कांग्रेसाध्यक्ष बेहद दुःखी हुए। वैसे अब भी विश्वास नहीं हो रहा था उन्हें कि कोई धोखा होनेवाला है। सुरेश्वर प्रसाद की बोली में तो अद्‌भुत मिठास, सच्चाई, नेक इरादा और आश्वासन घा-ऐसा व्यक्ति क्या इस तरह पलट सकता है ? यदि कोई गलतफहमी भी हो तो जवाब देने का यह तरीका है ? बातचीत करने से ही तो गलतफहमी दूर हो सकती है? और यदि यह भी मान लिया जाए कि कलक्टर सुरेश्वर प्रसाद ने बेहद डरकर, विशाल भीड़ के दबाव को टालने के लिए जेल का फाटक खोलने का निश्चय किया तो ऐसे अधूरे प्रस्ताव को स्वयं उन्होंने स्वीकार क्यों कर लिया ? उस समय तो सुरेश्वर के पास कुछ था भी नहीं, जिले में हर जगह उनकी हुकूमत समाप्त हो गई थी, वह आजादी क्या देते ? वह तो अपने अस्तित्व पर विनाशकारी संकट देखकर बेहद घबरा गए थे।

दिमाग में लगातार उठते इन प्रश्नों से तिलमिला गए कांग्रेस अध्यक्षजी। हाँ, जब ऐतिहासिक निर्णय लेने का समय था और निर्णायक बिन्दु पर पहुँचे एक सप्ताह से अधिक समय के महान जनसंघर्ष को अन्तिम मंजिल पर पहुँचाना था तो उन्होंने शान्ति सन्देश द्वारा उसे दूसरी ही दिशा में मोड़ दिया। वह कलक्टर की बातों में आ गए, लेकिन वह क्रान्तिकारी जन-समूह हिंसक कहाँ था ? अनेक जगहों पर आम लोगों के नेतृत्व में संघर्ष हुए, सफलताएँ मिलीं, अनेक लोग शहीद हुए, लेकिन जब कहीं भी हिंसा नहीं हुई तो क्या उनके जैसे अनुभवी, तपस्वी नेता के रहते हिंसा हो जाती ? उनको चाहिए था कि कलक्टर से पूरे अधिकार लिखित और वास्तविक रूप से ले लेते और उनको अपने मातहत अधिकारियों के साथ चले जाने के लिए कहते। कलक्टर ने दिया क्या, उससे तो करीब-करीब पूरा ही जिला ले लिया गया है, लेकिन उसने अपना मुख्यालय बचाने के लिए जो धोखे की टूट्टटी खड़ी की, उसकी असलियत समझ नहीं सके वह। और किसी का कहना भी नहीं माना और यही कहते रहे कि उनका फैसला सही है। गांधीवादी सिद्धान्त के अनुरूप। उस समय जो अगाध विश्वास था उन्हें अपने ऊपर-अब कहाँ चला गया और वह पश्चाताप से व्याकुल क्यों हैं?

फिर क्या वह बदलते समय में बदलती जन संघर्ष की प्रकृति को समझ नहीं सके और कुछ पुराने मानदंडों से उसका मूल्यांकन करते हुए नई परिस्थितियों के अनुसार गांधीवाद की व्याख्या करने से चूक गए और कोई पहलकदमी नहीं कर सके ? या वह सुरेश्वर प्रसाद की तरह ही स्वयं नई परिस्थितियों से डर गए और जो मिला वही लेकर चले आए? और यदि ऐसा न भी हो तो क्या राजनीति में गांधीवाद सिर्फ निरन्तर आन्दोलन और आत्म-त्याग ही है ? नई शक्तियों और जरूरतों का मूल्यांकन करने में अक्षम है वह ? राजनीति और कूटनीति के छल-प्रपंचों के प्रतिकार के लिए सजग दृष्टिकोण का अभाव क्यों है उसमें ? और आन्दोलन की सफलता के बाद सत्ता के लिए एक नई व्यवस्था की विस्तृत रूप-रेखा कहाँ है ? यदि मान लिया जाए कि 'भारत छोड़ो आन्दोलन' सफल

हो जाए और अंग्रेज चले भी जाएँ तो क्या वही शासन और न्याय व्यवस्था होगी, जो अंग्रेजों ने बनाई है? या कुछ नए तौर-तरीके होंगे? यदि ऐसा होता तो 'भारत छोडो आन्दोलन' का प्रस्ताव स्वीकत करने के समय स्पष्ट रूप से बताया गया होता कि जहाँ अंग्रेस शासन व्यवस्था समाप्त हो जाए. वहाँ किस तरह शासन का काम-काज चलाया जाए। हमारे नेताओं ने तो यह भी नहीं बताया कि कैसे आन्दोलन चलाया जाए। पथ-प्रदर्शन के अभाव में जनता ने अपने मन से आन्दोलनका संचालन किया। ऐसी परिस्थिति में दिक्कतें आ गई हैं तो दोष कहाँ है और किसका है?

हताशा के इन तर्कों से सहसा कांग्रेसाध्यक्ष डर गए। वह उन्हीं सिद्धान्तों का धूरी उड़ा रहे हैं. जिन पर चलकर वह देश और समाज से जुड़ सके और अपने मामली जीवन को सार्थकता दे पाए। जिस विचार ने देश के हर कोने की जनता को एक साथ आन्दोलित करके खड़ा किया, वह कमजोरी और कायरता तथा मुर्खता का पर्याय कैसे हुआ? यदि एक पराने विचार को नई परिस्थितियों के अनुकूल बनाकर उसका सार्थक प्रयोग किया गया है तो उसकी जीवन्तता स्वतः सिद्ध है और दसरी परिस्थितियों में भी उसका प्रयोग हो सकता है। अहिंसा के सिद्धान्त जब एक विदेशी साम्राज्यवाद की चालों को निष्फल कर सकते हैं तो सफल होने और सत्ता प्राप्त करने के बाद साधारण जन के हित में समानता के आधार पर ऐसी शासन और न्याय व्यवस्था नहीं स्थापित कर सकते, जिसमें सभी लोग मिल-जुलकर आगे बढ़ सकें और सबको न्याय मिल सके ? हर व्यक्ति को अपनी प्रतिमा के अनुसार तरक्की का अवसर मिल सके ?

नहीं, लाचारी का सिद्धान्त नहीं है अहिंसा, जिसके बल-बूते पर आजादी की लड़ाई लड़ी जा रही है। यदि उन्हें कलक्टर ने धोखा दिया है तो कल ही से उसका विरोध शुरू हो जाएगा। तब अहिंसा के सिद्धान्त और संघर्ष यह भी दिखा देंगे कि सत्ता पर कब्जा कैसे किया जा सकता है। कांग्रेस के अध्यक्ष अपने कमजोर विचारों के लिए अपने को धिक्कारने के बाद नई आशा और उत्साह से भर उठे और व्याकुलता से सुबह होने की प्रतीक्षा करने लगे।

परन्तु, कांग्रेस अध्यक्ष को चारपाई पर बहुत देर तक नींद नहीं आई। आठ बजे वह भोजन कर लेते हैं और नी-साढ़े नौ बजे तक सो जाते हैं। लेकिन आज वह उत्तेजित हैं। उनकी कल्पना में वे दृश्य उभर रहे हैं जो कल बुलाई जानेवाली जनप्रतिनिधियों की सभा, उसमें होनेवाले विचार-विमर्श तथा कलक्टर सुरेश्वर प्रसाद को भेजे जानेवाले अल्टिमेटम के मजमून से सम्बन्धित हैं। उनमें कलक्टर से होनेवाला मौखिक विवाद भी शामिल है और विस्तार से उनके सटीक व्यंग्यात्मक उत्तर भी, जिनमें विदेशी हुकूमत के अधिकारी की चालबाजी का पर्दाफाश करके फौरन सत्ता से हट जाने की माँग प्रस्तुत की गई है।

हर बात पर बारीकी से विचार करते हुए जब वह थक गए और उनकी आँखें नींद से बोझिल होने लगीं, बाहर से खटपट और कई लोगों के बातचीत करने की आवाजें आने लगीं। उनकी आँखों की नींद गायब हो गई और वह कमरे की छत को देखने लगे। थोड़ी ही देर में उन्हें सूचना दी गई कि उनके गाँव से आया एक कार्यकर्ता जरूरी काम से मिलना चाहता है।

वह उठ बैठे। शीघ्र ही आगन्तुक हाजिर हुआ। कांग्रेस अध्यक्ष ने उसके घबराए हुए चेहरे को देखकर पूछा, "क्या बात है रामबरन कि आधी रात में चले आए ? आओ बैठो और जल्दी बताओ कि क्या बात है ?"

"महाराज, बैठने का समय नहीं है। कोई खास बात न होती तो इस समय मैं क्यों आता ? खतरा सिर पर आ गया है, अंग्रेजों की फौज, ताजपुर डेहमा तक रेल की पटरी जोड़ते-जोड़ते पहुँच गई है..."

"क्या ?" कांग्रेसाध्यक्ष ने चौंककर कहा, "यह कैसे हो सकता है? सही खबर नहीं मालूम होती यह तो। कलक्टर ने मुझे आश्वासन दिया था। मैं कल कलक्टर से मिलनेवाला हूँ...।"

"महाराज, यह विस्तार से बात करने का समय नहीं है। और बातों को छोड़िए, मैं तेज साइकिल चलाकर किसी तरह पहुँचा है। आप यहाँ से चलिए महाराज, आपका जीवन कीमती है। रात का समय है. उनके पास फौज है. मशीनगन हैं. गाँवों में बहुत कम लोग यह सब जान पाए हैं। मैं इसीलिए आया हूँ। उन लोगों का प्रोग्राम है कि खास-खास लोगों को पकड़कर गोली से उड़ा दिया जाए। आगे बहुत बड़ी लड़ाई लड़नी है, और हम लोगों के बीच आपका रहना बहुत जरूरी है..."

"आप भी मुझे डराने के लिए आए हैं? आपके कहने से मैं लोगों को छोड़कर भाग जाऊँ ? क्या मैं बन्दूक और मशीनगन से डरनेवाला हूँ? एक बार कलक्टर से धोखा खा गया तो क्या हमेशा मैं उन लोगों से धोखा ही खाता रहूँगा? इस बार मैं... सबसे पहले उनको चुनौती दूँगा-उनकी गोली होगी और मेरी छाती ! कल में अपनी विशाल जनता को लेकर उसका नेतृत्व करते हुए कचहरी तक मार्च करूँगा...।" अध्यक्षजी गुस्सा कम करते हैं, लेकिन इस समय वह चिल्ला रहे थे।

"महाराज, इसका समय नहीं है अब। हम लोग इसके लिए तैयार नहीं हैं। उन्होंने बहुत होशियारी से यह काम किया है। कुछ घंटों में तो वे शायद पहुँच ही जाएँगे। और बिना तैयारी के जल्दी-जल्दी कुछ करने से काफी लोग मारे जाएँगे। यहाँ किसके पास बन्दूकें हैं, और दो-चार इधर-उधर होंगे भी तो उनके आधुनिक हथियार से कौन लड़ पाएगा। पहले से तैयारी होती तो उनको रोका जा सकता था..."

"जाइए यहाँ से... मैं नहीं जाता कहीं भी। आप लोग जाकर छिप जाइए..."

"महाराज, ऐसी बात न कीजिए। हम आपके इशारे पर जान देने को तैयार हैं। लेकिन हमारी यही प्रार्थना है कि आप कहीं छिपकर आन्दोलन का संचालन कीजिए। आप इस समय गिरफ्तार होंगे तो जनता पर अच्छा असर नहीं होगा। अगर आप बाहर रहे तो लोग उठ खड़े होंगे। फिर वे यह नहीं देखेंगे

कि सामने फौज है। हम प्रार्थना करते हैं कि हमारे आन्दोलन, हमारी आजादी के लिए हमारा नेतृत्व कीजिए।"

कांग्रेस अध्यक्ष इसका उत्तर नहीं दे सके। यह सिर झुकाकर सोचने लगे।

49

लगभग दो बजे रात में फौज बलिया स्टेशन पर पहुँची। उसने अपने आगमन की सूचना गोली छोड़कर दी। धायँ-धायँ की दो आवाजें सन्नाटे को बेधती हुई आकाश की तरफ निकल गईं। वृक्षों पर पक्षी बोलने और अपने पर फड़फड़ाने लगे। अन्धकार में डूबो धरती काँप गई। कुछ ही देर बाद आनन्दी दरवाजा खोलकर बाहर आई और नीलेश को जगाने लगी, जो तख्त पर बँसखट बिछाकर सोया था।

"क्या हुआ ?" स्थिति से अनभिज्ञ नीलेश हड़बड़ाकर उठा।

"बबुआ, भीतर चलो, गोली छूट रही है।"

अब वह होश में आकर खड़ा हो गया, और जल्दी-जल्दी मसहरी के डंडे निकालकर बिस्तरा लपेटने लगा। उसे याद आया कि शहर में विगत दिवस का उसका पूरा समय फौज आने की अफवाहों के बीच गुजरा था और यही सब सोचते हुए वह सोया भी था।

निश्चय ही, प्रान्त के गवर्नर द्वारा नव-नियुक्त सिविल सर्विस के एक सीनियर अंग्रेज अधिकारी नेदरसोल के नेतृत्व में एक सैन्य टुकड़ी की शहर-पहुँच की यह प्रथम विस्फोट सूचना थी। रेल की उखड़ी हुई पटरियों को बनाने के लिए साथ में अनेक इंजीनियर, मिस्त्री, कर्मचारी आदि आए थे।

इसे क्या समझा जाए ? यह जिला क्लक्टर सुरेश्वर प्रसाद की कूटनीतिक चालों की विजय है या इमेजाया सरकार के प्रशासक तथा जिला कांग्रेस अध्यक्ष की शान्ति-अहिंसा नीति की पराजय ? लेकिन सनने में आया कि नए प्रशासक ने पहुँचते ही दिल्ली और लन्दन के बधाई पत्रों के बजाए निलम्यन का कागज ही थमा दिया। सोचने की बात है कि दिन-पर-दिन कमजोर होती ब्रिटिश हुकूमत में क्या इतनी क्षमता रह गई थी कि वह सुरेश्वर प्रसाद जैसे वफादार अधिकारी की सेवाओं का सही मूल्यांकन कर सके ? इसलिए आत्महीनताग्रस्त तथा बर्वर जुल्म के लिए जिम्मेदार हुकूमत वे अपनी अक्षमताओं और दुर्बलताओं का दोष एक व्यक्ति पर ही थोप दिया, जो यदि अंग्रेज होता तो मूल्यांकन का दृष्टिकोण ही अलग होता। फिर भी, सामान्यतः एक हुकूमत के मातहत को हुकूमत के समान ही स्वतन्त्र और मौलिक ढंग से सोचने और तदनुसार कार्रवाई करने का अधिकार और श्रेय कैसे दिया जा सकता है ?

ब्रिटिश सम्राट के अनुग्रह से जिलाधीश पद पर सुशोभित सुरेश्वर प्रसाद जैसे अधिकारी ने अपने को हुकूमत से अधिक योग्य और होशियार समझकर उसके नियमों का उल्लंघन कर तथा अन्य मातहत अधिकारियों की सलाह की अवहेलना करके बागियों से झुककर वार्ता क्यों की ? जेल से कैदियों को क्यों रिहा किया? बागियों को आजादी देने की घोषणा क्यों की? यह गम्भीर अनुशासनहीनता नहीं तो क्या है? क्या यह महान ब्रिटिश साम्राज्य से प्राप्त ताकत का दुरुपयोग करके सीमाहीन छूट लेना नहीं है? हुकूमत की छवि धूमिल करने का अधिकार उसे कहाँ से मिला ?

वह अहंकार है या मूर्खता ? शासन के प्रति विद्रोह अथवा बागियों से मिली-भगत ? सत्ता से स्वतन्त्र होकर कार्य करनेवाला, ईमानदार, परिश्रमी और प्रतिभाशाली होकर भी, सत्ता के किसी जिम्मेदार पद पर बैठने के योग्य कैसे समझा जा सकता है ? वास्तविकता तो यह है कि ऐसा अधिकारी विश्वास-योग्य नहीं होता, उसमें साहस की कमी होती है और किसी भी दबाव में आकर वह सत्ता या उसके चरित्र, स्वाभिमान और शान की रक्षा करने में अक्षम सिद्ध होता है। उसके किसी कृत्य से यदि शासन को लाभ हो भी जाता है तो उसका श्रेय ऐसे मातहत को देना सत्ता और उसके अनुशासन के लिए खतरनाक है।

दुनिया के गरीब देशों को उन्नत, सभ्य एवं लोकतान्त्रिक बनाने के गर्व और दम्भ से फूला शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य का यह नवागत प्रशासक भी कम दम्भी और अन्यायी नहीं था। वह निरंकुश अधिकार और निर्मम इरादों के साथ एक छोटे-से जिले के लोगों की स्वातन्त्र्य आकांक्षाओं को हमेशा-हमेशा के लिए नष्ट करने के लिए आया था इस विश्वास से लबालब कि आधुनिक शस्त्रों की प्रशिक्षित और कुशल हिंसा से वह निहत्थे लोगों की भावनाओं को कुचल देगा। कितना आसान हैं इस लक्ष्य को प्राप्त करना क्योंकि लड़ना तो ऐसे शस्त्रविहीन लोगों से है, जो शान्ति, अहिंसा, सत्याग्रह, सच्चाई, नैतिक-आत्मिक शक्ति आदि शब्दों से अपनी दुर्बलता ढकने की कोशिश करते रहते हैं। ऐसे बड़बोले लोगों में आजादी के लिए संघर्ष करने की तमन्ना भी कितनी निरर्थक है !

परन्तु, जब वह लम्बे डील-डीलवाला प्रशासक बलिया स्टेशन के प्लेटफार्म पर उतरा तो ऐसा महसूस हुआ उसे, जैसे वहाँ की धरती भीतर से गुर्रा रही हो। वह स्वयं हिल गया और उसका हृदय काँपने लगा। उसके अन्दर भी एक आवाज उठी सवाल की तरह कि 'कहाँ जा रहे हो ? लोगों को इसलिए दंड देने और तबाह करने कि वे आजादी और समानता चाहते हैं? तुम अंग्रेज हो, तुम्हें यदि कोई राजनीतिक और आर्थिक गुलामी में रखना चाहे तो क्या करोगे?' ऐसे प्रश्न का जो भी उत्तर मिला, उससे वह बेहद घबरा गया। इसके पश्चात एक अन्य विचार से तो और भी भयभीत हुआ कि आधुनिक शस्त्रों की हिंसा से यदि आजादी की आकांक्षाओं को समाप्त नहीं किया जा सका तो क्या होगा ? लेकिन फौरन ही, उसने कुछ क्षणों के भीतर उठे तर्क-वितर्क तथा न्याय सजग

विचारों को खारिज करके अपने साम्राज्यवादी, शासकीय कर्तव्यों का स्मरण किया और एक झूठ के लिए, गलत तरीकों से आनेवाली टकरावहट को सत्य की लड़ाई समझते हुए अतिशय क्रोध, प्रतिशोध और हिंसा की अपराजेय जिदद से भर उठा वह।

क्रूर, अन्यायी और अनधिकारी सत्ता के निरंकुश अहंकार से लैस वह एक सशस्त्र सैन्य के साथ उसकी कुख्यात लॉरी पर सवार होकर चल पड़ा शिकार पर झपटूटा मारने के लिए। साथ में पुलिस कप्तान और गुप्तचर अधिकारी जितेन्द्र लाल और मनव्वर अली भी थे। मोटे टॉप के नीचे उसका चेहरा खूंखार इरादों से तना और होंठ एक-दूसरे पर चढ़े तथा पतले बाज की तरह पानी तथा खतरनाक !

जितेन्द्रलाल को पहले ही एक मुखबिर से पता लग चुका था कि जिला कांग्रेस के अध्यक्ष रात में ही शहर छोड़ चुके थे। सदाशयव्रत भी कुछ वाकी थानों पर कब्जा करने के लिए जिला के पश्चिमी क्षेत्र के लिए जेल से रिहा होने के दूसरे दिन ही प्रस्थान कर गए। अब रमाशंकर ही शहर के सबसे महत्वपूर्ण नेता बच रहे थे, जिनके खिलाफ गुप्तचर विभाग ने ढेर सारे सबूत इकट्ठा कर रखे थे। हालांकि रमाशंकर को विश्वास नहीं था कि सेना इतनी जल्दी आ पहुंचेगी, लेकिन चौकन्ना होकर आगे के कार्यक्रम की योजना बना रखी थी उन्होंने। यदि कांग्रेस अध्यक्ष अगले दिन संघर्ष का विगुल बजा देते हैं तो लड़ाई अबकी और तेज और पक्की होगी, इसमें सन्देह नहीं। भरसक वह कोशिश करेंगे कि पहले की तरह इस बार भी उनकी गिरफ्तारी न हो और शहर में ही भूमिगत रहकर और जोर-शोर से प्रतिरोध और स्वातन्त्र्य आंदोलन का संचालन करें। उन्होंने सोच लिया था कि अगले दिन सुबह ही अध्यक्षजी के पास पहुंचकर संघर्ष की योजना पर विस्तार से बात करेंगे और हासिल के निर्देश पर आगे की कार्रवाई करेंगे।

एक चिंता उन्हें ढेला की भी थी। यदि आंदोलन चलता रहा तो ढेला को भवाली कैसे पहुँचाया जाएगा, यह एक समस्या थी। मुश्किल तो यह है कि वादा के अनुसार गोबर्धन ने कोई सूचना भी नहीं भेजी कि क्या फैसला किया उसने। खैर, शाम को जब वह घर आए तो गोवर्धन का चौकीदार एक पत्र के साथ उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। गोवर्धन ने अपने संक्षिप्त पत्र में लिखा था कि भवाली में चिकित्सा का खर्चा उठाने के लिए वह तैयार है और जैसा निर्देश मिलेगा, उसी के अनुसार हर महीने खर्चा भेज दिया करेगा। उत्तर में रमाशंकर ने खुशी प्रकट करते हुए लिखा था कि परिस्थिति अनुकूल होते ही उनका छोटा भाई इस सम्बन्ध में उनसे मिलेगा। और वही इस सहायता कार्यक्रम के संचालन में मदद देगा, क्योंकि कुछ कारणों से अनिश्चित है कि वह सदा घर पर मिलेंगे ही।

उसके बाद रमाशंकर ने अपने छोटे भाई को विस्तार से समझाया। और फिर वह नफीस, राममूरत, नीलाश तथा अन्य साथियों के साथ विचार-विमर्श करने निकल गए कि लड़ाई पुनः आरम्भहोने पर किस तरह फिर हड़ताल, जुलूस और जन-प्रदर्शन को संघटित और संचालित किया जाएगा, क्योंकि 'करो या मरो' की यह लड़ाई लम्बी है और आजादी मिलने तक जारी रहनेवाली है। रात में देर से घर आकर भोजन करने के बाद वह सो गए, लेकिन दो घंटे बाद उनकी अधूरी नींद की गोली की धायें-धायें से खुल गई और वह हडबड़ाकर उठ गए। फिर पत्नी और छोटे भाई के बार-बार मना करने पर भी

बनियान-लुंगी में ही बाहर निकल गए। दरवाजे पर खड़े होकर ध्यान से सुनने के बाद भी कोई असामान्य बात नहीं गायब हुई। तब वह पूरब से पश्चिम, पूरी गली में टहल आए। कहीं कोई आदमी भी नजर नहीं आया। न बातचीत और न ही कोई शोरगुल। हाँ, एक पल के लिए ऐसा अवश्य लगा कि चारों ओर छाए सन्नाटे में से किसी के कराहने की क्षीण-सी आवाज निकल रही है। क्या यह उनके ही भय का कोई रूप है? वह हँसे, फिर लौटकर अपने बिस्तर पर लेट गए और नींद के लिए करवट बदलने लगे।

परन्तु, बहुत देर नहीं हुई कि बाहर दरवाजे जोर-जार से पीटने की आवाजें आने लगती हैं। साथ

ही भर-भर भद्दी गालियाँ और बाहर न निकलने पर दरवाजा तोड़ देने की धमकियाँ। अब सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं रही। रमाशंकर उठ बैठे और तन गए। चेहरा तमतमाने लगा। भाई ने कहा कि खपड़े पर आँचल पीछे से कूदकर निकल जाएँ। उन्होंने भाई और घरवालों को फटकार दिया। क्या वह देश, आजादी, राष्ट्रीय नेताओं तथा स्वयं अपने लिए भद्दी गालियाँ सुनते रहें और उसके प्रत्युत्तर दिए, क्या अपमान का जहर पीते हुए पूँछ दबाकर भाग जाएँ ? नहीं, ऐसा नहीं होगा। इसकी इस हिंसात्मक चुनौती का जयाय है उनके पास। वह उठखड़ हुए और आजादी के लिए जुल्म-विरोधी शिखर उत्साह से भरकर अपनी मुट्ठी से छाती पर प्रहार करते हुए चिल्ला पड़े :

"महात्मा गांधी की जय

अंग्रेजो, भारत छोड़ो

इंकलाब जिंदाबाद।"

फिर सिंह की तरह झूमते हुए आगे बढ़कर उन्होंने दरवाजा खोल दिया। उनकी छाती निकली हुई थी। वह गर्दन टेढ़ी करके, नेदरसोल को सत्तरी, चुनीती-भरी आँखों से घूर रहे थे, लेकिन हाय बढ़ेगा फिर नारे लगाने की उनकी कोशिश सफल नहीं हुई, क्योंकि आवाज निकलने के पहले उनकी छाती पर जोर से बन्दूक के कुन्दे का प्रहार हुआ। फिर तो फौजी उन पर टूट पड़े और लात, घूसा तथा कुन्दों से उन पर प्रहार होने लगा।

"गोली मार दो... शूट हिम!" नेदरसोल चिल्लाया।

"नहीं हुजूर, यह खतरनाक सरगना है, अभी खत्म करना ठीक न होगा। अभी तो इसे ले चलिए, काफी कुछ सुराग मिलेगा इससे।" पुलिस कप्तान ने अंग्रेजी में ही एडमिनिस्ट्रेटर को बताया।

"देन टेक हिम अवे... ले जाओ इसे."

इसके पश्चात लात-मुक्कों की बौछार के साथ बंदूकों के कुन्दों से ठेल-ठेलकर लॉरी के पास ले जाया गया और उसमें चढ़ाकर नीचे पटक दिया गया।

अंग्रेज प्रशासक उन्मत्त था। आजादी के आंदोलन के लिए जनता को भरपूर मजा चखाना चाहता था वह। उसकी खूनी लॉरी घुर्र-घुर्र घूम-घूमकर देशभक्तों को बीनने लगी। जो मिले और गिरफ्तार किए गए, उनमें रमाशंकर के बाद दूसरा नंबर राममूरत का। उसके खिलाफ भी गुप्तचर विभाग के पास काफी गवाही थे। उसके नाटे तथा दुबले-पतले शरीर को देखकर नेदरसोल को बड़ा अचंभा हुआ। गिरफ्तारी के समय राममूरत सहमा सहमा नजर आया। उसकी चौड़ी झुकी थीं। इससे उत्साहित होकर नेदरसोल ने उससे चिल्लाकर कहा :

"गाँधी मुरदाबाद बोले...हम छोड़ देगा..."

राममूरत चौकन्ना हो गया। उसने सिर बढ़ाकर गुस्से से एडमिनिस्ट्रेटर को देखा। फिर अपनी दबी-सी आवाज में चिल्ला पड़ा :

"ब्रिटिश सरकार मुर्दाबाद।"

आगे उसे बोला नहीं दिया गया। फिर तो नफीस, जगदम्बिका, वासुदेव को भी उनके घरों से उठा लिया गया। लॉरी तेजी से घूम रही थी। उसमें बैठे विदेशी सरकार के सिपाही बाहर बन्दूकें तानकर भय और आतंक फैला रहे थे। गुदड़ी बाजार, पसरहट्टा, भृगुआश्रम, काजीपुरा, जापलिनगंज, गुदड़ी बाजार-कोई भी मुहल्ला नहीं छूटा और हर जगह गिरफ्तारियाँ हुई, यहाँ तक कि धनी, गरीब तथा मामूली सन्देह या निर्देश पर कई निर्दोष लोग भी पकड़े गए, धनियों से बड़ी रकमें वसूल की गई और गरीब निर्दोष लोगों को भी अच्छी तरह धुनाई करने के बाद ही छोड़ दिया गया। यह कार्य करते-करते सुबह हो गई।

दशहत और आतंक-भरा सवेरा था वह जिसमें उस खुशी, उल्लास और निश्चिन्तता का नामोनिशान नहीं था, जो फौज आने की अफवाह के बीच भी कल तक विद्यामान था। अनेक

देशभक्तों के मकान जला दिए गए, जिनसे धुआँ उठ रहा था महिलाओं और बच्चों के क्रन्दन के साथ। बाहर निर्जन है. दकानें बन्द हैं. हवा सहमी है. धरती थरथरा रही है और आकाश झुक आया है। और इन सबके बीच विदेशी गुलामी के प्रशासक के सैकड़ों अनुचर अपने बटों के तले भारतीय जनता के अरमानों को रौंद रहे हैं।

इस दिन ही नदी मार्ग से दूसरी फौजी टुकड़ी भी पहुँची थी, जिसका कमांडर मार्श स्मिथ नामक एक अन्य अधिकारी था। इसके बाद तो दमन और उत्पीडन की बर्बर शक्ति और कई गुना बढ़ गई। इतनी गिरफ्तारियाँ हई थीं कि हवालात में रखने की पर्याप्त जगह नहीं थी। मुश्किल यह भी है कि ऐसे सीमित स्थान में यातना के सभी हौसले परे भी नहीं किए जा सकते। अतः काफी सूझबूझ और दूरदर्शिता से कचहरी के सामने मैदान को चुना गया और गिरफ्तार देशभक्तों को वहीं लाकर पटक दिया गया। फिर मानव पार्थिव शरीरों को भुर्ता, कीमा और मसाला बनाने के यातना कारखाने के रूप में उस मैदान को बदल दिया गया, जहाँ बीते दिनों में कई महत्त्वपूर्ण समारोह, हॉकी मैच आदि हो चुके थे।

विदेशी स्वामियों की उपस्थिति में वफादारी प्रदर्शित व प्रमाणित की जाने लगी शक्ति से भी अधिक शक्ति के साथ। यहाँ किसी चीज से परहेज नहीं है, लात, घूसा, थप्पड़, बूट, लाठी, कुन्दा, संगीन आदि सबकी अनुमति है। निशाने पर हर अंग है। वे लहूलुहान हैं, छटपटाते हैं। उनकी चिल्लाहटों, कराहों, जोशीले नारों में ताकत नहीं है और वे बेहोश होते अस्फुट, क्षीण और लड़खड़ाते शब्दों में बदल गए हैं। मार पर भी मुस्कुराने और हँसनेवाला नफीस भी गुस्से में चिल्ला पड़ता है:

"भगतसिंह जिन्दाबाद।

अशफाकुल्ला जिन्दाबाद।

अंग्रेजो, भारत छोड़ो।"

फिर तो उसे पटककर कई लोग लातों से चहलने लगते हैं। लेकिन अनेक विदेशी और हिन्दुस्तानी अधिकारियों के बीच में खड़े परम सन्तुष्ट प्रशासक को भी उस समय पता नहीं क्यों शर्म आ गई, जब बुरी तरह क्षत-विक्षत दुबले-पतले राममूरत तथा साठ वर्षीय मोटे, शिथिल देशभक्त सुरेन्द्र प्रसाद को पास ही के वृक्ष पर चढ़ने को मजबूर किया गया और जब वे बड़ी मुश्किल से कुछ दूर ऊपर चढ़े तो उनके कूल्हों में संगीन गड़ाकर नीचे गिरा दिया गया।

"वेल डन... गो ऑन।" कहता हुआ नेदरसोल कुछ अंगरक्षकों और अधिकारियों के साथ वहाँ से फौरन खिसक गया। वास्तव में जब वह अपने बँगले में पहुँचकर, एकान्त कमरे में स्थिर होकर बैठा, तभी उसे स्पष्ट महसूस हुआ कि वह लज्जित है। लेकिन क्यों ? यह सोचने पर, आश्चर्य है कि उसे कोई कारण समझ में नहीं आया। तब फौरन विरोध और खंडन में यह तर्क सहज उपलब्ध हो गया कि उसके जैसे शक्तिशाली, सफल और विजेता के लिए न कोई ऐसा कारण है और न ही हो सकता है। और अब उसके अन्दर एक नया चुनौती-भरा प्रश्न भी उभर आया कि किसी बागी के मुँह से 'क्षमा की गिड़गिड़ाहट' क्यों नहीं निकली ? इसके उत्तर में उसके पास गुस्से के अलावा कुछ भी नहीं था, जो गुब्बारे की तरह फूलता गया. यहाँ तक कि वह चिल्ला पड़ा:

"अर्दली ।"

बेहद डरा हुआ हिन्दुस्तानी अर्दली जब उसके सामने पूँछ निकालकर खड़ा हो गया तो उसने गुर्राकर आदेश दिया :

"वाटर...।" और जल ग्रहण करने के बाद कुछ ठंडा होकर वह अपने संकल्पों को और भी चटक खूँखार रूप-रंग देने लगा।

उधर मैदान में. गैर-काननी, अन्यायपूर्ण और मर्मान्तक दंड देने की थकान के बाद कानूनी न्यायिक प्रक्रिया उस समय आरम्भ हई. जब एक बहुत ही मामली मजिस्टेट मुकदमा चलाने के लिए

बैठा, जिसका चेहरा कर्त्तव्यपालन की गम्भीरता से काफी लटक आया था और जिसने बड़ी ही फुर्ती से सबूत पक्ष के आरोपों पर ईमानदारी से विश्वास करते हुए सभी खतरनाक कैदियों के लिए लम्बी कड़ी कैद और सार्वजनिक स्थान पर प्रत्येक को दस-दस वेंत लगाने की सजा सुना दी।

गैर-कानूनी को कानून का जामा पहनाने के नाटक की खास बात यह थी कि चौक को सबसे उपयुक्त सार्वजनिक स्थान समझा गयां और दस-दस बेंत की सजा प्रशासक के कहने से द्विगुणित करके लागू की गई। मौसम भारी था। हवा गुम-सुम। नंगे बदन पर भी नमकीन पसीना यह रहा था। चौक क्षेत्र का हर स्थान बन्दूकों के लक्ष्य पर। मकान के दरवाजे बन्द हैं या उठेंगाए हुए। एक मकान से दो छोटे बच्चे बाहर निकलते ही डरकर भीतर भाग जाते हैं। उन्होंने कुछ देख और सुन लिया है। परन्तु रमाशंकर की 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' की आवाज में वह दम नहीं रह गया है। क्रान्तिकारी विद्रोही नारे लगाने की शक्ति का उनका कोटा तो कल कचहरी मैदान में ही खर्च हो गया। तैल-पुष्ट बेंत की गूँजती सटसट आवाजों के साथ बदन पर खूनी सट्टे लवणयुक्त स्वेद में भीगकर असहनीय छरछराहट उत्पन्न करते हैं। चेहरों पर रक्त दौड़कर हर प्रहार के दर्द को थामने में मदद करता है। शरीर सिकुड़ता है, उछलता है और मुँह से कराह के साथ अस्फुट, लड़खड़ाते नारे निकलते हैं। राममूरत एक बार 'इन्कलाब जिन्दाबाद' की बरबराहट के साथ नीचे लुढ़क जाता है, लेकिन उसे जबरदस्ती फिर खड़ा करके दंड की शर्त पूरी की जाती है।

सक्रिय, कर्मठ नेताओं और कार्यकर्ताओं के फरार या गिरफ्तार हो जाने पर अब फिर मुकावला सीधे हुकूमत और जनता के बीच का हो जाता है। फौज कई टुकड़ियों में बँटकर हर तरफ से गाँवों में प्रवेश कर जाती है। गिरफ्तारियों, अन्धाधुन्ध पिटाई, मकान जलाने-फूंकने, लूटपाट करने, अन्न और चीनी के बोरे उठा ले जाने, हजारों रुपए उगाहने का आतंकी जुल्म शहर के बाद गाँवों में भी आरम्भ हो गया। मामूली शक पर लोगों को पकड़कर पिटाई की गई। अनेक सीधे-सादे, अराजनीतिक, साधारण लोगों को जरूरी काम से कहीं जाते वक्त बीच में रोका गया, उनसे 'कांग्रेस मुर्दाबाद', 'गांधी मुर्दाबाद' का नारा लगाने को कहा गया और ऐसा न करने पर उन्हें गोली से उड़ा दिया गया। ऐसे अन्यायों के विरुद्ध गाँव के लोग हजारों की संख्या में निकल आए। उनके हाथ में लाठी, भाले और गैंडासे जैसे

मामूली हथियार के अलावा कुछ भी नहीं थे, परन्तु उन्होंने आजादी, स्वाभिमान और जुल्म के प्रतिरोध के लिए कई स्थानों पर आधुनिक फौज से मोर्चा लिया, जिनमें कई मशीनगन की गोलियों से हताहत हुए।

भारत में जुल्म का सारा रिकॉर्ड टूट गया। कुछ दिनों में भय और आतंक का राज फिर कायम कर दिया गया। गाँवों के ऊपर जले हुए मकानों के धुएँ छा गए। जो राजनीतिक कार्यकर्ता गिरफ्तारियों से बचकर अन्यत्र फरार नहीं हो सके थे, वे अपने-अपने गाँव के ही इर्द-गिर्द जंगल-झाड़ियों या खेतों में छिपकर रहने लगे। दिन में उनके पास कोई व्यक्ति छिपकर खाना पहुँचा देता और रात में उनमें से कई किसी तरह गाँव पहुँच करके कुछ देर तक सो लेते और अँधेरा फटने के पहले वहाँ से निकल जाते ।

कुछ दिनों बाद ही हिन्दुस्तानी पुलिस कप्तान को हटाकर उसकी जगह पर एक अंग्रेज की नियुक्ति कर दी गई। वह भारतीय पुलिस सेवा का ही पुराना आदमी था और उसके क्रूर चरित्र में विदूषकत्व का अद्‌भुत मिश्रण था। वुड नामक इस पुलिस कप्तान की उम्र चालीस-पैंतालिस वर्ष होगी, मगर शरीर मजबूत और धड़ के अनुपात में टाँगें काफी लम्बी। वह अन्य अंग्रेज अधिकारियों की अपेक्षा हिन्दुस्तानी आसानी से बोल लेता। बात यह है कि उसमें कुछ ऐसी आदतें थीं, जो काफी दिलचस्प हैं। एक तो यही कि वह शाम और सवेरे कचहरी के पास की साफ-सुथरी सड़क पर सुटुक्की हाफ पैंट और लम्बी कमीज पहनकर दौड़ लगाता। दौड़ते समय उसका शरीर कुछ तिरछा हो जाता और देखकर लगता गोया कोई जिर्राफ भाग रहा है। दूसरी विशेष बात यह है कि उसे

उन व्यक्तियों की श्रेणी में रखा जा सकता है, जो पुलिस के सुप्रीम अधिकारी होते हुए भी पुलिस कांस्टेबल की मानसिकता से काम करते हैं, इसीलिए वह सदा आम सिपाहियों में घुल-मिल जाता और उनसे याराना ढंग से पेश आने लगता। यही नहीं, वह अपने सिपाहियों को सदा उत्साहित करता है, उनसे मेहनत कराने के साथ उनके आराम का ख्याल रखता है और मन-पसन्द कार्य करने पर चाहे देशभक्तों का उत्पीडन ही क्यों न हो, उन्हें कुछ इनाम दे देता है। क्रूरता में वह किसी अन्य अधिकारी से शायद ही उन्नीस हो, लेकिन सिपाहियों के बीच वह किंचित लोकप्रिय भी हो गया

था। सबसे अनोखी बात यह थी कि उसने आम जनता को भी पास्ट करने का एक मौलिक तरीका ढ़ लिया था यानी जिस किसी का बढ़ाया हुआ बाल देखें, उसे पकड़ मँगवाता और नाई बुलाकर उसका सिर मुड़वा देता है। इस तरह की पत्रिकाओं शहर ही में नहीं, जब वह गाँवों में जाता, वहाँ भी ऐसी हरकतों से बाज नहीं आता। पता नहीं इससे कौन-सा बड़ा उद्देश्य सिद्ध हो रहा था, शायद उस समय डॉटने-फटकारने का भी अवसर मिले। अथवा साधारण जनता से संपर्क करने या उनकी उत्तेजित भावनाओं को नरम बनाने का यह कोई नया मजाकिया उपाय हो !

यह भी सोचने की बात है कि ऐसे सख्त समय में विदूषकप्रकार के अधिकारी को नियुक्त करने का उद्देश्य क्या है ? एक कारण तो यही समझ में आता है कि हर व्यवस्था में ऐसे लोग होते हैं-और कठिन समय आने पर उन्हें कहाँ भेजा दिया जाए? इसलिए सबके साथ वे भी रहते हैं और नियम तथा निर्देशों के पालन के साथ-साथ अपनी वाली भी करते हैं। दूसरी बात यह है कि निर्मम अंग्रेज अधिकारियों को भी तो मनोरंजन की आवश्यकता रहती है। बड़े-बड़े दफ्तर तथा विद्यालयों के सख्त प्रशासकों को भी अपने आस-पास ऐसे कर्मचारियों की ज़रूरत होती है जो अपने हावभाव, बातचीत और चाल-ढाल से उसके अहं की तुष्टि के साथ उसका मनोरंजन भी कर सके। इस वजह से आश्चर्य नहीं करना चाहिए कि पुलिस कप्तान वुड, प्रशासक का चहेता अधिकारी भी है और उसकी सिफारिश पर ही उसे यहाँ भेजा गया है। वैसे भी, सत्ता में यदि नरम-गरम या तीखा-मीठा का सन्तुलन रखा जाए तो निर्ममता भी सह्य और उपयोगी बनाई जा सकती है। इस सम्बन्ध में यह भी गौर करने की बात है कि सुरेश्वर प्रसाद की जगह जो बैरट नाम का कलेक्टर आया था, वह काफी सख्त था। इस तरह नए जिलाधीश तथा नए कप्तान की अच्छी सन्तुलित जोड़ी बन गई थी।

जो भी हो, इन विचित्रताओं से पुलिस कप्तान जनता के बीच चर्चित रहने लगा। नाम और कई शब्दों के अपने भोजपुरी उच्चारणों को अनुकूल बना लेती है यहाँ की जनता, अतः पुलिस कप्तान को लकड़ी के घर 'हुड' कहना कोई अनहोनी बात नहीं है। यह संशोधन लोगों के व्यंग्य-विद्रूप भाव का भी परिचायक है। बलिया के लोग वैसे भी बड़े-बड़े बाल रखने के हमेशा खिलाफ रहे हैं और बड़ी पर कई लोकगीत भी बन चुके हैं, मगर आजकल चर्चा यह होती है कि जब वह पके बाल छँटवा ही देता है तो एक व्यक्ति आखिर कितना छोटा बाल रखे ? कितने ही लोगों ने, जिनके बाल छोटे ही थे, नाई बुलाकर और छोटे करा के लिए, फिर भी धुकुधुकी लगी रही कि ये बढ़े हुए न समझ के लिए जाएँ !

इसी समय, ताड़ीबड़ागाँव नामक गाँव के पटवारी रामसुभग लाल का किस्सा बड़ा चर्चित हुआ। यह एक संतुलित पटवारी था, जिसे खसरा खतौनी में मौलिक इंद्रराज करने का कमाल हासिल था। जब वह एक ठेकेदार के मुताबिक बलिया कचहरी परिसर में करीब दस बजे एक हलवाई की दुकान पर बैठा ही था कि हलवाई ने टोका

"बाबूजी, बाल क्यों बढ़ गए हैं? जमाना खराब है, पता ही होंगे गोरा पुलिस कप्तान बड़ा खरदिमागी है। निकले बाल ही छँटवा देता है। देखिए न, मेरे बाल कितने छोटे हैं। इसी चक्कर

में रोजीना संझा-सबेरे कचहरी में रींड लगाता है। यही समय है, आता ही होगा..."

"ए? अरे कोई नाई होगा?"

"बाबूजी, नाइयों की आजकल चांदी है, उधर चले जाइए जहाँ वकील लोग रहते हैं, चींटी-चीरों की तरह नाई हरकतें मिल जाएंगी। हाँ, बाबूजी उधर जाकर बनवा लीजिए, आपके वाल पर नजर पड़ गई तो... हाँ, वहाँ से आइए तो गरम-गरम पूड़ी और चटक तरकारी खिलाता हूँ..."

रामसुभग लाल होशियार भी था। नाई सहज ही मिल गया। छाती उसके माँ-बाप कभी ही दिवंगत हो चुके थे, इसलिए उसने बाल का किस्सा ही समाप्त कर सिर ही मुड़वा लिया। लेकिन बाल में रूसी बहुत थी, जिससे कुछ चिन्तित हुआ। लेकिन उसकी बुद्धि की सराहना की जानी चाहिए क्योंकि उसने फौरन हलवाई की दुकान पर जाकर चार पूड़ियां खरीदं, तीन स्वयं खाई और शेष एक नियत पूड़ी सिर में पोतने के बाद कुत्ते को खिलाया दिया। इससे रूसी दब गई और सिर चमकने लगा, जैसे वह नहा-धोकर तेल लगाकर बैठा हो। अन्त में, हाथ-मुँह पकाने वाला विनम्र वफादारी के भाव से सामने किसी की ओर न देखता हुआ टुकुर-टुकुर देखने लगा।

दामोदर दूसरा चर्चित व्यक्ति है जो मुखबिरी का अच्छा रिकॉर्ड रहते हुए भी पुलिस कप्तान के चक्कर में आ गया। भगजोगिनी से बेवफाई और दगाबाजी के बाद उसमें काफी परिवर्तन हुए हैं। सब्जियां उलटी, यानी पत्नी के छोड़ देने के बाद उस धार्मिक कर्मकांड के मार्ग पर यह स्वयं चलने लगा है।, लोगों से मिलने-जुलना बंद हो गया है, घुमक्कड़ी और गप-सड़ाका खत्म, घर में भी सबसे बहुत आसन्न स्वर में सायँ-सायँ कहते हैं। अपनी किसी पुत्री को बुलाना भी हुआ तो इस तरह जैसे सूखा सत्तू सरक जाने पर आवाज निकलती है-'ऐ बेटी?' और शाम-सवेरे दोनों जून पूजा पर संकलित है और देर तक रामायण की चौपाइयों और दोहों का ऊँचे स्वर में पाठ करता है। रात के अँधेरे में वह नित्य मन्दिर भी जाता है और वहाँ भी देर तक पूजा-अर्चना करता है। भक्ति-भाव की कमी तो उसमें पहले भी नहीं थी, फर्क इतना ही है कि पहले वह बनवारी के अन्त और भगजोगिनी की प्राप्ति की प्रार्थना करता था और अब भक्ति गद्गद फुसफुसाहट स्वर में भगवान के चरणों में निवेदन करता है कि उसके अन्दर सात्विक विचार सदा विद्यामान रहे, सत्य के मार्ग पर वह सदा चलते रहे और उसकी पुत्रियों की अच्छी-से-अच्छी शादियाँ हो जाएँ।

परन्तु, सबसे बड़ी और हार्दिक प्रार्थना नवजात पुत्र के बारे में होती, जिसके पैदा होने के बाद वह पत्नी के अधिक निकट आ गया था। वह वक्त तो सचमुच उसकी आँखों से आँसू निकलकर गालों पर बहने लगते। वह किसी दुखिया, गरीब, भिखमंगे की तरह ईश्वर से भीख माँगता कि उसका पुत्र सदा स्वस्थ तथा खुशहाल रहे और अपने पिता की तरह कुंठित, निराश, कुटेवी और दुर्गुणी न बने बल्कि अत्यन्त बुद्धिमान, बलवान, चरित्रवान और धनवान उसका नाम रोशन करे।

फटीही जिंदगी गुजारने के बाद शायद ही किसी पति ने अपने को इतना सुधारा हो। वह बिल्कुल सादी जिंदगी पर उतर आया था। ताड़ी, शराब, पान-तंबाकू सब बंद और भोजन भी सात्विक । आश्चर्य तो यह है कि वह अपनी छोटी पुत्री से लेकर पत्नी तक, सबको 'आप' से सम्बोधित करने लगा। अब पाँव पटकते-झटकते नहीं बल्कि अत्यन्त आधारभूत कदम से घर के अन्दर प्रवेश करता या बाहर व्यवस्थित। लोग आश्चर्य करते कि क्या हो गया है इसे, बदनामी की तो कभी परवाह नहीं थी, तो बमपुलिस गली

में पत्नी द्वारा पकड़े जाने से यह क्यों चिन्तित होने लगा ? खैर, इस दुनिया में एक-से-एक पापी तर गए तो एक और सही !

वह पत्नी की बड़ी खुशामद करता है। 'आपने नाश्ता किया?' 'आप समय से खाना खा लें भाई।' पत्नी कुढ़ जाती। जब वह जवान और सुन्दर थी तो दूसरी जगह पर चक्कर चलाकर उसकी जवानी बरबाद कर दी गई और अब उसके शरीर में कुछ नहीं रहा और स्वयं भी बूढ़े रहे हैं तो

प्रेम की पगरी चलाने चले हैं। फिर भी सबकुछ जानकर यह आश्वस्त भी थी कि सब घाट का पानी पीकर जय पति वापस आ गया है तो इसमें परिवार की भलाई भी है। पति की मजबूरी हो या कोर्ड और कारण अथवा हिम्मत की कमी ही सही, उसका अभिमान, स्वाभिमान, इत्मीनान और आत्मविश्वास इस हद तक बढ़ गया कि चरणदासी से उठकर गृहस्वामिनी के पद तक पहुंच गई थी जल्दी ही। और पुत्र होने के बाद तो अपने को योग्य अधिकारिणी भी समझने लगी जिसके परिणामस्वरूप उसके रहन-सहन, पहनावे-ओढ़ावे और बोलचाल में विचित्र लापरवाही आ गई और वह किसी से भी यहाँ तक कि पति और पड़ोसिनों से भी सीधे मुँह बात नहीं करती और जब वहुत खुश होती तो दामोदर को बच्चा थमा देती।

दामोदर दिन-पर-दिन पूजा-पाठ, अध्यात्म की ओर बढ़ता हुआ सोझिया होता गया। कभी-कभी उसके अन्दर कुछ कौंध उठता, और उसे भगजोगिनी की याद आती और इस खयाल से अपने पर गर्व होता कि जीवन में उसने जो चाहा पाया। परन्तु फौरन वह डर भी जाता। जब वह पवित्र जीवन बिताकर परिवार को सुख देना चाहता है तो ऐसा विचार क्यों आ रहा है? ऐसे वक्त में वह और धीमे-धीमे बोलता, धीमे-धीमे चलता, परिवार के किसी व्यक्ति को भी सीधी आँखों से नहीं देख पाता, गोया लोग उसकी भावनाओं को पढ़ लेंगे।

इस तरह पति परमेश्वर से पति महात्मा बना हुआ दामोदर बलिया के पास ही के एक गाँव में पुलिस कप्तान वुड के आदमियों द्वारा पकड़ मँगवाया गया, क्योंकि उसके बाल बढ़े हुए थे। वह अपनी लड़की की शादी की बात चलाने आगे के एक गाँव तक पैदल ही जा रहा था। उसने बहुत दलील दी कि कांग्रेसी नहीं है वह, पुलिस का ही आदमी है, अपनी लड़की की शादी के सिलसिले में जा रहा है, उसे रोका गया या उसके बाल काटे गए तो बड़ी बदनामी होगी और काम बिगड़ जाएगा। परन्तु, पुलिस और फौज के सिपाहियों में कोई भी ऐसा नहीं था, जो उसे पहचानता हो। रियायत उसके साथ यही की गई कि उसकी दाढ़ी-मूँछ छोड़ दी गई, लेकिन सिर मुड़वाकर मुक्त कर दिया गया।

काम तो उसका बिगड़ गया और वह गाँव के बाजार से एक अँगोछा खरीदकर तथा उससे अपना सिर ढककर घर लौट आया। लेकिन यह बात छिपी नहीं रही और इससे शहर के लोगों का भी कुछ मनोरंजन हुआ। फिर भी, फौज के जुल्म तथा पुलिस कप्तान की हरकतों से कोई खुश नहीं था, खास तरह से दो नौजवानों ने तो प्रशासक और कप्तान के नाम गुमनाम पत्र भी भेजे, जिनमें गम्भीर

परिणाम की चेतावनी देते हुए दृढ़ संकल्प प्रकट किया गया था कि अंग्रेज शासन को जल्दी समाप्त कर दिया जाएगा।

इन्हीं सब घटनाओं के बीच एक दिन यदुनन्दन प्रसाद, जो सिविक गार्ड के कमांडर थे, शाम गाढ़ी होते ही जल्दी-जल्दी सीतानाथ के घर में घुसे। वह अपने भानजे नीलेश को लेकर ही चिन्तित. उस समय से थे, जब से जेल में राममूरत की मृत्यु हो गई थी।

राममूरत की हालत उसी समय से खराब थी, जब कचहरी में गिरफ्तारी के बाद जबरदस्त पिटाई की गई और अगले ही दिन बीस बेंत लगे थे। उसका पूरा शरीर ऊपर से नीचे तक घावों से भरा था। वह ठीक से बोल नहीं पाता था, यहाँ तक कि करवट बदलने में भी असमर्थ था। तीन-चार दिनों बाद उसे बुखार आ गया और सरेशाम की हालत में पहुँचकर बरबराने लगा। जेल में आने पर भी हुकूमत के लोग अन्य कैदियों के साथ उसे भी बार-बार डरा-धमकाकर दबाव डालते थे कि यह माफी माँग ले तो फौरन छोड़ दिया जाएगा। राममूरत बोल तो नहीं पाता था, लेकिन इस प्रस्ताव के बाद दूसरी तरफ आँखें कर लेता।

उसकी हालत दिन-पर-दिन खराब होती गई, किन्तु उसके घावों की चिकित्सा की कोई परवाह नहीं की गई। जब बुखार में बरबराहट के दौरान उसकी आँखें उलटने लगीं और शरीर निश्चेष्ट-सा

दिखाई देने लगा तो जेल का डॉक्टर बुलाया गया, जो उसकी परीक्षा करते ही इतना बवरा गया कि एक लाल मिक्सचर पिलाने और मलहम लगाने का नुस्खा लिखकर फौरन रफूचक्कर हो गया।

एक सप्ताह और जीवित रहा वह, लेकिन हर दिन उसकी हालत बदतर होती गई थी। अन्तिम समय में उसकी चेतना कुछ समय के लिए लोटी और उसके मुँह से क्षीण स्वर में 'माई' निकला। किन्तु माँ-बाप तथा अन्य परिवारजन फौज के डर से पहले ही घर छोड़कर कहीं चले गए थे। आखिरी यक्त उसके पास रमाशंकर, नफीस और दी कैदी और थे।

"अगर तुम्हें जाना ही है हमें छोड़कर तो खुशी-खुशी जाओ। इस देश को तुम्हारी जरूरत है अभी, लेकिन शहीद की मौत भी देश को मजबूत करती है, उसका गौरव बढ़ाती है..." रमाशंकर ने उसके माथे को सहलाते हुए अपने को किसी तरह जब्त करके कहा।

"राममूरत, भैया... देखो, मैं तुम्हारे पास हूँ... आँखें खोलो मेरे छोटे भाई..."

नफीस ने झुककर उसके कान में धीरे से कहा था, लेकिन उसके मुँह से एक वार और 'माई' शब्द निकला, फिर वह चला गया सबको छोड़कर...

यदुनन्दन प्रसाद ने अपने शब्दों में यही किस्सा अपनी बड़ी बहन और बहनोई सीतानाय को सुनाया था। उन्होंने यह भी बताया कि उसकी मौत से आम हिन्दुस्तानी सिपाही भी बहुत दुःखो थे, वह स्वयं भी खुश नहीं हैं, लेकिन क्या करें, उनकी वकालत ठीक नहीं चलती और अचानक नौकरी छोड़ नहीं सकते। अन्त में उन्होंने और धीमे स्वर में सीतानाथ और आनन्दी को सुझाव दिया :

"भाई साहब और बहिन, में जो सुझाव दे रहा हूँ, उसे हल्का न समझिए...में सोचता हूँ, आप लोग नीलेश को कुछ दिनों के लिए कहीं और, इसी शहर में किसी और के घर में छिपा दीजिए। मैं तो अभी तक रोके हुए था, मगर बैरट कलक्टर बड़ा सख्त है, अब मेरी भी नहीं सुनी जाएगी। कुछ और गिरफ्तारियाँ होनेवाली हैं, औरतों को अभी तक छोड़ दिया गया था, लेकिन हो सकता है वे औरतें जरूर ही पकड़ी जाएँगी, जो पहले जेल जा चुकी हैं। समय खराब है, नहीं तो में अपने घर में बुला लेता। हमारे यहाँ हमेशा पुलिस के अधिकारी और सिपाही आते रहते हैं, यहाँ खतरा है। आप पड़ोस में भी किसी दूसरे घर में दो-तीन दिन के लिए छिपा दें तब भी मैं देख लूँगा। ये मेरे भानजे हैं, क्या कहूँ, पहले भी में मना कर चुका हूँ। सीआईडी वाले मेरा लेहाज करते हैं। फिर भी, अगर यहाँ पुलिस का छापा नीलेश की तलाशी के लिए पड़ जाए, तो मैं कुछ कर नहीं सकूँगा। अगले दो दिन बड़े खतरनाक हैं..."

"छापा पड़ेगा ? छापा पड़ना ही है तो पड़ जाए। अब इनको कहाँ भेज दूँ भाई ? सीतानाय तो हमेशा अंग्रेज हुकूमत की काबिलियत के कायल रहे। वाह, क्या रोव-दाव हे अंग्रेज अफसरों का ! हुकूमत चलाना तो कोई इनसे सीखे। मगर, अपना लड़का ही कांग्रेसी बन गया तो मैं क्या करू भाई ? अरे गिरफ्तार होना है तो हो जाए। यह तो आबोदाना की बात है। यह इतना खुराफात करते रहे, बेरिया भी जाकर लड़-भिड़ आए, जब जेल का आवोदाना नहीं लिखा था तो कैसे जेल जाते भाई? और अब जेल का आबोदाना लिखा है इनकी किस्मत में तो आप क्या वायसराय भी आ जाएँ तो इनको जेल जाने से कोई रोक नहीं सकता...।" सीतानाथ ने गुस्से में नाटकीय अन्दाज से हाथ नचाते हुए कहा।

आनन्दी का चेहरा गम्भीर हो गया और उसने नाराजी से अपने पति को देखने के बाद भाई गिड़गिड़ाते से स्वर में कहा, "नहीं भइया, जैसे इतने दिनों तक पुलिस को रोके रहे, एक-दो दिन और कुछ न होने पावे हमारे बबुआ को। मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ..." से

"ऐसी बात क्यों कहती हो, बहिन? मैं क्या गैर हूँ? एक-डेढ़ साल से देख रहा हूँ, इन लोगों ने नाक में दम कर रखा है। ये लोग बड़े हो गए हैं, कुछ कहने की इच्छा नहीं होती। फिर भी एक-दो

बार मना कर चुका है। जब मेरा जोर नहीं चलता तो क्या करूँ बहिन ? भाई साहब का दिल साफ है. मगर यह सच्चाई का जमाना नहीं है, अगर इसी तरह सोचकर हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहेंगे तो भारी संकट से कोई बचा नहीं सकेगा। जी नहीं माना तो आकर बता दिया !"

"अरे नहीं भइया, इनकी बातों में न आओ। करना धरना कुछ नहीं. बातों का बहाना बनाकर बैठे रहना। मैं आज ही इन्तजाम करती हैं... मैं सामनेवाले भाई साहब के यहाँ जाती हैं. हाथ जोड़ेंगी...मना नहीं करेंगे वे लोग, बहुत अच्छे हैं सभी..."

"हाँ बहिन, चुपके-से, जब सब सो जाएँ, इनको दो-तीन दिन तक वहाँ छिपा दो... किसी को भी मालूम न हो... तीन दिन बीत जाए और खतरा टल जाए तो मैं आकर बता दूँगा...फिर इनको शतवाली गाड़ी से बनारस या गाजीपुर भेज देना... नहीं बनारस ही ठीक होगा। वहीं कुछ दिन रहें और जब कॉलेज खुल जाए तो वहीं चुपचाप कॉलेज जाकर पढ़ाई करें। हाँ, बता देना उनको कि बनारस में भी खुराफात से बचें और बलिया तो एक-दो साल तक न आयें तो ही अच्छा है..."

"अरे कैसा बलिया भैया ? अरे, यह बनारस में ही बी.ए., एम.ए. कर लें, उसी के बाद इधर की तरफ मुँह करें। नहीं ठीक है, आप जमा खातिर रखें भइया, सामने रतनसिंह मुख्तार बड़े ही झारीफ इंसान हैं, मैं अभी जाकर उनसे विनती करता हूँ। ठीक है न शैलजा की अम्मा ! अरे, यही तो हमारी सेक्रेटरी हैं, इनकी राय से ही तो हमारा काम सुचारू रूप से चलता है !" सीतानाथ ठहाका तगाकर हँस पड़े। इससे दोनों काम हो गए, यानी साले के सामने कुछ हँसी-मजाक भी हो गया और आनन्दी को भी कुछ इत्मीनान मिला और गुस्सा कम हुआ।

50

हर रोज प्रतीक्षा के बाद भी गिरफ्तारी न होने से नीलेश बहुत निराश है। वही क्या, छोटा भाई वीरेश भी सोचता है कि छात्र आन्दोलन तथा प्रदर्शन में बढ़-चढ़कर भाग लेने तथा गुदड़ी बाजार के शहीदों के दाह-संस्कार में दौड़-धूप करने की वजह से पुलिस उसकी भी सरगर्मी से तलाश कर रही होगी। वीरेश कई बार छाती निकालकर बाहर सड़क पर टहलता है कि पुलिसवाले अच्छी तरह देखकर पहचान लें कि यही वह लड़का है जो उस दिन नगवाँ तक गया था और कुछ न होने पर वह सन्तुष्ट भी है यह सोचकर कि बड़े भाई की भी तो नहीं हुई है।

कारण मालूम होने पर नीलेश को बहुत गुस्सा आया। अपने मामा तथा सिविक गार्ड के जिला कमांडर यदुनन्दन प्रसाद को यह सरकारी पिट्ठू समझता है और उनकी कोई बात या सलाह एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देता है; फिर उन्हें क्या हक है कि जब वह देश की स्वतन्त्रता के लिए कुछ कर रहा है तो वह गलत सूचना देकर उसे चापलूस या निर्दोष साबित करने की कोशिशों द्वारा छूट दिलवाएँ ! ऐसी कृपा का अपमान नहीं सह सकता वह, लेकिन क्या करे और कहाँ जाए, जबकि अधिसंख्यक गिरफ्तार हैं, शेष फरार; तथा दमन एवं उत्पीड़न से आन्दोलन हर जगह दब गया है।

अधिक परेशानी तो उसे सामने रतनसिंह के मकान में दो-तीन दिन छिपने के फैसले को लेकर हुई है। एक तो वह पहले से ही संकोची और शर्माला, फिर वे लोग क्या सोचेंगे, विशेष रूप से नम्रता ? जब उसके सभी साथी आगे बढ़कर देश की आजादी के लिए विदेशी हुकूमत का जुल्म सह रहे हैं, प्राण दे रहे हैं, वह क्यों बचा हुआ है, घर-घर छिप रहा है गीदड़ की तरह ? यह तो उन लोगों के प्रति अन्याय भी

है-उनकी सहृदयता का अनुचित लाभ उठाने के फलस्वरूप उन्हीं पर कोई संकट आ गया तो कितना गलत होगा?

"मैं नहीं जाऊँगा, दूसरे के घर में कायर की तरह छिपना मुझे पसन्द नहीं है। मुझे गिरफ्तारी का डर नहीं, मैं जल्दी गिरफ्तार होना भी चाहता हूँ।"

आनन्दी रोने-गिडगिडाने लगी, "अरे भैया, ऐसा न कहो, बाहर से गोरे आए हैं, वे मार देते हैं। मैं तुम्हें यहाँ नहीं रहने दूँगी। वे लोग भी अपने ही घर की तरह हैं, कितना मानते हैं वे लोग, सबका बड़ा खयाल रखते हैं। किसी बात के लिए मना नहीं करते। तुम्हारे बाबुजी के मुँह से बात निकलते ही कुछ सोचा-विचारा नहीं, झट बोले, 'अरे भाई साहब, यह कोई कहने की बात है, फौरन भेज दीजिए, यह भी उनका ही घर है। हमारे यहाँ किसी बात का डर नहीं है। बात तो ठीक हो है. मैं कम मानती हूँ उन लोगों को ? नम्रता जब आती है. प्रेग से बैठाती है, कुछ खाने को देती हूँ तो पसन्द से खा लेती है...।"

उनकी बातचीत सुनकर सीतानाथ अपने कमरे से निकलकर सोत्साह बोले, "हाँ मइया, कैसा संकोच ? बड़े हिम्मती हैं बाबू रतनसिंह, कहने लगे, यह तो फक्र की बात है कि लड़का देश की सेवा कर रहा है। अरे यह भी घर है, भाई, जैसे हम हैं वैसे वे भी हैं। यही खाते-पीते हैं जो हम। तुम उनको जानते हो, रोज देखते हो, रोज मिलते हो, उनकी लड़की यहाँ आती है, सबका बड़ा खयात रखती है, तुमको बेहद मानती-जानती है... वहाँ किसी बात की तकलीफ थोड़े ही है...""

"क्या मुँह में जो आता है निकालना... कुछ हब-खब नहीं। लड़की तो बहुत घमंडी है, उस साल क्या कह दिया था कि बोलचाल बन्द हो गई थी... वह तो मैं इतना मानती-जानती हूँ कि उन लोगों को भी लेहाज करना पड़ता है। मेरे जैसा कोई क्या करेगा? जो कुछ बनाती हूँ, मेजवा देती हूँ, उमेश, वीरेश के हाथ। क्या बताऊँ, मैं तो अपने बाबू को दूसरे के घर में न भेजती। सुरेश की तरह बोलतू हैं नहीं, सुरेश कहीं भी जाए मुझे चिन्ता नहीं रहेगी। इनको तो लड़कपन में कहीं साथ ले जाती थी तो शर्म से सिर झुकाकर बैठे रहते थे। यही सोच रही हूँ, वहाँ ठीक से खाएँगे-पीएंगे कैसे ?"

"अरे कुछ नहीं, दो-तीन दिन तो चुटकी बजाते बीत जाएँगे। नहीं, तुम्हारा कहना ठीक है, यहाँ खयाल-बात न किया जाता तो कोई झाँकने भी न आता यहाँ। तब कहाँ बाबू रतनसिंह, कहाँ उनकी धर्मपत्नी और कहाँ उनकी बेटी ? ठीक है, सब प्रभु की कृपा है।"

इतना कहकर सीतानाथ अपने कमरे में लौट गए। नीलेश तो पहले ही गुस्से से जलता-भुनता वहाँ से टल गया था। अब उसकी समझ में आया संकोच का एक बड़ा कारण यह भी है कि दोनों घरों के लोग उनकी परस्पर निकटता समझते हैं। उसको एक-एक घटना याद आने लगी-गाजीपुर से नौका यात्रा में पास बैठने का अकल्पनीय सुख, गौसपुर गंगा घाट पर समर्पित हृदय के कम्पित सौन्दर्य का दर्शन व विद्युत अहसास, शहर में आए आन्दोलनकारी जनसमुदाय के भोज में हाथों का स्पर्श, अनजान-सी

छीना-झपटी, कृत्रिम आक्रामक मुद्राएँ और अस्फुट उखड़ी बातें, मोती की तरह चमकती पीछा करती आँखें और सयत्न निकटता के विरल अवसरों पर श्वासों की टकराहट। वह ठगा-सा रह गया यह सोचकर कि इन कुछ ही दिनों में नम्रता ने उसको अपने काफी निकट खींच लिया है। क्या यह उचित है ऐसे समय में, जब देश में जीवन-मरण का संघर्ष हो रहा है, जिसमें हर बन्धन छोड़कर सर्वस्व बलिदान करने की जरूरत है? नारी-प्रेम क्या आन्दोलन का सहायक है या अवरोधक ? क्या इससे किसी आन्दोलन की पवित्रता दूषित होती है ?

इन प्रश्नों का उत्तर उसके पास नहीं है। उसे नारी-पुरुष सम्बन्धों के बारे में अनेक सन्तों, यहाँ तक कि गांधीजी के विचारों की याद आई तब उसे लगा था कि जीवन-संघर्षों के सभी हथियार नीचे रखवाकर और दुर्बल बनाकर आत्म-समर्पण के लिए बाध्य करती है नारी! उसे निराशा हुई, अवसाद से भर गया वह फिर भी उसका प्रेम-भाव कम नहीं हुआ, जो शिखर पर पहुँचकर अनु के रूप में पिघलना चाहता है। लेकिन जिसको वह इतना प्यार करता है, उसी के घर में एक कायर

भगोडे की तरह छिपकर अपने स्वाभिमान की रक्षा कैसे कर सकेगा वह ?

उस समय तो बहुत छोटा महसूस करने लगा अपने को, जब रतनसिंह मुख्तार ही उसे लेने चले आए। ऐसा लगा, उसका शरीर, उसके हाथ-पाँव सभी काठ के हैं, उसमें हाड़-मांस, प्राण कुछ भी नहीं है, न कोई भावना, न कोई आदर्श और इनके घर की तरफ एक कदम भी रखने में असमर्थ

"नीलेशजी, जैसी जरूरत हो, वैसा ही करना चाहिए, जान-बूझकर गिरफ्तार होने में कोई बहादुरी नहीं है। अभी तो बहुत कुछ करना है। मेरी भी राय है कि मेरे घर में चलकर रहिए, कोई तकलीफ नहीं होने देंगे। पढ़ने-लिखने के लिए अखबार, किताबें, रिसाले मिल जाएँगे। आपको बताऊँ, पढ़ाई के जमाने में मेरा भी रिवोल्यूशनरीज का साथ था, मैं भी वतन के लिए कुछ करना चाहता था, मगर घर के हालात ऐसे थे... अरे, अपने खानदान, माँ-बाप के लिए भी तो हमारा फर्ज होता है कोई... खैर वह सब बीत गया। गरज यह है कि आपको लेने आया हूँ..."

रतनसिंह मुस्कुराकर चुप हो गए और बाहर की तरफ देखने लगे, ग्यारह बजे रात की सूनी सड़क की तरफ। लेकिन विरोध की इच्छा के बावजूद नीलेश निरुत्तर रहकर फौरन उठ खड़ा हुआ। "ठीक है, वहाँ बिस्तरा है। पहनने के लिए एक-दो कपड़े ले लीजिए... खैर, बाद में भी कोई बच्चा पहुँचा देगा। मैं चल रहा हूँ, आप आ जाइए, देर न कीजिए।"

नीलेश जानता है, वह जल्दी खाते और सोते हैं और उसी के लिए चिन्ताग्रस्त होकर अभी तक जगे हैं। वह अधिक रुक नहीं सका और एक झोले में कुछ कपड़े और एकाध जरूरी सामान रखकर चल पड़ा। सामान्य दिनों में इस समय लाला की दुकान पर मोटिया-मजूर इकट्ठे होकर आल्हा वगैरह गाकर दिन-भर की थकान मिटाते रहते हैं, लेकिन अब चारों ओर घोर अन्धकार था निःशब्द, जिससे लज्जा और

हीनता से सिकुड़ा अपना काला चेहरा स्पष्ट देख रहा था वह। उसके पैर बेतुके ढंग से पड़कर आपस में टकरा रहे थे और उसे होश उस समय आया, जब रतनसिंह के नौकर ने ही मकान से नीचे उतरकर उसके हाथ से झोला ले लिया।

यह सिर झुकाए नौकर के पीछे चल रहा था, मगर घर के अन्दर कोई दिखाई न पड़ा, यहाँ तक कि रतनसिंह की पत्नी भी नहीं, जैसे सभी उससे बच रहे हों, अथवा परिस्थिति की जरूरत समझकर अतिरिक्त सावधानी बरत रहे हों। चाहे जो भी हो, इससे वह कुछ राहत महसूस करने लगा। उसे पीछे की वही कोठरी दी गई, जो आगे के अन्य कमरों से अलग थी और जहाँ नम्रता अक्सर परेशान मनःस्थिति में जाकर चुपचाप बैठी रहती थी।

कोठरी में एक चारपाई पर बिस्तरा लगा था। साफ, धुली सफेद चादर, सिरहाने खूबसूरत फूल कढ़ा सफेद गिलाफवाला तकिया, पैंताने ओढ़ने के लिए चपेतकर रखी रेशमी चादर। पास ही में एक स्टूल पर रखी लालटेन की ललछऊँ रोशनी उस छोटी-सी कोठरी के लिए भी पर्याप्त नहीं है, इसलिए और आगे दीवार से सटाकर रखी मेज की वस्तुएँ स्पष्ट नहीं हैं।BE

"बाबूजी, पानी लाऊँ ?"

"नहीं भाई, पानी पीकर चला हूँ।" नीलेश ने चारपाई पर बैठकर नौकर से कहा। "बाबूजी, बाहर निकलने पर बाएँ गुसलखाना है। दरवाजा बन्द कर दूँ?"

"अभी रहने दो... मैं खुद कर लूँगा। तुम जाओ..."

"बाबूजी, सोते समय लालटेन बुझा दीजिएगा, दरवाजा भीतर से बन्द कर लीजिएगा। स्टूल पर माचिस रखी है, जब जरूरत पड़े जला सकते हैं। चाहे तो लालटेन को जलने दीजिए बाबूजी, ऐसे ही बाहर रख दीजिए। जैसे आराम मिले, वैसे ही सोइए, बाबूजी।" लड़का अन्त में हँस पड़ा। "ठीक है, तुम जाओ, मैं कर लूँगा जैसा ठीक होगा।" नीलेश ने लड़के को देखकर झट दूसरी तरफ मुँह फेर लिया यह सोचते हुए कि वह किसकी दुर्दशा पर हँस रहा है, रटी बातें कहने में अपनी

या दूसरे के घर की छोटी कोठरी में बन्द होने पर उसकी ?

यह कुछ देर तक बैठा रहा, अन्दाजा लगाते हुए कि यह स्थान यास्तव में है कहाँ ? उसी समय एक ट्रेन के गुजरने की आवाज से उसके दिमाग में छाया धुंध एक हद तक छूट गया और यह देखने लगा कि इस मकान के पीछे कुछ ही दूरी पर स्टेशन है और फौज के आने के बाद ट्रेनों का आवागमन नियमित रूप से चालू हो गया है। सामने एक चलचित्र है, जिसमें बचपन की शरारतोंयाले फरवरी या मार्च महीने की दोपहर में वह और नम्रता रंग-बिरंगे फूलों के लालच में स्टेशन प्लेटफार्म पर पहुँचते हैं और एक

लाल फूल तोड़ते ही माली की धमकी-भरी ललकार सुनकर भाग खड़े होते हैं और रेलवे क्वार्टरों के सामने कँटीले-कंकड़ीले और लम्बे गलियारेनुमा उस घास मैदान में छिप जाते हैं, जहाँ स्कूली लड़के हर जगह से भगाए जाने पर कभी-कभी क्वार्टर निवासियों की नाराजी का खतरा उठाकर भी फुटबाल, हॉकी, गुल्ली-डंडा और क्रिकेट खेलते थे।

नम्रता ने खुश होकर नाक, कपोल और बड़ी-बड़ी पलकों से स्पर्श कराके उस लाल फूल को महसूस करने के बाद उसकी तरफ बढ़ा दिया और उसने भी वैसा ही किया। अब इस समय, वह उस दिन के फूल के रूप, रंग, आकार, कोमलता, सुगन्ध का स्मरण करने लगा, जो पता नहीं कैसे पंखुरियों की तरह होंठ फरफराती और पलकें झपकाती नम्रता में बदल गया। फिर वह नम्रता के बारे में सोचने लगा, उसके शरीर, मन, विचार, उद्देश्य, इच्छा, महत्त्वाकांक्षा के सम्बन्ध में, लेकिन असमर्थता की थकान में एक फूल की तरह उगकर, वह मुस्कुराने लगी। क्या नम्रता एक फूल है ? इस खयाल से उसका चेहरा एक स्वप्निल मुस्कान से चमकने लगा। फिर वह इस प्रश्न से गम्भीर हो गया कि उसके लिए क्या है नम्रता, जो आकर्षण और विकर्षण की परिभाषाओं को झुठलाती हुई रहस्यमयी बनी हुई है ? उसकी ही महत्त्वाकांक्षा का स्वप्न है नम्रता अथवा उसमें कुछ ऐसा है जो अटूट सान्निध्य के लिए अटूट आकांक्षा उत्पन्न करता है ?

उसके अन्दर अनेक सवाल उठ रहे थे, जिनका उत्तर नहीं दे सका, और इस तरह उलझते और परेशान होते उसे दयाशंकर की याद आने लगी, जो एक रात उसके पास उस समय आया, जब वह बाहर तख्त पर चारपाई बिछाकर सोया था। उसके मुँह से ताड़ी की खट्टी-सी महक आ रही थी, जो स्वास्थ्य की दृष्टि से नीरा की उपयोगिता की संस्तुति से उत्साहित होकर अपनाए गए एक प्रातःकालीन पेय के लत में परिवर्तित होने का परिणाम थी। यह उस समय की बात है, जब दयाशंकर हाई स्कूल पास करने के बाद अपनी क्रान्तिकारी पार्टी के कार्यों के सिलसिले में इधर-उधर घूमता दिखाई दे जाता और वह स्वयं टेंथ की परीक्षा का नतीजा निकलने के बाद आगे की पढ़ाई के लिए बनारस जानेवाला था।

"उठो, क्या सोए हो... चलो कुछ देर तक तुम्हें घुमा लाता हूँ, बड़ी सुहावनी चाँदनी खिली है..."

"इस समय कहाँ से आ रहे हो?" उसने आँखें मलकर दयाशंकर से रूखाई से पूछा था। "जानकर क्या करोगे ? चलो, नदी के किनारे चलते हैं, वहीं बातें होंगी... एक जरूरी बात तुमसे करनी है।"

कुछ दिनों पहले गर्मी की प्रथम वर्षा होने के बाद मौसम साफ चल रहा था, इसलिए उमस बढ़ने के बावजूद पुरुवा झकझोरने से कुछ राहत भी मिल रही थी। सरजू तट पर बैठते ही दयाशंकर बोला :

"नीलेश, तुम मुझसे छोटे हो, सीधे और भोले हो, तुमसे कहना तो नहीं चाहता, पता नहीं तुम क्या सोचोगे मेरे बारे में... लेकिन जानते हो, इस शहर में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है, जिससे मैं अपनी बात कह सकूँ, पार्टी के लोग भी नहीं। जानता हूँ सभी मेरा मजाक उड़ाएँगे, कोई सहानुभूति प्रकट नहीं करेगा, मुझे गलत समझेगा... नहीं बताएगा कि मैं क्या करूँ !"

दयाशंकर सहसा चुप होकर दुधिया चाँदनी को ओढ़े नदी के तरंगित रजत जल को देखने लगा, जहाँ से डुब-डुब की आवाज आई थी। उसके स्वर में घबराहट और रुआँसापन। चेहरा छोटा और सिकुड़ा।

"मैं बेहद परेशान होकर शहर में घूम रहा था, जय तुम्हारे मकान के सामने से होकर गुजरा और तुम्हारी चारपाई दिखाई पड़ी तो पता नहीं क्यों मुझे लगा कि मैं तुमसे अपनी बात कह सकता हूँ और भले ही तुम कोई रास्ता नहीं सुझा सको, सहानुभूति से मेरी बात जरूर सुनोगे, मुझे गलत नहीं समझोगे और कोई काम करने को भी कहूँ तो मना नहीं करोगे..."

"फिर कहो न... चुप क्यों हो गए ?"

"बताता हूँ नीलेश... मेरे छोटे भाई... यही समझ में नहीं आता कि कैसे शुरू करूँ। खैर, एक बात पहले ही बता देना चाहता हूँ कि दुनिया में देश मेरे लिए सबसे प्यारा है, जिसके लिए अपने प्राण भी न्यौछावर करने की प्रतिज्ञा अपने खून से लिखकर पार्टी को दे चुका हूँ, जिसकी एक शर्त यह भी है कि जब तक स्वतन्त्रता नहीं मिल जाती, मैं स्त्री, धन तथा आराम और विलास की वस्तुओं से दूर रहूँगा। लेकिन अफसोस से बताता हूँ पहली बार सिर्फ तुमसे कि मुझे लड़कियाँ, सुन्दर स्त्रियाँ बेहद आकर्षित करती हैं।"

बीच-बीच में चंचल हवा झकझोरने लगती जिससे उसकी बात के शब्द उड़ जाते। वह चुप हो जाता और जब हवा पटा जाती तो बोलना शुरू करता, "मैं बुरा नहीं हूँ नीलेश, मेरे अन्दर कोई गलत भावना नहीं पैदा होती, बस मैं खुश हो जाता, मुझमें न मालूम कहाँ का उत्साह आ जाता। मेरे गाँव में अनेक लड़कियाँ हैं, रिश्तेदारियों में भी। पता नहीं मुझमें क्या है, मेरी बात में, व्यवहार में कुछ ऐसा है, जिससे लड़कियाँ मुझसे बात करना पसन्द करती हैं, मुझसे खुल जाती हैं। मैं सोचता, इनको क्रान्तिकारी बनाऊँगा, आजादी की लड़ाई में इन्हें शामिल करूँगा, लेकिन जब मैं ऐसी बातें शुरू करता तो उनका उत्साह खत्म हो जाता या ऊबकर जमुहाई लेने लगतीं। मैं नहीं जानता कि वे मेरी बात समझ नहीं पातीं या मैं समझा नहीं पाता। मैं भी जल्दी ही निराश हो जाता हूँ और दूसरी लड़की के उत्थान में लग जाता हूँ। इस तरह चलता है, फिर भी मैं सोचता हूँ कि बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा हूँ। अब भी मेरा विश्वास है कि स्त्रियों के दिलचस्पी लेने से समाज में, देश में बड़ा परिवर्तन हो सकता है, लेकिन पता नहीं क्यों, शायद शिक्षा की कमी या माहौल की संकीर्णता की वजह से सबकी, जिनसे मेरी बात हुई है, एक ही तरह की दिलचस्पियाँ हैं, जैसे कपड़ा, फैशन, मेला, दूसरी लड़कियों से ईर्ष्या

, प्रतिस्पर्धा और शिकायत की छोटी-छोटी बातें, शहर घूमने के उबाऊ बयान..." दयाशंकर चुप होकर कुछ सोचने लगा था। कुछ देर बाद और धीमे स्वर में उसने अपना कथन आरम्भ किया, जिसमें ढेला का उल्लेख होते ही नीलेश हतप्रभ रह गया। पिलपिली के मुँह से एक बार सुन चुका था किस तरह एक बार वे, जिनमें दयाशंकर, हीरा और चेंगन भी शामिल थे, संयोग से ढेला के ही बुलाने पर उसके यहाँ जा पहुँचे थे। गोवर्धन से भी उसका किस्सा सम्बन्ध-विच्छेद तक सुन चुका था। लेकिन दयाशंकर के

सम्बन्ध में और कोई बात तो वह नहीं ही जानता था, जबकि अब दयाशंकर ही बता रहा है कि उसकी अनिंद्य सुन्दरता, सहृदयता, हिम्मत, खुश रहने की आकांक्षा और सहज उपलब्धता एक चुनौती की तरह महसूस हुई थी उसे। और किस तरह वह उसके निकट पहुँचा और किस तरह क्रान्तिकारिता में दीक्षित करने से पहले उसकी चरित्रदृढ़ता की परीक्षाओं द्वारा अपनी भी दृढ़ता की परीक्षा करता हुआ उद्देश्य-पतित होकर उस वेश्यापुत्री पर धोखा का लांछन लगाकर चला आया !

"मैं क्या करूँ, नीलेश..." अन्त में उसके कन्धे पर मुख रखकर रोते हुए दयाशंकर ने कहा था। वह लज्जा से गड़ गया था, क्योंकि दयाशंकर तो गोबर्धन से भी एक-डेढ़ वर्ष बड़ा होगा-फिर लम्बा-चौड़ा, कसरती खिलाड़ी शरीर, बेहद साहसी, क्रान्तिकारी देशभक्त, बुद्धिमान, स्वाभिमानी !

कितना अविश्वसनीय और हास्यास्पद है यह रुदन ! ऐसा उत्तम शरीर और अनुकरणीय विचार और एक साधारण वेश्यापुत्री के लिए छोटे बच्चे की तरह विलाप ! अपने से छोटे, अनुभवहीन और अपरिपक्व साथी को अपना दुखड़ा सुनाकर क्या चाहता है दयाशंकर ?

अपने सिर को उठाकर शरीर सीधा करके अपने स्वर को स्वाभाविक बनाने की कोशिज करते हए दयाशंकर ने कहा था. "मैं कुछ निश्चय नहीं कर पा रहा हैं नीलेश... यह तो मैं निश्चित जानता हूँ कि मैंने पार्टी को दिए गए वचन को तोड़ा है, इसलिए मेरा पाप, अपराध और भी गम्भीर है। मैं कलुषित हूँ और कोई भी पश्चाताप पार्टी को और मुझे भी सच्चा देशसेवक होने का सन्तोष नहीं दे सकता। लेकिन इस समझ के वावजूद में उसे भूल नहीं पाता। न चाहते हुए भी मुझे यह विचार बेहद दुःखी करता है कि मैंने अपने उच्च अहंकार और हठधर्मिता में उसको तिरस्कृत और अपमानित करके कुंठित कर दिया है, जो साहस, खुशी और खुली स्वच्छता में कमल की तरह उभरने के लिए उत्सुक थी। सच्चाई के लिए तरसती सर्वश्रेष्ठ स्त्रियों में से एक..."

दयाशंकर का स्वर फिर टूट गया था, किन्तु जल्दी ही सँभलकर अनुरोध के स्वर में बोला, "नीलेश मैं तुम्हें दो सी रुपए दूँगा, जाकर दे दो उसे। यह कीमत नहीं है, लेकिन मेरे सामर्थ्य में जो है, जो हो सकता है...क्योंकि उसका भी तो नियम है, सिद्धान्त है, स्वाभिमान है, रोजी-रोटी है..." कुछ देर चुप रहकर फिर कहा उसने, "छोड़ो इसे... उसके पास जाकर उससे मेरी ओर से, मेरे लिए माफी माँग लो... ऐसा करोगे मेरे छोटे भाई ?"

दयाशंकर के इस प्रस्ताव पर उस समय उसे बड़ी हँसी आई थी, लेकिन वह किसी प्रकार गम्भीर होने का नाटक करता चुपचाप बैठा रहा, जिससे दयाशंकर की बात उसके कानों से टकराकर वापस चली गई थी। दयाशंकर कुछ देर तक सिर घुमाकर उसको एकटक उत्सुकतापूर्वक देखता रहा, फिर अचानक उठकर सूखी-हँसी हँसते हुए बोला, "अरे नहीं, तुम्हें कुछ करने की जरूरत नहीं... मैं तो मजाक कर रहा था। सब झूठी बातें हैं... मैं तुम्हारी परीक्षा ले रहा था। इस पर न कुछ सोचना और न किसी से कुछ कहना..."

उसके बाद तो दयाशंकर से उसकी मुलाकात कम ही हुई है। वैरिया गोलीकांड से पूर्व एक बार हुई थी और फिर बैरिया थाने पर गोलियों के बीच। घायलावस्था में नौका से बलिया ले जाते समय उसे एक बार लगा कि दयाशंकर के होंठ फड़फड़ाए, अस्पष्ट बुदबुदाहट-सी निकली, जैसे कुछ कहना चाहता हो... फिर उसकी आँखें बंद हो गई थीं सदा के लिए।

लेकिन दयाशंकर के बारे में इतना सब सोचकर भी नीलेश किसी नतीजे पर नहीं पहुँच सका। उसे ऊँघाई आ रही थी। वह इस कोठरी में आकर एक ही ढंग से बैठा रह गया है चारपाई के विस्तरे पर। लालटेन भकभका रही थी, बुझा दी और चारपाई पर आकर सीधा लेट गया, जब एक धुँधला-सा आश्चर्य हुआ उसे कि खिड़की के रास्ते चाँदनी का एक लघु अंश उसके पैरों के पास सिमटकर विहँस रहा है और कुछ हवा भी झिर-झिर चली आ रही है। विगत दुःख, स्वाभिमान, नींद और चाँदनी का मिला-जुला योझिल अहसास, गहरी जमुहाई... और आँखें मुँदने लगीं।

परन्तु, नम्रता क्यों नहीं सो पाई है अभी तक ? जब सीतानाथ ने उसके घर आकर उसके पिताजी से नीलेश के सम्बन्ध में धीमे-धीमे बात की थी और बाद में माँ ने उसे कुछ बताया था तभी से वह आँखें मूंदकर पड़ी रही है, जैसे जोरों की नींद आ रही है। मसहरी गिरा दी थी उसने, लेकिन उसके आगमन की बात सोचकर उसका हृदय तेजी से धड़कने लगा था और उस समय तो धड़कन ही जैसे बन्द हो गई, जब आँगन में प्रवेश कर वह अपने कमरे में जाने लगा। वह शर्मिन्दगी भी महसूस करने लगी कि जब उसे आगे बढ़कर उसका स्वागत करना चाहिए, वेगाने की तरह चारपाई पर पड़ी नींद का बहाना कर रही है। ऐसा ही प्यार है उसका ?

उसे याद आते हैं दयाशंकर और राममूरत और नीलेश की सुरक्षा के लिए चिन्तित हो उठती

है। ठिगना-सा राममूरत, फुट-फुट चलनेवाला. उसे पहली बार उस समय देखा उसने जब वह सदाशयन्नत के साथ अइगा पांडे के विरुद्ध आश्वस्त करने के लिए उसके पिताजी के पास आया था। सदाशयव्रत धैर्यपूर्वक, धीमे स्वर में बोल रहे थे. जबकि गुस्से-भरे जोश में राममूरत का चेहरा तमतमा जाता। बाद में सनने में आया कि अइगा पांडे से लड़ाई में हड़ताल और आन्दोलन का भोपा बजाने में. बैरिया गोलीकांड में, हर मोर्चे पर वह दुबला-पतला, कमसिन बित्ते-भर का नौजवान मौजूद रहा था, लड़ता, ललकारता और सहता हुआ। किस बल-बूते पर ? क्या कर लेता महान, शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य का यह मामूली-सा आदमी ? और जब वह चला गया है तो सभी दुःखी हैं, क्रोध में हैं, यहाँ तक कि पुलिसकर्मी और यदुनन्दन प्रसाद भी, जिन्होंने उसका किस्सा सुनाकर नीलेश को छिपाने का सुझाव दिया है।

वह रोने लगी। रोई तो वह दयाशंकर के साहस के साथ मृत्यु का वरण करने की कहानी वीरेश के मुँह से सुनकर भी। दयाशंकर को उसने एक-दो बार देखा होगा दूर से, लेकिन वीरेश ने ही बताया था कि

अइगा पांडे का किस्सा सुनकर उसने गुस्से में एक बम उस पर फेंका था, जो फूटा तो नहीं, लेकिन उस दिन के बाद अइगा पांडे फिर शहर में नजर नहीं आया। जब नीलेश के ऐसे साथी तथा सदाशयव्रत और रमाशंकर जैसे चरित्रवान और साहसी लोग गुलामी मिटाने के लिए लड़ रहे हैं तो नीलेश गिरफ्तारी से बचने के लिए यहाँ आ छिपा है, यह नहीं हो सकता लाख जन्म में भी !

यह सवाल उस समय से ही उठ रहा है उसके दिमाग में, जब नीलेश के पिताजी उसके यहाँ आए थे। लेकिन बार-बार वह 'नहीं' में ही उत्तर देती रही है। इस सम्बन्ध में किसी क्षीण सम्भावना भी उसके लिए त्रासदायी है। त्रुटि और दुर्बलता की बात कौन कहे, नीलेश उसकी प्रेरणा और शक्ति है, इस पिछड़े घुटन-भरे समाज में नीलेश का सहारा लेकर ही वह चुनौतियों की दुनिया में खड़ी हुई है, फिर उसकी छवि को धूमिल कैसे देख सकती है? यह तो उसे बचपन से ही जानती है जब वे छोटे पौधे थे पास में खड़े और हवा में झूमते, खिलखिलाते। और आज वह हर दृष्टि से मजबूत वृक्ष की तरह बढ़ गया है तो एक लता की तरह उसके सहारे से ऊँचाई और हरीतिमा प्राप्त करती हुई क्या वह अपने को उतना ही मजबूत नहीं समझती ? नीलेश को ही तो लेकर उसके अन्दर यह स्वप्न जगमगाने लगा है कि उसके साथ वह होरी-धनिया की भाग्यवादी, समझौतावादी छवि को अस्वीकार करके ऐसी भूमिका के चयन में मदद करेगी, जिसमें दुनिया को बदलने के कार्य में उनकी परस्पर सार्थक सहभागिता सम्भव होगी।

अपने कमरे के अन्धकार में, सबसे अलग मसहरी के अन्दर चारपाई पर सिकुड़ी यह विचारों के प्रवाह में बही जा रही है, जो निरन्तर आगे बढ़कर नीलेश से जुड़ रहे हैं। यदि अलग तरीके से भी सोचें और वह भी सोच रही है कि इस समय तो वे इस मकान के रिश्ते से भी एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। अलग-अलग होते हुए भी वे एक मकान के ही दो कमरों में हैं, जो एक ही जमीन पर एक ही सामग्री से और एक ही कला-शिल्प द्वारा निर्मित है। ऐसे संयोग की कल्पना से उसे रोमांच हो आया। उसकी आँखें भर आईं और उसका अन्तर एक नई कल्पना की स्वर्णिम दीप्ति से कौंध गया। यदि समुद्र से ही मिलने गंगा चली है तो उद्गम स्थल से ही क्या उसमें मिलनातुर भाव नहीं होता-एक व्यापक, गहरा समुद्रभाव ?

वह अपने को रोक नहीं सकी और मुट्ठियाँ भींचकर धीरे-धीरे सिसकने लगी। इससे आराम मिला उसे, इसलिए आँसुओं को बहने दिया उसने, जो बाद में अपने से रुक गए। हाँ, नीलेश की वजह से ही उसने ऊँचाई से उतरकर धरती पर चलने की गरिमा का अनुभव किया, जहाँ सब बराबर हैं, कोई छोटा नहीं। इसलिए वह भगजोगिनी देवी और धनेश्वरी देवी से घुल-मिल सकी, शिक्षा, स्वावलम्बन, स्वदेशी, सभानता और स्वातन्त्र्य का अर्थ कुछ-कुछ समझ सकी। वह अभी बहुत कुछ जानना चाहती है, अपने बारे में, देश-समाज के बारे में और दुनिया के बारे में भी और यह अच्छा

हुआ है कि नीलेश यहाँ आ गया है, इस मिले अवसर का सदुपयोग करके वह उससे सबकुछ पूछ लेगी कि यह क्या-क्या सोचता है और उससे क्या चाहता है ?

अचानक चौंक उठी यह। लगा, नीलेश जिस कोठरी में सोया है, उधर से कराह-सी कोई आवाज आई है। क्या सचमुच ? मसहरी का परदा उठाया उसने फिर चारपाई से नीचे उतरकर दरवाजे के पास खड़ी होकर बाहर की तरफ कान लगाकर ध्यान से सुनने लगी। लेकिन कहीं कुछ नहीं सिर्फ झींगुरों की झनकार को छोड़। उसका शरीर थरथरा रहा था, शायद इस डर से कि पुलिस उसके कमरे में पहुँचकर उसको उत्पीड़ित करते हुए गिरफ्तार कर रही है। उसके पाँव एक जगह पर स्थिर होकर जम नहीं पा रहे थे। कुछ देर तक इन्तजार किया उसने, फिर इस खयाल से अपने को सन्तोष देने लगी कि यदि कुछ हुआ होता तो शोर-शराबा तो सुनाई पड़ता और पुलिस भी यहाँ कैसे आएगी। वह लौटकर बिस्तरे पर जाने का विचार कर ही रही थी कि एक और आवाज सुनाई पड़ी उसे, और तेज और बड़बड़ाहट के साथ उसका कलेजा धड़कने लगा और यह अपने को रोक न सकी।

धीरे-से सिटकनी खोल तथा बाहर से दरवाजे के पल्लों को उढ़काकर यह चुपचाप खड़ी हो गई। शीतल, सुखद हवा के स्वागत से अनभिज्ञ डरी-डरी वह झींगुर स्वरों से झनझनाते आँगन, छत, गुसलखाने और कोठरी को बारी-बारी से देख रही थी। फिर कोठरी की खिड़की तथा बाहर की दीवार पर पड़े चाँदनी के एक गुच्छे पर नजर पड़ी। और इसी समय उसके ध्यान में आया कि दरवाजा तो खुला है कोठरी का भय से शरीर सनसनाने लगा तत्काल। यह दवे पाँव कुछ आगे बढ़ गई और तब स्पष्ट दिखाई पड़ा कि पुलिस-युलिस तो नहीं है, लेकिन भीतर मसहरी गिराई नहीं गई, विस्तरे पर नीलेश चित सोया है और स्टूल पर लालटेन बुझी पड़ी है।

वह आगे बढ़ी, फिर ठिठक कर चारों ओर देखने लगी, अन्त में निःशब्द चलती हुई कोठरी में खड़ी हो गई। एकटक नीलेश को देखते हुए उसे अजीब-सा लगा, जैसे किसी बच्चे को देख रही हो। सुख-दुःख, प्यार, आनन्द, ममता कुछ भी नहीं; बल्कि कुछ अलग, शायद घर में आए की सुरक्षा का बलिदानी भाव भय को दूर ठेलता हुआ... अथवा पता नहीं क्या! उसकी आँखें बंद हैं, दाहिना हाथ छाती पर, मुँह, हाथ और पैरों की उँगलियों पर मच्छर भनभना रहे हैं।

थोड़ा आगे झुकी वह। पैंताने खिड़की के रास्ते से आकर एक चाँदनी वृत्त के अलोक में वह स्पष्ट उसका मुख और होंठों के ऊपर छँटी नरम मूँछ की हल्की पट्टी देख सकती थी। लेकिन वह घबरा रही थी, फिर भी नहीं मानी और अन्त में हिम्मत करके अपना हाथ आगे बढ़ाकर उसके हाथ को छाती पर से बहुत हल्के से उठाकर विस्तरे पर रख दिया। तत्पश्चात खड़ी होकर आँखें सिकोड़कर देखने लगी कि जाग तो नहीं गया है वह। आश्वस्त होने के बाद भनभनाते मच्छरों को हाथ के संचालन से हटाने, मसहरी गिराने तथा कोठरी के दरवाजे को बाहर से उढ़काने के बाद अपने कमरे की तरफ चल पड़ी। कर्तव्य पालन से सन्तुष्ट तथा इस विचार से खुश कि अपने बिस्तरे पर लेटकर इस पूरी घटना पर सोचने में बड़ा आनन्द आएगा !

नीलेश को पता नहीं लगा कि क्या समय है, किन्तु कमरे में खटपट से हड़बड़ाकर उठने पर आँगन में पसरी सितम्बर मास की तेज धूप आँखों को चनका गई। मसहरी का परदा उठाकर जब उसने पाँव नीचे रखे तो सामने खुला हुआ दरवाजा तथा कमरे में दाहिनी तरफ दीवार से सटी मेज पर नया पोश

बिछाकर तथा उस पर कुछ पुस्तकें, दो पत्रिकाएँ, एक सादी कॉपी और एक फाउंटेनपेन रखने के बाद खड़ी होकर नम्रता को कुछ सोचते हुए देखकर बड़ा अचम्भा हुआ उसे। कमरा साफ-सुथरा, हर चीज साफ-सुथरी और करीने से रखी हुई, खिड़की पर भी एक खुशनुमा परदा लगा हुआ और उसके सिरहाने एक ताखे पर अगरबत्तीदान से खुशबू का हल्का धुआँ फैलता हुआ। नम्रता स्वयं नहा-धोकर खद्दर की हल्की पीली साड़ी और लगभग उसी रंग के ब्लाउज की सादगी में भी नवीन, सज्जित, त्रुटिहीन, प्रखर, गर्वीली और अत्यन्त सुन्दर दिखाई दे रही थी।

"लगता है, देर हो गई है..."

नम्रता ने गर्दन हल्के से मोड़कर, तिरछी बड़ी-बड़ी चमकती आँखों से उसको देखकर कहा, "पिताजी ने कहा था जगाया न जाए, वह अभी-अभी कचहरी गए हैं...<extra_id_1> नौ बजे हैं।"

कचहरी खुल गई है, यह जानते हुए भी नम्रता के मुँह से सुनकर गुस्ताखी से भर उठा वह। नन्दगंज के पास उखड़ी हुई रेल पटरियाँ तथा कटे हुए तार देखकर तथा घर में आकर विकट आर्थिक परिस्थितियों को जानकर कितना उत्साहित हुआ था यह ? तो क्या वे दिन समाप्त हो गए ? क्या अबवैत स्वातन्त्र्य संग्राम न होगा? क्या देश कभी भी आजाद नहीं हो ऊँचा? वह सिर झुकाकर और माथे पर हाथ रखकर सोचने लगा।

"चाय पीते हैं न ?" नम्रता उसकी ओर घूम गई थी चिंता से देखी हुई।

"मैं नहाऊँगा...पन

"ठीक है... पानी भरा है, मंजन, नया टूथब्रश वगैरह गुसलखाने में है..."

"मैं सब ले आया हूँ..."

"ठीक है," कहकर वह बाहर जाकर व्यवस्था देख आई और उसका संकेत मिलने पर वह उठकर चला गया। नहा-धोकर कमरे में आने में इसलिए कुछ देर हो गई कि उसने अपने उतारे हुए कपड़े साबुन से साफ करके छत पर जाकर धूप में पसारे थे। नौकर शीशी में आँवले का तेल, कंघी और आइना उसके पास रखकर बोला :

"बाबूजी, अपना कपड़ा न फीचिए, मैं सब कर दूँगा।"

"क्यों कर दोगे ? तुमसे हट्टा-कट्ठा तो मैं ही हूँ।"

वह कोई खुशबूदार तेल भी नहीं लगाता अपने साथियों की तरह। उनके बीच छठे-छमाहे सिर्फ कड़वे तेल की मालिश की ही अनुमति और सहमति है। आठवें-मूँछ अब भी वह छोटी कैंची से ही छाँटता है क्योंकि नरम बाल से निबटने में कोई दिक्कत नहीं होती और कठिनाइयों के ऊपर की पट्टी ब्लेड-सफाचटों से भी होड़ लेने की क्षमता बढ़ती है। तेलविहीन रूखे बालों को कंघी से उल्टा झाड़ने में कठोर जरूर होती है, नहाने के बाद यदि चिपक भी गए तो सूखे पर उठ जाते हैं जिन्हें हाथ फेर-फेरकर एक आकार दे दिया जाता है।

"नीलेश बाबू, किसी चीज़ के लिए संकोच न कीजिए..." नम्रता की माँ ने आकर पूछा था।

"नहीं आंटीजी..." संकोच के कारण ही वह आगे बोल न सका।

"नाश्ते में दूध-जिलेबी..प

"कोई सस्ती चीज़, चाचीजी

"अच्छा पतला पराठा, सब्जी और चाय भेजती हूँ..."

नाश्ते के सामान दो बार में नम्रता ही ले आई। फूल के एक तश्तरी में दो पराठे, एक पीपल में आलू की रसेदार सब्जी, एक छोटी तश्तरी में चार-पाँच जिलेबियाँ, आम का अचार और एक कप चाय। स्टूल मजे का तरीका था, इसलिए सभी सामग्री रखने में दिक्कत नहीं हुई।

गया। "तुम भी खाओ..." नीलाश अब सहज होकर नम्रता से बात करने की इच्छा से उत्साहित हो

"इस समय ग्यारह बज रहे हैं," नम्रता मुस्कुराई।

"हाँ... बैठोगी नहीं ? एक कप चाय तो कभी भी पी जा सकती है..."

"मैं तो चाय पीती ही नहीं...." वह मेज के पास रखी कुर्सी खींचकर और उसकी दिशा नीलाश की तरफ मोड़कर उसे एकटक देखने लगी।

"क्यों? हमारे घर में तो चाय बनती नहीं, यहाँ..."

"हाँ, सभी पसन्द करते हैं मुझे छोड़कर... कोई खास कारण नहीं..."

यह सहसा अपने चेहरे पर नम्रता की आँखों का एकाग्र दबाव महसूस करके असहज हो गया, यह श्वास हुए कि उसके नाश्ते ग्रहण करने के ढंग में कोई लज्जाजनक अस्वाभाविकता तो नहीं है ? कोई असभ्य

आवाज ? वह बाधाओं को बंद करके मुँह धीरे-धीरे चलाने लगा। साथ ही वे सभी बातें गायब हो गई, जो कुछ पल पहले ही उसके दिमाग में उठ रही थीं। और इससे उबरने की कोशिश में स्वभाव बनने की अनजान बाध्यता से उसने उस सच्चाई की ओर इशारा कर दिया,

जिसे जानते हुए भी प्रकट नहीं करना चाहता था। "क्या रात में इस अलमारी में कोई आया था ?" उसके मुँह से एक अटपटी-सी आवाज निकली।

"क्यों ?" नम्रता का चेहरा फक हो गया।

"पूछा रहा हूँ..."

"मैं कुछ देर के लिए आई थी... दरवाजा खुला था। मसहरी गिराकर चली गई थी..." यह झूठ तो नहीं बोल सकी, लेकिन उसका चेहरा शर्म से लाल हो गया।

"हाँ, मुझे भी लगा..."

"क्या ? गहरी नींद में थे..."

"हाँ... कोई भयानक सपना... नींद टूट गई थी..."

"कुछ दूँ... एक पराठा..." नम्रता ने बात बदल दी।

"नहीं... और खा लिया..."

वह सहसा उठा और बिना कुछ बोले बड़ी तश्तरी में सारे बर्तन बढ़ने लगी।

"नम्रता..." नीलाश उसे कुछ देर तक और बैठने के लिए कहना चाहता था, लेकिन वह बिना रुके या उत्तर दिए कमरे से बाहर निकल गई।

बर्तन रखकर नम्रता अपने कमरे में जाकर बैठ गई। अपनी को रोकने और सामान्य बनाने की कोशिश करने पर भी, अपमान और अनदेखी का शिलालेख गहरा होता गया, यहाँ तक कि जब बरदाश्त के बाहर हो गया तो टप टप आँसू गिरने लगे। ऐसी निष्ठुरता कहाँ मिलेगी? जब उसने अपना हृदय ही उसको खोलकर दिखा दिया है, यह जानते हुए भी वह जागृत अवस्था में सोने का घोलता रहा। क्या उसका कोई स्वाभिमान नहीं है? क्या उससे सदा अपमानित होने के लिए बनी है वह ? घर में, स्कूल में और रिश्तेदारों में भी जब वह किसी की अनुचित बात बरदाश्त नहीं कर पाया तो यह क्यों उसे लाचार-मजबूर समझकर ज़लील कर रहा है? गौसपुर घाट पर भावशून्य-सा बैठा रहा और अन्य

अवसरों पर भी, जब वह खुशी तथा उत्साह से उसकी तरफ़ बढ़ेगी है, उसका व्यवहारवैसे ही रहा है, जैसे रास्ते में पड़े किसी कंगन-पत्थर को ठोक दबाकर हटा दिया जाता है।

इस मनःस्थिति में हृदयहीनता के स्तर तक उतरकर वह उसके विरुद्ध अनेक नए-नए तर्क, साक्ष्य एवं आरोप एकत्रित करती रही, जिसके बीच कपोलों पर बहते आँसू सूख गए, खिसियाना चेहरा तनकर नुकीला हो गया और अन्ततः शिर-पीड़ा का भी कुपरिणाम उगना पड़ा।

सहसा उठकर उसने दरवाजा भीतर से बंद करके सिटकी लगा दी और अपने शरीर को चारपाई के गेटवे करके पैंटानेवाली चादर के सहारे लम्बी तानकर सो गई।

नीलाश समझ नहीं सका कि वह बिना जवाब दिए ही क्यों चली गई थी। कोई मजबूरी जानकर देर तक यह आशा करता रहा कि वह फिर आएगी और उससे बहुत-सी बातें हो सकेंगी। विशेष रूप से वह नम्रता को बताना चाहता है कि देश ही उसके लिए सर्वस्व है और अपने साथियों की तरह गिरफ्तार न होकर दमन और उत्पीड़न से बचकर अत्यन्त दुःखी है वह। लेकिन यह स्थिति बहुत दिनों तक नहीं रहेगी और जो लोग बचे हैं, वे आंदोलन को आगे बढ़ाएंगे, नए लोग भी आकर कुर्बानी देते रहेंगे, जब तक कि आजादी मिल नहीं जाती। और नम्रता से यह भी पूछना चाहता है

कि उन प्रश्नों पर उसके क्या विचार हैं. वह अपने सम्बन्ध में क्या सोचती है और क्या करना चाहती

वह देर तक उसकी प्रतीक्षा करता रहा, कल्पना में अनेक सार्थक सवाल-जवाब के दौर से गुजरता तथा उसकी सादगी. स्वाभिमान और सौन्दर्य पर मुग्ध होता हुआ। फिर मेज पर रखे दैनिक अखबार को उठाकर पढ़ने की कोशिश करने पर बड़ी निराशा हई क्योंकि राष्ट्रीय आन्दोलन और राष्ट्रीय नेताओं के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं. बस युद्ध की यही रिपोर्ट. जिसमें पराजय को बहादुरी से पीछे हटना बताया जाता है। ऊबकर अखबार रख देने के वाद 'विशाल भारत' का एक पुराना

अंक उलट-पुलटकर अमेरिकी सन्त 'थोरे' के सम्बन्ध में एक रचना पढ़ने लगा। इसी समय नम्रता की माँ ने आकर पूछा, "खाना तैयार है, लाऊँ?"

"सब खा चुके ?" नीलेश ने सिर उठाकर पूछा।

"कचहरी जानेवाले पहले ही खा चुके हैं। नम्रता तो खाएगी भी नहीं..."

"क्यों ?"

"तबीयत ढीली है...सिर में दर्द, दवा दी गई है।"

"ठीक है," उसने कहा और पत्रिका यथास्थान रखकर भोजन के पूर्व हाथ-मुँह धोने के लिए उठ गया। भोजन में वही सबकुछ था, जो बलिया के घरों में खाया जाता है। चावल की मात्रा अवश्य अधिक थी, जो किसी बड़े कटोरे में खूब दूँसकर थाली में उलट दिया गया था स्तूपाकार ! रोटियाँ भी अधिक और सब्जियाँ भी। पापड़, अचार और चटनी का साथ-संग।

"चाचीजी, बहुत अधिक है, हर चीज में से निकाल लीजिए थोड़ा...।"

"भैया, खाओ, अधिक नहीं है... हाँ, तुम्हारे घर की तरह चटक नहीं है...।"

"ऐसा न कहिए, चाचीजी। एक तश्तरी दे दीजिए, थोड़ा-थोड़ा निकाल दीजिए..."

नाश्ता देर से करने से खास भूख नहीं थी, वैसे भी वह अपने एक समाजवादी मित्र से सीखकर इघर कुछ दिनों से घर में तथा अन्य जगहों पर भी खाना उतना ही लेता है, जितना खा सकता है। यदि अधिक परोस दिया गया तो दृढ़तापूर्वक निकलवा देता है। समाजवादी साथी की यह मान्यता है कि जब देश में लाखों-करोड़ों लोग अपने लिए बड़ी कठिनाई से दोनों जून का भोजन जुटा पाते हैं, सम्पन्न घरों में अन्न की बहुत बरबादी होती है, जो राष्ट्र के प्रति लापरवाही और अभक्ति को ही प्रकट करती है। फिर भी, दाल में कुछ अधिक मात्रा में डाले गए शुद्ध देशी घी में ऐसा सोंधापन था, कि भोजन कम कराने के बाद भी अनिच्छा के बावजूद सबकुछ चाव से खा गया यह।

थाली में एक दाना भी नहीं छूटा, इससे खुश था वह। ऐसा करके अपने समाजवादी मित्र की याद आती है उसे और उसी की तरह सन्तोष भी कि अपने सिद्धान्त को व्यवहार के अत्यन्त लघु, निजी स्तर पर जी रहा है। उसने सोचा कि नम्रता जब आएगी, तो यह बात उसे बताएगा, जिससे वह भी खुश होगी और इसको अपने घर में भी व्यावहारिक रूप देने की चेष्टा करेगी।

रतनसिंह के कचहरी से आने के पूर्व नम्रता उमस में वायु के किसी भूले-भटके झोंके की तरह कमरे में आई और मेज के पास खड़ी होकर दूसरी तरफ देखने लगी, गोया कोई विशेष प्रयोजन हो। चारपाई पर लेटे नीलेश ने फुर्ती से उठकर पूछा :

"तबीयत कैसी है ?"

नम्रता पहले की तरह ही देखती रही, मानो कुछ सुना ही न हो। फिर सिर घुमाकर नाराजी से देखने की कोशिश में असफल होकर आँखों की टकराहट के पहले ही मुँह सीधा करके कमरे से निकल गई।

नीलेश आश्चर्य से उसे देखता रह गया। यह क्यों? उससे क्या कोई गलती हुई? इस घर

में किसी के प्रति उसका व्यवहार अनुचित तो नहीं हुआ ? या इसलिए कि वह उसके घर में सहारा लेकर अपना स्वाभिमान खो चुका है? इस तरह के कई सवाल उसके दिमाग में उठे, लेकिन किसी से भी कोई समाधान प्राप्त नहीं हुआ। और कुछ देर बाद ही उसे महसूस हो सका कि वह तो आहत है। जैसे किसी चमकती पट्टी पर सार्थक खूबसूरत इबारत लिखने के बजाय कोई बच्चा ईर्ष्या या दुर्भावना अथवा अनिच्छा-भरे गुस्से में चाकू से गहरा खरोंच लगा दे !

अब उसके लिए वहाँ एक पल भी रहना भारी लगने लगा। वैसे भी, पहले से ही एक घुटन महसूस हो रही है उसे। एक अस्वाभाविक, असामान्य सा माहौल ! हर व्यक्ति ही गम्भीर है, उससे बचने की कोशिश करता है, यहाँ तक कि बालक नौकर भी धीमे-धीमे बोलता है और यदि वह उसे रोककर बात करना चाहता है तो कोई बहाना बनाकर बाहर चला जाता है। ठीक है कि सुरक्षा कारणों से ही कोठरी की गतिविधियाँ बहुत कम रखी जा रही हैं, लेकिन उनकी परस्पर बातचीत में भी वह खुलापन क्यों नहीं है, जिसकी पारिवारिक सीमा में बहस, नोंक-झोंक और गुस्सा-भरी चिल्लाहटों की भी गुंजाइशें होती हैं ? उसका यहाँ रहना यदि खतरनाक है अथवा उनके लिए प्रियकर नहीं तो वह एक दिन भी शान्ति से कैसे गुजार सकता है ?

रतनसिंह कचहरी से आने पर सबसे पहले उसी कोठरी में आए जरूर, लेकिन उन्होंने भी अपनी मुख्तारी आदत के विपरीत बहुत ही धीमी फुसफुसाहट जैसे स्वर में बहुत ही संक्षिप्त बात की। हालचाल पूछने के बाद आश्वासन कि कोई चिन्ता की बात नहीं और कचहरी में भाई साहब यानी सीतानाथ मिले थे, सभी तन्दरुस्त और खुश !

"चाचाजी, सोचता हूँ, कल से जाकर घर में ही रहूँ..."

रतनसिंह ने ठिठककर, सिर झुकाए तथा उसकी तरफ देखे बिना कहा, "हाँ, वाजिब बात है... मगर दो दिन और रुक जाइए... चाय पीते हैं न ?"

"जी हाँ..." उनके उत्तर से मन-ही-मन गुस्साने के बावजूद वह दबी जबान से बोला।

जल्दी ही बालक चार समोसे, दो लाल रसगुल्ले तथा चाय के साथ हाजिर हो गया। उसने एक समोसा और चाय लेकर शेष सामग्री वापस भेजवा दी, जिसके बाद थोड़ी देर में नम्रता की माँ ने आकर पूछा :

"नीलेश बाबू, आपने तो कुछ लिया ही नहीं... ये कचहरी की दुकान से लाए हैं... बड़ा अच्छा बनाता है..."

"हाँ, चाचीजी, स्वादिष्ट है... मगर नाश्ता देर से किया गया था, खाना भी अधिक खा गया... इस समय लेने की इच्छा नहीं है।"

"कोई संकोच न कीजिए बाबू... बहिनजी कह रही थीं..." रतनसिंह की पत्नी ने तिरछी शर्मीली दृष्टि से देखते हुए कहा।

"अरे नहीं चाचीजी..." वह हँसने लगा।

नीलेश कल ही यहाँ से जाना चाहता है, यह जानकर नम्रता के हृदय में धक्-सा हो गया। लेकिन तीन दिन में से केवल एक ही दिन बीता है और इस दुर्लभ समय को उसने गुस्से में ही नष्ट कर दिया है। अब उसे खयाल आया कि नीलेश के साथ तो बड़ा अन्याय हो रहा है-सभी उसकी कोठरी में जाने से बच रहे हैं, छोटे-छोटे टुकड़ों में संक्षिप्त बात होती है उससे, जैसे पुलिस छिपकर झाँक, सुन रही हो। इस तरह से सबसे अलग-थलग और उपेक्षित उसका जीवन जेलखाने से कम थोड़े ही है?

और पिताजी के कहने से दो दिन रुक भी जाए तो उसके बाद चला ही जाएगा, यह क्या वह नहीं जानती ? फिर कहाँ जाएगा, गिरफ्तार होगा या कहीं और फरार होगा, सत्ता द्वारा उसके साथ कैसा सुलूक होगा, फिर कब मुलाकात होगी उससे ये सवाल उसे परेशान करने लगे। दयाशंकर

और राममूरत की बात सोचकर कुछ बुरे विचार भी आए और बेहद डरकर एक अपराध-बोध से आँसी हो गई वह। फिर तो नाराजी और क्रोध की तेज धार उलटकर उसी पर वार करने लगी। उजइड, जिददी, मुर्ख और अहंकारी स्वयं से गुस्सा, स्वयं को तुच्छ और अनुचित व्यवहार का दोषी मानना, जो कुछ समय पहले तक नामुमकिन प्रतीत होता था। मगर इस पर भी स्थिर कहाँ रही यह ? बल्कि आगे बढ़कर तेजी से दसरे छोर तक पहुँच गई. जहाँ नीलेश को निष्कलंक और आराध्य मानकर उसका हर कदम पर साथ देने, उसे संरक्षण, खुशी और प्यार देने के संकल्प से अत्यन्त व्याकुल हो उठी।

यह किसी बहाने से दो बार उसकी कोठरी के सामने गई, लेकिन उसे गले तक चादर ओढ़कर विपरीत दिशा में दीवार की तरफ मुँह करके लेटे देखकर, भीतर जाकर हालचाल पूछने की हिम्मत नहीं हुई उसकी। लालटेन की फीकी रोशनी में उसे लगा कि नीलेश नितान्त एकाकी, बेसहारा, दुःखी और बीमार है और अपनी यह आशंका जब अपनी माँ को बताई तो उसने कोठरी में जाकर पूछा : "नीलेश बाबू, तबीयत तो ठीक है ?"

निश्चय ही नीलेश मानसिक रूप से थका, हर पीड़ादायी विचार से मुक्त होने की कोशिश में एक ही करवट निश्चेष्ट पड़ा था, मगर कानों में गूँजे सवाल ने उसे चैतन्य कर दिया और फुर्ती से उठकर बोला वह :

"मैं तो ठीक हूँ चाचीजी

"आप चुपचाप...।"

"नहीं चाचीजी, आप सभी तो हैं यहाँ... मुझे कोई परेशानी नहीं, खूब खा-पी रहा हूँ..."

"मेवा की खीर पसन्द है आपको ?"

"मुझे हर चीज पसन्द है, जो रसोईघर में तैयार होती है।"

वह सँभलकर उत्तर दे रहा था, जिससे सहानुभूति या दया का पात्र न बने, परन्तु इसी से यह उन प्रश्नों से फिर घिर गया, जिनसे दिन-भर परेशान रहा था। नम्रता ने भी उसकी बातें सुनीं, जो कोठरी के पास ही दृष्टि से बचती हुई खड़ी थी, किन्तु वह अपनी माँ के समान इसलिए सन्तुष्ट नहीं हो सकी कि बाहरी व्यक्ति नहीं होने से उसे नीलेश की आवाज में असम्पृक्त दूरी एवं अजनबीपन का अहसास हुआ। वास्तविकता समझने और हृदय की शान्ति ढूँढ़ने के लिए, एकान्त खुली छत पर जाकर जब वह चहारदीवारी के पास खड़ी हुई तो आक्राश में जलहीन, झीने बादल से पूर्णमासी का चाँद उभरता हुआ नजर आया, धूमिल, उदास और कुछ ही देर बाद अश्रुनुकम्पित।

यह चुपचाप खड़ी है जीवन की असलियत की गहराई को थाहने हेतु उसके भीतर प्रवेश करके एक गोताखोर की तरह यात्रा करती, आतुर, थरथराती, धड़कती और अन्त में मिलता है यह एक दिव्य चमकते हुए मोती की तरह, जिससे पूछती है, 'तुमसे ही मैंने चमक पाई है, बोलो, मैं एक नारी के रूप में तुम्हें क्या दे सकती हूँ, जिससे तुम्हारी चमक की स्वाभाविकता, अकृत्रिमता और समर्पित सहजता बनी रहे...?'

उसकी बड़ी-बड़ी आँखें स्वप्निल अवस्था में अधखुली, पंखुड़ियों की तरह कम्पित, पूजार्पित होंठों के साथ, सामने देख रही थीं। वह कुछ और सवालों के साथ और निकट जाकर उस मोती को हृदय में समेट लेना चाहती है... किन्तु उसी समय नीचे से आई उसकी माँ की पुकार ने समुद्र जल को हिला दिया और मोती की चमक काँपकर गायब हो गई।

"बेटी देर हो जाएगी...।"

उसकी आँखें खुल गई और वह सामने देखने लगी। समय सचमुच काफी बीत गया है और चाँद बादल से ऊपर उठकर चारों ओर गह-गह अँजोरिया पसार रहा है। वह एक समय-संकल्प से घिर गई।

इस समय भले ही नहीं गई वह, लेकिन नीलेश जान चुका है, इसलिए माँ के भोजन थाली लाने के पूर्व ही उसकी भूख जाग चुकी थी। और बेहद मुलायम आलू-पराठे, मसालेदार आलूदम तथा रबड़ी की तरह मेवा-खीर के प्रथम स्वाद ने नई विधि, आत्मीयता और समर्पित परिश्रम की गहरी पहचान करा

दी। समाजवादी सिद्धान्त के अनुशासन में खाया उसने उतना ही. जितना जरूरी है. जिसकी तारीफ करके उसका महत्त्व तो कम नहीं किया, लेकिन यह अवश्य सोचा कि एकान्त में पाक कौशल की प्रशंसा करके बच्चों की तरह नम्रता की खुशी अवश्य देखेगा।

लेकिन, स्वयं नम्रता से कुछ खाया नहीं गया, दो-चार कौर मुँह में डालकर पानी पीया और उठ गई। उसकी माँ ने चिन्ता से देखा, "क्या बात है, तुम्हारी तबीयत तो ठीक है, साफ-साफ बताती क्यों नहीं ?"

"तबीयत को क्या हुआ? जितनी भूख थी खा लिया।"

"जाओ, सो रहो... आराम करोगी तो सवेरे तक सब ठीक हो जाएगा।"

अपने कमरे में एक कुर्सी पर बैठकर एक पुस्तक पढ़ने से भी उसकी घबराहट दूर नहीं हुई, जिसका कारण नए सिरे से वही घूमता विचार है कि उस रात सबकुछ देखते हुए भी नीलेश ने उसे पहचानने से क्यों इन्कार कर दिया? अनभिज्ञ नहीं है नीलेश, सबकुछ जानता है, फिर निष्क्रिय क्यों ? यह घर अनजाना नहीं है उसके लिए, बचपन से बड़े होने तक कई बार आ चुका है, चाहता तो उसके ही कमरे में आकर या किसी से उसे कोठरी में बुलवाकर अपनी भूल नहीं स्वीकार कर सकता था ? निश्चय ही वह अकेला है, परेशानी में है, वह पास जाकर दुःख बाँटकर उसके बोझ को हल्का करना चाहती है, उसके हर संकट और कार्य में सहयोग का आश्वासन देना चाहती है-मगर अपने मन से कैसे ? कहाँ चाहता है वह इसका सहयोग? पास जाने पर तो वह दूर ठेल देता है। उसने तो कभी कुछ बताया नहीं, वह तो उसकी पुस्तकें पढ़कर और दूर से ही उसके विचार सुनकर उसके निकट पहुँची है...

ज्यो-ज्यों समय निकट आ रहा है, संकल्प कमजोर पड़ता जा रहा है। कभी दिल प्यार में उमड़ने लगता है और कभी दुःख और निराशा की गहरी खाई में लुढ़कने लगता है। और वह समय आकर गुजर भी गया और वह कुर्सी पर चिपकी ही रह गई। कितनी असहाय हो गई है वह ? उसका दिमाग थक गया है, उसके शरीर में कोई ताकत नहीं है और उसके पोर-पोर में दर्द हो रहा है!

सहसा उठकर दरवाजा खोला और कमरे के बाहर आ गई। आकाश साफ और खूब चटकार चाँदनी। वह एकटक कोठरी की तरफ देखने लगी, जिसका दरवाजा पूरा बन्द भी नहीं था और एक फाँफर-सा दिखाई दे रहा था। लेकिन बहुत कोशिश करने पर भी उसके पाँव आगे नहीं बढ़े और बँधे-बँधे वहीं स्थिर रह गए। उदास, दुःखी वह कमरे में लौट गई और दरवाजा भीतर से बन्द करके, चारपाई पर चित लेटकर धरन को खाली खाली आँखों से निहारने लगी।

धायें ! वह उछलकर बैठ गई, फिर खड़ी होकर बंद दरवाजे की तरफ भय से देखने लगी। बाहर गोली छूटी थी, उसी तरह, जैसी फौज आगमन की रात में। उस समय भी वह डरी जरूर थी, मगर इस वक्त तो थरथर काँप रही है। ऐसा लग रहा है कि पुलिस ने भीतर घुसकर नीलेश पर गोली चला दी है।

इच्छा हुई कि दरवाजा खोलकर बाहर जाए और आगे बढ़कर जब वह दरवाजे के पास पहुँची ही थी, उसकी माँ अपने कमरे में से आकर बाहर खड़ी होकर बोली:

"बेटी... नम्रता...।"

धरघराहट के मारे उसके मुँह से कोई आवाज नहीं निकली।

"सो रही हो ? ठीक है, निश्चिन्त होकर सोओ, कोई खास बात नहीं है। कचहरी के पास फौजवालों ने किसी पागल कुत्ते को गोली मारी है..."

उन दिनों अक्सर रात में गोली की धायें गूंज उठती। इस सम्बन्ध में लोगों की दो धारणाएँ

श्री-एक ती गती किजना किसी भी पकड़कर जाते हैं और गोली मारकर और नेवरसोल ने सुपण निकाल दिया है कि जही कोई पागल कुता मिले, गोली मार दी जाए। लेकिन तीसरी सलग बात लोगों को नहीं मालूम है कि सार्वजनिक दहशत मरकरार रखने के लिए रात में कभी-कभी हवाई फायर भी कर दिया जाता है।

इसके पश्चात कोई आवाज नहीं आई, म गोली की और न ही किसी व्यक्ति की। यह खड़ी रह गई देर तक, लेकिन उसका भग तैसा ही बना रहा, जैरी किसी भी क्षण फौज उसके घर पहुँचकर बाहर से दरवाजा खटखटाने लगेगी। तब यह मया करेगी? नीलेश को कैसे यचा सकेंगी? यह ती कोहरी में अबोला है, उसकी फौन बताएगा, कौन सावधान करेगा ?

उसे सहसा अपने बचपन की गह रात याद आई जब एक भयंकर तूफान आया था, जिससे है की आवाजें आ रही थीं, जैरो कोई विशालकाय दैत्य हुँकार रहा हो। छतों पर और आँगन में रखे सामान हवा में उड़ रहे थे और बाहर से आकर गिर भी रहे थे। यह डरकर जोर से चिल्लाने लगी थी और रामशाने पर भी उस समय तक जान छोड़कर रोती रही, जब तक हवा का वेग और उसकी चीखें कम न हो गईं। आज भी यह उसी तरह भय से थरथरा रही है, इस अन्तर के साथ कि यह बड़ी और विचारवान हो गई है, और इच्छा के बावजूद इस आशंका को दया नहीं पा रही है कि उसके प्रिय के साथ कुछ ऐसा घटनेवाला है, जिसे टालने में असमर्थ है।

परिस्थितियों का विश्लेषण कर सकती है आज, मगर नहीं कर पा रही है। संभल सकती है, मगर नहीं सँभल पा रही है। जबकि आज उसके घर में नीलेश भी है, जिसे विदेशी हुकूमत उसके साथियों को मारकर तलाश कर रही है, इन अफवाहों के बीच कि रात के अँधेरे में किसी देशभक्त को मारकर यह प्रचारित किया जाता कि एक पागल कुत्ते को गोली मार दी गई है।

क्या हो गया है उसे ? भय से विक्षिप्त क्यों हो रही है? क्या यह अपने लिए डर रही है या अपनी असमर्थता के लिए? इस भय से अपनी रक्षा नहीं कर पाएगी तो नीलेश के संघर्षों में कैसे साथ दे पाएगी ? यह अपने को प्यार करती है या नीलेश को? नहीं, नहीं, यह क्या सामने नीलेश खड़ा है, निडर, धीर-गम्भीर, विनम्र, स्वाभिमानी... उसका सिद्धान्त, उसका आदर्श, बचपन का साथी और मंजिल का राही.. उसके भय की राख से माँजा गया और उसी के बीच से उभरता, अर्थों से भरा एक उत्साही पुरुष का चमकता चेहरा। इस भय के प्रति यह कृतज्ञ है क्योंकि उसने नीलेश को उसके पास खड़ा कर दिया है, एक समर्थ पुरुप, जिसे फौरन आलिंगन में लेने की हिम्मत-भरी व्याकुलता भी दी है उसने।

डर और हिम्मत के बीच में थरथराते शरीर से आगे बढ़कर अपना दरवाजा खोला और बाहर से बंद किया। फिर उसे यह महसूस नहीं हुआ कि कैसे कोठरी का फॉफर चौड़ा करके अन्दर घुसी और नीलेश की चारपाई के पास खड़ी हो गई।

नीलेश जगा था। दिन में सोने से नींद नहीं आई, फिर गोली की आवाज से परेशान होकर कुछ देर बैठा भी रहा। एक खयाल यह भी आया कि उसी को पकड़ने के लिए फौज आगमन की सूचना है। कुछ डरा भी, बाद में यह सोचकर सन्तुष्ट भी हुआ कि इस घुटन-भरी स्थिति से छुटकारा तो मिलेगा और उसका नाम दयाशंकर, राममूरत तथा अन्य शहीदों के साथ जुड़ जाएगा। वह पुनः लेटकर साहस के साथ प्रतीक्षा करने लगा।

चारपाई पर पड़े चाँदनी अंश के धुँधले आलोक में उसने नम्रता का चेहरा पहचान लिया-अस्वाभाविक और पथराया हुआ-सा। उछलकर खड़ा हो गया वह। पूछने के लिए ज्यों ही आगे बढ़ा, नम्रता बड़ी मुश्किल से अपनी दोनों बाँहें उठाकर उसके गले में डालते ही मूर्छित होकर

लड़खड़ा गई, जिसे पहले ही से सावधान होने के कारण उसने अपनी बाँहों में सँभाल लिया।

उसने बेहद डरकर उसकी माँ को पुकारना चाहा, लेकिन कुछ सोचकर धैर्य का सहारा लिया और बाँहों में ही उठाकर उसे बिस्तरे पर लेटा दिया। उसकी आँखें भर आई, क्योंकि ऐसा लगा कि नम्रता सदा के लिए छोड़कर चली गई है। लेकिन नाक पर हाथ रखते ही कुछ सन्तोष हुआ। जेव से रुमाल निकालकर उसके मुँह पर हवा करते हुए झुककर बोला :

"नम्रता, क्या बात है, आँखें खोलो...।"

वह इस तरह पड़ी थी, जैसे गम्भीर निद्रा में हो। लेकिन देर तक यह यह स्थिति नहीं रही और सुगबुगाहट के बाद आँखें खोल दीं उसने। फिर चेहरा घुमाने पर नीलेश को देखते ही उसके मुख से रुदन

की कराह जैसी पतली क्षीण-सी आवाज निकली। वह उठने लगी, जिसमें सहयोग देकर नीलेश भी उसके पास बैठ गया, तब वह उसके कन्धों को जोर से पकड़कर बोली :

"नीलेश, आपके पीछे लोग पड़े हैं, फायरिंग कर रहे हैं। ये उठा ले जाएँगे आपको... मेरी समद्र में नहीं आता क्या करूँ... पता नहीं मुझे क्यों डर लग रहा है..."

यह रो रही थी। अपने को रोक नहीं सका वह। नम्रता उसको इतना चाहती है, इतनी चिन्ता-इसकी गहराई को कभी थाह नहीं सका, गौसपुर घाट पर नहीं और न ही कोठरी आगमन की उस पहली रात को ही। अपने सम्बन्ध में भी नहीं सोच सका कि इस हद तक प्रिय है वह। पीड़ा-भरे प्यार से लबालब उसका हृदय होंठों और आँखों से झलकने लगा और नम्रता को अपनी दोनों बाँहों में समेटकर आँसू-भीगे कपोल का चुम्बन लेते बोला :

"किस बात का डर ? मैं तो तुम्हारे पास हूँ। तुम्हारे साथ गांधीजी हैं, नेहरूजी हैं, जयप्रकाश नारायण हैं, तुम्हारे साथ देश है, बलिया की जनता है, तुम क्यों डरोगी? तुम मेरे पास हो, सदा मेरे हृदय में हो मैं ही तम्हारे योग्य नहीं। मैं मूर्ख, गँवार, अनाड़ी हूँ, मुझे अपना प्यार प्रकट करने नहीं आता। कई बार सोचा, तुमसे माफी माँग लूँ, पर पता नहीं क्या हो जाता है मुझे। हाँ, इस कोठरी की पहली रात को मैं जगा था, अधखुली आँखों से देख रहा था तुम्हें। जानता हूँ, तुमने सोचा होगा, छाती पर हाथ पड़ जाने से दुःस्वप्न में बड़बड़ा रहा हूँ। कुछ कहकर तुम्हारे दिव्य रूप को मिटाना नहीं चाहता था। चुप इसलिए रहा कि तुम्हारे प्यार की कोई दूसरी मूक छवि देखने को मिल जाए। आलू-भरे पराठे और खीर के उत्तम स्वाद से भी मुझे तुम्हारे गहरे प्यार का सन्देश मिल गया था। तुम तो मेरी हिम्मत भी हो, अइगा पांडे की दुष्टता का प्रतिकार, उमेश की बीमारी में तुम्हारा हिम्मत बँधाना, आजादी की लड़ाई से जुड़कर खादी पहनना... धनेश्वरी देवी, भगजोगिनी देवी को पढ़ाना-लिखाना... यह सब क्या है ? तुम किसी से क्यों डरोगी? मैं तो तुम्हें सदा खुश देखना चाहता हूँ... चुप रहो और मुस्कुराओ, हँसो..."

वह उसके कान के पास धीरे-धीरे बोल रहा था, जिसके बीच वह सिसकती रही। उसने ठोड़ी पर हाथ रखकर उसका मुँह उठाया। उसके होंठों का चुम्बन लिया और रुमाल से उसका भीगा मुँह पोंछने लगा। आलिंगन में उसका भय दूर हो गया, उसके हृदय को राहत, ठंडक, सुख और शक्ति मिलती गई और वह आश्वस्त और सुस्थिर होकर उसके झुके चेहरे को एकटक देखने लगी। फिर मुस्कुराकर उसके मुँह पर अपनी उँगलियाँ फिराने लगी... फिर उसके बालों पर, उसकी बाँहों पर, उसकी घाँटी पर। कुछ देर तक उसके हृदय-स्थान पर हाथ रखे रही। अन्त में उसका हाथ अपनी मुट्ठी में लेकर अपने हृदय पर रखते हुए बोली, वही शब्द, जो वह कई बार उसको याद करते हुए एकान्त में निःशब्द बुदबुदा चुकी है:

"तुम मेरे आदर्श हो, मेरे भविष्य हो, मेरी पूर्णता हो, तुम क्यों मुझसे दूर हो, मेरे पास आओ नीलेश..."

अगले दिन की सुबह भी बहुत खुशनुमा थी। वह छत पर जाकर, ऊपर फैले स्वच्छ मुस्कुराते

आकाश को कृतज्ञ यादों के झरोखे से मुग्ध भाव से देखने लगी। फिर वह नीचे उतरकर उसे जगाने झपझपाती आँखें दूसरी ओर फेर लीं उसने। लेकिन इसी समय ऐसी दो घटनाएँ हुईं, जिसकी उम्मीद के लिए पहुँच गई। आँखें खोलकर वह उसे एकटक देखने लगा और खुशी में आकंठ डबी अपनी नहीं थी। एक तो यही कि रतनसिंह के छोटे साले अपनी पत्नी अपनी बड़ी लडकी सीता तथा उसी छोटे लड़के विभूतिनारायण के साथ, जिसके मुंडन में यहाँ से सभी इलाहाबाद गए थे, सवेरेवाली टेन ते आ पहुंचे। दूसरा वाकया यह कि सुरेश बाहर से दबकते हुए कोठरी में चला आया और नीलेश के कान में खुसुर-फुसुर कुछ कहने लगा।

नीलेश चौकन्ना होकर देखने लगा। फिर खड़ा हो गया।

"क्या बात है सुरेश ?"

"चाचीजी, भैया के एक मित्र हैं, पहले गवर्नमेंट स्कूल में उनके साथ पढ़ते थे, अब साधु हो गए हैं, देहात की एक मठिया में रहते हैं। मेरे घर में आए थे, बाबूजी ने मुझसे कहा, ले जाकर मिला दो। मठिया के बाबा प्रसाद भी आए हैं, कहते हैं प्रसाद ग्रहण करने से सभी ग्रह कट जाएँगे। बाहरवाला कमरा खुलवा दीजिए चाचीजी।"

एक साँस में कही हुई सुरेश की बात को नम्रता की माँ आश्चर्य से सुनती रही, फिर बोली, "नम्रता खोल दो... नीलेश बाबू को होशियारी से ले जाना...।"

बारी-बारी से सशंकित दृष्टि से माँ, सुरेश और नीलेश की ओर नजर घुमाती, पास ही में खड़ी नम्रता चुपचाप बाहर की तरफ चली गई। बाद में नीलेश जब कमरे में गया तो आगन्तुक को देखकर आश्चर्यचकित रह गया, क्योंकि कुर्सी पर बैठे दाढ़ी-मूँछवाले तीस वर्षीय गेरुआ वस्त्रधारी व्यक्ति को जरा भी पहचान नहीं पाया।

"मुझे याद नहीं आता, कभी आपसे मिलना हुआ हो...।" नीलेश ने उसके पास बैठते हुए धीरे-से कहा।

"कोई बात नहीं," साधु ने झटक-झटककर बोलते हुए कहा, "मैं बैकुंठ हूँ... बड़े-बड़े नेता फरार हो गए हैं, कई जंगल-झाड़ी, रहर के खेतों में छिपे हैं... तो खैर, देश का काम नहीं रुकेगा। बहुत-से नौजवान तैयार हैं... पिलास हैं, बहुत से दूसरे औजार हैं... तौ खैर, केशवदेव मालवीय, अरुणा आसफ अत्ती वगैरह अब भी फरार हैं... उन्होंने गंगा पार से पर्चे भेजवाए हैं... ये पर्चे शहर, कस्बों, गाँवों में गिराए जाएँगे, चिपकाए जाएँगे... तो खैर, तार फिर से काट देने और रेल पटरियाँ उखाड़ने का आदेश आया है..."

"मैं तो आपको जानता नहीं..." नीलेश का सन्देह दूर नहीं हुआ, यद्यपि इस फँसाव से निकलने का एक ताजा हवादार पथ-प्रकाश उसके सामने झिलमिलाने लगा।

स्वयं ब्रिटिश गुप्तचर विभाग का आदमी होने के भ्रम-निवारण हेतु आगन्तुक ने सूचित किया कि भूमिगत प्रान्तीय नेतृत्व ने उसे बलिया जिले का नया कांग्रेस प्रभारी नियुक्त किया है। इसके बाद उसने कांग्रेस आन्दोलन, कांग्रेस केन्द्रीय कार्यकारिणी तथा प्रान्तीय कार्यकारिणी की संरचना पर भी प्रकाश डालना उचित समझा जिस दौरान जवाहरलाल नेहरू, आचार्य नरेन्द्रदेव, दामोदर स्वरूप सेठ, चन्द्रभानु गुप्त, शंकरराव देव आदि के नाम कई बार आए। उसने अद्‌भुत स्मरण-शक्ति का परिचय देते हुए राष्ट्रीय महत्त्व की कुछ मीटिंगों की एकदम सही तारीखें. दिवस और समय के साथ भी बता दीं। अन्त में प्रभाव से सन्तुष्ट होने के बाद कुछ दबंगई से बोला :

"अगर मैं सी.आई.डी. में होता तो आपसे इस रूप में मिलता ? इस समय तक तो आप जेल में होकर बहुत कुछ भुगत रहे होते! आपके दोनों छोटे भाई आपसे अधिक होशियार हैं। आप बनारस में पढ़ते हैं. मुझे नहीं जानते. आपके भाई मुझे पहचानते हैं. नाम से और शक्ल से भी। तो खैर... मैं जाता है, आपके भाई शहर में पर्चे गिराने को तैयार हैं। आपको परसों, सुबह अँधेरे

में ही यहाँ से घल देना है। गघकर, संभलकर जाइएगा, इस समय में पुलिसवाले भी आराम करने हैं। आप नगवों से आगे चलेंगे तो एक मैदान मिलेगा, वहाँ एक नाटे, काने आदमी से मुलाकात होगी, गणेश नाम है, यह आपको ले जाएगा एक जगह, जहाँ देशभक्त नौजवानों की एक गुन सभा है। हाँ, यह पेड़ा है... आश्रम का प्रसाद नहीं है, देश के लिए सिर कटानेवाले ग्रह कटाने के विश्वास नहीं रखते... गाँव में हलवाई से खरीदा है, उत्तम स्वाद है, आप खाइए और घरवालों को दे दीजिए...।"

आगन्तुक ने खड़े होकर अपने कमंडल में से एक बड़ा कुल्हड़ निकाला, जिसे ऊपर पने में ढककर बाँध दिया गया था। जब वह वरामदे से नीचे उतरकर चला गया तो नीलेश कुल्हड़ लेकर घर के अन्दर कोठरी की तरफ प्रस्थान कर गया। बीच में, भीतरी वरामदे में नम्रता मिली, उसने बिना देखे ही कुल्हड़ उसकी तरफ बढ़ा दिया।

"क्या है ?"

"पेड़ा है, साधु ने खाने के लिए दिया है।"

वह आगे बढ़ गया। नम्रता कुछ और पूछ नहीं सकी वल्कि उसके मुख पर पुरुप उत्साह एवं गर्व की नूतन संकल्प की ऊँचाई और दूरी का अनुमान करके नई, ताजी चाह से भरकर दीप्त आँखों से अपलक देखती रह गई।

दो दिन वह और रहा, लेकिन घर में भीड़ और चहल-पहल की वजह से उससे बात करने, पूठने, जानने-समझने का उपयुक्त अवसर तलाश नहीं पा रही थी नम्रता। वह दुःख, हताशा में बेहाल-सी

अक्सर इधर-उधर घूमती नजर आती, जिसका कोई उद्देश्य भी नहीं मालूम पड़ता। शाम को नास्ता के बाद बाहर के कमरे में देर तक जब सभी इकट्ठे होकर गप-शप करते रहे, वह चुपके-से वहाँ से खिसककर कोठरी में आई और मीन बैठे नीलेश से उसकी और बिना देखे बोली :

"आकाश पर चाँद निकला है, छत पर से बड़ा सुन्दर दिखाई देता है..."

इसके बाद यह बिना देखे ही कमरे से बाहर निकल गई।

नीलेश सहसा उसके कथन का अर्थ समझ नहीं सका, लेकिन ध्वनि व्यंजना पर ध्यान जाते ही अभिभूत होकर, सजल आँखों के साथ खड़ा हो गया।

वह छत के मध्य खड़ी प्रतीक्षा कर रही थी और पास पहुँचने पर, विद्युत गति से बढ़कर उसके समाजवादी कुर्ते के कॉलर को पकड़ते हुए प्यार, दुःख, निराशा और क्रोध के अनूठे, आक्रामक फुसफुसाहट-भरे स्वर में बोली, "तुम निष्ठुर...।"

भावनाओं के ज्वार में वह हाँफ गई और उसका स्वर डूब गया।

"नहीं, ऐसी बात नहीं है। मैं तुम्हारे बारे में ही सोच रहा था," बह उसके मुख, बाल और पीठ पर हस्त-संचालन द्वारा आश्वस्त करता हुआ बोला, "में यहाँ से जाऊँगा, कल रात बीतने पर सुबह अँधेरे में। मुझे तुम्हारी मदद की जरूरत होगी, बाहर चुपके-से दरवाजा खोल देना पड़ेगा। हिन्दुस्तान के लोग जो लड़ाई लड़ रहे हैं, उसमें मेरी तरह तुम भी एक सिपाही हो, इसलिए हिम्मत खोने का कोई अर्थ नहीं है। तुम तो मेरे दिल में हो, तुम्हारे साहस और खुशी से मुझे ताकत मिलेगी।"

"तुम ले चलो मुझे... मैं भी तुम्हारे साथ रहकर तुम्हें सहयोग देना चाहती हूँ..."

"यह लड़ाई लम्बी है... कई मोचों पर है, तुम जो कर रही हो, यह भी जरूरी है। तुम्हारी बजह से ही धनेश्वरी देवी और भगजोगिनी देवी बहुत कुछ समझ रही हैं, साहसी और मेहनती बनी हैं, पढ़ रही हैं, सीख रही हैं, निडर होकर जेल गई हैं, यह मामूली बात नहीं है। बाहर तुम्हारे लिए कोई

माहौल नहीं है, जब जरूरत आएगी तो तुम्हें बाहर मोर्चे पर जाना पड़ सकता है...।" नीचे कोई पुकार रहा था। उसने जल्दीबाजी में सीढ़ी की तरफ देखा, फिर नीलेश के सिर को

झुकाकर उसके बालों का चुम्बन-स्पर्श किया और विछोह की व्याकुलता से उसकी छाती पर अपना मुँह रगड़ने के बाद मुक्त होकर चली गई।

एक बार और एकान्त वार्ता का एक दुर्लभ अवसर मिला, जब वह गुसलखाने में हाथ-मुँह धोने गया था। प्यार का वैसा ही हताश आक्रामक भाव था उसमें और सामने कर्ता पकड़कर वैसे ही पूछा था उसने, "अब क्या होगा ? क्या होगा ?"

"तुम धैर्य और हिम्मत से काम करोगी, खूब मेहनत से अध्ययन करोगी, साधारण महिलाओं ते मेल-जोल बढ़ाओगी, उनकी मदद करने, उनको शिक्षित करने का कार्यक्रम चलाओगी। मुझ पर विश्वास करोगी, मेरा इन्तजार करोगी। आजादी की लड़ाई में किसी का साथ छूट सकता है, मगर जो बचकर रह गया है, वह अपने बिछुड़े साथी की परम्परा को कायम कर उस लड़ाई को आगे बढ़ाएगा। हम आजादी के साथ इस देश में मनुष्यता का राज कायम करने की भी लड़ाई लड़ रहे हैं, उन सभी बातों को समाप्त करने की लड़ाई, जो मनुष्य को दूसरे मनुष्य से अलग करती है। मुझे यह कहने में संकोच नहीं है कि नारी रोकती नहीं है, कमजोर नहीं करती है, यह ताकत और हिम्मत देती है, कोई भी लड़ाई उसके सहयोग के बिना अधूरी है। गांधीजी ने नारी की रचनात्मक

बुद्धि और शक्ति को समझा है। तुमसे क्या कहना है, तुम तो सब जानती हो..." उसकी समझ में जो आया, उसने भागते समय में जल्दी-जल्दी कहा और वह आँसू बहाती रही,

जैसे कान नहीं बल्कि आँसू ही सुन रहे हों।

अन्तिम समय में वह उसकी इच्छा के अनुसार साहस के साथ अनुपात को रोककर मुस्कुराने की कोशिश करती रही। चुम्बनों की लेन-देन के बाद उसने मुक्त करके और अलग होकर ताला खोल दिया। उसके बाहर निकलने के समय हाथ पकड़कर धीरे से बोली :

"सुनो..."

"बताओ..."

"कोई कलंक तो नहीं लगेगा ?" वह उसके कान के पास फुसफुसाई। उसे दुलारी गुरुजी की

बात याद आ गई थी।

नीलेश आवाक देखता रह गया उसे। गंगाजल की बूँद की तरह कैसा निर्दोष चेहरा। उसके बालों पर हाथ फेरता हुआ बोला, "कुछ नहीं होगा... जो कुछ होगा, मिलकर सामना करेंगे। सारी चिन्ताएँ निकाल दो...।"

उसके हाथ को अपनी मुट्ठियों में लेकर स्नेह से दबाने के बाद वह नीचे उतर गया। उसके हाथ में कपड़ों से भरा उसका झोला था। उसके कदम तेजी से पड़ रहे थे। ब्राह्म मुहूर्त की शीतल, सुखद हवा जिसमें आत्मसंशय, भावी अनिश्चितता, नम्रता की याद और चिन्ता-सबको उड़ाकर मुक्ति का अनुभव करना

चाहता था वह। अपने दिमाग को हर विचार से खाली करके वह चलता गया, बीच-बीच में अगल-बगल और पीछे की तरफ देखते हुए। रास्ते में सन्नाटा पसरा था। मृगुआश्रम के आगे बढ़ने पर सफर और भी सुखद लगा, शायद इसलिए कि पुलिस फौज का भय नहीं था इधर और हवा भी और ताजी और स्वच्छ ।

नगवाँ के पास ही उसने उषाकाल की लाली में बिछी उत्सुक धरती और झुककर मुस्कुराते आकाश का अनोखा मिलन देखा। जब वह बैकुंठ द्वारा बताए गए मैदान में पहुँचकर खड़ा हुआ तो सूरज का उदय हो गया था। उसने चारों ओर देखा। और स्वच्छ हवा को पीते हुए दिव्य अनुभूति से भर उठा वह। सामने बिछी धरती पर नन्हीं नरम दूब, बगल के वृक्ष की डालियाँ बाँहों की तरह और भीनी-भीनी सुगन्ध। उसकी आँखें भर आईं। नम्रता याद आ गई थी उसे। उसके बाद और भी बातें... अनुरोध, अश्रु, विछोह, अन्तिम कथन... एक डर घुसने लगा उसके अन्दर...

" आप नीलेशजी हैं न ?"

इन्हीं हथियारों से / 483

उसकी तन्द्रा भंग हुई और उसने चौंककर देखा। नाटा और काला व्यक्ति।

"गणेश हैं आप ?

"आइए, चलिए, यहाँ से दूर नहीं है..."

वे खेतों की पगडंडियों से होकर चले, लेकिन अन्ततः जिस छोटे-से गाँव के वगीचे में पहुँचे, देखने लगा तभी पेड़ों की झुरमुट में से निकलकर छह पुलिस सिपाही उन पर टूट पड़े। पहले तो यहाँ एक व्यक्ति नजर नहीं आया। एक जगह खड़ा होकर नाटा व्यक्ति इधर-उधर उत्सुकतापूर्वक उनकी समझ में कुछ नहीं आया, फिर नारे लगाने लगे जिसके परिणामस्वरूप नीचे पटककर कुटम्पस की गई और अन्त में कमर में रस्सा बाँधकर और पैरों में बेड़ी डालकर कुछ दूर सड़क पर खड़ी लॉरी में चढ़ा दिया गया, इस चेतावनी के साथ, "चलो कोतवाली, यहाँ वाप-दादा भी नहीं चिल्ना

पाओगे।" पुलिस शहर की ही थी और किसी मुखबिर से गुप्त सभा का पता लग गया था। गनीमत यह है कि बहुत-से लोग समय पर नहीं पहुँचे और जो अन्य तीन आए भी यह पहले ही घर लिए गए।

लॉरी जब सीतानाथ के मकान के सामने खड़ी हुई तो तहलका मच गया। लॉरी में गुप्तचर विभाग का इंसपेक्टर और एक मजिस्ट्रेट भी था। कैदियों में सिर्फ नीलेश को ही उतारा गया, क्योंकि बाद में ही उक्त दोनों अधिकारियों को मालूम हो सका कि यह उस वकील का लड़का है, जिसके साले सिविक गार्ड कमांडर हैं, और उसे बाहर-बाहर ही परिवारजनों से मिलने की छूट दी जा सकती है।

मोहल्ले के कई लोग आ गए, छकौड़ी-थो, रतनसिंह, धनेश्वरी के पति किशुनी, लाला, भीतर से सीतानाथ। औरतें दरवाजे के बाहर बरामदे में खड़ी हो गई धारोधार रोती हुई। कुछ देर बाद नम्रता भी आकर खड़ी हो गई। जब उसने नीलेश को इस हालत में देखा तो वह गुस्से से पागल-सी होकर पुलिसवालों और मजिस्ट्रेट को घूरने लगी। नीलेश के कपड़ों में धूल और घास लगी थी, वाल भी धूल से सने और विखरे, कपोलों पर लाल-लाल सट्टे और दाईं तरफ नीचे का होंठ कटा हुआ। बेड़ी में उसके पैर फैले हुए थे, और वह छाती निकालकर साहस के साथ खड़ा मुस्कुराने की कोशिश कर रहा था।

"इन पर प्रहार क्यों किया गया है ? इनकी कमर में रस्सा क्यों बाँधा गया है? कचहरी में मुकदमा चला नहीं, उसके पहले दंड दे दिया गया ? किस अपराध में ? रस्सा खोल दीजिए इनको कमर से..." नम्रता गुस्से में मजिस्ट्रेट से कह रही थी।

मजिस्ट्रेट ने क्रोध से घूरकर जवाब दिया, "आप सरकारी काम में रुकावट डालने का अपराध कर रही हैं। अभी सरकार औरतों से कुछ नहीं बोल रही है...ले जाओ, कैदी को लॉरी में बिठाओ..."

"नीलेश, हम इन्तजार करेंगे..." नम्रता ने नीलेश से कहा, जब उसे पुलिसवाले ले जाने लगे। सभी नम्रता को अचम्भे से देख रहे थे, और रतनसिंह ने एक बार उसको क्रोधपूर्वक दबी आँखों से घूरकर सिर झुका लिया था। कुछ देर बाद घर की तलाशी खत्म हुई और लॉरी भर-भर करके चली गई।

रतनसिंह अपने घर जाकर भीतरी बरामदे में कुर्सी पर बैठ गए चुपचाप और पास ही में खड़ी उनकी पत्नी आँचल से आँखें पोंछ रही थी। कुछ देर बाद नम्रता औरतों को ढाढ़स बंधाने के बाद आई और अपने कमरे की ओर जाने लगी। वह कमरे में जाकर अकेले में रोना चाहती थी क्योंकि साहस तथा धैर्य की बातें अपर्याप्त और असमर्थ...इसी समय रतनसिंह सिर उठाकर चिल्ला पड़े: "सुनो इधर..."

ये भी वही दुर्लभ क्षण थे, जिनमें रतनसिंह आपे से बाहर हो जाते हैं। उनका चेहरा माँजकर

चमकाए गए किसी ताँबे के लोटे की तरह दिखाई दे रहा था। नम्रता से शायद ही कभी इस तरह बात की हो. जो उनकी बेहद प्यारी इकलौटी बेटी है और जो उनके सामने आकर खड़ी हो गई बड़ी-बड़ी आँखें निकालकर देखती हुई।

"क्यों गई थी वहाँ बेशर्म की तरह ? किसने बुलाया था तुम्हें ?"

"पुलिस अन्याय कर रही थी..." वह धीमे स्वर में बोली।

"तो तुम पहुँच गई। माँ-बाप थे, में खड़ा था और तुम पहुँचकर जबान लड़ाने लगी मजिस्ट्रेट से! क्यों ? मैं पूछ रहा हूँ, क्यों ?"

नम्रता कोई उत्तर न देकर आँखों से अपने पिता को गुड़ेरती रही। उसकी माँ ने मना किया, "उसे क्यों डाँटा जा रहा है ? सभी तो थे वहाँ !"

इससे रतनसिंह का क्रोध शान्त क्या होता पारा और भी चढ़ गया। अब जरें-जरें को कम्पित करनेवाली ऐसी आवाज में, जो खड़े होने पर ही सम्भव है, हाथ की धमकी-भरी जुम्बिश का भी सहारा लेकर तड़प उठे :

"कौन लगता है वह तुम्हारा, जो उसे बचाने के लिए पहुँच गई ?"

नम्रता काठ की तरह खड़ी रह गई, सिर्फ आँखें ही शरीर में बच रही थीं। बड़ी-बड़ी जागती आँखें।

"चुप क्यों हो ? मैं साफ-साफ सुनना चाहता हूँ, बताती क्यों नहीं कि वह तुम्हारा कौन लगता है ?"

नम्रता का दिमाग चकरा रहा था। लेकिन उसने आपा नहीं खोया, न ही डरी, बल्कि सच्चाई की डोरी मजबूती से थामे रही।

"मेरा सबकुछ।" उसका स्पष्ट शान्त उत्तर था।

"क्या ?" रतनसिंह के हृदय पर यह भारी आघात था। उन्होंने सोचा था कि नादानी में चली गई थी, और डॉट-डपट से आगे ऐसी नासमझी और उद्दंडता का कार्य नहीं करेगी। एक ही लड़की है, यदि जेल चली गई तो अच्छी-खासी मुसीबत में फँस जाएँगे। यह सही है कि उन्हें गुस्सा कम आता है, उसको विवेक और साहस के खूँटे से बाँधे रहते हैं, लेकिन जब आ जाता है तो वह खूँटा भी उखाड़ देता है। उन्होंने प्रहार के लिए हाथ उठा लिया।

"यह क्या कर रहे हैं? मारेंगे उसे ? साफ बता रही हूँ, हाथ उठा दिया तो मुझे जिन्दा न पाएँगे। चलो बेटी, तुम यहाँ से चलो... तुम्हारे साथ कसाई का व्यवहार नहीं होने दूँगी..." नम्रता की माँ बीच में आ गई थी। फिर वह बेटी का हाथ पकड़कर उसके कमरे में ले गई।

"आज से इसकी पढ़ाई बन्द। यही लक्षण हैं तो पढ़-लिखकर क्या होगा ? मेरी सिधाई और अहसान करने का नतीजा है यह। मैं भी सोचता था उस पांडे लोफर की हिम्मत कैसे हो गई ? हुँह, नाक कट गई...।"

इसके फौरन बाद नम्रता की माँ एक ही साथ आँखों से रोती, हाथ से छाती पीटती और पैरों से टेढ़ी-तिरछी भागती पति के पास जाकर बोली, "मैं यह बरदाश्त नहीं करूँगी। बड़ा नाम था कि बहुत हिम्मत है, शान्ति से काम लेते हैं। घर की अकेली लड़की है, सयानी है, लक्ष्मी है, सीता है, आपने तो अभी उसके लिए कुछ किया नहीं, उसके लिए ऐसी भाषा निकालते हैं ? चलकर उससे माफी माँगिए।

भैया-भाभी एक रिश्तेदार से मिलने गए हैं, आते होंगे, हँसी-हँसारत के पहले जाकर उसे मनाइए। वह लड़की नहीं दुर्गा भी है, वह हमारे लिए लड़का भी है...।"

यह किसी पागल से प्रतिस्पर्धा करती हुई धाराप्रवाह बोल रही थी, अन्दर शायद कहीं यह विश्वास जरूर रह गया था कि सदा खूबसूरत और बेहद प्यारी पत्नी पर अवलम्बित रतनसिंह पर बातों का प्रभाव पड़ेगा, जो एक सर्वश्रेष्ठ गरज के प्रतिफल में गूंज उठा :

रुदन और वेटी विनती और गिड़गिड़ाहट के बीच कपड़े यदलकर यह का चुप्पी-संकल्प पीछे छोड़ते हुए कचहरी चले गए। विचार, कथन और कृत्य के स्तर पर साधारण कात्यपरक जिद, नासमझी और दुर्व्यवहार, कभी आदर्श और शान्ति का किला भी तोड़ सकता है। इसीलिए नीलेश और देश के लिए जीवन को प्यार करनेवाली नम्रता अपने सामने देख रही थी कि उस मजबूत नींव को ही उखाड़कर अन्धकार में फेंक दिया गया है, जिस पर यह गर्व और साहस के साथ खड़ी थी। माँ उसको समझा रही थी, लेकिन वह मीन अन्धकार में आगे बढ़ती रही। और जय माँ कुछ देर के लिए टली तो वह उठकर गुसलखाने के बाहरवाले ताख के पास गई और उस पर रखी एक पुड़िया खोलकर उसमें रखी सामग्री मुँह में उड़ेल ली, फिर गुसलखाने में जाकर पानी पीया और अन्त में अपने कमरे में आकर लेट गई।

चूहा मारने की दवा उसी ने मँगवाई थी जिसमें से कुछ इस्तेमाल की गई और शेष मावी इस्तेमाल के लिए ताख पर रख दी गई थी। कुछ देर बाद माँ उसके कमरे में आई तो वह छटपटा रही थी और उसके मुँह से फेन निकल रहा था।

"अरे क्या हुआ, मेरी बेटी को ?" वह जोर से चिल्लाई। नौकर ने बताया कि दीदी गुलसखाने के पास गई थी। वह दौड़कर उधर गई तो ताख के नीचे खाली पुड़िया देखकर छाती पीटने लगी, "अरे किसके पास जाऊँ ? कोई नहीं है। अरे, जाओ, वीरेश, सुरेश किसी को बुला लाओ। घनेश्वरी से कह दो, किशुनी से कह दो, हाय राम, मेरी सीता चली गई, मेरी दुर्गा चली गई..."

वीरेश तो नहीं था, मगर सुरेश फौरन पहुँच गया। नम्रता की माँ रोती हुई बोली:

"अरे बच्चा, तुम्हारी दीदी ने गलती से चूहा मारनेवाली दवा खा ली है। जाओ कचहरी चते जाओ, चाचाजी को बुला लाओ..."

सुरेश एक-दो बार वाहर-भीतर गया फिर हिम्मत से बोला, "आप इस तरह जान छोड़कर रोएँगी तो हिम्मत कौन करेगा ? कचहरी दौड़ने से कुछ नहीं होगा, मैं दीदी को अस्पताल ले जाऊँगा। बाद में कचहरी कोई चला जाएगा। दीदी को सँभालिए, मैं एक्का लाता हूँ..."

एक खाली एक्का इधर ही आ रहा था, किशुनी, धनेश्वरी, छकौड़ी-बो, आनन्दी, भगजोगिनी, वीरेश सभी पहुँच गए। शीघ्र ही नम्रता को लादकर अस्पताल पहुँचाया गया। डॉक्टर ने उल्टी कराकर पेट साफ किया, फिर सूई, दवाई का उपचार करने के बाद कहा, "अच्छा हुआ, अस्पताल ले आए, नहीं तो मुश्किल हो जाती। अब खतरे से बाहर हैं।"

रतनसिंह बेहद घबराए हुए कचहरी से आए थे। शाम तक जब नम्रता स्वस्थ होकर घर आ गई तो अवसर पाकर उसके कमरे में पहुँच गए और रोकर कहने लगे, "मुझे माफ करो बेटी। मैंने बड़ा अन्याय किया तुम्हारे साथ। मैं दुनिया की परवाह नहीं करता, तुम्हारी खुशी के लिए कुछ भी करूँगा, नीलेश से ही तुम्हारी शादी करूँगा, ईश्वर तुम दोनों को खुश रखे।"

51

नीलेश, गणेश तथा कुछ अन्य नौजवानों के गिरफ्तार हो जाने से आघात तो अवश्य लगा, किन्तु इससे विचलित न होकर वैकुंठ ने अपनी कोशिशें जारी रखीं और लगातार यात्राओं और सम्पर्कों द्वारा एक बार फिर बलिया जनपद में पूरब से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक देशभक्तों की नई फसल लहलहाने लगी, जिनमें नवीनतम पीढ़ी के नौजवान, किशोर और छोटे-छोटे बच्चे भी शामिल थे। खेती-बारी में लगे एक गरीब, कर्मठ और आशावादी किसान की तरह बैकुंठ दिन-रात जुटा

रहता। फौज के आगमन, अन्धाधुन्ध गिरफ्तारियों, भयंकर उत्पीडन और दमन से एक समय ऐसा जरूर लगने लगा था कि राष्ट्रीयता और देशभक्ति की यह उर्वर धरती बंजर हो गई है और अब इसमें कुछ नहीं उगाया जा सकता। आजादी दूर चली गई है, बहुत दूर और निकट भविष्य में उसे प्राप्त करना असम्भव है। परन्तु वैकुंठ तथा अन्य नौजवानों ने हार नहीं मानी और विकट, प्रतिकूल परिस्थितियों में 'भारत छोड़ो आन्दोलन' को जारी रखा।

खूँखार पागल की तरह नासमझी का व्यवहार करनेवाली विदेशी हुकूमत की शैतानी आक्रामक दौड़ के बीच अनेक खतरे उठाते हुए वे लोग कार्य करते थे। जगह-जगह घूमते गुप्तचरों और उनके मुखबिरों की आँखों में धूल झोंकने के लिए उन्हें अनेक उपाय करने होते। कोशिश तो यही होती कि यात्राएँ रात के वीरान अँधेरे में हों, लेकिन कई दिक्कतों की वजह से यह हमेशा सम्भव नहीं। तब उन्हें भेष, चाल तथा मुख-मुद्राएँ बदलनी पड़तीं। कभी साधु बन जाते, कभी भिखमंगा, कभी नकली दाढ़ी-मूँछ लगानी पड़ती, कभी अनोखे ढंग से कूल्हे और मुँह को टेढ़ा करना पड़ता और कभी सँगड़ाकर चलना पड़ता। इन्हीं तरीकों से वैकुंठ तथा उसके साथी छिप-छिपकर लोगों, खास तरह से नए नौजवानों से मिलते, उन्हें समझाते, बहस करके आन्दोलन के लिए उन्हें तैयार करते, जहाँ सम्भव हो चन्दे वसूल करते, घर से भाग गुप्त रूप से कार्य करनेवाले नौजवानों के ठहरने और खाने की व्यवस्था करते। पिलास, चाकू, रिंच, हथौड़ा तथा अन्य जरूरी औजार तथा गंगा पार से छपे हुए पर्चे मँगाकर कार्यकर्ताओं में वितरित

करते। औजार रेलवे की पटरी उखाड़ने तथा तार काटने के लिए और ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विद्रोह का सन्देश देनेवाले पर्चे लोगों के बीच बाँटने, गिराने और चिपकाने के लिए।

बैकुंठ अपने साथियों तथा कार्यकर्ताओं के लिए अन्य तरह की भी व्यवस्था करता, क्योंकि उनमें से कई मामूली कपड़ों में ही घर से भागकर आन्दोलन में शामिल हुए थे। एक ही कपड़ा पहनते-पहनते फट जाता था। कइयों के पास तो जूते-चप्पल भी नहीं थे, और जिनके पास थे भी, ये कब तक ऊबड़-खाबड़ रास्तों में बचा पाते। किसी की चप्पल घिसकर आधी रह जाती, किसी के जूते का तल्ला निकल जाता और चलते वक्त मुँह बाकर और जीभ निकालकर फट-फट बोलने लगता। ऐसे अभावों की पूर्ति चन्दे में मिले मामूली धन से करने की कोशिश की जाती, लेकिन ऐसा अमूमन हो नहीं पाता तो गुप्त समर्थकों तथा सहानुभूति रखनेवालों से कहा जाता कि वे यदि पहने हुए कपड़े-धोती, कुर्ता-बनियान, स्वेटर आदि इकट्ठे करके दे सकें तो भी काम चल जाएगा। इस कार्य में देशभक्त और जागरूक महिलाओं ने बड़ी मदद की, जिनमें दुलारी देवी, नम्रता, भगजोगिनी, धनेश्वरी, नकलनबीसिन तथा अन्य कई महिलाएँ शामिल थीं।

इन महिलाओं में से कुछ ने जाड़े के मौसम के लिए ऊनी कपड़े बुनकर दिए, जैसे नम्रता ने दो स्वेटर तथा दुलारी देवी ने कुछ मोजे और टोपियाँ। मगर ये पर्याप्त नहीं थे। कभी वे कुछ खाना जैसे पूड़ी, पराठा, ठेकुआ, अचार तैयार कराके भेजवा देतीं। हमेशा यह सम्भव नहीं था। सम्पर्क करने में जोखिम तो था ही। नम्रता, नकलनबीसिन आदि के लिए वीरेश और सुरेश सहज उपलब्ध थे। ये दोनों ही शहर में पर्चे बाँट रहे थे। खास तरह से सुरेश की उम्र छोटी थी और वह अपनी ही उम्र के साथियों के साथ यह कार्य करता। यह दल फौजी या पुलिस गश्ती दल के पीछे-पीछे सक्रिय रहता। किसी मुहल्ले से गश्ती दल के गुजरने के बाद छोटे बच्चे जिनके घूमने टहलने पर किसी को सन्देह नहीं होता था, सड़क पर पर्चे गिराकर तथा दीवारों पर चिपकाकर गायब हो जाते। बाद में सरकारी हलकों में तहलका मच जाता, तलाशी शुरू हो जाती, सन्देह में निर्दोष लोगों की गिरफ्तारियाँ होतीं, उनकी पिटाई की जाती।

विदेशी हुकूमत की बौखलाहट का अन्त नहीं था, जब इन्हीं लड़कों, खास तरह वीरेश और उसके साथियों ने 26 जनवरी को चौक पर तिरंगा झंडा फहरा दिया। पुलिस गश्ती दल को चकमा

देकर ये रात में चौक पहुँच गए और एक की पीठ और दूसरे के कन्धे का सहारा लेकर तीसरा यानी वैकेश गुम्बद पर चढ़ गया और झंडा फहराने में सफल होने के बाद नीचे उतरकर पहले की तरह यसाथियों के साथ छिपकर रफूचक्कर हो गया। उन्होंने पुलिस चीकी, सरकारी अफसरों तथा ब्रिटिश सुकूमत के समर्थकों एवं चापलूसों के मकानों पर भी पर्ने चिपकाए। सभी स्कूलों में भी पर्ने गिरने लगे। मध्यान्तर काल में जब लड़के बाहर निकलते, एक-दो लड़के छिपाए हुए पर्चे निकालकर डेस्क या मेजों पर रख देते।

लेकिन एक दिन ऐसा करते समय एक लड़का पकड़ा गया। फिर तो कई लड़कों की गिरफ्तारियाँ हुई, जिनमें सुरेश भी शामिल है। इनमें कई लड़के सन्देह में भी गिरफ्तार हुए, उनको हवालात में रखा गया, खूब मार पड़ी, लेकिन किसी ने न माफी माँगी और न कुछ बताया। उम्र हवा थी उनकी, नाबालिग थे और कोई ठोस सबूत न मिलने से कोई मामला नहीं बना और कुछ दिनों की हवालाती कैद के बाद वे छोड़ दिए गए। लेकिन वीरेश और सुरेश दोनों ही भाइयों को गवर्नमेंट स्कूल के हेडमास्टर ने स्कूल से निकाल दिया और सीतानाथ को बुलाकर स्पष्ट कह दिया कि वे अपने लड़कों के नाम किसी और स्कूल में लिखा लें, अपने स्कूल में नहीं रख सकते वह क्योंकि इसके लिए सरकार की ओर से काफी दबाव डाला जा रहा है। तब सीतानाथ ने अपने लड़कों को उमानाथ के पास बनारस भेज दिया और उनके नाम वहीं लिख गए।

दूसरे कस्बों तथा गाँवों में भी नौजवानों की इस प्रकार की राष्ट्रीय गतिविधियाँ जारी थीं। अनेक नौजवान घर छोड़कर शामिल थे और रूखा-सूखा खाकर उत्साह और साहस के साथ डटे हुए थे। हर जाति और धर्म के लोग थे उनमें, लेकिन उनके बीच खाने-पीने, आपसी संवाद, सहयोग के दौरान कोई भी समस्या उत्पन्न नहीं होती। गुप्त सभाओं में कभी-कभी उनको एक कठवते या परात में पूरा खाना एक साथ परोस दिया जाता और वे एक ही में जल्दी-जल्दी खाने लगते। ऐसे मेल-जोत और एकता से वे अत्यन्त सन्तुष्ट होते। उनके बीच विकसित होती इस राष्ट्रीयता और भाईचारे से उनको रोमांच होता। उनमें कांग्रेस, समाजवादी और क्रान्तिकारी विचार के सभी लोग थे, जो जातीय एवं साम्प्रदायिक संकीर्णता के कट्टर विरोधी थे और यहाँ अपने विश्वास और आस्था को चरितार्थ होते देखकर उन्हें प्रसन्नता होती। वे आजादी मिलने पर ऐसी राष्ट्रीयता चाहते थे, जो समानता, परस्पर सौहार्द और एकता को पुष्ट करे।

कार्यकर्ताओं के लिए खाली समय में पढ़ने हेतु पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाएँ भी जुटाए जाते। भाग-दौड़ की जिन्दगी में ताजा दैनिक अखबार तो मिलना सम्भव नहीं था, यदि कभी मिलता तो पुराना ही होता, लेकिन पुरानी पत्रिकाएँ उपयोगी होतीं, जिनमें 'सरस्वती', 'विशाल भारत', 'माया' 'मनोहर कहानियाँ', 'मॉडर्न रिव्यू' उल्लेखनीय हैं। पुस्तकें भी पुरानी ही थीं जिनमें उपन्यास और कहानियाँ प्रमुख हैं। राजनीतिक पुस्तकें भी होतीं, लेकिन कम और कइयों द्वारा पूर्व-पठित भी। वैकुंठ ने एक बार हस्त-लिखित पत्रिका भी निकालने की कोशिश की लेकिन ऐसा दो-तीन बार ही हो सका। कार्यकर्ताओं में जो अधिक पढ़े-लिखे थे, उनसे लेख लिखवाए गए-राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास, राष्ट्रीय नेताओं तथा 'भारत छोड़ो' आन्दोलन की प्रगति और उसकी भावी योजनाओं के सम्बन्ध में। यह पत्रिका मामूली कार्यकर्ताओं के बीच खूब घूमी और पढ़ी गई और उससे नया उत्साह उत्पन्न हुआ।

नौजवानों को अनेक दलों में विभक्त कर दिया गया था। एक दल में तीन व्यक्ति होते, जो विभिन्न दिशाओं में विभिन्न उद्देश्यों से सफर करते रहते। वे लम्बी दूरियाँ तय करते। काँटों-भरे ऊबड़-खाबड़ रास्तों, जंगल-झाड़ियों तथा खेतों की पगडंडियों से होकर मामूली कपड़ों तथा विसे-फटे जूतों-चप्पलों में वे तड़के सुबह निकलते तो शाम को पहुँचते। साथ में सत्तू या भूजा रहता और नहीं भी रहता तो किसी गाँव से खरीद लिया जाता और वर्तन न मिलने पर अँगीछे में रखकर और पानी

में भिगोकर पिंड बना लेते और हाथ में लेकर मूली या प्याज से गटक जाते। लेकिन तार काटना और रेल की पटरी उखाड़ना आसान नहीं था। एक तो कड़ी सतर्कता की

वजह से पुलिस या फौज की टुकड़ियों की गश्त होती रहती और सरकारी गुप्तचर या उनके मुखबिर पागल-बउरहे का रूप बनाए जगह-जगह घूमते रहते। ऐसी हालत में कोर्ड तार-बार काट भी देता तो जल्दी ही पता लग जाता और तत्काल जोड भी दिया जाता। मुश्किल तो यह थी कि भयंकर दमन, उत्पीड़न, घर फूँक देने तथा सामूहिक जुर्माने लगाने से गाँवों के आम लोग बेहद त्रस्त थे और ऐसे समय ऐसे किसी कार्य में सहयोग नहीं देना चाहते थे, जो उनको दुबारा नई मुसीबत में डाल दे।

ज्वार खत्म होने पर भाटा के समय यह उम्मीद या इच्छा करना कि फौरन ज्वार आ जाएगा, भ्रम या मूर्खता का ही विचार है। इसीलिए महात्मा गांधी अथवा दुनिया के अन्य जननेता रचनात्मक कार्यों द्वारा तैयारी करते हुए ज्वार के उचित समय की प्रतीक्षा करते हैं। हर समय और जब चाहे आन्दोलन या क्रान्ति कैसे सम्भव है ? एक अवसर आया था जरूर, जिसमें जनता ने स्वयं नेतृत्व हाथ में लेकर अभूतपूर्व विशाल आन्दोलन खड़ा कर विदेशी हुकूमत को पीछे ढकेलकर पराजय के निकट पहुँचा दिया। यदि किसी कारण से, वह आन्दोलन अन्तिम मंजिल तक नहीं पहुँचा और जनता को पीछे हटना पड़ा, तो अब वैसा ही बड़ा आन्दोलन फिर कैसे खड़ा हो सकता है ? जिन कारणों से कोई व्यक्ति पीछे भागता है, वे शीघ्र कैसे दूर किए जा सकते हैं और उनके रहते कैसे कोई अचानक तेजी से आगे दौड़ने लगेगा ?

ऐसी विकट परिस्थिति में, भूमिगत प्रान्तीय नेतृत्व ने बैकुंठ के साथ मिलकर फैसला किया कि पटरी उखाड़ने और तार काटने तथा ऐसे कुछ अन्य कार्यक्रमों को उस समय तक स्थगित कर दिया जाए, जब तक जनता सहयोग देने को फिर तैयार नहीं हो जाती। और अपना पूरा समय फरार नेताओं और कार्यकर्ताओं को ढूँढ़ ढूँढ़कर इकट्ठा करने में लगाएँ। उनके आने से जनता में फिर हिम्मत जुटेगी, क्योंकि वे आजादी की लड़ाई की बदली हुई परिस्थितियों में नया, उपयुक्त रास्ता सुझाने में अवश्य ही सफल होंगे।

किन्तु यह कार्य भी आसान नहीं था, विशेष रूप से फरार नेताओं और कार्यकर्ताओं के गाँवों में, जहाँ विदेशी हुकूमत ने भयावह प्रतिशोधात्मक कार्रवाइयाँ की थीं, जिससे वहाँ की जनता सर्वाधिक आतंकित और सशंकित थी। इन गाँवों के लोग चौबीस घंटे सावधान और सतर्क रहते और अपने-अपने गाँव में छोटी-से-छोटी ऐसी कोई बात भी सहने को तैयार नहीं थे, जो हुकूमत के गुप्तचरों का ध्यान आकर्षित करे। इसका सबूत उस समय मिला, जब बैकुंठ अपने दो साथियों भोला और अनिल के साथ चिलिकहर स्टेशन के पास स्थित एक गाँव में एक भूमिगत नेता से सम्पर्क करने के उद्देश्य से गया।

बड़ा अत्याचार हुआ था उस गाँव पर। कई मकान फूंक दिए गए थे, लूट, गिरफ्तारियाँ और पिटाई हुई थी, फिर भी नेता का कोई सुराग न मिलने पर सामूहिक जुर्माना के अलावा युद्ध के लिए चन्दा भी जबरदस्ती वसूला गया। अन्य कई गाँवों की तरह इस गाँव में भी हमेशा पहरेदारी होती रहती कि कोई अनजान आदमी तो गाँव में आ-जा नहीं रहा है? कोई अनहोनी घटना तो नहीं हो रही है ? ऐसी स्थिति में किसी की नजर बैकुंठ तथा उनके दो साथियों पर पड़ गई, जब वे दूर थे, लेकिन सतर्कतापूर्वक इधर-उधर देखते हुए गाँव की तरफ ही बढ़े आ रहे थे।

वैकुंठ का दल जब गाँव के कुछ और नजदीक पहुँचा तो उन्हें यह देखकर बड़ा अचम्भा हुआ कि छः ग्रामवासियों का एक दल कतारबद्ध होकर खतरनाक ढंग से उनकी तरफ बढ़ रहा है। उनके सिर पर अँगौछा या दुपट्टा बँधा था, धोतियाँ कमर में खोंस ली गई थीं और हाथ में लाठियाँ आगे बन्दूक की तरह तनी हुई। वे धीरे-धीरे कुछ आगे झुके हुए चल रहे थे, जैसे युद्ध में कोई फौजी

टुकड़ी आक्रमण के लिए सावधानीपूर्वक आगे बढ़ती है।

सदा चैतन्य रहनेवाले बैकुंठ के साथी भी कम अनुभवी नहीं थे, इसलिए लाठीधारियों की मंशा समझने में उनसे भूल नहीं हुई और वे फौरन पीछे मुड़कर तेजी से लौटने लगे। ऐसी आक्रामक गतिविधि का कारण न जानते हुए भी वे ऐसे नाजुक समय में गिरफ्तारी का जोखिम उठाकर आन्दोलन पर कोई आघात क्या. कोर्ड खरोंच भी नहीं चाहते थे। लेकिन उनकी वापसी से उत्साहित होकर उसको दौड पलायन में बदलने की इच्छा से ग्रामवासी उनके पीछे दौड़ पड़े, नियन्त्रित ढंग से। इसका मनोवांछित परिणाम निकला और बैकंठ का दल वैसी ही तेजी से भाग चला। उनके बीच ऐसा तीन-चार बार हुआ। बैकंठ का दल बीच-बीच में जब ठिठककर देखता तो ग्रामवासी भी ठिठक जाते। फिर दल के लोग और तेज भागने लगते। अन्त में वे मैदानी टट्टओं की तरह सरपट दौड़ने लगे. तब उन्होंने एक बार भी पीछे नहीं देखा. बल्कि परी शक्ति से भागते रहे खेतों की पगडंडियों और मेड़ों से होते हुए, कंकड़, ढेलों और काँटों के ठोकरों तथा प्रहारों के सहारे।

ग्रामवासियों की टोली उनको पकड़ना तो नहीं चाहती थी, लेकिन उनको गाँव की सीमा से दूर भगाकर यह भी बता देना चाहती थी कि इस तरह की हरकतें वे पसन्द नहीं करेंगे, क्योंकि आन्दोलन आरम्भ होने के पहले शिक्षित नौजवानों के ऐसे ही दल गाँव में आते, लोगों को इकट्ठा कर जोशीले भाषण देते और उनके जुलूस का नेतृत्व करके सरकारी थानों और कार्यालयों पर अधिकार करने के लिए ले जाते। लेकिन उस आन्दोलन का क्या नतीजा निकला ? जब उन पर जुल्म हो रहे थे, उनकी रक्षा करने के लिए कौन आया ? ये नौजवान उस समय कहाँ थे ?

बैकुंठ का दल भागता रहा और बहुत आगे जाकर निश्चिन्त हो पाया। फिर वे चलते-चलते रात के दस बजे दूसरे गाँव के बाहर आम के बगीचे की पलानी में पहुँचे। यही पता दिया गया था और उसमें सोया

हुआ आदमी जागकर उनको शंका से देखने लगा। पूरा पता पाकर निश्चिन्त होने के बाद पलानी के व्यक्ति ने उन्हें पुआल के विस्तरे पर बिठाकर धीमे स्वर में कहा :

"भाईजी, यह समय ठीक नहीं है। हर काम का समय होता है। कोई भी काम हो, चौबीसों घंटे तो काम नहीं होगा ! किसान खेत पर और विद्यार्थी स्कूल में हमेशा तो नहीं रह सकता ! इसी तरह गाँव के लोग, कार्यकर्ता और नेता हैं। इस अंग्रेज हुकूमत ने इस गाँव में धन-जन का बड़ा नुकसान कर दिया है। इस गाँव के लोग देशभक्त हैं, देश की आजादी चाहते हैं, लेकिन इस समय वे लड़ना नहीं चाहते। कुछ दिन पहले ही तो वे लड़ चुके हैं। मार खाकर इस समय थके हैं। कुछ आराम कर लेंगे, खाकर फिर हरे-भरे हो जाएँगे, उनका घाव भर जाएगा, आत्मविश्वास लौट आएगा, परिस्थितियाँ अनुकूल होंगी तब वे फिर खड़े होंगे पहले से अधिक उत्साह और संकल्प के साथ। छिपे लोगों को फिर से बाहर लाएँगे तो गाँव के लोगों का सहयोग भी नहीं मिलेगा और वे गिरफ्तार भी हो जाएँगे। चारों ओर तो प्लेग के पिस्सुओं की तरह गुप्तचर घूम रहे हैं। इस समय सूझ-बूझ से काम करने की जरूरत है। मैं आपका सन्देश उन तक पहुँचा दूँगा। कठिनाई तो यह है कि उनको हमेशा छिपने की जगह बदलनी पड़ रही है। आप इस समय भोजन कीजिए और रात में पलानी में आराम करने के बाद भोर में निकल जाइएगा..."

अनेक फरार लोग तो गंगा के इस या उस पार दीयर इलाके या किसी रिश्तेदारी में रुके थे, लेकिन सबको ढूँढ़ लेना आसान नहीं था। कोई भी एक जगह स्थिर होकर बैठ नहीं सकता था।

फिर भी, बैकुंठ तथा उनके साथी नौजवानों ने अपनी कोशिशें नहीं छोड़ीं। वे रूखा-सूखा खाकर दूर-दूर तक सफर करते। ठोकर खाकर पैर की उँगलियाँ फट जातीं, नाखून टूट जाते। जाड़े में बेवाइयाँ बुरी तरह फटतीं, सर्दी-जुकाम और खाँसी से गला जकड़ जाता, लेकिन वे हमेशा खुश रहते। कष्ट-तकलीफ में एक-दूसरे का साथ देते, तीमारदारी करते। जब वीरान में होते तो राष्ट्रभक्ति का संगीत छोड़ देते। कभी-कभी आपस में हँसी-मजाक भी होने लगता।

कुछ बड़े नेता मिले जरूर। उन्होंने उन नौजवानों की खूब सराहना की कि ऐसे कठिन समय में भी वे अलख जगाए हुए हैं। उन्होंने आश्वासन भी दिया कि 'आप चलिए...हम पहुँचते हैं न ।' लेकिन वे वादा के अनुसार आए नहीं। शायद वे भी अनुकूल परिस्थिति की प्रतीक्षा कर रहे थे। उधर हुकूमत भी आन्दोलन की गतिविधियाँ जारी रहने और काफी पुराने और महत्त्वपूर्ण नेताओं के फरार रहने से बहुत परेशान थी। उनको पकड़ने के लिए जाल पर जाल बिछाए जा रहे थे और ऐसे ही एक जाल में प्रेमानन्द जैसे महत्त्वपूर्ण और साहसी नेता फँसकर गिरफ्तार कर लिए गए।

प्रेमानन्द जिले के कुछ उन कांग्रेसियों में हैं, जो पढ़ तो नहीं सके, लेकिन साहस और त्याग के मामले में किसी से कम नहीं। एक अत्यन्त गरीब ब्राह्मण के पुत्र, लम्बा, कसरती शरीर, जवान होते ही सन् 1930 के नमक सत्याग्रह से प्रभावित होकर जेल गए। फिर तो अनेक स्वातन्त्र्य आन्दोलनों में शामिल होकर कई बार जेल यात्रा की और कष्ट सहे। बाद में व्यक्तिगत सत्याग्रह में भी जेल गए और रिहा होने के

बाद 'भारत छोड़ो आन्दोलन' आरम्भ होने के पहले ही नजरबन्द कर लिए गए। जिलाधीश सुरेश्वर द्वारा कैदियों की रिहाई के साथ यह भी छूटे, और फौज के आगमन के बाद फरार हो गए। दीयर में एक के बाद दूसरे स्थान पर छिपते हुए रात में एक परिचित के डेरे पर लौंडे का गाना सुन रहे थे, उसी समय पुलिस का छापा पड़ा।

वहाँ कई लोग इकट्ठे संगीत का आनन्द ले रहे थे। अचानक डेरा का मालिक राम सिंहासन सिंह चौंक पड़ा, "ए रामअँजोर, देखो तो बाहर कोई है तो नहीं?"

"इस समय कौन होगा, मालिक ? आधी रात हो गई है... अच्छा देखते हैं..." गाना खूब जमा हुआ था और इस समय रामअँजोर एक क्षण के लिए भी संगीत-सुख से वंचित नहीं होना चाहता था।

कुछ देर बाद रामसिंहासन ने फिर कहा, "अरे, रामअँजोर देखते क्यों नहीं, बाहर जरूर कोई आया है। बैलों की घंटियाँ बज क्यों रही हैं ?"

बैल भी कुत्तों की तरह सजग प्रहरी हैं। रात के सन्नाटे में जब वे खड़े-खड़े सोते हैं तो गले में बँधी घंटियाँ नहीं बजतीं। लेकिन यदि उनके पास कोई आ जाता है तो उनकी निद्रा भंग हो जाती है और सिर हिलाने लगते हैं, जिससे घंटियाँ बजने लगती हैं। और बात सच भी थी, क्योंकि ज्यों ही रामअँजोर देखने के लिए बाहर आया, बाहर के हाते में खड़े पाँच पुलिस-सिपाही उस पर टूट पड़े। पुलिस को सन्देह तो था, लेकिन उम्मीद नहीं थी कि प्रेमानन्द जैसा साहसी, महत्त्वपूर्ण और खतरनाक आन्दोलनकारी गिरफ्त में आ जाएगा। फिर तो डेरा का मालिक रामसिंहासन, रामअँजोर के साथ प्रेमानन्द को पकड़ लिया गया, जिन्हें हथकड़ियाँ पहना तथा रस्से से बाँधकर, इक्के पर बिठाकर वैरिया थाना ले जाया गया।

सुबह हो गई थी, थाने के बाहर इक्का खड़ा होते ही थानेदार ने घरेलू पोशाक में बाहर निकलकर चिल्लाकर पूछा :

"कौन है दीवान ? कोई मछली है ?"

"मछली का, मगरमच्छ है हुजूर, जरायम की स्कीम बन रही थी। एक मुखबिर के बताने पर छापा मारा गया, हम क्या जानते थे, इतना बड़ा शिकार मिल जाएगा ?"

"अरे तो कौन है, बताते क्यों नहीं? गांधी, नेहरू, पटेल, आजाद तो पहले ही जेल का मजा लूट रहे हैं, अब यह कौन नया तीसमार खाँ पैदा हो गया ?"

"प्रेमानन्द कांग्रेसी है, साहब। इन्हीं लोगों ने नाक में दम कर रखा है। एक-दो और ऐसे मगरमच्छ पकड़ जाएँ तो आन्दोलन फौरन टायें-टायें फिस्स हो जाए।"

"थाने के अन्दर लाकर सभी सालों को पेड़ में बाँध दो। सुबह का समय है, अच्छा पनपियाव मिल जाना चाहिए। मैं थोड़ी देर में तैयार होकर आता हूँ।"

यह नया थानेदार था, जो अंग्रेजों के सामने क्रूरतम वफादारी के सबूत एकत्रित करके पेश करने की हड़बड़ी में था। एक घंटे बाद वह वर्दी-पेटी से लैस होकर हाथ में वेंत लिए हुए आया। तव तक तीनों कैदियों की जमकर पिटाई करने के बाद पेड़ों में बाँध दिया गया था।

पास आते ही थानेदार चिल्लाया, "क्यों वे प्रेमानन्द के बच्चे जल्दी यता तू दीयर में छिपा की हैं? तू जानता नहीं मैं कौन हैं। तेरे लिए यमराज हैं. जल्दी-जल्दी बता जा, नहीं तो तेरी जान निकालकर तेरे माथे पर चिपका दूँगा...।"

"मैं कुछ अधिक तो नहीं कर सका, अधिक समय जेल ही में रहा। हाँ, छूटने पर दो बचे हुए थाने जरूर फूंके हैं। थानेदारों से माफी मँगवाई है जरूर। मैं चाहता हूँ कि जल्दी-से-जल्दी यह विदेशी हुकूमत खत्म हो और इसके लिए जब तक जान है कोशिश करता रहूँगा..."

"तेरी यह हिम्मत ?" थानेदार का चेहरा तमतमा गया और वह आगे बढ़कर प्रेमानन्द पर बेंत से प्रहार करने लगा उचित-अनुचित हर जगह। फिर थककर अलग होकर भर-भर गन्दी गालियाँ देने लगा।

"अच्छा, रस्सा खोलो तो मैं बताता हूँ..." प्रेमानन्द से ऐसी गालियाँ बरदाश्त नहीं हुई और उन्होंने मूँछों पर ताव देते हुए चुनौती पेश की।

"अच्छा, बड़ा मर्दाना बनता है? अपनी मूँछ पर घमंड करता है ? सिपाही, इसकी मूँछ का एक-एक बाल बीन लो। भीतर मोचनी है ले आओ जल्दी। और हाँ, इसको पेशाब भी पिलाओ, बड़ा-बड़ा मुँह घुमाकर ललकार रहा है तो इसको फौरन अपनी औकात समझ में आ जाए। यमराज से अभी पाला नहीं पड़ा था इसका..."

थाने में मोचनी थी, इसका अर्थ यह हुआ कि पहले भी ऐसा कुकृत्य किया जा चुका है, यदि नहीं किया गया, तो आगे ऐसा इरादा होगा, जो अब चरितार्थ होने जा रहा था। साम्राज्यवादी शासन के दौरान भीषण दमन एवं उत्पीड़न के अनेक अकल्पनीय, वीभत्स मौलिक तरीके ईजाद किए गए, जिनका पता क्रान्तिकारियों का इतिहास पढ़ने से होता है। इसलिए, कैसे उनका रस्सा खोलकर जमीन पर पटका गया, कैसे चार व्यक्तियों ने उनका एक-एक हाथ, एक-एक पैर दबाए रखा और पाँचवें ने कैसे मोचनी से मूँछ का एक-एक बाल उखाड़ा-फिर उसके बाद कैसे गरीब राहगीरों को बुलाकर उनका पेशाब एक हँडिया में एकत्रित करके ढरके की मदद से उसे जबरदस्ती पिलाया गया, इसका विस्तार से वर्णन करना जरूरी नहीं है, क्योंकि ऐसी यन्त्रणा को शब्दों में लिपिबद्ध करना संभव नहीं। परन्तु इस व्यवहार ने प्रेमानन्द के मर्म पर भारी आघात किया।

कोई भी शारीरिक कष्ट उन्हें न कभी पहले डिगा सका और न इस समय ही डिगा सकता है, लेकिन इस घृणित, अमानवीय कृत्य ने वह नींव अवश्य हिला दी, जिस पर उनकी राष्ट्रीय, नैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक जीवन की मजबूत, भव्य इमारत खड़ी थी। उनका स्वाभिमान जैसे किसी ने अपने पैरों के नीचे रखकर बुरी तरह कुचल दिया हो। राष्ट्र तथा उसके करोड़ों लोगों की आजादी और उत्थान के लिए मानवीय सुख-सुविधा तथा अन्य इच्छाओं से ऊपर उठकर त्याग और सत्य-निष्ठा के जिस शिखर पर वह पहुँचे थे, वहाँ से जैसे किसी ने उनको लुढ़का दिया हो निजी ईर्ष्या-द्वेष, क्रोध और प्रतिशोध के अन्धकार में और यह भावना बढ़ती गई, बढ़ती गई मार्फिन की सूई के प्रभाव की सीमा तक, जब हर कष्ट और दर्द के प्रति संवेदनहीनता उत्पन्न हो जाती है, और * जिसमें मूँछ का एक-एक वाल नोचे जाने तथा पेशाब की एक-एक बूँद हलक के अन्दर पहुँचाए जाने की मर्मान्तक शारीरिक एवं मानसिक पीड़ा भी सहनीय हो गई।

इसके बाद भी थानेदार उनको दिन-भर पीटता और पिटवाता रहा, लेकिन वह मार भी उनके बढ़ते हुए क्रोध और प्रतिशोध के सामने नगण्य सिद्ध हुई। और अन्त में, अगले दिन सुबह मुख्यालय

भेजने के लिए उन्हें थाने की एक छोटी-सी अँधेरी कोठरी में रात काटने के लिए डाल दिया गया तो वह निजी किस्म की तर्क श्रृंखला विकसित कर चुके थे। हाँ, वह काठ या लोहे के बने नहीं हैं. बल्कि हाड़-मांस के इंसान हैं। व्यर्थ है यह अहिंसा का आन्दोलन. जिसमें लगातार हर तरह का कष्ट, अपमान, जलालत बरदाश्त करनी होती है स्वयं, जिससे बिना कोई प्रतिवाद और प्रतिकार किए अन्यायी और आततायी को निरन्तर छूट मिलती रहती है- स्थायी अभयदान! यदि अहिंसा के तरीके से आजादी मिल भी जाती है. तो ये मानव जाति के अपराधी क्षमा प्राप्त करके जीवित रहेंगे और समय बदलने पर स्वयं चोला बदलकर ईमानदार देशभक्तों और वफादारों से अधिक देशभक्त और वफादार बनकर देश और समाज को नए ढंग से दूषित और विकृत करेंगे ! ऐसे आन्दोलन में समय बरबाद करना है, आन्दोलन तो ऐसा होना चाहिए, जिसमें एक तमाचा के बदले दो तमाचे देने का भी संकल्प हो !

"नहीं, यह बरदाश्त के बाहर है। उसने दूसरों का पेशाव पिलाकर राष्ट्र, समाज, मानवता और एक देशभक्त का ही अपमान नहीं किया है, बल्कि एक ब्राह्मण का भी अपमान किया है, उसकी श्रेष्ठता, पवित्रता और उसके उच्च कुल संस्कारों को धूल-धूसरित कर दिया है। दारोगा के रूप में इस नरराक्षस को जीवित रहने का अधिकार नहीं है। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक यह जीवित है, मैं चैन से नहीं बैठूंगा। मेरा यह संकल्प, जयद्रथ-वध की अर्जुन प्रतिज्ञा की तरह ही है।"

कोठरी के अन्धकार में बुदबुदाते हुए वह उठ बैठे। और कुर्ता-बनियान उठाकर अपना जनेऊ एक झटके से तोड़कर उक्त प्रतिज्ञा स्पष्ट शब्द-उच्चारणों द्वारा दोहराई उन्होंने। इससे कुछ सन्तोष मिला और भयावह, दिमागी, प्रतिशोधात्मक प्रतिक्रिया का सिलसिला अचानक थम गया; लेकिन इसने मार्फिन की सूई का प्रभाव कम कर दिया और पिटाई से शरीर पर बने अनगिनत घावों का दर्द अनेक रूपों में

उभरने लगा और उनके मुँह से कराह की आवाजें निकलने लगीं। वह देर तक कराहते रहे, फिर ऊँघने लगे दर्द से बोझिल नींद।

नींद में भी कराह बन्द नहीं हुई और धुँधले, डरावने सपने भी नजर आने लगे। रात के अन्तिम प्रहर में आभास हुआ कि एक बूढ़ा व्यक्ति उनके पास आकर बैठ गया है उदास मुस्कुराहट के साथ। बूढ़ा धीरे-धीरे बोलने लगता है, "तुम निजी इच्छाओं की पूर्ति और उससे प्राप्त क्षणिक सन्तोष, तृप्ति को राष्ट्र, समाज और मानवता की सेवा से क्यों जोड़ते हो ? एक में निजी प्रतिशोध का सुख है और दूसरे में मानव अस्तित्व की गरिमा का आनन्द, करोड़ों आम लोगों से जुड़ने की दिव्य अनुभूति ! यह सही है कि तुम्हारे साथ बड़ा घृणित व्यवहार किया गया है, लेकिन यह समझ लो कि यह सुलूक इसलिए नहीं हुआ कि तुम ऊँचे कुल में पैदा हुए हो, तुम ब्राह्मण हो, उसका स्पष्ट कारण यह है कि तुम अपने देश की आजादी, देश के लोगों का कल्याण चाहते हो !"

बूढ़ा चुप रहकर फिर कहता है, "तुम शायद सोचते हो कि तुमको जो दुःख दिया गया है, वैसा किसी के साथ नहीं हुआ होगा। ऐसा नहीं है-इसी देश के, विदेशी हुकूमत और बाहर के भी आतताइयों ने जनता के प्रिय व्यक्तियों को इससे भी भयंकर यातनाएँ दी हैं। तुम शायद नहीं जानते कि इसी देश का आम आदमी, जिनकी संख्या करोड़ों में है, हर दिन जितना दुःख और अपमान सहता है, उसकी कोई सीमा नहीं। उसकी सहनशक्ति का अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता। यह अपने दुःखों का कारण भी नहीं जानता। इन लोगों से सही ढंग से जुड़ने की स्थिति में व्यक्तिगत सुख-सुविधा और व्यक्तिग इच्छाओं की तृप्ति के लिए समय कहाँ बचता है ?

"ऐसे लोगों से जुड़ना जबानी जमा खर्च द्वारा नहीं होगा, वह अपने ठोस कार्यों द्वारा ही सम्भव है निजी सुख और लाभ की परवाह किए बगैर। उनसे जुड़ना, उनको सहारा, सहानुभूति, शिक्षा, स्वाभिमान, रोशनी और काम देना आसान नहीं है। क्यों आसान नहीं है? इसलिए कि उनको कुंठित किया गया है, तोड़ा और विभाजित किया गया है, उनके स्वाभिमान और स्वावलम्बन को नष्ट किया

गया है। उनसे जुड़ना अपने को जोडना है. उनको शिक्षित करना, उठाना और मजबूत बनाना अपने को भी वैसा ही बनाना है। यदि तुम्हें अपना निज प्यारा है तो तुम अपने को आन्दोलन से आम जनता से अलग कर लो..." "नहीं नहीं..." वह सपने में चिल्लाना चाहते थे. लेकिन मुँह से आवाज नहीं निकल रही थी।

फिर नींद टूट गई। वह उठ बैठे और चौंककर इधर-उधर देखने लगे। उनकी आँखों से धारा प्रवाह

आँसू गिर रहे थे। वह बिलखने लगे और उनके मुँह से आवाज निकलने लगी, "नहीं चाहिए मुझे

निजी सुख... जो मैं पाहले था. वाही अब भी रहना चाहता हूँ... आगे भी सुन लीजिए, कहाँ गए ?" यह रोते हुए उठ खड़े हुए और कोठरी में घूमकर देखने लगे, लेकिन कहीं कोई नहीं था। फिर कौन था ? कैसे इतनी जल्दी गायब हो गया ? कौन बोल रहा था ? या सपने में वही बोल रहे थे अथवा उनकी अन्तरात्मा की आवाज थी ? इसके उत्तर में कोठरी के बीच में खड़े यह देर तक आँसू बहाते रहे।

सुबह जब उन्हें बलिया के लिए रवाना किया गया तो होंठों के ऊपर मूँछ की जगह खून के जमाव और सूजन तथा अन्य चोटों के कारण पूरा चेहरा बार-बार ठोकर खाकर पसरे बडे घाव की तरह नजर आ रहा था। शरीर के अन्य स्थानों पर भी अनगिनत घाव या मार के दाग थे. जिसमे ठीक से न चल सकने के कारण पैरों में बेड़ी डालने की जरूरत नहीं थी, लेकिन ऐसे कैदी को कई सिपाहियों के साथ कहीं भेजने में भी खतरा है, इसलिए कड़ाई में कोई मामूली ढील भी नहीं दी गई।

पुलिस कप्तान वुड, जिसको जनता हुड कहती है, इस गिरफ्तारी से बड़ा खुश हुआ। दो दिन बाद प्रेमानन्द को रिमांड पर हवालात में भेज दिया गया, जहाँ उनसे मुख्यालय कोटे की पूछताछ आरम्भ हुई, जिसका अर्थ सभी जानते थे। लेकिन प्रेमानन्द फिर निजी सुख-दुःख से ऊपर उठकर आत्म-साक्षात्कार की स्थिति में पहुँच गए थे। अब वह सोचते कि उन पर नहीं बल्कि बलिया और भारत की असंख्य जनता की स्वातन्त्र्य भावना, नैतिक एवं प्रतिरोध शक्ति पर प्रहार किया जा रहा है, और देश के गरीब, सरल, सच्चे, अन्याय-त्रस्त लोगों के कष्टों के मुकाबले तो उनका कष्ट कुछ भी नहीं, बल्कि उनको बचाने के लिए, उनकी मुक्ति के लिए ही वह सबकुछ बरदाश्त कर रहे हैं। यह भावना एक निर्मल ज्योति की तरह निरन्तर उनके अन्तर और बाह्य को प्रकाशित कर रही थी, इसीलिए वह आगन्तुक अधिकारी का स्वागत करते, "आइए, आपका स्वागत है।"

वैसे देखा जाए तो उत्पीड़न के निकृष्टतम तरीके बैरिया में पहले ही आजमाए जा चुके थे प्रेमानन्द पर, और सभी समझते थे कि उन हथकंडों को फिर इस्तेमाल करना निरर्थक ही है। लेकिन इतने से भी अंग्रेज सरकार को सन्तोष नहीं है। इन आन्दोलनकारियों से हुकूमत जहाँ बेहद क्रुद्ध थी, वहीं भयभीत भी। क्रोध का कारण तो समझ में आता है, लेकिन जब यह खयाल आता कि वे लोग निहत्थे हैं और प्रतिहिंसा का रास्ता छोड़कर स्वयं हिंसा बरदाश्त करने में विश्वास रखते हैं, तो क्रोध इतना बढ़ जाता कि उनको फौरन मसल देने की इच्छा होती। लेकिन उनके साहस, धैर्य और आत्मविश्वास की थाह न मिलने की वजह से डरती भी थी। हथियारबन्द लोगों से तो लड़ा जा सकता है बेहतर रणनीति और हथियारों द्वारा, लेकिन जो जान-बूझकर हथियार नहीं उठाते, बल्कि सच्चाई, नैतिकता और अहिंसा को ही प्रतिरोध का हथियार मानते हैं, उनसे किस तरीके से लड़ा जाए ? कौन-सी रणनीति अपनाई जाए? वे अपने तरीकों से आम लोगों में अभूतपूर्व एकता कायम करते हैं और उन्हें संघटित करके विशाल आन्दोलन खड़ा कर लेते हैं। हुकूमत के पास एक और हथियार है अवश्य-लोगों में फूट डालने का। इस हथकंडे का इस्तेमाल तो जरूर किया जाता है कभी-कभी, लेकिन आन्दोलन की तेजी में यह भी सफल नहीं हो पाता। इन परिस्थितियों में साम्राज्यवादी शासन आत्महीनता से और निरंकुश हो जाता है और ऐसे क्रोध और भय के दलदल

विचारहीनता का गुलाम बना देते हैं उसको । हुए एकमात्र विकल्प अन्याय, उत्पीड़न और

ऐसे क्रूर शासन के मातहत अपने मालिक की मंशा समझकर वाहवाही और तरक्की लूटने के लिए जोरदार कोशिशें करते हैं। रोज ही ग्रामीण इलाके से कोई-न-कोई थानेदार मुख्यालय में आता रहता जनता में अपनी कुख्याति से इठलाता और इतराता। जब वह प्रेमानन्द का किस्सा सुनता तो अपनी कौशल आजमाइश का लोभ रोक नहीं पाता, क्योंकि शाबासी बटोरने का एक और दुर्लभअवसर मिल गया था। वह उचित मौका खोजकर प्रेमानन्द के पास पहुँच जाता, लेकिन इस विचित्र कैदी के पहले ही विनम्र शब्दों में स्वागत करने से, उसके पैरों के नीचे से वह आधार ही खिसक जाता, जिस पर खड़े होकर वह देशभक्तों को भयंकर गालियाँ देकर ही अपने को बड़ा कर्तव्यपरायण और वफादार समझ रहा होता। इसके बाद तो मनुष्यता की कुछ अच्छी बातें यदि उसमें शेष भी होतीं तो गायब हो जातीं। वह अपने अहंकार को भी नहीं सँभाल पाता और प्रशिक्षित अनुशासन की योग्यता भी तिरोहित हो जाती और समझाने-बुझाने की भूमिका के तर्क को भूलकर निराधार क्रोध में टूट पड़ता।

परन्तु, मार खानेवाला कैदी बिना किसी प्रतिरोध और चीख-चिल्लाहट के मार खाता रहता। यह सही है कि प्रेमानन्द का शरीर मजबूत था, लेकिन मार खाते-खाते वह संवेदनशून्य हो चुका था, फिर भी उसको भारतीय जनता की अपराजेय शक्ति के विश्वास की दृढ़ता भी प्राप्त की। यह सुविचारित सहनशक्ति उत्पीड़क को भी शायद अनजान रूप से जागरूक करती या अक्षमता का अहसास करा देती, जैसे सामने एक ऐसा सीमाहीन मैदान हो, जिसे वह दौड़कर पार नहीं कर सकता। वह अपेक्षा से जल्दी ही थककर लज्जित हो जाता और भविष्य की खोखली धमकियों के साथ वहाँ से भाग खड़ा होता।

एक दिन पुलिस कप्तान वुड यानी हुड हवालात में आ गया। वह तो जानता ही था कि एक अत्यन्त बहादुर कैदी इस स्थान में कैद है। आखिर ऐसे बड़े अधिकारी को यहाँ आने की जरूरत ही क्या है, जबकि उसके मातहत अधिकारी अत्यधिक सक्षम थे ? यह सही है कि इस अंग्रेज अफसर में पुलिस कांस्टेबल की मानसिकता भी सक्रिय रहती थी और आम लोगों से भी अनोखे रिश्ते कायम कर लेता था वह-लेकिन इस कैदी के मामले में एक अजीब तर्क, विचार और भावना का सर्वया नया अनुभव हुआ उसे। जब उसने प्रेमानन्द की अदम्य राष्ट्रनिष्ठा और अनेक अमानवीय उत्पीड़न सहने के कई किस्से सुने तो अचानक उसे लगा कि उसके क्रूर, निर्मम मातहत अधिकारी उन गुलाम हिन्दुस्तानियों के असली प्रतिनिधि हैं, जो सदियों से गुलामी सहते हुए और आपस में लड़ते हुए अंग्रेजों के सामने दुम हिलाकर अपने भाइयों पर ही इतना जुल्म करते हैं। ये कायर और खोखले हैं, जो अंग्रेजों से शक्ति पाकर अपने को बड़ा शक्तिशाली समझते हैं। इसीलिए यदि इनमें हिन्दुस्तानी कैदी के प्रति सहानुभूति भी हो तो व्यक्त नहीं करते, बल्कि और निर्मम होकर उस पर प्रहार करते हैं। लेकिन स्वयं वह तो अंग्रेज

है, यहाँ का सर्वोच्च अधिकारी है, उस अंग्रेज कौम का प्रतिनिधि जिसने दुनिया को सभ्यता और लोकतन्त्र का पाठ पढ़ाया। इसी वजह से उसे यह अधिकार

है और उसमें यह हिम्मत भी है कि एक गुलाम हिन्दुस्तानी बहादुर कैदी को इज्जत भी दे सके। ऐसे उदार विचार, नेक इरादे तथा एक योग्य शासक का जिज्ञासा भाव लेकर वह प्रेमानन्द के पास पहुँचा था। उसका विचार था कि ऐसा बहादुर कैदी उसके प्रेम से समझाने-बुझाने से जरूर मान जाएगा। हिन्दुस्तानी अधिकारी तो आजाद होकर कुछ सोच भी नहीं सकते, जबकि वह स्वतन्त्र है, शासक है, वह उदारता और पुरस्कार तक देने का भी अधिकारी है।

प्रेमानन्द को पहले ही बता दिया गया था, इसलिए कप्तान वुड को देखते हुए उन्होंने विनम्रतापूर्वक कहा, "बड़ी मेहरबानी है कि तुच्छ कैदियों के बीच आ गए आप..."

पुलिस की तरह उसकी लम्बी टाँगें दूर से ही चमक रही थीं। चेहरा भी वैसा ही लाल गोरा, जिस पर हास्य एवं कौतुक का भाव।

"मैं टुम पर खुश हूँ। बटाएगा?" युड ने कहा।

"जरूर बताएगा।" प्रेमानन्द ने उत्तर दिया।

"बटाओ, क्या-क्या किया ? सब बटा डो, यह काम छोड़ डो, मैं इनाम डिलवाऊँगा।"

"कप्तान साहब, मैं कुछ खास नहीं कर पाया। मैं तो अंग्रेजी राज की जड़ में मट्ठा डालना

चाहता था, मगर मौका नहीं मिला..." "क्या ? साफ बटाओ, टुम्हें इनाम मिलेगा, जेल से छोड़ डिया जाएगा..."

"बता तो दिया कप्तान साहब, मैं कुछ नहीं कर पाया। दो थानों पर कब्जा किया, दो बन्दूकें छीनीं। मैं तो आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करूँगा कि आप और सभी अंग्रेज इस देश को छोड़कर फौरन अपने देश चले जाएँ और हम हिन्दुस्तानियों को आजादी की हवा में साँस लेने दें..."

कप्तान को अब समझ में आया कि प्रेमानन्द के कथन का क्या अर्थ है। आशा के विपरीत उत्तर बड़ा कठोर था, जिसे वाणी की विनम्रता और मिठास ने असहनीय बना दिया। उसका सद्भावना एवं आशा से युक्त धैर्य एक झटके से समाप्त हो गया और गुस्से से उसका चेहरा लाल हो गया। उच्च कौम एवं पद की गरिमा और सदाशयता भी लुप्त हो गई और वह 'यू बास्टर्ड' कहकर कैदी पर टूट पड़ा। प्रेमानन्द उससे मजबूत अवश्य थे, लेकिन कद में कुछ छोटे। लेकिन वह नीचे बैठ गए इस तरह ताकि मार पीठ

पर ही पड़े। कप्तान के पास कोई डंडा नहीं था और वह हाथ से प्रहार करने के लिए जब नीचे झुका तो क्रोध से अन्धा होकर अपने लम्बे शरीर को सँभाल नहीं पाया और कैदी से टकराकर बगल में लुढ़क गया। फिर वह फुर्ती से उठकर प्रेमानन्द को गिराकर उनकी छाती पर सवार होकर हाथ चलाने लगा। किन्तु थानेदारों की तरह अभ्यास न होने से जल्दी थककर हाँफने लगा और उठ खड़ा हुआ।

"आपको चोट तो नहीं आई कप्तान साहब ?" प्रेमानन्द ने उठकर अपने कपड़े झाड़ते तथा

चोट खाए लाल मुँह को पोंछते हुए विनम्रता से ही पूछा।

"इसका पनिशमेंट मिलेगा टुम्हें।"

"फिर आइएगा, कप्तान साहब।" प्रेमानन्द ने कहा।

* उन्हीं दिनों तबादले पर आए मुइनुद्दीन अहमद नामक एक दबंग पुलिस अधिकारी ने शहर कोतवाल का पद-भार सँभाल लिया। करीब चालीस वर्ष की उम्र, लम्बा, तगड़ा, सेब की तरह पीला गोरा रंग और अपने से ऊँचे अधिकारियों को छोड़ अन्य सबको, खास तरह से साधारण लोगों को छुरी की तरह आँखों को धारदार और चमकदार बनाकर देखने का अभ्यस्त। स्वाभाविक है कि जब उसने हवालाती कैदी प्रेमानन्द के बारे में सुना तो उबलने लगा। यह तो उसके लिए चुनौती भी है। भरे हुए शराब के पीपे की तरह क्रोध से लबालब वह हवालात में जाकर प्रेमानन्द को घूर भी आया। कैदी जरूर मजबूत काठी का है, चौड़ी छाती, मजबूत गट्टे; किन्तु उसकी विनम्रता से ऐसा आभास हुआ शहर कोतवाल को, जैसे उसकी शोहरत से कैदी डरा हुआ हो।

"तुम्हारी बदतमीजियों का किस्सा सुन चुका हूँ... मगर मेरे जैसे सख्त अफसर से पाला नहीं पड़ा है, जल्दी ही तुम्हारी हेकड़ी दूर कर दूँगा..."

"इसके लिए पहले से ही आपका शुक्रिया अदा कर रहा हूँ हुजूर..."

इस उत्तर से मुइनुद्दीन पैर पटकते हुए वहाँ से चला गया, लेकिन खतरनाक संकल्प के साथ। और रात को करीब दस बजे एक सिपाही ने सूचित किया कि उसे कोतवाल साहब ने अपने घर पर बुलाया है। पैरों में बेडी डाल और हाथ में हथकड़ी लगा तथा कमर में रस्सा बाँधकर उन्हें दो

सिपाही ले चलें गन्तव्य की ओर।

मुइनुद्दीन अहमद अपने मकान के बरामदे में एक कुर्सी पर आग का गोला बना बैठा था। सामने मेज थी, जिस पर एक कोड़ा रखा हुआ था। सिपाहियों ने पहले समझा था कि अपने घर पर आराम से पूछताछ करने के लिए कैदी को बुलाया गया है, इसलिए बरामदे में दाखिल होते ही एक सिपाही ने कहा, "पंडितजी, खड़े रहिए, कुर्सी लाता हूँ..."

"नहीं, नीचे बैठाओ..." कोतवाल चिल्ला पड़ा।

"अच्छा हुजूर..."

"कोतवाल साहब, नीचे ही बैठना है तो वेड़ी निकलवा दीजिए, जिससे आराम से बैठकर बातचीत हो..." प्रेमानन्द ने धीमे स्वर में कहा।

इसके उत्तर में कोतवाल ने क्रोध से अपना बिगड़ा मुँह दूसरी तरफ कर लिया। सिपाही ने अपने अधिकारी को देखते हुए कमर के रस्से और हथकड़ी से मुक्त करके कैदी को बेड़ी सहित बैठने में मदद दी। फर्श पक्की थी, जिस पर प्रेमानन्द कोतवाल की ओर पीठ करते हुए, पैरों को कुछ आगे मोड़ और धड़ को पीछे की तरफ झुकाकर कठिनाई से शरीर को सन्तुलित करते हुए बैठ गए।

जब दोनों सिपाही चौड़े बरामदे में कुछ दूरी पर विछी चारपाई पर बैठ गए तो शहर कोतवाल ने गुर्राती आवाज में कहा, "सुनते हैं, तुमको अपने ऊपर बड़ा गुरूर है...।"

"राम-राम, कैसी बात करते हैं कोतवाल साहब, आप इतने बड़े अफसर हैं, इस शहर में आपकी बड़ी शोहरत है, मैं तो आपका मामूली कैदी हूँ, मैं क्या खाकर गरूर करूँगा..."

"अच्छा, जबान लड़ाएगा ? आज मैं तुम्हारी चटनी बना दूँगा, बड़ों-बड़ों को ठीक किया, तुम्हारे

जैसे खटमल की क्या हस्ती है..."

इतना कहने के बाद कोतवाल विद्युत गति से उठा और कोड़ा हाथ में लेकर 'तेरी ऐसी की तैसी' कहते कैदी की पीठ पर प्रहार करने लगा। प्रेमानन्द को भी यही उम्मीद थी कि घर बुलाकर उनकी पिटाई नहीं की जाएगी, क्योंकि वहाँ बाल-बच्चे रहते हैं। इसके लिए तो हवालात उपयुक्त जगह है ही। इसी वजह से उनको यह मार खल गई और उसका दर्द भी महसूस होने लगा। बहुत रोकने पर भी अचानक क्रोध आ गया और सिर उठा और पीछे घुमाकर उन्होंने पैनी, चमकती आँखों से मुइनुद्दीन अहमद को देखा। किन्तु कोतवाल को कुछ होश नहीं था, उस पर तो कोई भूत सवार था, वह आगे बढ़कर, उछल और हुमचकर पूरी शक्ति से प्रहार कर था, और कभी-कभी उसके मुँह से हाँफती हुई-सी आवाज निकल जाती थी "क्या समझ रखा है अपने को तुम जैसे लोगों ने !"

अचानक प्रेमानन्द को उन दिनों की याद आई, जब उन्होंने गांधीजी के रास्ते को अपनाकर शारीरिक और हिंसात्मक ताकत से प्रतिकार और प्रतिशोध का रास्ता छोड़ दिया था। लेकिन यह व्यक्ति तो अकारण और बिना कुछ सोचे-समझे अपने को सर्वशक्तिमान समझ रहा है। अब क्या करूँ, महात्मा गांधी ? यह सवाल उठते ही सिर पीछे घुमाकर कोतवाल को देखने लगे, जो हाथ उठाकर जोर-जोर से प्रहार कर रहा था। इस तरह वह हाथ किसी यन्त्र की तरह निरंतर उठ-गिर रहा था, जिसकी गिनती करना कठिन। और इसी समय तकलीफ से बैठे प्रेमानन्द ने किसी शिकारी बाज की अकल्पनीय फुर्ती से दाहिना हाथ बढ़ाकर कोतवाल का गट्टा पकड़ लिया।

मुइनुद्दीन अहमद को ऐसी उम्मीद नहीं थी। प्रेमानन्द ने भी जवानी के दिनों में खूब करसत की थी और गट्टे को मजबूत करने का भी खूब अभ्यास किया था जो इस समय काम दे रहा था। मजबूत पकड़ कायम रखने के लिए शरीर की पूरी ताकत बाँह और गट्टे पर आ जाती है और शेष समूचा शरीर निष्क्रिय रहने पर भी असन्तुलित नहीं होने पाता। शहर कोतवाल ने एक झटके से हाथ छुड़ाने की कोशिश की, जिसमें असफल होकर वह लगातार वैसी ही कोशिशें करने लगा, जिसके फलस्वरूप बहुत शीघ्र उसकी हालत खूँटे में बँधे, उछलते बछड़े की तरह हो गई। प्रेमानन्द के चेहरे

पर शरीर का सारा खून दौड़कर एकत्रित हो गया था। शहर कोतवाल ने भी अपनी जवानी में काफी दंड-बैठक किए थे। यह एक अच्छा दौड़ाक और हॉकी का अच्छा खिलाड़ी भी रह चुका था। लेकिन इधर आरामतलबी, निश्चिन्तता, क्रोध, अहंकार, असन्तुलित खान-पान से शरीर मोटा होकर ढीला पड़ गया है। अतिशय अस्वाभाविक आत्म-विश्वास तथा उच्चाधिकारों से भी फूला अवश्, है वह, किन्तु उसकी जोरदार उछल-कूद नाकाम सिद्ध हो गई। यह चाहता तो इसी सभय सिपाहियों से प्रेमानन्द का कचूमर निकलवा सकता है, लेकिन शायद अब भी उसमें खिलाड़ी भावना शेष है, इसीलिए यह प्रेमानन्द की चुनौती का निजी ताकत से ही जवाब देकर सबक सिखाना चाहता है।

फाटक पर नगरपालिका का एक लैम्प जल रहा है और बरामदे में भी एक स्टूल पर लालटेन । चारपाई पर बैठे सिपाही पीठ सीधे करके चौकन्ना हो गए हैं। लेकिन अपने अधिकारी से कोई आदेश संकेत न पाकर उनके होंठों पर मुस्कान की बहुत हल्की, पतली रेखा दौड़ गई है। यह जानते हैं कि यदि शहर कोतवाल पकड़ से छूट गए तो कैदी की जान की खैर नहीं, लेकिन जब यह नहीं हुआ तो उनके चेहरे पर उत्सुकता का भाव आ गया कि 'देखें अब क्या होता है,' मानो कोई दिलचस्प या दंगल या नाटक देख रहे हों !

मुइनुद्दीन अहमद ने सब जोर लगा दिया। यह किसी हालत में झुकने को तैयार नहीं है। इससे इन मामूली सिपाहियों के सामने कितनी बेइज्जती होगी? लेकिन क्रोध, जिद्द, उतावलेपन तथा हताशा की वजह से उसे अतिरिक्त शक्ति खर्च करनी पड़ी थी, जिससे वह शीघ्र ही पसीना-पसीना हो गया। जब प्रेमानन्द ने देखा कि वह एकदम पस्त होकर हाँफ रहा है तो उन्होंने उसका हाथ छोड़ दिया, जिससे

गिरते-गिरते किसी तरह सँभलकर कुर्सी पर वापस बैठकर वह तेजी से फूलती और गिरती साँस को बाँधने की कोशिश करने लगा।

कुछ देर के लिए सन्नाटा छा गया। प्रेमानन्द भी बोल न सके। वह भी हॉफ और पसीनिया गए थे। उनके मुँह और बाँह पर एकत्रित खून के वापस जाने में भी समय लगा। अपने शरीर को यथास्थान खिसका और दोनों हाथों से पीछे टेक बनाकर अपेक्षाकृत आरामदेह स्थिति प्राप्त करने की कोशिश की उन्होंने। कोतवाल ने सुस्थिर होने के बाद जेब में से पैकेट और माचिस निकालकर एक सिगरेट सुलगा ली।

"कोतवाल साहब, आप सुस्ता रहे हैं तो मैं भी सुस्ता रहा हूँ। क्या मुझे एक सिगरेट नहीं पिलाएँगे ?"

"आप भी पीते हैं ?" मुइनुद्दीन अहमद अब तू-तड़ाक से सम्मानजनक सम्बोधन पर आ गया।

"शराब, गाँजा, भांग की कितनी ही दुकानें बंद करवाने के बाद भी यह आदत छूटती नहीं, इसके लिए शर्मिन्दा हूँ। हम लोगों की जिन्दगी ही ऐसी है कि कुछ समय इससे कट जाता है। हमेशा कहाँ मिलता है यह ? हाँ, शराब, गाँजा, भांग कुछ नहीं, बस बीड़ी। आपको महँगी सिगरेट पीते देखा तो इच्छा हो गई, न देना चाहें तो कोई बात नहीं।"

"अरे नहीं, पीते हों तो लीजिए।"

कोतवाल ने सिगरेट पैकेट और माचिस उनके सामने फेंक दी। फिर वे चुपचाप धुआँ छोड़ने लगे। दोनों के पीने के तरीके अलग थे। मुइनुद्दीन अहमद दो उँगलियों के बीच में सिगरेट फँसाकर पी रहा था कभी-कभी छल्ले निकालते हुए। यह आदत कॉलेज के दिनों की है जो बीच में छूट जाने के बाद आज क्यों याद आ गई? शायद यह लज्जा मिटाने के प्रयास की वजह से हो! प्रेमानन्द सिगरेट उँगलियों में फँसाकर मुट्ठी बाँधकर आवाज के साथ धुआँ खींचकर छोड़ते। धूम्रपान समाप्त करने के बाद उन्होंने कहा :

"कोतवाल साहब, किसी से कहकर एक गिलास पानी मँगवा दीजिए..."

"आप पंडित-वंडित हैं। आप लोग बड़ा पाखंड करते हैं। क्या आप यहाँ का पानी पीएँगे ?"

प्रेमानन्द मतलब समझ गए। उन्होंने मुस्कुराकर कहा, "कई कमजोरियाँ होते हुए भी हम महात्मा गांधी के बताए रास्ते पर चलते हैं। हम अगर हिन्दू हैं, मुसलमान हैं, ईसाई हैं या किसी भी धर्म के हैं, अपने-अपने धर्म का पालन करते हुए भी हिन्दुस्तानी हैं। हम धार्मिक और जातीय भेदभाव और छुआछूत के विचार को पाप समझते हैं। इस तरह की बात सुनना भी पसन्द नहीं करते। सभी लोग हमारे लिए भाई के समान हैं। हम इन्हीं छोटी-छोटी बातों में पड़ेंगे, तो इस देश को एक कैसे कर सकते

हैं, आजादी कैसे प्राप्त कर सकते हैं? आप बिना किसी संकोच के पानी मँगाइए, हम शौक से पीएँगे, मैं सबसे पहले भारतीय हूँ, हिन्दुस्तानी हूँ, फिर कुछ और।"

"ठीक है..." शहर कोतवाल के चेहरे पर एक चमक आ गई। उसने एक सिपाही को बुलाकर जनानखाने से खाने के लिए मिठाई और पानी लाने के लिए कहा। और कुछ ही देर में प्रेमानन्द के सामने मिठाइयों की प्लेट और एक जग में पानी गिलास के साथ हाजिर। वह धीरे-धीरे मिठाई खाने लगे।

शहर कोतवाल अपने को बड़ा हल्का महसूस कर रहा था, जैसे हृदय पर से कोई भारी बोझ हट गया हो। उसकी आँखों का अस्वाभाविक पैनापन पता नहीं कहाँ गायब हो गया और उनमें एक खूबसूरत स्वच्छता दिखाई देने लगी। फिर भी, उसके अन्दर आश्चर्य के भाव थे और कई सवाल भी उठ रहे थे।

आश्चर्य यह कि अभी तो कुछ देर पहले जिस कैदी के प्रति निर्मम प्रतिशोध के भाव से पागल हो गया था, उसी के लिए ऐसी उदारता और कोमलता क्यों? क्या कैदी की शारीरिक श्रेष्ठता से डर गया है वह ? उससे ताकत में पराजित होकर ? लेकिन यह हो भी कैसे सकता है? वह दुनिया की एक शक्तिशाली व्यवस्था का प्रतिनिधि है, उसके सामने एक कैदी की हैसियत ही क्या है ? इसको तो एक इशारे से मसला जा सकता है। यदि वह डरता तो इसके प्रति नरम क्यों हो जाता ? उसके प्रति न तो क्रोध है और न ही प्रतिशोध की भावना है उसके अन्दर इस समय उसको उत्पीड़ित करने की इच्छा ही नहीं हो रही है। ऐसा क्यों ?

उसे सहसा अपने जवानी के दिनों की याद आ गई थी, जब वह एक बढ़िया खिलाड़ी था। उसकी टीम में विभिन्न जातियों और धर्मों के लोग थे। तब कितना परस्पर सौहार्द था अपनी टीम तथा दूसरी टीमों के खिलाड़ियों के बीच। वे खूब उत्साह से खेलते, खेल का आनन्द लेते हुए जीतने की जी-जान से कोशिश करते और हारने पर भी विपक्षी खिलाड़ियों से हाथ मिलाते। उस समय तक कोई दुर्भावना नहीं थी, फिर अब ऐसा क्यों हैं? उसके दिमाग में एक रोशनी-सी जल उठी, जिसमें उसने महसूस किया कि कैदी तो एक सच्चाई की जीत के लिए इतना कष्ट उठा रहा है। ऐसे व्यक्ति पर कितना अन्याय किया जा रहा है, जबकि वह बिना किसी शिकायत के चुपचाप सहे जा रहा है, इस आशा में कि कभी आजादी मिलेगी, जिसमें सभी मिल-जुलकर सुख से रहेंगे।

जब प्रेमानन्द मिठाई खाकर और पानी पीकर अपने हाथ से ही मुँह पोंछने लगे तो कोतवाल ने सिपाही से कहा, "पंडितजी की बेड़ी निकाल दो हथकड़ी भी लगाने की जरूरत नहीं। हवालात इसी तरह चलेंगे..."

सिपाही अचम्भे से अपने अधिकारी को देखने लगे। लेकिन मन-ही-मन वे भी बहुत प्रसन्न थे। लेकिन सबसे अधिक आश्चर्य तब हुआ, जब शहर कोतवाल प्रेमानन्द को पहुँचाने स्वयं हवालात तक गया।

रास्ते में शहर कोतवाल ने कहा, "पंडितजी, आपके साथ बड़ा जुल्म हो गया है। आज से आप पर कोई हाथ नहीं उठाएगा। मैंने तो कितने ही कांग्रेसियों को पीटा है, मगर आप की तरह नहीं देखा। आपने मुझे अपने बीते दिनों की याद दिला दी। मेरी आँखें खोल दीं। जब तक हवालात में

हैं, ये सिपाही मेरे घर से आपके लिए खाना दोनों जून लाएँगे। जो भी आप खाना पसन्द करेंगे, खाना चाहेंगे, आपके इशारा कर देने से हाजिर हो जाएगा।"

"कोतवाल साहय, इसके लिए आपको शुक्रिया। हाँ, एक अनुरोध करूँगा-इस हवालात में अनेक कम उम्र के बच्चे, नीजवान लाए जाते हैं। इनको बुरी तरह पीटा जाता है। ये बच्चे।ड़े बहादुर हैं, कोई ट्रेनिंग न होने पर भी देश की शान के लिए आन्दोलन में आ रहे हैं। यह जानते हुए भी कि कितना जुल्म किया जा रहा है। यदि आप इनकी पिटाई बंद करा दें तो मुझे बड़ा सुख मिलेगा।" "ठीक है, जब तक मैं हूँ यहाँ, ऐसा ही होगा।"

प्रेमानन्द को हवालात में पहुँचाकर शहर कोतवाल पीछे घूमकर तेजी से अपने मकान की तरफ लौट पड़ा।

52

नम्रता का जीवन प्यार, उम्मीद और उत्साहयुक्त प्रतीक्षा में बदल गया है। हर सुबह नई और प्रिय के और निकट पहुँचती हुई। सन् 1943 ई. में उसने हाई स्कूल परीक्षा दी थी। इस इन्तजार के गम्भीर दायित्व-बोध के साथ, जो वियोग के दिन से ही आरम्भ होकर रिहाई के बाद मुलाकात के दिन तक चला गया था।

जेल में नीलेश के कष्टों की कल्पना करके यह दुःखी हो जाती। उसे अपना आराम से रहना, खाना-पीना खल जाता। इच्छा होती, स्वयं ही गिरफ्तारी देकर जेल में पहुँच जाए और वैसा ही जीवन बिताए। लेकिन माँ-बाप के अकेलेपन और परेशानी का खयाल आता। फिर नीलेश ने भी तो अपना ध्यान सिर्फ पढ़ाई-लिखाई पर केन्द्रित करने की सलाह दी है! यह सोचकर कुछ सन्तोष होता। अपने ही काते सूत से खरीदी साड़ी तथा अन्य कपड़े इस्तेमाल करने के साथ, अब उसने अपना भोजन भी काफी सादा कर लिया यानी गोश्त, मछली, पूड़ी, हलवा, मिठाई, चाट, अचार आदि बन्द। "तो तुमने खाना-पीना क्यों बंद कर दिया, नम्रता ?"

"यह सब खाने से बहुत नींद आती है, पढ़ नहीं पाती। इम्तहान तक तो ऐसा ही चलेगा। मैं चाहती हूँ, अम्मा, कि खूब मेहनत करके फर्स्ट डिवीजन में पास हो जाऊँ..." "इससे कमजोरी आ जाएगी, बेटी।"

इसका कोई जवाब नहीं दिया नम्रता ने। रात में वह कमरा बन्द करके अपना बिस्तरा नीचे फर्श पर बिछा लेती। इस तरह सोने में तकलीफ तो थी ही, मच्छरदानी भी लगाना कठिन हो जाता, लेकिन वह जान-बूझकर लगाती भी नहीं, और शरीर को मच्छरों से कटवाकर भी उसे सुख मिलता, इस अहसास के साथ कि वह नीलेश का कुछ-न-कुछ तो साथ दे ही रही है।

कई तरह की अनुभूतियों से गुजर रही है वह प्रतीक्षा के मिठास-भरे दुःखवाले दिनों में। पिता के आश्वासन के पश्चात कई बार भविष्य की वास्तविकता वर्तमान में ही दिखाई देने लगती है। वह बहू बनकर नीलेश के साथ चली गई है और माँ-बाप छूट गए हैं। तब रुलाई छूटने लगती। इच्छा होती कि माँ-बाप के लिए क्या न कर दे। लेकिन कर भी क्या सकती है वह ? फिर भी वह माँ के काम के बोझ को हल्का करने की कोशिश करती। एक दिन उसने शर्माते-शमति कहा:

"अम्मा, आओ आज तुम्हें तेल लगा हूँ। में कभी-कभी सोचती हूँ, मुझे कुछ भी तकलीफ होती है तुम बेचैन हो जाती हो, झट सिर में तेल लगाने बैठ जाती हो, माथे पर लेप करने के लिए लौंग पीसने लगती हो। और जब तुम्हें तकलीफ होती है तो किसी से कुछ कहती भी नहीं, चुपचाप बरदाश्त करती रहती हो। तुम मना न करना, में आज तुम्हें तेल लगाऊँगी सिर में, हाथ और पैर

में भी। आओ, चारपाई पर लेट जाओ..."

उसकी माँ अचम्भे से देखने लगी, फिर गद्गद स्वर में बोली, "तुम्हारी ये बातें सुनकर तो मैं तर गई, बेटी। इससे अधिक कुछ नहीं चाहिए मुझे। तुम इतनी मेहनत कर रही हो, तुम्हारी सेवा मैं कहाँ कर पाती हूँ ? तुमको अधिक-से-अधिक सुख देना चाहती हूँ, कहाँ दे पाती हूँ। अच्छा-से-अच्छा खिलाना-पिलाना, पहनाना-ओढ़ाना चाहती हूँ, कहाँ कर पाती हूँ? जब तुम चली जाओगी तो यह सोचकर कलेजा छटपटा जाएगा, दिल के अन्दर करछुल चलता रहेगा..." वह सिर झुकाकर आँचल से आँसू पोंछने लगी।

विगत दिनों में अपनी माँ की ऐसी बातों पर नम्रता बहुत गुस्सा जाया करती और दकियानूसी विचार कहके झिड़क भी दिया करती, किन्तु इस समय ऐसा कह न सकी बल्कि तेल लगाने के निश्चय का परित्याग करके फौरन उठकर अपने कमरे में चली गई और चारपाई पर गिरकर अहक-अहक रोने लगी, जिससे सुख भी मिला उसे। शायद सुख की निकटता से ही दुःख सार्थक होता है। खाली दुःख या खाली सुख कितना उबाऊ, यान्त्रिक और भयावह ?

एक दिन की निकटता ने नम्रता को गम्भीर बना दिया है। यह स्पष्ट रूप से सोच सकती है और सोचती भी है कि उसका शरीर, मन, आत्मा नीलेश की है, उसका विचार, विश्वास, उसकी एक-एक साँस और एक-एक धड़कन, उसका पूरा जीवन उसी का है, उसी को समर्पित है जैसे भक्त भगवान को। हाँ, उसका अपना कुछ नहीं, उसी को निवेदित है सभी कुछ। यह सब सोचकर जहाँ वह व्याकुल होकर रो उठती,

अपार धैर्य भी मिलता उसे और उसकी होकर और उसके साथ रहकर नए परिवर्तनों के लिए बड़ा-से-बड़ा त्याग करने का संकल्प और भी दृढ़ होता।

आश्चर्य की बात तो यह है कि नीलेश के घर जाने में उसे बड़ा संकोच होता। वह अपने को समझाती और अपने से तर्क भी करती, फिर भी उसके पाँव बाहर की ओर नहीं निकलते। पहले तो वह अक्सर बाहर के बरामदे में दरवाजे के पास जाकर खड़ी हो जाया करती थी और कुछ देर तक सामने और अगल-बगल देखकर समय बिताती या ऊब और दिमागी थकान मिटाती थी, मगर अब ऐसा नहीं कर पाती वह। यहाँ तक कि ऊपर खुली छत से बाहर निहारना भी बन्द हो गया उसका। निश्चय ही इस संकोच का एक कारण यह भी था कि उसके माँ-बाप क्या सोचेंगे !

सबसे दुःख उसे उस समय हुआ जब सुरेश की गिरफ्तारी हुई और वह चाहकर भी सांत्वना देने नीलेश के घर नहीं जा पाई। निश्चय ही, उसे उस दिन की घटना भी याद आ जाती, जब नीलेश की गिरफ्तारी के बाद घर वापस गई तो उसके पिताजी बिगड़ उठे थे। इसी तरह, वीरेश और सुरेश स्कूल से निकाले जाने पर जब पढ़ने के लिए बनारस जा रहे थे, वह न जाकर मिल सकी और न ही उन्हें बुलवाकर बात ही कर सकी। नीलेश के भाई थे वे, उससे हिले-मिले थे, बीच-बीच में आकर बाहर की खबरें सुना जाते और उन्हीं की मदद से वह अपने ही ढंग से राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़ी रह सकी। यह सब सोचकर वह बहुत रोई। उनके जाने से कितनी अकेली हो गई है वह !

परीक्षा का नतीजा निकलने के बाद भगजोगिनी जब एक दिन आई तो आँचल में मुँह छिपाकर चुपचाप रोने लगी। नम्रता ने सोचा, हाई स्कूल परीक्षा प्रथम डिवीजन में पास होने के बाद आगे पढ़ने के लिए इलाहाबाद जाने की खबर सुनकर भगजोगिनी शायद घबरा गई है। हाँ, यह तो सही है कि अब तक उसका स्कूल चलता रहा था, लेकिन जब वह चली जाएगी तो उन दोनों को कौन पढ़ाएगा ? इस समस्या को लेकर स्वयं नम्रता भी चिन्तित थी। निश्चय ही धनेश्वरी और भगजोगिनी ने अच्छी तरक्की की थी। उनमें समझदारी भी काफी आ गई थी और उन्होंने अपनी घर-गृहस्थी भी अधिक व्यवस्थित कर ली थी। दोनों ही नियमित रूप से चरखा पर सूत कातकर बेच देतीं या उससे कुछ कपड़ा खरीद लेतीं। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि चाहे अधिक कष्ट क्यों न उठाना पड़े, वे स्वयं पढ़ने के साथ अपने बच्चों को पढ़ाएँगी और समय मिलने पर आन्दोलन में भी काम

करेंगी, भले ही जेल ही क्यों न जाना पड़े।

परन्तु भगजोगिनी ने जो कुछ बताया यह गोपालराम से सम्बन्धित है। जून का महीना, आषाढ़ चढ़ जाने पर भी अभी बारिश नहीं हुई है। जबरदस्त ताप और उमस में तर-तर इतना पसीना कि जितना पानी पीयो, सबकुछ ही देर में बाहर ! भीतर की कोठरी में बैठी वह बता रही है कि गोपालराम मन का बुरा नहीं है, पर हमेशा जला-भुना रहता है, कोई भी बात सीधे ढंग से नहीं कहता। गरीबी तो खराब चीज है ही, गरीब से सभी बुरा व्यवहार करते हैं, क्या सिर्फ गुस्साने से ही गरीबी दूर हो

जाएगी ? इधर उसने तय किया है कि कम्युनिस्ट पार्टी का काम छोड़कर वह सरकारी नौकरी करेगा। रेल की पटरी और तार जुड़ जाने के बाद यह डाकखाना के बाबू के इम्तहान में बैठा और पास हो गया है। बहुत अच्छा नम्बर मिला है।

"बहिनजी, नतीजा निकलने पर बहुत खुश होकर आए हमारे घर पर। मेरी तो किस्मत की खराब है, क्या मेरा जन्म इसीलिए हुआ है कि जो मर्द चाहे मुझे अपने साथ ले जाने की जिद ठान ले ! मैं जो कुछ भुगत चुकी हूँ, उससे तो मेरा कलेजा पत्थर हो चुका है। आपने और रमाशंकर भाईजी ने सहारा न दिया होता तो हम लोगों की, हमारे बच्चों की क्या दशा हुई होती। पहले से ही मेरे पीछे पड़े हुए थे, एक बार मैंने झिड़क दिया था तो ठंडे पड़ गए थे, इस बार मुझसे कुछ न कहकर मैया के पास जाकर मेरा हाथ माँगने लगे। कहने लगे, अच्छी नौकरी मिल गई है, सबको ढंग से रखूँगा, बच्चों को अधिक-से-अधिक पढ़ाऊँगा, तुम लोगों की दुर्दशा देखी नहीं जाती। मैं तो अपनी जिन्दगी से ऊब गई हूँ, बहिनजी। बच्चे न होते तो कुछ खाकर सो जाती..."

वह फिर रोने लगी। नम्रता भय और घबराहट से उसे देखने लगी। झट उसे वह घटना याद आ गई, जब उसने चूहा मारने की दवा खा ली थी। क्या स्त्री की जिन्दगी इतनी दयनीय है कि कोई भी बात आने पर वह उसका समाधान अपनी मौत से ही करने को तैयार हो जाती है ! ऐसा क्यों है आखिर ? लेकिन वह फौरन सचेत हो गई, क्योंकि निराशा की कोई भी बात वह अपने मन में लाना नहीं चाहती अब। उसने मुस्कुराने की चेष्टा करते हुए पूछा :

"तुम रो क्यों रही हो? क्या वह जोर-जबरदस्ती की बात कर रहे हैं?"

"नहीं..."

"फिर हिम्मत क्यों हारती हो? अपनी सभी परिस्थितियों पर अच्छी तरह विचार करके खुद सही फैसला नहीं कर सकतीं? अगर विचार और व्यवहार अच्छा हो और तुम्हें भी पसन्द..."

"क्या कहती हैं, बहिनजी क्या औरत रोज मर्द बदलने के लिए बनी है? वह क्या कोई मशीन है ? उसका कोई दिल-मन नहीं है? उसका प्यार कपड़ा बदलने की तरह है? उसकी हिम्मत इसीलिए न हुई कि मेरे साथ धोखे में, मजबूरी में कभी कुछ हो गया तो यह समझता है कि अब भी मैं मजबूर हूँ और इस तरह की बात मान लूँगी। यह प्यार है कि हवस है बहिनजी ? दया-कृपा है ? जब तक शरीर है तो मीठी-मीठी बातें हैं, जब मतलब निकल जाएगा, स्त्री का शरीर ढह जाएगा तो यह प्यार कितने दिनों तक रहेगा? ऐसा प्यार हमेशा बना रहेगा ? मैं तो सह भी लूँगी, मेरे बच्चों के साथ बुरा बर्ताव होगा तब तो मैं प्राण ही दे दूँगी। नहीं, बहिनजी, मुझे उनसे कोई शिकायत नहीं, उनका परिवार बहुत गरीब है, उसी को सँभालें, मैं नहीं चाहती मेरे बच्चों की वजह से उनको कोई परेशानी हो। मेरे भाग्य में मर्द का जितना सुख था, मिल चुका, अब मुझे वह नहीं चाहिए। मैं मेहनत करूँगी, रूखा-सूखा खाऊँगी, अपने बच्चों को पढ़ा-लिखाकर बड़ा करूँगी, अपने पैरों पर खड़ा होने में उनकी मदद करूँगी। मेरे साथ तो मेरी सास भी हैं, उनको कौन देखेगा ? नहीं-नहीं, यह नहीं होगा मुझसे बहिनजी।"

वह जल्दी-जल्दी इस तरह बोल रही थी जैसे यह सब रटकर ही आई हो। आवेश में खून दौड़ने से एक अनोखी आभा ने उसके चेहरे को और भी खूबसूरत बना दिया था। साहस और संकल्प

ते आँखें चमकने लगीं। नम्रता अचम्भे से भगजोगिनी को देख रही थी, मानो उसकी बातों पर उसे विश्वास न हो। एक हल्की-सी निराशा इसलिए भी कि वास्तव में प्रेम, निष्ठा और भावी आदर्श जीवन के प्रति विश्वास की मनःस्थिति में वह भगजोगिनी को भी साहस के साथ नूतन दाम्पत्य को स्वीकार करने की सलाह देना चाहती थी। लेकिन कुछ ही देर में अन्य कई अनुत्तरित सवालों से घिरकर सिर झुकाकर चुपचाप सोचने लगी।

वैसे भगजोगिनी ने जो कुछ कहा है, उसमें कोई नवीनता नहीं। ऐसी अनेक बातें यह पहले भी सुनती रही है, तब उसे गुस्सा भी आ जाता। यह सोचती कि अशिक्षा, पुराने खयालों या गरीबी की वजह से ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं और इन स्थितियों के दूर होने पर ऐसा कुछ भी नहीं होगा। ऐसी औरतों से वह अपने को ऊँचा समझती, जैसे नई रोशनी और नए विचार को स्वीकार करने से उसके पास हर समस्या का समाधान मौजूद हो। वह इसी ऊँचाई से घर के अन्दर और बाहर की स्त्रियों से भी बात करती यानी वे पुराने, पिछड़े विचार की हैं, अशिक्षित हैं, इसीलिए लकीर की फकीर बनी हुई हैं। परन्तु इस समय वह असम्पृक्त ऊँचाई नहीं प्राप्त कर सकी, क्योंकि यद्यपि उसके आदर्श पुरुष ने उसे एक ही बार छुआ है, तथापि अब स्त्री सम्बन्धी वैसी समस्या को उससे अपने को अलग करके नहीं देख सकी।

उसका भय बढ़ता गया, जिसके निजी आधार का कुछ पता नहीं। एक ओर तो उसे लगा, भगजोगिनी के संकल्प में कुछ भी अनुचित नहीं है, वह संघर्षशील, हिम्मती स्त्री के स्वतन्त्र फैसले का परिणाम है- लेकिन इसी के साथ यह भी अनुचित लगा कि नवीनता को स्वीकार न करने से उसका जीवन प्रेमशून्य, कष्टमय और एकाकी बन जाए। कैसी विडम्बना है कि वह कोई स्पष्ट निर्णय नहीं कर पा रही है कि क्या उसका कर्तव्य नहीं बनता कि उसके संकट में कोई उपयोगी सुझाव दे ?

"बहिनजी, मेरी बात का बुरा न मानिएगा," भगजोगिनी ने आँसू चुआते हुए कहा, "गोपालराम विचार से बहुत अच्छे हैं। किसी की लल्लो-चप्पो नहीं करते हैं; पर सबको मदद देने को तैयार भी रहते हैं, कोई भी काम कहिए, चल देते हैं करने। रमाशंकर भाईजी की तरह खयाल-बात रखनेवाले हैं। रमाशंकर भाईजी उनको मानते-जानते भी हैं। वह हैं न बाईजी...अरे वही जो जुलूस के समय खाँसते-खाँसते खून बोकरकर नीचे गिर पड़ी थीं... आपने सुना होगा, नाम है उनका ढेला। उनको दिक हो गया है। बड़ी खराब बीमारी है बहिनजी, मेरा तो खानदान ही साफ हो गया..."

"तुम्हीं लोगों से सुना है... वीरेश भी बता रहे थे। वह वेश्या की लड़की हैं, क्या हुआ उनका ?" "उनकी हालत बड़ी खराब थी, डॉक्टर ने कहा कि पहाड़ पर ले जाओ। रमाशंकर भाईजी ने पहाड़ पर दवा-

दारू के लिए रुपए-पैसे का इन्तजाम कर दिया था। अपने तो जेल चले गए, हाँ अपने छोटे भाई को सबकुछ बता गए और कह भी गए कि बाईजी और उनकी माताजी को लेकर पहाड़ पर चले जाएँ। उनके भाई भी बड़े अच्छे हैं, घबरा रहे थे कि कैसे होगा यह सब-अकेले ही घर और कारोबार को देखना, पुलिसवाले भी काफी परेशान करते हैं, जब देखो, घर में आकर तलाशी लेते हैं, गाली-गलौज करते हैं। एक दिन पकड़कर जेल भी ले गए, दो दिन बंद रहे, मारा-पीटा भी..."

"छूटे कि नहीं?" नम्रता ने चिन्ता से देखा।

"जानते तो हैं नहीं कुछ। जानते भी तो क्या बताते ? तो वह घबरा रहे थे, उधर बाईजी को लेकर पहाड़ जाएँ और इधर पुलिसवाले घर में परेशान करें। बाईजी के घरवालों को भी न मारे-पीटें। छिपे-छिपे कोई मदद दे रहा है, रमाशंकर भाईजी कह गए हैं किसी को मालूम न होने पाए। गोपालराम को जब यह सब मालूम हुआ तो वह झट बोले, 'मैं ले जाऊँगा... आप चिन्ता न करें।' और वह बाईजी को ले जाकर पहाड़ के अस्पताल में भर्ती करा आए हैं। पूरा किस्सा उन्हीं से मालूम

हुआ है। बहुत गुस्सा थे दुनियावालों पर, सरकार पर। कह रहे थे, जब किसान-मजदूर की सरकार होगी, यह सब धंधा बंद हो जाएगा, लम्पट-बदमाश सभी जेल में होंगे, गरीव औरतों पर कोई जुल्प नहीं कर पाएगा..."

"विचार और काम से तो बहुत भले हैं, एक-दो बार सामने देखा है वीरेश के यहाँ..." "हाँ यहिनजी, वीरेश बाबू के बड़े भाई साहय के साथ पढ़े हैं। मैं कोई शिकायत नहीं कर रही

थी उनकी। दिल के साफ हैं। मैं तो स्त्री की जिन्दगी के बारे में सोचकर रोई। कितनी मजबूर होती है एक औरत ! जब समय होता है तो रानी बन जाती है, जब समय विगड़ता है तो धूल में मिला दी जाती है। उन बाईजी को भी देख लीजिए, जब ठीक थीं, बताते हैं पैसा बरसता था, जब बीमार हुई तो दूसरे के सहारे अस्पताल में पड़ी हैं। उनकी अम्मा कुछ दिन रहकर आई हैं, बहुत परेशान हैं, खानदान बरबाद हो गया है उनका गोपालराम ही बता रहे थे। यही सब सोचकर मैं रोई बहिनजी, एक बाई और मेरी जिन्दगी में क्या फर्क है..."

रुदन-मिश्रित उसकी बात सुनने के बीच नम्रता ने अपना भय और घबराहट दूर ठेलकर अपनी स्वाभाविक प्रखरता प्राप्त कर ली थी। वह दृढ़ स्पष्ट स्वर में बोली :

"तुम ही जब अपने बारे में इस तरह सोचोगी तो दूसरे क्या सोचेंगे ? तुम किसी के सहारे तो नहीं हो। तुम गांधीजी के राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़ी हो, साहस के साथ जेल गई हो, मेहनती हो, सबसे अच्छा व्यवहार करती हो, तुम क्यों डरोगी, अपने को दीन-हीन समझोगी? ईश्वर ने तुमको सभी गुण दिए हैं, ठीक से सोच-समझकर अपना रास्ता चुनने की बुद्धि और ताकत दी है। हाँ, एक बार में फिर कहती हूँ,

तुम अपना बाहरवाला बड़ा कमरा और बरामदा किराए पर उठा दो, धनेश्वरी देवी वहाँ आ जाएँगी। उनका परिवार बड़ा नहीं है, दो छोटे बच्चे हैं, इससे तुमको आर्थिक मदद मिलेगी, घर भी गुलजार होगा, तुम्हें हर तरह का सहारा मिलेगा, कोई परेशान करने की हिम्मत नहीं कर पाएगा। तुम तो जानती ही हो, दोनों पति-पत्नी कितने नेक और साहसी हैं... हाँ, दूसरी बात..."

"हाँ, बहिनजी..."

"ठीक है, कहने में कोई हर्ज नहीं... मैंने सोचा था कि जब हो जाएगा तो कहूँगी। खैर, यह बात अपने मन में रखना, दुलारी गुरुजी ने अभी किसी को बताने से मना किया है। बात यह है, दुलारी गुरुजी अपने स्कूल में तुम्हारे लिए दाई की नौकरी की कोशिश कर रही हैं। अच्छी नौकरी है, लड़कियों का स्कूल है, पढ़ने-लिखने का वातावरण है, तुम्हारा भी मन लगेगा। आर्थिक सहारा तो होगा ही, खुद पढ़ सकती हो, अपने बच्चों को खूब पढ़ा-लिखा सकती हो। किसी को एक शब्द भी न बताना। हाँ, धनेश्वरी को किराएदार रखने के बारे में अपनी सास से पूछ लेना, वह कहेंगी तो मैं बात पक्की करा दूँगी... एक बार मैंने कहा भी था और वे लोग तैयार हो जाएँगे, ऐसा लगा था मुझे..."

भगजोगिनी इन बातों से खुश होकर चमकती आँखों से देखने लगी। नम्रता ने कहा, "मैं पढ़ने के लिए बाहर जा रही हूँ, लेकिन मैं यहाँ के लिए चिन्तित रहूँगी। छुट्टियों में आऊँगी। तुम पढ़ाई बंद न करना, कुछ किताबें दे जाऊँगी, उन्हें पढ़ना और लिखने का अभ्यास करना। मैं पहले ही कहती रही हूँ, औरत और गरीब होने की वजह से अपने को हीन और कमजोर न समझना। तुम्हारी बातों से मुझे भी घबराहट हो गई थी, लेकिन मैं गलत सोच रही थी। खूब सोच-समझकर एक स्त्री को अपने बारे में फैसला करना चाहिए। जो भी फैसला करोगी, उसमें तुम्हारा साथ दूँगी मैं।"

जुलाई के आरम्भ में यूइंग क्रिश्चियन कॉलेज, इलाहाबाद में इंटरमीडिएट की पढ़ाई करने चली गई

नम्रता अपने पिताजी के साथ। इस अवसर पर विदा देने सीतानाथ, आनन्दी और छोटे बच्चे भी आए थे। भगजोगिनी, उसके नए किराएदारं धनेश्वरी और किशुनी भी उपस्थित। सीतानाथ ने अपनी नाटकीय आवाज में कहा :

"इसे कहते हैं आबोदाना। जहाँ जिसका आबोदाना होता है, वहाँ वह किसी-न-किसी बहाने खिंचकर चला ही जाता है। पढ़ाई तो एक बहाना है, खास बात तो यह है कि वेटी नम्रता का आबोदाना इलाहाबाद में है और जब तक रहेगा, वह वहाँ पढ़ती रहेंगी। अब देखिए न, नीलेशजी का आबोदाना जेल में है तो वह बाहर कैसे आ जाएँ? अगर आबोदाना घर का होता तो इस समय यह भी यहाँ मौजूद होते। वीरेश और सुरेश भी अपनी दीदी को विदा दे रहे होते, मगर उनका आबोदाना बनारस का है।

ठीक है, जाओ, सब प्रभु की कृपा है, खुशी-खुशी खूब पढ़ो-लिखो और खूब अच्छे नम्बरों से पास हो जाओ...।"

तेजी से जाती हुई ट्रेन में बैठी, खिड़की के बाहर पीछे भागते पेड़ों, खेतों और आकाश को देखती उसे माँ की यह बात बार-बार याद आ रही थी, 'ठीक से रहना, ठीक से खाना-पीना, आराम भी करना और हर हफ्ते चिट्ठी लिखना', फिर धनेश्वरी और भगजोगिनी का सुबकना। और सीतानाथ की आबोदाना वाली बात। फिर एक सवाल से उसका कलेजा धक-सा हो गया। क्या यह सही है कि असली चीज जेल का आवोदाना है और नीलेश के राष्ट्रीय और क्रान्तिकारी विचार तथा कार्य मात्र बहाना हैं। इसी तरह क्या उसका और नीलेश का प्यार बहाना है और जब तक उसका आबोदाना उस घर का नहीं है, वह तब तक बहू नहीं बन पाएगी उस घर की? नहीं, नहीं, यह व्यर्थ का तर्क है-पलायन यानी सोच-समझवाले हिम्मती फैसले और कार्य से दूर रहने का तर्क ! नए, राष्ट्रवादी और क्रान्तिकारी विचार तथा दृढ़ निश्चय की वजह से वे एक-दूसरे को प्यार करते हैं और उनका प्यार अमिट है। ये एक-दूसरे के बन चुके हैं और कोई भी शक्ति और कोई भी बहाना अलग नहीं कर सकता उन्हें।

अन्तहीन आशा और विश्वास के साथ उसने पढ़ाई शुरू की। सहशिक्षा का खुला माहौल, नई लड़कियाँ, नई दोस्ती, अच्छा पुस्तकालय और वाचनालय, हिन्दी और अंग्रेजी की अनेक पत्र-पत्रिकाएँ। उसने अपने प्रिय की याद में पहले की तरह सादा जीवन व्यतीत करते हुए नियमित रूप से कठिन परिश्रम करना शुरू कर दिया था। वह अपनी सहेलियों के बीच उन्हीं विचारों का प्रचार करने लगी, जो स्वातन्त्र्य आन्दोलन के मूल मन्त्र थे स्वेदशी, स्वावलम्बन, असहयोग, सत्याग्रह, नारी शिक्षा, जातीय और साम्प्रदायिक सद्भाव, अस्पृश्यता निवारण द्वारा स्वतन्त्रता को प्राप्त करना। इन प्रश्नों पर कई लड़कियों से सहमति बन गई और उनका एक छोटा-सा दल कॉलेज में चर्चित हो गया, जिसमें विभिन्न जातियों और धार्मिक विश्वासों की लड़कियाँ शामिल थीं और जो खुलकर अनेक शैक्षिक कार्यक्रमों तथा बहसों में भाग लेकर हिन्दुस्तानी एकता और आजादी का समर्थन करतीं।

इंटरमीडिएट प्रथम वर्ष पास करने के बाद गर्मी की लम्बी छुट्टियों में जब वह घर आई तो उसे धनेश्वरी और भगजोगिनी से मिलकर बड़ी खुशी हुई, जिसका एक कारण तो यही कि वे भी बहुत प्रसन्न थीं। उन्होंने बताया कि आन्दोलन करीब-करीब ठप है, कई लड़के और उनके नेता गिरफ्तार कर लिए गए हैं। बैकुंठ और उसके दो साथी पुलिस से परेशान होकर बनारस चले गए थे, लेकिन वहाँ भी बच नहीं सके और गिरफ्तार कर लिए गए हैं। भगजोगिनी से यह भी ज्ञात हुआ कि गोपालराम ने नौकरी कर ली है और तारबाबू बन गया है। वह छुट्टी में आता है तो अपने परिचितों से अवश्य मिलता है। भगजोगिनी ने साफ-साफ उसे अपना फैसला सुना दिया था, लेकिन उसने बुरा नहीं माना बल्कि हँसते हुए कहा :

"ठीक है, इससे मुझे भी सहूलियत हो जाएगी और मैं अपनी पूरी शक्ति अपने परिवार पर

लगा दूँगा। नौकरी तो मैंने उन्हीं के लिए की है। नौकरी न करता तो उन्हें कीन पूछता ? आजादी मिलने पर भी वैसे ही अशिक्षित और उपेक्षित रह जाते। मैं अपने भाइयों और बहनों को पढ़ाऊँगा, जितना ये पढ़ना चाहें, और उन्हें निडर, अन्याय-विरोधी, न्यायप्रिय, मेहनती और उदार बनाऊँगा। तुम साथ में रहतीं तो मुझे ताकत मिलती। खैर, कोई बात नहीं, मेरा प्यार स्वार्थ से भरा नहीं है। वैसे मेरे जैसे व्यक्ति के लिए शादी करना ठीक भी नहीं है, मेरी बोली कड़वी है और मैं किसी के साथ रह भी नहीं सकता। मैंने सोचा था तुम समझदार हो, मुझे समझ सकोगी। यह भी तमन्ना थी कि किसान-मजदूर और गरीबों की सरकार बनाने में अपना जीवन लगा दूँगा, वैसा तो नहीं कर सका, फिर भी इसके लिए जो भी कर सकता हूँ, करता रहूँगा। हाँ, मैं तुम लोगों का मित्र बना रहूँगा, किसी भी बात की जरूरत हो तो संकोच न करना, तुम लोगों के लिए कुछ भी कर सका तो बड़ी खुशी होगी..."

नम्रता हक्का-बक्का उसको देखती रही, लेकिन कुछ कहने या राय देने की हिम्मत नहीं हुई। गोपालराम के प्रेम के आदर्श रूप का अनुमान करके उसे प्रसन्नता अवश्य हुई।

"बहिनजी," भगजोगिनी ने कहा, "इस अहसान को मैं कैसे बरदाश्त कर पाऊँगी। मैंने तो एक बार साफ-साफ कह दिया है, यह सोचकर दुःख भी होता है कि मेरी वजह से शादी नहीं करेंगे। यह क्यों ? मैं तो पुरानी-धुरानी हो गई, उन्हें एक-से-एक सुन्दर और नई मिल जाएँगी। ऊपर से और भी अहसान लादे जा रहे हैं। इस बार आए तो बच्चों के लिए कपड़े और किताबें ले आए। मैया के हाथ में बीस रुपए रख दिए। मैंने पूछ लिया, 'क्यों ऐसा करते हैं?' तो हँसकर बोले, 'इसका कोई गलत मतलब न लगाओ। तुमने जो एक बार कह दिया, उसकी मैं इज्जत करता हूँ, मैं थोड़ा-बहुत इसलिए कर देता हूँ कि तुम्हारे परिवार से मेरा सम्बन्ध बना रहे, टूटे नहीं। मैं कहीं जाता भी नहीं, बस यहाँ और रमाशंकर भाई के यहाँ। इससे मुझे न रोको।' बताइए बहिनजी, इसका मतलब क्या निकालूँ ?"

नम्रता ने कुछ सोचा, फिर कहा, "कुछ नहीं, सोचने-समझनेवाले एक भले आदमी की यह इच्छा है। जब वह कहता है कि उसका कोई भी स्वार्थ नहीं तो उस पर अविश्वास करने की जरूरत ही क्या है ? बदले में तुम लोग भी उसे कोई छोटा-मोटा उपहार दे सकती हो। यह जिन्दगी कोई मशीन नहीं है, ऐसा मुझे लगता है। लोगों में अनेक तरह की इच्छाएँ हैं, अगर एक की इच्छा दूसरे की इच्छा को काटती नहीं, उसके स्वाभिमान को आघात नहीं पहुँचाती तो उसके परस्पर भिन्न होने में क्या रुकावट है ? सद्व्यवहार का जवाब सद्व्यवहार है, ऐसा तो नहीं कि उसके अहसान से दबकर औरत उससे शादी कर ले ? तुम जो सही समझती हो, वही करो... अगर किसी वजह से उनका आना अच्छा नहीं लगता तो विनम्रतापूर्वक ऐसा कह भी सकती हो।"

"मैं नहीं जानती... कुछ भी समझ नहीं पाती बहिनजी..." भगजोगिनी रुआँसी हो गई। "तुम्हें डरने की जरूरत नहीं है, धीरज के साथ सोचो कि तुम्हारे लिए क्या उचित है और यही उनको भी बता दो..."

"हाँ ठीक कहती हैं, बहिनजी।"

लेकिन भगजोगिनी की इन बातों से नम्रता भी व्याकुल हो उठती। कुछ अधीर भी कि कब नीलेश जेल से छूटकर आए और वह इन प्रश्नों पर और अपने भावी जीवन के सम्बन्ध में विस्तार से बातें करे। यह भी पूछे कि वह तो हर पल उसे याद करती है, क्या वह भी उसे याद करता था ? क्या-क्या सोचता था उसके सम्बन्ध में? और वह अपने सवालों का उसकी तरफ से स्वयं काल्पनिक सकारात्मक उत्तर देकर खुश हो जाया करती।

इंटरमीडिएट की फाइनल परीक्षा देकर जब वह घर आई तो नतीजा निकलने के पहले मई में जर्मनी की सेनाओं की पराजय के बाद यूरोप में युद्ध बंद हो गया। इसके बाद धीरे-धीरे राजनीतिक

कैदी छोड़े जाने लगे। जब वह इलाहाबाद विश्वविद्यालय में लड़कियों के छात्रावास में रहकर बी.ए. प्रथम वर्ष में पढ़ रही थी, अणुबम से तबाह और अस्त जापान ने भी आत्म-समर्पण कर दिया। इसके पश्चात तो देश का राजनीतिक माहौल बदलता गया। बड़े नेताओं के छोड़े जाने पर समूचे देश में फिर जबरदस्त तूफान आ गया। जनता के उत्साह का अन्त नहीं था। स्वतन्त्रता के लिए बड़ी-बड़ी सभाएँ और बड़े-बड़े जुलूस। और जब आजाद हिन्द फौज के बन्दी बनाए गए बहादुर फौजी सिपाहियों और अधिकारियों पर मुकदमा चलाया जाने लगा तो उनकी वीरता, त्याग, साहस, अटूट एकता के अखबारों में छपे किस्सों ने देश में ऐसा जुनून पैदा किया जो पहले कभी देखा नहीं गया।

नम्रता भी काफी उत्साह में थी। आजाद हिन्द फौज के बहादुर लड़ाकों की मुक्ति के पक्ष में आयोजित छात्रों के विशाल जुलूसों में वह कई बार सम्मिलित हुई। अपनी इन गतिविधियों से वह काफी खुश भी थी। इसलिए भी कि इस माहौल में नीलेश से मिलना अद्‌भुत और शानदार होगा। कैसे अपने को सँभाल पाएगी वह मिलन की खुशी की रुलाई को ? तब उसने सोचा कि वह एक-एक बात की रिपोर्ट देगी नीलेश को उस समय से जब वह उसे छोड़कर जेल गया और फिर मिलने तक की। क्या-क्या घटा उसके साथ, क्या-क्या सोचा उसने, कितनी बार रोई उसके लिए और उसी के विचार के अनुसार कैसे तैयार किया अपने को! यह भी बताएगी कि उसके जेल जाने के बाद कैसे तूफान खड़ा हो गया लेकिन उसे अपने प्रेम का अपमान बरदाश्त न हुआ, उसने मृत्यु का आलिंगन करना उचित समझा। वह सच्चाई पर अटल रही और अन्त में उसके घरवाले उसके प्यार को मान्यता देने के लिए तैयार हो गए। 'मैं तुम्हारी हूँ नीलेश, सिर्फ तुम्हारी। जीवन के संघर्षों में, समाज के निर्माण में, आम स्त्री-पुरुष के उत्थान में और तुम्हारे हर सुख-दुःख में तुम्हारी सहकर्मिणी और सहधर्मिणी हूँ नीलेश... तुम जल्दी आओ और मुझे ले चलो अपने साथ...' अजीब-अजीब खयाल और स्वगत वार्ताएँ। अथाह प्रतीक्षाकुल प्यार और अटल मजबूत विश्वास। हर समय लगता, अचानक नीलेश सामने आकर खड़ा हो जाएगा, जिससे आँखें डबडबा जातीं। हृदय तेजी से धड़कने लगता और बदन में थरथराहट पैदा हो जाती।

वीरेश भी विश्वविद्यालय में ही बी.ए. की पढ़ाई कर रहा था, एक दिन मिलने पर उसने बताया कि उसके भैया नैनी जेल में हैं ओर किसी दिन भी छूटकर बाहर आ जाएँगे। यह सुनकर नम्रता खुशी से पागल हो गई।

"वीरेश, मुझे ले चलोगे मिलाने ?"

"दीदी, आप घबराइए नहीं, एक-दो दिन में छूट जाएँगे। मैं कल जाऊँगा तो पूछ लूँगा कि किस दिन रिहाई होगी उनकी। सरकार सबको छोड़ रही है, पता नहीं क्यों कुछ लोगों को रोके हुए है ?" "ठीक है वीरेश, तुम बता देना मेरे बारे में। कहना, छूटने पर वह मुझसे पहले मिलें और कहीं न जाएँ। तब हम सभी साथ-साथ बलिया चलेंगे।"

"ठीक है दीदी," वीरेश की हिम्मत नहीं हुई कि उसकी डबडबाई आँखों की ओर देखे या उससे कोई बात करे और पीछे मुड़कर वह धीरे-धीरे वहाँ से चला गया।

53

आकाश स्पर्श को आतुर पर्वत पर निर्मित भवाली सैनिटोरियम में लवंगलता के नाम से भर्ती बलिया की मरीज को अब ढेला कहना उचित नहीं। यह कहना कठिन है कि उसके स्वास्थ्य-सुधार में किसकी अधिक प्रभावकारी भूमिका है-नियमित दवा एवं पुष्टकारी भोजन या निर्मल प्रकृति की गोद में विश्राम अथवा बलिया के डॉक्टर दिनेश गुप्त के पूर्व सहपाठी डॉ. आनन्द स्वरूप द्वारा दिखाए गए

अनुकूल प्रभाववाली यातों के सपनों की ? उसकी आँखों, कपोलों तथा समूची देह को देखकर क्या यह कहा जा सकता है कि स्वच्छ हवा, निर्मल आकाश, ऊपा की आभा तथा सूर्य की प्रथम किरणों में कंचन की तरह चमकती हिमाच्छादित पर्वत-चोटियों के साथ-संग का परिणाम है यह ?

यह मई का मौसम है, यूरोप में युद्ध समाप्त होने का प्रथम दिन। ड्यूटी पर आने के बाद डॉक्टर आनन्द स्वरूप बेड के पास आकर कहते हैं, "बधाई !"

"किस बात के लिए डॉक्टर साहब ?" लवंगलता अचम्मे से आँखें फैलाकर देखती है।

"यूरोप में लड़ाई खत्म हो गई। हिटलर की सेना हार गई..."

"अब क्या होगा, डॉक्टर साहेव ?"

"युद्ध इनसान और इनसानियत का दुश्मन है। इस लड़ाई में कितने लोग मारे गए, कितने घर और परिवार बरबाद हुए, इन सबका हिसाब लगाएँ तो दहशत होगी। अच्छा है कि यह सब बंद हो जाएगा

और लोग अपने घरों को लौट जाएँगे। अब फिर नए सिरे से निर्माण होगा और कोशिश होगी कि फिर युद्ध न हो। हम, आप भी तो सिपाही हैं। हम भी तो युद्ध के सैनिकों की तरह बीमारी के खिलाफ लड़ाई लड़ते हैं। हमारी लड़ाई तो हमेशा जारी है आखिरी जीत की उम्मीद के साथ कि एक दिन दुनिया से रोग-शोक खत्म हो जाएगा।"

लवंगलता की बड़ी-बड़ी आँखें, डॉक्टर के चेहरे को और दृढ़ता के भाव से हिलते होंठों के बीच दाँतों की विद्युत-चमक को देख रही हैं मुग्ध भाव से। यह उच्छ्वसित स्वर में कहती है, "आपकी बातें कितनी अच्छी होती हैं डॉक्टर साहब। पर मुझे इस लड़ाई में क्यों शमिल करते हैं ? आपके अन्दर इतनी उम्मीदें हैं कि उसकी थाह नहीं। आप डॉक्टर हैं, लड़ने के हथियार हैं आपके पास। तरीके मालूम हैं आपको। मैं तो कुछ भी नहीं, अपढ़ हूँ, गँवार हूँ। आपकी बातों से हिम्मत वैधती है, मगर कभी-कभी मेरा मन डूबने-उतराने लगता है, उम्मीद खत्म हो जाती है..."

डॉक्टर आनन्द स्वरूप की उम्र अठाइस वर्ष से अधिक नहीं बल्कि कुछ कम ही है। मझोला कद, हल्का साँवला रंग, चाल में स्फूर्ति, आँखों में मृदु समझदारी की चमक, विनम्र स्पष्ट वाणी। उसने लवंगलता को गौर से देखने के बाद कहा :

"तीन वर्ष से अधिक समय हो गया, आपसे करीब रोज ही बात होती रही है, मैं कोई उपदेश देने नहीं आता। आप मरीज जरूर हैं, लेकिन एक डॉक्टर को अपने मरीज से सहयोग चाहिए, उसके बिना कैसे बीमारी के विरुद्ध लड़ाई लड़ी जा सकती है ? आपसे जो बातें करता हूँ, उसका अर्थ यही है कि आप भी अपने अन्दर नई उम्मीदों को जिन्दा रहने दें और नियमित रूप से दवाई खाकर रोग मिटाने में मदद दें, तो यह लड़ाई विजय तक जारी रहे। आप तो काफी समझदार हैं, आपमें धीरज बहुत है। इस समय तक तो आप तरीके भी जान गई होंगी कि यह लड़ाई कैसे लड़ी जा सकती है। कई मरीज ऐसे नहीं होते, जरा भी सहयोग नहीं करते। ऐसी हालत में आप निराशा की जो बातें करती हैं उनका कोई अर्थ नहीं है। मैं तो..."

अचानक डॉक्टर चुप हो गया और सामने खुली खिड़की के बाहर बादल के एक टुकड़े को देखने लगा।

"कहिए डॉक्टर साहब... चुप क्यों हो गए ?"

"हाँ, मैं कुछ कहना तो चाहता था, लेकिन रुंक गया कि डॉक्टर को इतना बोलने की जरूरत नहीं, आपको भी अच्छा लगे, न लगे। डॉक्टर का अपने हर मरीज से लगाव होता है, उसको अच्छा करना उसका कर्तव्य है और अच्छा होने पर उसे अपार खुशी होती है, गर्व होता है अपने पर, दुनिया पर और दुनिया को बनानेवाले पर। आपके बारे में सबकुछ पता है मुझे आपके पुराने जीवन के बारे में, आपकी प्रकृति के बारे में... आप क्या चाहती हैं, क्या नहीं चाहती हैं। इसके बावजूद मैं कहना चाहता हूँ कि आप सुन्दर हैं, बहुत सुन्दर हैं... शरीर ही के बारे में नहीं... मैं मन की सुन्दरता की बात

कह रहा हूँ... और...।"

"और क्या डॉक्टर साहब ? आप कहते जाइए, मैं बड़े ध्यान से सुन रही हूँ...।" "और यही कि प्रकृति को किसी ने पढ़ाया-लिखाया नहीं। कभी तूफान, गरज-तड़प, भूकम्प

वगैरह से उसका रूप बिगड़ जाता है, लेकिन बाद में यही खूबसूरत, पवित्र रूप उभर आता है-वही फैला नीला आकाश, चमकती धूप, सुखद ताजी हवा, स्वाभिमान से सिर उठाए पर्वत। इस हालत में क्या प्रकृति अपने पुराने विकृत रूप को याद करती है? काई में कोई ढेला-पत्थर फेंकने पर उसे आघात लगता है, उसका रूप बिगड़ जाता है, लेकिन पत्थर निकाल देने पर स्वाभाविक रूप फिर आ जाता है। ऐसा ही है हमारा जीवन। बीमारी से शरीर कलुषित और अपवित्र हो जाता है और गलत विचार से मन। बीमारी दूर होने से जैसे शरीर स्वच्छ और पवित्र हो जाता है, उसी तरह सुन्दर विचार से मन और आत्मा। शरीर और मन के स्वास्थ्य और नए, सुन्दर संकल्प से हर आदमी नया जन्म ग्रहण कर सकता है। यह नया संकल्प है अपने में पूरा विश्वास रखने का, खूबसूरत उम्मीदों को अपने अन्दर जीवित रखने का, दूसरों के सुख-दुःख से अपने को जोड़ने का। यह आसान नहीं है, मगर मुमकिन है। नाउम्मीदी की बीती बातों को जितनी बार याद करता है मनुष्य, उतनी ही बार मरता है, और मरता जाता है। अब समय आ गया है कि आप पूरी तरह स्वस्थ हो जाएँगी।

मैं बताना चाहता हूँ कि एक खूबसूरत, तन्दरुस्त बच्चे की तरह आपका नया जन्म हो रहा है..." "डॉक्टर ! यह क्या कह रहे हैं? मेरे खानदान के लोग, मेरी अम्मा, क्या हाल है उन लोगों का ?

मेरा क्या फर्ज बनता है ? में अपने को एकदम अँधेरे में पाती हूँ..."

"यह सब सोचने का समय नहीं आया है, आपकी बीमारी में कुछ कसर है, असहयोग करेंगी तो एक डॉक्टर क्या कर सकता है? आपको उजाला, स्वच्छ हवा, नीला आकाश, हँसी-खुशी, अच्छे लोग और नेक विचार से हमेशा प्यार रहा है, लेकिन आपको यह माहौल न मिला, जिसमें आपके गुणों का, आपकी आत्मा का विकास होता! यहाँ सबकुछ है, आप अब अपने को उजाले में रखने, उसका आनन्द उठाने की आदत डालिए। ठीक है, आराम की कीजिए और खुश रहिए..."

लवंगलता ने अपनी आँखें मूँद लीं। सामने फिर डॉक्टर का मुस्कुराता चेहरा उभर आया। वह करीब हर दिन डॉक्टर का चेहरा देखती है और हर दिन वह सर्वथा नया लगता है। वह एक तरह की बात भी नहीं करता, रोज कोई नई बात छोटी-छोटी बातें, एकदम मामूली लेकिन बेहद दिलचस्प। एक दिन पूछा उसने, 'कितने लड्डू खा सकती हैं आप ?' उसे बड़ी हँसी आई थी। मिठाइयाँ तो उसके पास लानेवाले बहुत-से लोग थे, लेकिन दो लड्डू से अधिक वह कभी न खा सकी। मीठा उसे बहुत पसन्द था ही नहीं। डॉक्टर ने कहा था, 'आपको छेना के रसगुल्ले दिए जाएँगे, अब तो खाना पड़ेगा, जितने खा सकें।' एक दिन पूछा, 'खाना में क्या-क्या बनाना आता है आपको ?' उसको बड़ी शर्म आई, क्योंकि खाना बनाना आता ही नहीं था उसे। डॉक्टर सुनकर खूब हँसा। उसने बताया कि वह अकेला है यहाँ,

मध्य प्रदेश के छत्तीसगढ़ इलाके में गाँव है उसका, यहाँ मेस है जरूर, लेकिन यह स्वयं हर चीज बना लेता है और एक जून की मेहनत पर दो जून खाता है। उसने रोटियाँ, दाल, सब्जी और गोश्त बनाने के कई तरीके बताए।

कभी वह दूध, टमाटर, पनीर, सोयाबीन और कुछ हरी सब्जियों के गुण बताता और हरे साग बनाने की कई विधियाँ बताने लगता। कभी क्रान्तिकारियों, महात्मा गांधी, विवेकानन्द, मार्क्स, सुभाषचन्द्र बोस के किस्से। और भी दिलचस्प किस्से थे उसके पास राजा-रानी, वैज्ञानिकों, वैज्ञानिक आविष्कारों और बहादुर महिलाओं के किस्से। वह कभी कोई किताब भी लाता और कोई छोटी-सी कहानी पढ़कर सुनाता। उसने बाद में स्पष्ट कर दिया था कि किस्से-कहानी सुनाना उसकी चिकित्सा का ही हिस्सा है, जिसका उद्देश्य उस जैसी मरीज को नाउम्मीदी से दूर ले जाकर नई उम्मीदों के साथ जिन्दगी के प्रति गहरी दिलचस्पी उत्पन्न करना है।est

लवंगलता सोच रही थी कि डॉक्टर की चिकित्सा और बातों से कितनी दूर चली आई है वह बलिया की उस घुटन-भरी जिन्दगी से ! डॉक्टर ने उसके मन में उम्मीदों की एक नई, अनोखी और प्यारी-सी बस्ती निर्मित कर दी है. जहाँ स्वच्छ हवा, धूप, वृक्ष, पक्षी और पर्वत के साथ नेक इंसान और उनके नेक विचार हैं। दयाशंकर ने अवश्य उसे घुटन-भरी जिन्दगी से निकलने का रास्ता सुझाया था, उसे एक सपना दिया था, लेकिन ऊँचे विचार और त्यागपूर्ण जीवन के बावजूद उसके जैसी मजबूर, वंचित और व्याकुल स्त्री को देने के लिए उसके पास कुछ नहीं था। लेकिन यह डॉक्टर तो उसे दिए जा रहा है, दिए जा रहा है। उसके जीवित रहने से डॉक्टर को क्या मिलेगा ? यह जानते हुए भी कि स्वस्थ होने के बाद उसे यहाँ से वहीं जाना है? यहाँ से यहाँ आना जिस प्रकार अविश्वसनीय था, उसी प्रकार यहाँ से वहाँ जाना क्या अविश्वसनीय नहीं बना दिया है इस डॉक्टर ने ?

उसे याद आया वह दिन, जब वह गोपालराम और श्यामदासी के साथ बलिया से भवाली के लिए चली थी। जाड़े के कपड़े, ट्रंक, विस्तरे, डोलची वगैरह। रसड़ैया गाड़ी-रसड़ावाली-से शाहगंज पहुँचकर पहली बार और वहाँ से लखनऊ पहुँचकर दूसरी बार ट्रेन बदली गई काठगोदाम के लिए, जहाँ से बस पकड़कर भवाली। श्यामदासी जितनी अपने व्यवसाय में चतुर, तेज-तर्रार, जमाऊ और फुर्तीबाज थी, उतनी ही इस अनजानी यात्रा में घबराई हुई और असहाय। अक्ल गुम हो गई थी उसकी। एकदम थथमा मार गया था। जिधर जाना होता, उसके विपरीत दिशा में चल देती पागल की तरह देखती हुई। जहाँ फुर्ती की जरूरत थी, उसके हाथ-पैर काम करना बन्द कर देते थे। हर काम गोपालराम को ही करना पड़ता-सहारा देकर दोनों माँ-बेटी को चढ़ाना, उतारना, डिब्बे में ऐसी जगह के लिए संघर्ष करना, जिससे सबको, खास तरह से लवंगलता को आराम मिले, सामानों को चढ़ाना और ठीक जगह पर गिनकर नजर के सामने रखना। बीच-बीच में वह श्यामदासी को फटकार भी लगाता :

"अम्माजी, इतनी डरी क्यों हैं? आपकी बुद्धि कहाँ चली गई? आपने तो अपनी बिटिया की जिन्दगी चौपट ही कर दी है। अब दवा कराने ले जा रहे हैं तो हर समय 'हाय दइया', 'आह-ऊँह' किए जा रही हैं जैसे आप ही असली मरीज हों। अरे, आप सामान चढ़ाने में मदद नहीं देना चाहतीं तो डिब्बे में जगह के लिए मुसाफिरों से युद्ध तो कर सकती हैं? सुना है कि आपकी जबान कैंची की तरह तेजी से चलती है, फिर अपना यह हुनर क्यों छिपाए हुए हैं? इससे अच्छा तो यह था कि आप साथ में न आतीं, वहीं अपने मोहल्ले में हड़कम्प मचाती रहतीं। मैं तो अकेले ही इनको पहुँचाकर भर्ती करा देता... अब मुझे आपको भी सँभालना पड़ रहा है...।"

"कैसी बात करते हो भैया, क्या अपनी जवान लड़की को अकेले तुम्हारे साथ भेज देती ?" "वाह ! अब जबान खुली। अपने असली रूप की एक गन्दी झलक दिखाई आपने। आप नही जानतीं, यह तो मेरी बहिन की तरह हैं... हाँ, आप माँ होकर श्मशान घाट पहुँचाकर अब बदुआ भी दे रही हैं इनको। कैसी माँ हैं जी आप ? आप चाहती हैं कि ये जल्दी दुनिया से विदा लें और अपना सारा पैसा बचाकर खुद सुख की जिन्दगी बिताएँ। लेकिन यह समझ लीजिए कि आपका चाहा कुछ नहीं होगा, ये पूरी तरह स्वस्थ हो जाएँगी और उसके बाद आपके घर भी नहीं जाएँगी। आने दीजिए, किसान-मजदूरों, गरीबों की सरकार, आप सभी लोगों को जेल का फाटक दिखाया जाएगा !"

"यह कौन-सी सरकार है, भैया ?" श्यामदासी हँसने लगी।

"आपको कुछ पता-वता तो है नहीं। आप तो यह भी नहीं जानना चाहतीं कि आपकी भलाई किसमें है। इस समय गरीबों की सरकार नहीं है, मगर आएगी जरूर। तब आप लोगों का धन्धा-वन्धा बंद कर दिया जाएगा और आपकी बेटियाँ नए देश की बेटियाँ बनकर सरकार में

जाएँगी, दफ्तर सँभालेंगी और स्त्री जाति पर होनेवाले सभी जुल्म, अत्याचारों को खत्म करेंगी। आपने समझ क्या रखा है ?"

श्यामदासी के पास इसका जवाब था, दूसरा समय होता तो यह जरूर कहती कि ऐसे उचक्के नौजवानों को खूब जानती है, जिनकी कलई जल्दी ही खुल जाती है; लेकिन उसने कोई जवाब न देकर मुँह दूसरी तरफ कर लिया। लेकिन लवंगलता कष्ट में भी बड़ी दिलचस्पी से गोपालराम की बातें सुन रही थी। अक्सर दोनों के बीच में नोक-झोंक होती रहती और लवंगलता मुस्कुराती रहती। इस तरह लड़ते-झगड़ते उनके बीच एक रिश्ता भी बन गया। शायद इससे रास्ते की बोरियत दूर होती हो, लेकिन यह सही है कि दोनों को एक-दूसरे के विना चैन नहीं था और दोनों यदि एक-दूसरे के खान-पान, आराम के बारे में खयाल भी करते तो लड़ते-झगड़ते ही।

काठगोदाम से भवाली की यात्रा में एक खूबसूरत, भव्य स्वप्न दिखाई देने लगा। सभी के मुँह खुले और नेत्र विस्फारित। क्रमशः उठते पहाड़ों का सिलसिला और उन्हें नापती वक्राकार डामर की काली सड़कें। पहले वृक्षों की झुरमुट लहराती और बलखाती, फिर ऊँचाई के साथ और बड़े तथा सघन वृक्ष विपुल हरीतिमा लिए। पहाड़ों की गोद से फूटते जल के सोते। ज्योलीकोट पार करते ही चीड़ के वन लहराते, जैसे आसमान में झाड़ू लगा रहे हों। सायें-सायें की आवाज बस की घरबराहटों के बावजूद।

लवंगलता गड़हे में धँसी अपनी आँखें फैलाने की कोशिश करके जैसे साँस रोककर देख रही हो। मैदान ओझल हो गया है और चारों ओर फैला है पहाड़ों का साम्राज्य। लगता है एक-दूसरे से बात करते हैं पहाड़। कुछ तो सीधे आसमान से बात करने में लीन हैं। घुमावदार रास्ते के मोड़ों पर कहीं बादलों के टुकड़े चलते धुंध की तरह नजर आते हैं। और वो सामने दूर पहाड़ पर जीवन की चहल-पहल, जहाँ दिखाई देते हैं डिब्बेनुमा कई घर। कैसे पहुँचते हैं वहाँ तक लोग ? दूर पहाड़ी रास्तों पर कुछ और बसें दिखाई देती हैं चीटियों की तरह रेंगती हुई।

लवंगलता इस अद्‌भुत दृश्य को अपने अन्दर जज्य कर लेना चाहती थी, लेकिन उसके लिए ताकतं न होने से बेहद थक गई, बेहद कमजोरी से साँस फूलने लगी और खाँसी भी आने लगी। "अम्माजी, आप तो सो रही हैं, ठीक से सँभालिए उन्हें, ओढ़ा दीजिए ठीक से..." गोपालराम ने झिड़कते हुए कहा।

"क्या कहूँ भैया, चक्कर आ रहा है..." लवंगलता के बगल में बैठी श्यामदासी ने बेटी की पीठ सहलाते हुए कहा।

"चक्कर यक्कर कुछ नहीं... आप मरीज को सँभालने आई हैं या सोने? खाँसी रोकने की दवा है कि नहीं ?"

"है तो... रहो देती हूँ..." श्यामदासी ने नीचे रखी डोलची में रखे एक छोटे लिफाफे में से एक गोली निकालकर बेटी को खिला दी, उसके पैरों को ठीक से ढका और उसके सिर को अपने कन्धों पर टिकाकर सहलाने लगी।

एक संघर्षशील पार्टी का पढ़ा-लिखा कार्यकर्ता होने का लाभ गोपालराम को मिल भी रहा था। भारी सामान के साथ अनजान जगह जाने की अनेक दिक्कतें होती हैं, लेकिन गोपालराम इस तरह व्यवहार कर रहा है, जैसे इस सफर का उसे पहले भी अनुभव हुआ हो। ट्रेन यात्रा में हर स्टेशन पर नीचे उतरना और पर्वत यात्रा में भी, जहाँ बस रुकती है। नई जगह देखने और नई जानकारी लेने की उत्सुकता, जिससे चाहे उसी से फौरन संवाद कायम कर लेना और इतने सवाल कर देना कि सभी जवाब खत्म होने के साथ सभी सूचनाएँ भी प्राप्त हो जाएँ। अकड़ू रेल और बस कर्मचारियों तथा डिब्बे के वैसे ही मुसाफिरों से बहस करना और कुछ मानवतावादी तर्कों और शब्दावलियों द्वारा पराजित या लज्जित करके चुप्पी और आत्म-समर्पण की स्थिति तक पहुँचा देना। अपने जीवन से

ऊबी और रोग से भी डरी लवंगलता को भी उसकी बातों से एक अजीब-सा आश्वासन मिलता। यही कारण है, जिससे इस लम्बी कष्टदायी यात्रा में भी माँ-बेटी दोनों को कोई कष्ट नहीं होने

पाया-क्योंकि हर दिक्कत को दूर करने का तरीका उसे पहले ही मालूम हो जाता था। काठगोदाम से भवाली की यात्रा डेढ़-दो घंटे की रही होगी और आगे और चढ़ाई होने की वजह से उन्हें बाजार से दो फर्लांग पहले ही उतर जाना पड़ा, लेकिन वह पहले ही मालूम कर चुका था कि रोगी या अशक्त व्यक्तियों के लिए ट्टदू या पालकी व्यवस्था हो जाती है, इसलिए दोनों महिलाओं को पालकी पर बिठाकर स्वयं पैदल ही चल पड़ा वह।

लवंगलता को एक-एक चीज याद है, और आँखें आँसुओं से भरी हैं। उसे पहली बार महसूस हो रहा था कि जिन्दगी बड़ी खूबसूरत है, जबकि पहले वह सोचती थी कि जीने जैसी घृणित और दुःखजनक चीज कोई भी नहीं। पालकी पर ऊपर जाते-जाते सैनिटोरियम की सीमा आ गई। वे बढ़ते गए डॉक्टरों, नसों और कर्मचारियों के क्वार्टरों से गुजरते हुए। और चढ़ाई तथा बाजों के जंगल की ठंडक के बीच से होते हुए अस्पताल दिखाई देने लगा। अलग-अलग वार्ड, बीच में लाल टिन की ढलानदार छतरी के तले पुलनुमा कॉरीडारों से जुड़े।

पन्द्रह-बीस दिन रहकर गोपालराम ने सारी व्यवस्था पक्की कर दी थी। डॉक्टर आनन्द स्वरूप से उसे बड़ी मदद मिली। डॉक्टर ने उन दोनों को, गोपालराम और श्यामदासी को अपने यहाँ ही रखा क्योंकि डॉ. दिनेश गुप्त ने सारी परिस्थितियों को स्पष्ट करते हुए, उन्हें अधिक-से-अधिक सहानुभूति और सहूलियत देने का अनुरोध किया था। रुपए-पैसे की कोई दिक्कत नहीं थी, इसलिए अच्छे वार्ड, समुचित दवा और भोजन की व्यवस्था हो जाने पर डॉक्टर ने दोनों को यहाँ से जाने का सुझाव दिया, क्योंकि यहाँ उनकी कोई जरूरत नहीं है और सभी देख-भाल अस्पताल की ओर से होगा।

जाते समय गोपालराम ने हँसते हुए लवंगलता से कहा, "आप अच्छी जगह पहुँच गई हैं। नियम से दवा खाइए और प्रेम से भोजन और अंडा, दूध वगैरह ग्रहण कीजिए और आराम कीजिए। स्वच्छ हवा खूब पीजिए, पहाड़ों से और हरे-भरे जंगल से स्नेह कीजिए और भूलकर भी अपनी पुरानी हवेली को याद न कीजिए। आपकी अम्माजी को भी लिए जा रहा हूँ। यहाँ रहेंगी तो अपने लिए, आपके लिए और दूसरों के लिए भी सिरदर्द बन जाएँगी। इनके लिए चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। आपको जल्दी-से-जल्दी स्वस्थ होकर खड़ी हो जाना है, आप समझती क्या हैं, आपको तो गरीबों की सरकार बनाने के लिए काम करना है। कभी मौका मिला तो जरूर आऊँगा... अम्माजी को भी लाऊँगा।"

इन सब बातों को याद करके लवंगलता की आँखों से लगातार आँसू निकलकर धार के रूप में बह रहे हैं। गोपालराम तो फिर नहीं आया, लेकिन उसकी याद सदा आती है लवंगलता को, क्योंकि शुरू में तो हिम्मत उसी ने बँधाई। और डॉक्टर आनन्द स्वरूप ने जैसे उसी से सूत्र लेकर अपने व्यवहार का ताना-बाना बनाया। एक दिन डॉक्टर ने कहा भी था :

"ऐसे हँसमुख और हिम्मती लोगों की जरूरत है इस देश में। गोपालराम से खूब हुई बातें, कुछ मसलों पर मतभेद है, मगर कई चीजें उनकी पसन्द भी हैं। मैं उनके बारे में उन्हीं से सबकुछ जान चुका हूँ, कैसे कष्ट में ये हैं और उनका परिवार है, लेकिन अन्याय को बरदाश्त नहीं कर सकते हैं वह। कहते हैं, 'मेरी माँ ने जो दुःख, अभाव और अपमान झेले हैं, उनको याद करके मैं किसी औरत को छोटा नहीं समझता, उसकी इज्जत करता हूँ और करता रहूँगा।' कितने अच्छे विचार हैं...।"

यही सब लवंगलता देर तक सोचती रही, फिर उसे नींद आ गई थी।

दिन बीतते गए और उसका स्वास्थ्य सुधरता गया। और लगभग एक वर्ष बाद नए वाइसराय

लार्ड बावेल के प्रस्तावों के अनुसार जब देश में चुनाव हुए और नई केन्द्रीय अन्तरिम सरकार बनी तो एक दिन डॉक्टर ने मुस्कुराकर कहा :

"मालूम होता है, यह देश आजाद हो जाएगा जल्दी ही। लेकिन आप तो पहले ही मुक्त हो गई हैं अपनी बीमारी से। आप पूर्ण स्वस्थ हैं। अब आप शरीर से, हृदय से और बुद्धि से स्वस्थ हैं और नए संकल्प से आपको इन तीनों के बीच तालमेल कायम करना है..."

"डॉक्टर साहब..." लवंगलता अभिभूत होकर डबडबाई आँखों से देखने लगी। "नहीं, मुझे बात पूरी कर लेने दीजिए। आपने कई बार पूछा है कि स्वस्थ होने के बाद आप

क्या करेंगी। गोपालराम से शुरू में जो बातचीत हुई थी और आपके भावी जीवन के सम्बन्ध में उन्होंने जो विचार प्रकट किए थे, उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ था। उन्होंने दृढ़ता से कहा था कि स्वस्थ होने के बाद आपको पुरानी जगह, पुराने जीवन में नहीं जाने देना है। वैसे आप स्वतन्त्र हैं कि जो चाहें करें, लेकिन में भी राय नहीं दूँगा कि आप लौटकर उसी जीवन में जाएँ। इससे बड़ी दुर्घटना क्या होगी संसार में ? फिर आप इसी मौत की गिरफ्त में आ जाएँगी। आप अभी कुछ दिन तो अस्पताल में और रहें, इस बीच में अपनी माँ को यहाँ बुला लेता हूँ, फिर अस्पताल से मुक्त होकर मेरे क्वार्टर में रहें घर के सदस्य की तरह। मैंने अच्छी तरह सोच लिया है। हाँ, आपको दृढ़ रहना पड़ेगा और अपने घरवालों से साफ-साफ कहना पड़ेगा। मैं कोशिश करूँगा कि आप कुछ पढ़-लिख जाएँ, फिर ट्रेनिंग दिलाकर नर्स यहीं बनवा दूँगा। बीमार की सेवा करने से अच्छा काम कोई नहीं। जब आप काम पा जाएँगी तो आपको क्वार्टर मिल जाएगा और अपनी माँ और अन्य किसी रिश्तेदार को बुला सकेंगी आप।"

"क्या कह रहे हैं, डॉक्टर आप !" लवंगलता आँखों को हाथ से ढककर खुलकर रोने लगी। "मेरी समझ में आपके लिए यह ठीक रहेगा। लेकिन सबकुछ आपके सहयोग, आपकी इच्छा पर निर्भर है। बहुत-से लोग इस समय में महात्मा गांधी के विचारों से प्रभावित हुए हैं, उन्हीं में एक मामूली डॉक्टर हूँ मैं। मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूँ, किसी पार्टी का सदस्य नहीं हैं, लेकिन मैंने बलिया के आपके डॉक्टर दिनेश

गुप्त और दो और डॉक्टर साथियों के साथ फैसला किया था कि हम अपने पेशे को जनसेवा का माध्यम बनाएँगे, खास तरह से देशभक्तों, गरीबों, और बेसहारों की मदद के लिए तैयार रहेंगे। हम उन राजनीतिक दलों को चन्दा भी देते थे, जो देश की आजादी के लिए लड़ रहे हैं। किसी पद-पदवी, लाभ, लालच के बिना सेवा-भाव से किसी की मदद करने से अच्छा काम क्या होगा ? यह कोई दया या कृपा नहीं है, यह रोग-शोक की दुनिया में डॉक्टर और मरीज का इंसानी रिश्ता है। सेवा करने से डॉक्टर ऊँचा नहीं हो जाता। वह मरीज का सहज मित्र है, हितैषी है..."

कुछ रुककर डॉक्टर ने कहा, "इसीलिए मैंने आपकी तरफ दोस्ती का हाथ बढ़ाया है। ऐसा करने में मेरा कोई स्वार्थ नहीं है, यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। हँसी, खुशी, मेहनत, समझदारी और सेवा ही हमारे-आपके बीच दोस्ती के रिश्ते का आधार है, बुनियाद है। लोग कहते हैं कि दुनिया में बहुत कुछ किस्मत, भाग्य या संयोग से होता है। जहाँ शिक्षा, अच्छी सोच-समझ नहीं होती, मजबूत फैसला नहीं लिया जाता आम मनुष्य के पक्ष में, वहाँ अच्छी सरकार और अच्छी व्यवस्था कायम नहीं हो पाती। ऐसी हालत में एक साधारण आदमी सही ढंग से सोच नहीं पाता, तब वह किस्मत, भाग्य की बात करने लगता है। इस समय, अगर आप नया फैसला नहीं करेंगी और उस पर मजबूती से नहीं चलेंगी तो आप पुराने जीवन में चली जाएँगी और हर जगह रोएँगी कि मेरी किस्मत ही खराब है। हम तो दोषी हैं, कलुषित हैं, कलंकित हैं। बार-बार मैं कह चुका हूँ कि बीमारी से शरीर जब कलुषित हो जाता है तो वह दवा से स्वस्थ और पवित्र भी हो जाता है; लेकिन बीमार मन, बीमार विचार की कोई दवा नहीं है। मैं अनुरोध करता हूँ आपसे कि आप अपनी नई जिन्दगी की

इज्जत कीजिए और साफ, मजबूत फैसला भी कीजिए। मुझे जवाब चाहिए दो दिन बाद।"

दो दिन बाद जब डॉक्टर आया तो यह आत्मीयता और कृतज्ञता भाव से विह्वल होकर सिर्फ इतना ही कह सकी:

"मैं बहुत खुश हूँ डॉक्टर।"

54

यूरोप में युद्ध समाप्ति तथा कुछ विशेष राजनीतिक बन्दियों के छोड़े जाने के बाद ही जेलों में यह खबर तेजी से फैली कि अंग्रेज हिन्दुस्तान को आजादी देने के बाद बोरिया-विस्तर बाँधकर यहाँ से जानेवाले हैं। लेकन यह सिर्फ अफवाह ही नहीं थी। बात यह है कि हुकूमत किसी सोची-समझी नीति के तहत ढीली, सुस्त और लापरवाह होती गई। कैदियों के प्रति व्यवहार में बदलाव आने लगा। उनकी माँगें सुनी जाने लगीं, मुलाकातों की सहूलियतें बढ़ीं, मुकदमे की दिखावटी कवायदें तेजी से होने लगीं, एक-दो बार दूध-चीनी की दलिया नाश्ते में दी गई और त्यौहार पर पूड़ियाँ वगैरह भी। जो कैदी हाई स्कूल या इंटर पास हैं, उनको 'बी' श्रेणी की सुविधाएँ दे दी गई, जिनकी संख्या कम ही थी और उसमें बैकुंठ

और नीलेश जैसे नौजवान भी शामिल कर लिए गए और फल, दूध, मक्खन, उत्तम भोजन पाकर लहलहाने लगे। गाल भर आए, त्वचा में रंगत आ गई, चाल शानदार बन गई जैसे वन में गजराज। जेल कर्मचारियों के खयाल, बात, आराम और सुगन्ध की तरह उड़नेवाली नई-नई खबरों के माहौल में अपने विगत बगावती सुकृत्यों, कष्टों और कुर्बानियों का खयाल स्वतः ही उभर आता, जिससे आत्मविश्वास, स्वाभिमान एवं उच्चता के अहसास से गर्दन अकड़ जाती और होंठों में अनजान दबी हुई ऐंठ।

खैर, बन्दी एक साथ नहीं छोड़े गए। कुछ तो युद्ध खत्म होने के पहले ही रिहा कर दिए गए थे। इनमें गऊ किस्म के कुछ बूढ़े लोग थे, जिनसे कोई खतरा नहीं होता और जो कोई स्पष्ट बात नहीं करते और प्रेम-पगी भाषा से सबकुछ मीठा बना देते हैं। उनके बाद ऐसे कैदी, जिनमें सक्रियता से अधिक वाचालता होती है। फिर सक्रिय अधिक और वाचाल कम, उसके बाद साधारण खतरनाक, तब मझोले खतरनाक वगैरह। इस तरह रिहाई की क्रमबद्ध श्रेणियाँ बना दी गई थीं। विलम्ब की समस्या उन फरार देशभक्तों ने उत्पन्न कर दी, जो हवा का रुख पहचानकर इस तरह कचहरी में या किसी थाने के पास आकर गिरफ्तारी देने लगे मानो कोई आन्दोलन हो रहा हो। उनके खिलाफ वारंट तो था ही, हुकूमत को बाध्य होकर उन्हें गिरफ्तारी और रिहाई की कानूनी प्रक्रिया में शामिल करना पड़ा।

कुछ दिनों बाद, रिहाइयों का तूफान ही आ गया और लोगों की दबी हुई उमंगें दूने वेग से विशाल जुलूसों, जनप्रदर्शनों एवं जनसभाओं के रूप में उभरने लगीं। राष्ट्रीय नेताओं तथा लन्दन स्थित ब्रिटिश सरकार के बयानों से इस खबर की लगभग पुष्टि हो गई कि शीघ्र ही देश स्वतन्त्र होनेवाला है। जनता गर्व से खुश हो गई कि उन्हीं के संघर्षों का नतीजा है यह। लेकिन कुछ तेज-तर्रार, बुद्धिमान और दूरदर्शी नेता गम्भीर चिन्ता में पड़कर सोचने लगे कि उन पर गम्भीर जिम्मेदारियाँ आ गई हैं। यह सही है कि उनके नेतृत्व एवं कार्यक्षमता से देश में इतना बड़ा आन्दोलन खड़ा हुआ, लेकिन आगे भी संघटन एवं सत्ता में प्रतिभाशाली लोगों का समावेश होना चाहिए, जिससे देशसेवा एवं देश-निर्माण सम्बन्धी उनकी क्षमता को कार्यान्वित करने का भरपूर अवसर मिले।

ऐसे ही एक नेता हैं 'ए' श्रेणीवाले राजनीतिक बन्दी अनिरुद्ध दास। मझोला, थुलथुल-सा शरीर, सपनीली बड़ी-बड़ी आँखें, पैंतालीस से पचास की ओर बढ़ते हुए, खद्दर की धोती, कुर्ता, जवाहर

जैकेट और गांधी टोपी से सज्जित सुदर्शन। बलिया के होते हुए भी इलाहाबाद में ही बस गए हैं। बलिया में काफी खेत-जमीन है, लेकिन यहाँ भी मकान और काम-धाम हैं। उनके पिताजी बहुत पहले हाईकोर्ट में वकालत करने आ गए थे. जिन्हें सफलता भी अच्छी मिली। उन्होंने धन भी कमाया, जायदाद भी बढ़ाई, लेकिन उनके पुत्र अनिरुद्ध दास ने वकालत पास करने पर भी यह पेशा नहीं अपनाया, बल्कि, छात्र जीवन से ही राष्ट्रीय आन्दोलन के सम्पर्क में आकर अपना पूरा जीवन देश को ही अर्पित कर दिया।

सुखद संयोग यह है, जब नीलेश का फैजाबाद जेल में तबादला किया गया, उसके कुछ दिन बाद ही अनिरुद्ध दास भी वहाँ लाए गए थे, फिर बाद में दोनों को एक ही साथ इलाहाबाद के नैनी जेल भेज दिया गया। बात-व्यवहार, चाल-चलन, विचार, शक्ल-सूरत, जाति, खानदान, एक ही जिला-अनेक कारणों से नीलेश से अनिरुद्ध दास अत्यन्त प्रसन्न रहते थे। सम्भव है, यह बात एकदम सही न हो, क्योंकि वह सबसे ही सहृदयता से पेश आते और वास्तव में हर व्यक्ति ही सोचता था कि उसके प्रति अनिरुद्ध दास का विशेष अनुराग है।

एक खास कारण यह हो सकता है कि वह किसी की भी सामने या पीठ पीछे आलोचना नहीं करते और सबके लिए ही प्रशंसा के कुछ ऐसे शब्द उनके पास हमेशा मौजूद रहते, जो झूठे तो लगते ही नहीं थे, उनमें कुछ विशेषता भी होती थी। बात या व्यक्ति पसन्द न होने पर वह चुप रहना ही उचित समझते। प्रशंसा मुँह के सामने करते, लेकिन उससे नहीं बल्कि पास में बैठे दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों से, जिनकी ओर मुँह रहने पर भी तिरछी, चमकती आँखें प्रशंसित व्यक्ति विशेष को भी बीच-बीच में देखती जातीं। उनकी उदारता का यह हाल है कि जेल अधिकारियों से उन्हें जो सुविधाएँ मिलती हैं और बाहर से भी जो उनके सामान आ जाते हैं, उनको पूरा इस्तेमाल नहीं कर पाते, लेकिन फौरन जरूरतमन्द बंदी साथियों के पास भेजवा देते हैं। वह स्वयं अधिक नहीं खाते और संयम से रहते हैं, लेकिन विशेष अवसरों पर घर से मलाई वाली मेवे की खीर, पनीर या आलू-भरे पराठे, पूए आदि खाद्य सामग्रियाँ तथा गोल्ड फ्लेक आदि उत्तम सिगरेटें, जिनमें से वह भी भोजन के बाद एक पी लेते हैं, इतनी मात्रा में भेज दी जाती हैं कि जेल में पूरा जश्न ही मन जाता है, विशेष रूप से तीसरी श्रेणी के कैदियों तथा पक्का लोगों की खुशी देखने लायक होती है।

नैनी जेल में आते ही, एक दिन राजनीतिक बन्दियों की मंडली में तिरछी आँखों से देखते हुए उन्होंने कहा, "इनको जानते हैं आप लोग? ये हैं नीलेशजी, अगर भारत माता की पुकार पर इन्होंने ध्यान न दिया होता तो आज ये कलक्टरी की परीक्षा पास करके बड़े अफसर बन गए होते। कोई बहस कर न ले इनसे, चाहे वह कितना भी विद्वान क्यों न हो, बोलती बन्द हो जाएगी उसकी। इनमें महानता के गुण हैं और ये आजाद देश के भावी कर्णधार हैं। ऊँचे खानदान के हैं, खूब पैसा है, किसी बात की कमी नहीं, लेकिन हर सुख को लात मारकर देश की आजादी के लिए दीवाने बनकर चल पड़े हैं। इन्हीं लोगों की कुर्बानियों की वजह से देश को आजादी मिल रही है..."

नीलेश को अवश्य अपने विचार और कार्य से सन्तोष था, लेकिन स्वयं उसने अपने सम्बन्ध में ऐसे अच्छे और मीठे शब्द न कभी सोचे थे और न ही सुने थे। उसे बड़ा सुख मिला और वह गर्व से फूल गया। अगर अनिरुद्ध दास ने उसे महान कहा है तो जरूर उन्होंने कुछ देखा होगा उसमें। एक वही एक व्यक्ति हैं इस दुनिया में, जो उसे समझ सकते हैं और जिन्होंने उसे समझा है। वह उन्हीं क्षणों से उनका भक्त हो गया और उसको पक्का विश्वास हो गया कि वह एक सच्चे इंसान हैं और वह कोई गलत बात कर ही नहीं सकते।

अनिरुद्ध दास के प्रति सम्मान तथा उनसे नैकट्य बढ़ता ही गया। उनकी बातें उसे उठाकर किसी सुनहरे शिखर पर बैठा देतीं। आगे एक दिन और अनिरुद्ध दास ने कहा : "अंग्रेज जा रहे हैं, यह निश्चित है। अखबार देखते हैं न आप लोग? जो घटनाएँ हो रही हैं,

वे आइना हैं, उसमें देश के भविष्य की तस्वीर देख सकते हैं। सवाल उठता है कि इन अंग्रेजों की जगह पर कौन बैठेगा ? ये नीलेशजी हैं, इनसे पूछिए, ये साफ-साफ बताएँगे। ये विद्वान हैं, इनमें प्रतिभा है, ये हमेशा देश के भविष्य के बारे में चिन्तन करते हैं। ऐसे ही लोग तो अंग्रेजों की जगह लेंगे। ऊँचे-से-ऊँचे अंग्रेज राजनीतिज्ञ और प्रशासक से कम प्रतिभा थोड़े ही है इन।। वैसा ही अनुशासन, वैसे ही व्यवहार कुशल और परिश्रमी, वैसे ही मितभाषी लेकिन ठोस कार्यों के विश्वासी। हम लोग तो पुराने हुए, गांधीजी के हुक्म पर जिन्दगी देश की सेवा में गुजार दी, अब नीलेशजी और उनके जैसे नौजवान ही तो देश की आजादी, उसके झंडे, उसके मान-सम्मान को और ऊँचा उठाएँगे।"

अनिरुद्ध दास की इन बातों का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि नीलेश एकान्त में जाकर बहुत देर तक स्वप्नावस्था में बैठा रह गया। हृदय में गुदगुदी हो रही थी, जो कम होने का नाम ही नहीं ले रही थी और उसी से रात में देर तक नींद नहीं आई। परन्तु यह अनिद्रा इस संकल्प की वजह से सुखद रही कि वह भविष्य में अनिरुद्ध दास की सलाह से ही काम करेगा, क्योंकि वही एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होंने आत्म-साक्षात्कार कराके उसकी सोई हुई शक्ति जगा दी है और वही बता सकते हैं कि वह कब क्या करे और कैसे करे।

अगला दिन तो नया सवेरा था उसके लिए। एकदम बदला हुआ पाया उसने अपने आपको। वह गम्भीर था, उसकी गर्दन गर्व की भावना से अकड़कर हल्की टेढ़ी हो गई थी और होंठों पर एक स्थायी मुस्कुराहट, जैसे कह रही हो देखिए, मैं नीलेश की मुस्कुराहट हूँ, जिसकी योग्यता को इसी अनिरुद्ध दास जैसे बड़े नेता भी स्वीकार करते हैं, जो स्वतन्त्र देश की महान जिम्मेदारियाँ सँभालनेवाले हैं। आश्चर्य तो यह है कि दूसरे बन्दी भी उसे अप्रत्याशित आदर देने लगे। उनमें से कई, जो बुजुर्ग और अधेड़ भी थे, उसे देखते ही झट पहले ही हाथ जोड़ देते। वे सरल विश्वास से कहते, 'आइए साहब, यह हमारा सौभाग्य है कि आप जैसे योग्य नौजवान इस जेल में हमारे बीच हैं।' इसके पूर्व वह स्वयं पहले नमस्कार करके उनसे कुछ देर तक बात करता था, किन्तु अब एक-दो संक्षिप्त वाक्य जैसे 'ठीक हैं न आप?' कहकर वहाँ से टल जाता।

लेकिन वह सुबह से ही व्याकुल था कि किस तरह अनिरुद्ध दास के पास जल्दी-से-जल्दी पहुँचकर उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करे, क्योंकि उसका भी तो कुछ कर्तव्य होता है-ऐसा न हो कि उसकी भावना न जानकर वह उसे घमंडी, स्वार्थी और बेवकूफ समझें और उसे अपने से दूर कर दें। फिर भी शीघ्र ही साहस नहीं हुआ था उसका। पहले तो समझ में ही नहीं आया कि क्या कहेगा उनसे, फिर कल्पना में कुछ उपयुक्त वाक्यों का मजमून तैयार करने लगा। उनके पास जाने की हिम्मत हुई करीब

तीन बजे, जब वह बैठे इन्तजार कर रहे थे कि कब जेल अधिकारी उन्हें शहर से आए परिवारजनों से मिलाने ले जाएँ।

नीलेश जो कुछ सोचकर आया था, उसका तारतम्य उनके सामने पहुँचने पर पता नहीं कैसे गड़बड़ा गया और जल्दी में याद करने की असफलता से घबराकर उसने आगे बढ़कर उनके पैर ही छू लिए। उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया, बल्कि गम्भीर होकर दूसरी तरफ देखने लगे। फिर सिर हिलाकर बैठने का इशारा किया और नीचे रखी एक अटैची में से अंग्रेजी पत्रिका 'मॉडर्न रिव्यू' की एक प्रति निकालकर उसकी तरफ बढ़ाते हुए कहा, "पढ़िए... आगे जरूरत पड़ेगी अंग्रेजी की।"

नीलेश ने पत्रिका ले ली। वह मन-ही-मन शर्माया हुआ था। इसी समय जेल का छोटा अधिकारी उन्हें मिलाने के लिए ले जाने हेतु आ गया। अनिरुद्ध दास ने उठते हुए कहा, "आप भी चलें... आप भी तो घर के ही हैं..."

जेल की व्यवस्था में काफी ढिलाई और लापरवाही आ गई थी। कई लोग पहले ही छूट चुके थे और शेष रिहा होने की प्रतीक्षा में थे और हवा का रुख पहचानकर जेल कर्मचारी, यहाँ तक कि

जेलर भी अदना-से-अदना राजनीतिक बंदी के प्रति लेहाज और सम्मान का व्यवहार करने की कोशिश करते। अनिरुद्ध दास तो पुराने मन्त्रिमंडल के समय ही संघटन के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण नेता थे, अतएव यह निश्चित समझा जा रहा था कि आगे जो सरकार बनेगी, उसमें वह मन्त्री तो अवश्य ही बनेंगे, चाहे केन्द्र में या प्रान्त में। इसलिए नीलेश के साथ जाने में कोई दिक्कत नहीं आई।

अनिरुद्ध दास की पत्नी, पुत्री, पुत्र और एक सेवक। सबकी आँखों में चमक और होंठों पर मुस्कुराहट। अनिरुद्ध दास ने पहले नीलेश से अपने परिवारजनों का परिचय तिरछी चमकती आखों से देखते हुए इस तरह कराया, जैसे वे बाहर के प्रतिष्ठित मेहमान हों। 'ये हैं श्रीमती प्रमिलादास एम.ए., राष्ट्रीय बालिका विद्यालय की प्रधानाचार्या, विदुषी, सख्त किन्तु ममतामयी। ये हैं कुमारी प्रियादास, इलाहाबाद विश्वविद्यालय की बी.ए. द्वितीय वर्ष की छात्रा, मेहनती, ज़हीन, इस साल यूनिवर्सिटी में टॉप कर जाएँ तो आश्चर्य नहीं। और ये हैं छवीला लाल, ये सेवक नहीं, घर के असली मालिक तो ये ही हैं, इनकी मर्जी के बिना एक पत्ता भी नहीं खड़क सकता। और हाँ, ये हैं कुमार दास, नवीं कक्षा के विद्यार्थी तो हैं, मगर अभी से हिन्दुस्तान की ओलम्पिक हॉकी टीम में शामिल होने की जोरदार तैयारियाँ कर रहे हैं...।'

"और ये हैं, एक होनहार प्रतिभाशाली नौजवान नीलेशजी, कुशाग्र बुद्धिवाले छात्र, लेकिन देश की पुकार इन्हें जेल खींच ले आई। इनको झुकाने की क्या-क्या कोशिशें नहीं हुईं। लेकिन मजबूती से, स्वाभिमान से सीधे खड़े रहे... बलिया के ही हैं...।"

"पापाजी, जाइए, मैं आपसे नहीं बोलूँगी... मुलाकात का थोड़ा समय मिलता है, आपने तो इसी में खर्च कर दिया। बताइए न, आप कब रिलीज होंगे? बहुत-से लोग छूटकर आ गए हैं।" प्रियादास

ने नीलेश को घूरती आँखों से देखकर कहा। "राजनीति की समझ आपसे अधिक किसको है, सब बातें तो जानती ही हैं आप... जिसको आगे की पढ़ाई के लिए विलायत जाना है, उसे धैर्य नहीं खोना चाहिए। समझिए एक-दो दिन में।"

इसके पश्चात वे लोग धीमे-धीमे स्वर में निजी घरेलू रिश्तेदारों तथा पड़ोसियों की बातें करने लगे, प्रशंसा-शिकायत मिश्रित। नीलेश कुछ अलग खड़ा ऐसे प्रभावशाली लोगों के निकट आने से अभिभूत था। सबके पहनावे, भंगिमा और बोली में आधुनिकता, गरिमा और ऊँचाई। अनिरुद्ध दास ने यह तो नहीं बताया कि कौन पत्नी है और कौन पुत्री, लेकिन नीलेश सब समझकर सबके लिए सराहना से भरा था। प्रियादास तो नाम को सार्थक करती हुई मालूम हुई-ललछऊँ रंग की गोराई, मझोली-आँखें, लेकिन बार-बार देखकर खूबसूरती से पलकें झपकाती, बाल अंग्रेजी स्टाइल में कटे, कानों में छोटे मनोहर टॉप्स, नाक के शिखर पर न मालूम-सी वक्रता, रेशमी सलवार-सूट पर सयत्न लापरवाही से डाला गया दुपट्टा, सभी मिलकर उसके सौन्दर्य को आधुनिक, प्रखर और प्रभावशाली बना रहे थे।

"साथ छूटना हो तो नीलेशजी को लेते आइए... एक-दो दिन रुककर चले जाएँगे अपने घर..." विदा होते समय प्रमिला दास ने कहा।

"हाँ, पापा..." यह बात प्रियादास के मुँह से अनायास ही निकल गई, लेकिन बाद में इस उत्साह के लिए लज्जित होकर अपना लाल मुँह दूसरी तरफ फेर लिया उसने।

उसी दिन ज्ञात हो गया कि दो दिन बाद अनिरुद्ध दास, नीलेश और शेष बन्दियों को रिहा कर दिया जाएगा। रिहाई के एक दिन पहले अनिरुद्ध दास ने कहा था :

"अंग्रेज चाहें भी तो अब देश की आजादी नहीं रोक सकते। आजाद हिन्द फौज के बहादुरों की कहानियों ने देश की जनता को आजादी का ऐसा दीवाना बना दिया है, जिसकी पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती। यह युद्ध रूस और अमेरिका के बल और धन से जीता गया है। ये ही दोनों राष्ट्र अत्यन्त ताकतवर होकर उभरे हैं, ब्रिटिश साम्राज्य तो बौना हो गया है। अब अंग्रेज यह

भी समझ गया है कि हिन्दुस्तानी फौज पर भी नियन्त्रण नहीं रखा जा सकता। तो अब बताइए कि कुछ ही समय बाद हिन्दुस्तानियों पर कितनी बड़ी जिम्मेदारी आ जाएगी ?"

उन्होंने रुककर बड़ी-बड़ी स्वप्नदर्शी, चिकनी आँखों से सबको देखा, फिर और भी उत्साह से कहा, "जिस देश की आजादी के लिए हम लड़ते रहे हैं, उसी का अब निर्माण और औद्योगिक विकास करना होगा,

उसे चुस्त-दुरुस्त, कुशल प्रशासन देना होना। इसके लिए हमको जहाँ हजारों-लाखों इंजीनियर, वैज्ञानिक और डॉक्टर चाहिए, वहीं उतने ही शिक्षित, योग्य और आधुनिक प्रशासक भी चाहिए। कुछ तो आन्दोलन के तपे-तपाए, शिक्षित, तेज-तर्रार और त्यागी नौजवान मिल जाएँगे, जैसे नीलेशजी और अन्य लोग। अब तो यही लोग न असेम्बली में जाकर देश के नए कानून बनाएँगे। मन्त्री वगैरह बनकर देश को सुशासन देंगे? क्यों नीलेशजी ?"

"जी हाँ, बाबूजी, आपका मार्ग-दर्शन पाकर सबकुछ हो जाएगा...।"

अपने उत्तर से नीलेश को कुछ आघात-सा लगा, जिसका स्पष्ट कारण समझ में नहीं आया। लेकिन कुछ ही देर बाद आश्चर्य हुआ उसे कि उसने अपने पिताजी या शिक्षक से भी इस ढंग से कभी बात नहीं की थी। लेकिन शीघ्र ही यह सोचकर सन्तुष्ट और खुश हो गया कि उस जैसे प्रतिभाशाली भावी प्रशासक के मुख से ऐसे सघे, औपचारिक उत्तर में कोई अस्वाभाविकता नहीं है। इसमें खास बात भी क्या है, सिवाय शिष्टाचार और विनम्रता के जो हर सच्चे इंसान का गुण होना चाहिए, खास तरह से उसका तो अवश्य ही, जिसने गांधीजी के रास्ते पर चलते हुए स्वतन्त्रता की लड़ाई जीतने में योगदान किया हो। और यह भी सच है कि अनेक आत्मीय जनों के होते हुए भी अनिरुद्ध दास ही एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं, जो उसे अच्छी तरह समझ सके हैं, यदि वह न मिले होते तो उसका जीवन एक साधारण देशभक्त की तरह ही बीत जाता !

आत्म-मुग्ध होकर इन बातों पर सोचते हुए उसका ध्यान अनिरुद्ध दास की तरफ नहीं गया, जो अपनी बड़ी-बड़ी तिरछी आँखों से आत्म-प्रशंसा के भाव से बीच-बीच में देख लेते। कभी दाएँ हाथ की हथेली को आगे फैला देते, कभी हाथ उठाकर उँगली हिलाते हुए निर्णायक बात समझाने लगते और कभी मुँह और हाथ को सवालिया कोणों पर लाकर स्थिर कर देते। नीलेश फिर गौर से सुनने लगा। वह धारा-प्रवाह बोल रहे थे :

"अंग्रेज लाख बुरे हैं, लेकिन उनमें कुछ ऐसी खूबियाँ हैं, जो हमें सीखनी ही चाहिए। इन्हीं गुणों से वह दुनिया पर शासन करते हैं। पहली बात तो यह है कि वे बड़े देशभक्त, साहसी और अनुशासित होते हैं, उनका हर कार्य अपने देश के हित में होता है। दूसरी बात यह है कि वे कोई टुच्ची राजनीति नहीं करते, उनके बात-व्यवहार से कोई नहीं जान सकता कि इंग्लैंड में उनके आपसी मतभेद क्या हैं। इससे वे दूसरे का सम्मान अर्जित करते हैं। और देखिए, वे हमेशा साफ-सुथरी, चुस्त-दुरुस्त सही पोशाक पहनते हैं कलफ और इस्तरी के साथ। आप देशभक्त हैं, उदार हैं, सहृदय हैं, यह तो बड़ी अच्छी बात है, लेकिन अगर आपकी पोशाक साफ नहीं और मुड़ी-सिकुड़ी है, जूतों पर पॉलिश नहीं, आप हमेशा बोलते और हाथ पर हाथ मारकर ठहाके लगाते हैं, कुछ न करके सिर्फ गरीबी का राग अलापते रहते हैं, और खुराफात की बातें दिमाग में रखकर शान्ति का माला जपते रहते हैं तो जनता में कैसे इज्जत होगी आपकी ? आपके मातहत कैसे आपका हुक्म मानेंगे ? खूब मेहनत कीजिए, हमेशा बुद्धि और विवेक से काम लीजिए, कूटनीति और कौशल को समझिए, इससे गलत और षड्यन्त्रकारी लोगों पर नजर रख सकेंगे। हाँ, एक बात और..."

अनिरुद्ध दास चुप हो गए, क्योंकि वह थक भी गए थे बोलते-बोलते। लेकिन स्पष्ट है कि जल्दी ही छूटने की खबर और बाहर बदलते हुए उत्तेजनापूर्ण, जोशीले माहौल के कारण स्वयं अत्यन्त उत्साहित भी थे आजाद देश में अपनी समर्थ भूमिका के सपने देखने के साथ। उनके पास कुछ बचे देशभक्त कैदी बैठे हैं, जिनमें हर जाति, धर्म और तबके के लोग हैं, और उनकी बातों में सबके

लिए कुछ-न-कुछ है, जिनका रोमांचकारी प्रभाव उनके दिल और दिमाग पर पड़ रहा है। वह अपनी बात पूरी करते हैं :

"अपनी शिक्षा बढ़ाइए और अपनी अंग्रेजी मजबूत रखिए, ये ही दो चीजें आपको आधुनिक बनाए रखेंगी, देश की एकता भी इसी से कायम रहेगी। हिन्दुस्तानी भाषाओं में पुरानापन, बड़बोलापन, कच्चापन, पाखंड और फालतू आदर्श बहुत हैं। आपसी झगड़े भी बहुत हैं। अंग्रेजी तो सभी मान लेंगे, लेकिन हिन्दी या किसी और हिन्दुस्तानी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने पर झगड़ने लगेंगे आपस में। फिर दुनिया के उन्नत देशों के बीच इस देश को शिखर पर बैठाना है, उसके लिए अंग्रेजी जरूरी है, कायदा-कानून सब तो उसी में हैं..."

सभा-विसर्जन के समय उन्होंने नीलेश को कुछ समय के लिए रोक लिया। कुछ देर चुप रहने के बाद पूछा, "क्या सोचा आपने ?"

"जो आदेश देंगे, आप..." नीलेश का संकोच कुछ ढीला पड़ गया था।

"अपने घरवालों से नहीं पूछेंगे? हो सकता है, वे आपको आगे पढ़ाकर कलक्टर-डिप्टी कलक्टर बनाना चाहें। आजाद भारत में इन पदों पर भी तो देशभक्तों की सन्तानें ही बैठेंगी। हाँ, आपकी प्रतिभा ऊँचे कार्यों के लिए है, यही देखकर मैंने आपके बारे में कुछ और सोचा था। वह देशसेवा का कठिन और सही सच्चा मार्ग है, जिस पर मुस्तैदी से चलकर आप राष्ट्रीय आदर्शों को कानूनी रूप देकर कार्यान्वित भी करा सकेंगे। अच्छी तरह से सोच लीजिए...।"

"मैंने देश के लिए त्याग किया है, मैं सच्ची देशसेवा के ही मार्ग पर चलना चाहता हूँ...।"

अनिरुद्ध दास तिरछी दृष्टि से कुछ देर तक नीलेश को देखते रहे। लेकिन उन्हें यह सोचकर सन्तोष हुआ कि आत्म-प्रशंसा से दूर रहनेवाला, निरभिमानी, संकोची, मितभाषी, विनम्र, साहसी, सुन्दर नौजवान व्यावहारिकता की दिशा में आगे बढ़ते हुए अपने त्याग का उल्लेख कर रहा है।

"तो ठीक है," अनिरुद्ध दास ने गाल फुलाते हुए कहा, "मुझे भी आप जैसे दूरदर्शी नवयुवक के सहयोग और मदद की जरूरत है। फिलहाल मैं आपको अपने निकट रखना चाहता हूँ। बाहर जाते ही व्यस्तता

और जिम्मेदारियाँ बहुत बढ़ जाएँगी तो मुझे एक निजी सचिव चाहिए कि नहीं ? और आप जैसा योग्य व्यक्ति मुझे कहाँ मिलेगा? तो इस कार्य में मेरी मदद कर दीजिए, मैं निश्चिन्त हो जाऊँगा। साथ में अपनी पढ़ाई पूरी करते जाइए। बी.ए., एल.एल.बी तो आपको करना ही है। हाँ, इस समय तो नहीं, लेकिन आगामी चुनाव जब भी आएँ, आपको असेम्बली में चुनाव लड़कर पहुँचना है। इसके लिए आपकी शैक्षिक और राजनीतिक तैयारियाँ होती रहेंगी। देश का निर्माता प्रशासक बनने के लिए कठोर परिश्रम तो करना ही पड़ेगा। आपको ढाई सौ रुपए महीने मिलते रहेंगे, फिलहाल इतने से ही काम चलाइए। हाँ, श्रीमती प्रमिला दास कुछ और भी व्यवस्था करा देंगी, जिससे आप पोशाक वगैरह तथा और निजी जरूरतों के लिए कुछ कर सकेंगे। महीन खद्दर के पैंट-कोट, जैकेट, या चूड़ीदार पैजामा, शेरवानी जो भी पसन्द करें आप। तो ठीक है..."

"बाबूजी, यह सब मुझे नहीं चाहिए। मैं तो..."

"यह सच है कि आप जैसे आदर्श नवयुवक पर हिन्दुस्तान ही क्या दुनिया का कोई भी देश गर्व कर सकता है, ढाई सौ रुपए तो बहुत कम हैं आपके लिए। लेकिन फिलहाल इसे स्वीकार कर लें। आगे प्रमिला दास इस सम्बन्ध में विचार करती रहेंगी। आप पढ़ाई करेंगे, दिन-रात मेहनत करेंगे, देश की सेवा करेंगे तो क्या सिर्फ हवा-पानी पीकर ? एक सच्चे देशसेवक को थोड़ा-बहुत अपना खयाल भी रखना ही चाहिए। एक भावी प्रशासक को स्पष्टवादी और व्यवहार कुशल भी..."

वह कुछ क्षण चुप होकर दूसरी तरफ देखते हुए बोले, "और हाँ, कुमारी प्रियादास को कुछ गाइड कर दीजिए... खास नहीं, अंग्रेजी में पन्द्रह-बीस मिनट... अच्छा ठीक है..." पैर छूकर विदा लेने के बाद जब वह बाहर निकला तो उसके पाँव जैसे किसी मुलायम मखमल

पर पड़ रहे हों और आगे का रास्ता भी वैसा ही। एक समय ऐसा जरूर उसे लगा था कि उनकी बात में रूखाई और व्यंग्य है, लेकिन प्रियादास को गाइड करने के प्रस्ताव से उसका भ्रम-निवारण हो गया और उसकी खुशी लीट आई। यद्यपि यह इंटरमीडिएट के इम्तहान में बैठ नहीं सका था और नियमित पढ़ता होता तो आज एम.ए. में होता; तथापि बी.ए. फाइनल की छात्रा को जब गाइड |करने की बात अनिरुद्ध दास जैसे विज्ञ और विद्वान व्यक्ति कह रहे हैं तो इसका विशेष कारण अवश्य है। यह भी वह समझ गया कि अनिरुद्ध दास नहीं चाहते कि आपके मन में तो कुछ और है और आप ऐसे आदर्श और त्याग का दिखावा करें, जिसकी जरूरत नहीं और जो हवाई है। आदमी को दो तरह की बात नहीं करनी चाहिए, वह अपनी इच्छा को ठीक से समझे और संकोच छोड़कर स्पष्ट बात करे। नीलेश को यह भी लगा कि कोई भी बात उनसे छिपी नहीं रह सकती चाहे छिपाने की जितनी भी कोशिश की जाए। और वह स्वयं आदमी को, उसकी योग्यता और इच्छा को ठीक से समझकर ही उसके सम्बन्ध में अपनी राय और इच्छा का निर्धारण करके उसके लिए उपर्युक्त कार्य का सुझाव देते हैं और एक बार जब वह निश्चय कर लेते हैं तो उस पर चलना ही उचित है, क्योंकि उसके विपरीत चलना भी सरल नहीं है।

अनिरुद्ध दास के इस व्यावहारिक दृष्टिकोण से नीलेश को स्वयं अपने को भी समझने में बड़ी मदद मिली है। जैसे उसके लिए उनका स्पष्ट सन्देश हो कि हवाई आदर्श और भावुकता अनावश्यक और व्यर्थ है सार्वजनिक जीवन में; और इनसे दूर रहकर ही उसे आगे बढ़ना चाहिए। हाँ, अनिरुद्ध दास ने तो उसको एक ऐसा सपना दे दिया है, जो आगे दूर-दूर तक फैला है, जिसमें लाखों लोग पुष्पहार लेकर उसकी ओर बढ़े आ रहे हैं और वह सिर झुकाकर ग्रहण भी कर रहा है, इस अहसास के साथ कि उसका वह हकदार है !

क्या यह संयोग है, क्या इसी को भाग्य कहते हैं? इसका तो अर्थ यही हुआ कि कोई भी व्यक्ति स्वयं अपनी प्रतिभा और महानता को पहचान नहीं सकता, जब तक कि कोई प्रभावशाली एवं शक्तिशाली व्यक्ति उसे नहीं बताता और उस पर अपना वरदहस्त नहीं रखता ! और आज वह सजग और सचेत है, उसके अन्दर अद्‌भुत आत्मविश्वास उत्पन्न हो गया है और हर पल जैसे उससे कोई कह रहा है कि तुम्हारे भीतर महानता के विलक्षण गुण हैं जो तुम्हें उच्चतम शिखर पर ले जाएँगे। और वह अपने को ऊँचा उठता देख रहा है और नीचे खड़े लोग उसे आश्चर्य, सराहना एवं सम्मान के भाव से निहार रहे हैं, जिनमें उसके परिवारजन, रिश्तेदार, आत्मीय जन, मित्र तथा देश के सभी क्षेत्रों के लोग सम्मिलित हैं।

कैसी सुखद, मीठी अनुभूति है यह ? वह देर तक विविध, सुनहरी कल्पनाओं द्वारा उसका आनन्द लेता रहा। निश्चय ही एक-दो बार नम्रता भी उसके खयालों में आई थी, लेकिन उसका चेहरा अत्यन्त धूमिल, साधारण और तुच्छ लगा। एक छोटे, कस्वानुमा शहर के एक मामूली मुख्तार की उस लड़की में विशेषता ही क्या है? यदि उसका साथ न मिला होता तो शिक्षा, राष्ट्रीयता आदि की जो कुछ अच्छी बातें उसमें मिलती हैं उनका नामोनिशान न होता और हाई सकूल तक भी नहीं पढ़ पाती। हास्यास्पद बात तो यह है कि वह एक पुराने उपन्यास की पुरानी पात्र ऐसी 'धनिया' बनना चाहती है जो आधुनिक और भाग्यवादी न होकर क्रान्तिकारी हो, एक ऐसे नए पात्र 'होरी' की जीवनसंगिनी बनकर, जो परम्परावादी खयालों का न हो और देश में नया खुशहाल समाज बनाना चाहता हो। कितना नकलची और फिसड्डी विचार है! इस तरह की 'नई धनिया' और 'नए होरी' तो एक नए उपन्यास के पात्र हो सकते हैं, लेकिन वास्तविक जीवन में क्या कर सकते हैं? क्या नया समाज ऐसे हवाई पिछलग्गुए विचारों से बन सकता है ?

उसे दो दिन पहले मुलाकात के लिए आए वीरेश की बातें याद आ गईं। उसने जब यह बताया कि लड़कियों के छात्रावास में रहनेवाली नम्रता की इच्छा है कि रिहाई के बाद नीलेश पहले उसी

से मिले, तो उसे बड़ा गुस्सा आया। और आज भी वह सोच रहा है कि इस तरह की आकांक्षा कितनी फिसड्डी और स्वार्थ-भरी है। वह जेल में जब कोड़े खा रहा था और भोजन में घास-फूस, कंकड़ी मिली रोटियाँ, तो वह अपने घर में हलया-पूड़ी आदि स्वादिष्ट व्यंजनों का आनन्द उठाती हुई मोटे गद्दोंवाले

बिस्तरों पर सुख की नींद सो रही थी; लेकिन आज समय लौट आया और दुनिया पूछ रही है तो मिलने की जल्दी किसलिए ?

यही सब सोचते-सोचते मलाल-भरे अपने तर्क को विकसित करते हुए उसे जेल यातनाएँ तथा अनेक कष्ट सहनेवाले असंख्य आन्दोलनकारियों का बड़ा महत्त्वपूर्ण तर्क भी बना दिया उसने। हाँ, स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेनेवालों में जब कुछ शहीद हुए, कुछ अपंग और शेष जेलों में सड़ रहे थे, बाहर के लोग मौज कर रहे थे; फिर आज जब वे नई जिम्मेदारियाँ सँभालने के लिए आगे बढ़ना चाहते हैं तो बाहर के लोग क्यों उनके बराबर पहुँचना चाहते हैं या अपने को उन्हीं के बराबर घोषित कर रहे हैं? वीरेश से ही उसे मालूम हुआ था कि आज के बदले हुए समय में सभी सिद्ध करने में लगे हैं कि उन्होंने आन्दोलन में आगे बढ़कर भाग लिया, यह किया, वह किया। यानी सभी खून लगाकर शहीद होना चाहते हैं! आन्दोलन के समय में पूँछ दबाकर रहनेवाले लोगों को क्या वह सम्मान मिलना चाहिए, जो जेल-छूटे लोगों को मिल रहा है? क्या मजाक है !

उसने तर्क को आगे बढ़ाया। अनिरुद्ध दास का यह कहना कितना सही है कि आज खोखले, आलस्य-भरे और प्रयोजन-शून्य आदर्शों तथा अकुशलता, अशिक्षा एवं अयोग्यता द्वारा देश की सेवा नहीं हो सकती। जब कष्ट सहने का वक्त था देश की आजादी के लिए तो लोगों ने खूब कष्ट उठाए, लेकिन उनमें से सभी तो ऊँचे पदों पर नहीं जा सकते? और न जानेवाले और जानेवाले सभी तो देशभक्त हैं, सभी को तो देशसेवा करनी है, फिर प्रश्न यह है कि आज उन्हीं हथियारों से क्या देशसेवा हो सकती है, जिनसे स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ी गई? अंग्रेजों तथा उनके चापलूसों द्वारा छोड़े गए असंख्य छोटे-बड़े रिक्त पद होंगे, अनेक नए छोटे-बड़े पद सृजित भी होंगे, जिनकी आपूर्ति देशभक्त ही करेंगे, तो देशसेवा का पुराने के स्थान पर एक नया दर्शन निर्मित करने की जरूरत नहीं है ?

हाँ, सोचने की बात है कि देशभक्त जब शक्तिहीन होगा तो देश को कैसे शक्तिशाली बना सकेगा ? उसकी आजादी की रक्षा कैसे कर सकेगा ? धनहीन और भिखमंगा होकर कैसे देश को आर्थिक समृद्धि दे सकेगा? अपने लिए तो उन्हें कुछ नहीं चाहिए, लेकिन जनसेवा के लिए तो उन्हें ताकत और सुविधा चाहिए ही। यदि देश की जरूरत को समझकर भी वे अपनी जिम्मेदारियों से पीछे हटे तो पद तो रिक्त रहेंगे नहीं, उन पर स्वार्थी और महत्त्वाकांक्षी लोग जरूर बैठ जाएँगे और देश फूट और गुलामी की तरफ फिर उल्टे पैर चल देगा !

अनिरुद्ध दास के साथ नीलेश तथा कई अन्य लोगों की रिहाई हुई। नीलेश काफी सोच-समझकर अपने मार्ग का चुनाव कर चुका था। वह बहुत खुश था और मन की इस हालत में उदारतापूर्वक यह भी सोचा उसने कि निकलकर नम्रता से एक बार जरूर मिल लेगा। लेकिन कार के पास जब अनिरुद्ध दास ने यह पूछा 'कोई और कार्यक्रम है या साथ चलेंगे?' तो नीलेश अभिभूत हो गया। कितने महान हैं अनिरुद्ध दास, उन्हें छोटी-से-छोटी बात भी नहीं भूलती। उसने कृतज्ञतापूर्वक गद्गद स्वर में उत्तर दिया, "मेरा कोई कार्यक्रम नहीं है...।"

"तो ठीक है। याद है न? आज ही से काम शुरू हो जाए। जनसेवा का यह भी एक भव्य रूप है। श्रीमती प्रमिलादास सब व्यवस्था कर देंगी। मैं कुछ नहीं, वही सब सँभालती हैं। ममता और त्याग की मूर्ति हैं वे। वेतन में से तीन-चार महीने का एडवांस भी दिला देंगी और कुछ और व्यवस्था भी करा देंगी...जिससे कपड़ा-लत्ता, कागज, फाइल, पेन, घड़ी, जूते, पेपरवेट वगैरह... हाँ, देखना यह है कि इस चुनाव में अपने लोग सफल होकर आएँ... फिर अपना चुनाव, उसके लिए अभी से जोरदार

तैयारी करनी है नीलेशजी

मिलनातुर व्याकुलता से भरी नम्रता के दिन काटे नहीं कट रहे हैं। वीरेश ने कहा था कि उसका सन्देश वह अपने भाई के पास पहुँचा देगा और उनकी रिहाई की सूचना उसे भी दे देगा। और यदि सम्भव हुआ तो वह नीलेश को अपने साथ लेकर उसके पास आएगा और वे तीनों यलिया भी चलेंगे।

लेकिन दिन बीतते गए और वीरेश भी कहीं दिखाई नहीं पड़ा। उसके प्राण अब आँखों, कानों, होंठों और हथेलियों में सिमट आए थे और अपने अन्य कार्यों में वह निश्चेष्ट एवं निष्क्रिय हो गई थी। वह ठीक से सोच भी नहीं पाती थी। न ठीक से खा पाती और न चल पाती। रात आँखों में ही बीत जाती। वह दुबली हो गई, उसके होंठ सूख गए, बड़ी-बड़ी आँखें झुकी रहतीं, हरे-भरे और अनूठी आभा से दप-दप करते स्वाभिमानी चेहरे पर जैसे कोई काली छाया पड़ रही हो।

इस तरह प्रतीक्षा में ही अनेक दिन बीत गए। एक दिन वह वीरेश की कक्षा की तरफ गई तो मिल गया।

"क्या करूँ दीदी... मैं ही बीमार पड़ गया।"

"क्या रिहाई नहीं हुई?"

"रिहाई तो कभी हो गई थी, दीदी... क्या आपके पास नहीं आए ? मैंने तो पहले ही आपकी बात कह दी थी और उन्होंने वादा भी किया था। बात यह है...।"

वीरेश चुप हो गया। वह नम्रता के फक पड़े कमजोर चेहरे को परेशानी लेकिन छुपी-छुपी दृष्टि से देख रहा था।

"हाँ, क्या बात है वीरेश ?"

"दीदी, मैं कल भैया के पास गया था। उन्होंने जो पता दिया था, वह प्रान्त ही क्या, देश के एक प्रतिष्ठित नेता का मकान है सिविल लाइंस में। नाम है अनिरुद्ध दास, आपने भी शायद सुना होगा।

भैया पर बड़ी जिम्मेदारियाँ आ गई हैं, दीदी। बहुत व्यस्त रहते हैं, अनिरुद्ध दास के पी.ए. हो गए हैं। भैया की प्रतिभा और योग्यता का जवाब नहीं, वहाँ सभी बड़े प्रभावित हैं। उनकी पोशाक वगैरह एकदम बदल गई है। चूड़ीदार पैजामा और शेरवानी में देखा उन्हें। खद्दर है, लेकिन महीन और खूब प्रेस किया हुआ। चमचम जूते और बाल खूब सुन्दर कटे। एक दिन के लिए बलिया गए थे..."

"बलिया गए थे ?" नम्रता की बुझी-बुझी आँखों में चमक आ गई, जैसे आशा की कोई डोर पकड़ में आ गई हो।

"हाँ, गए थे... लेकिन बता रहे थे कि जल्दी-जल्दी में किसी से मिल नहीं पाए। शाम को पहुँचे, रात में घर पर रहे और एकदम सवेरे चल दिए। बता रहे थे कि उन पर इतनी जिम्मेदारियाँ हैं कि छोटी-छोटी बातों के लिए फुरसत ही नहीं मिलती। कह रहे थे, इस चुनाव में तो नहीं, अगले चुनाव में असेम्बली के लिए खड़े होंगे..."

"अच्छा वीरेश, मैं चलती हूँ.

नम्रता का गिरा हुआ चेहरा और डबडबाई आँखें देखकर बड़ा दुःखी हुआ वीरेश। वह काफी कठिनाई से बोला सका, "दीदी, एक मिनट रुकिए..."

नम्रता ठिठक तो गई, लेकिन चेहरा नहीं घूमा। वीरेश कुछ और पास आकर बोला, "दीदी, भैया की गलती है कि वह आपसे नहीं मिले। लेकिन, आप तो जानती ही हैं, वह अपने सिद्धान्त के बड़े पक्के हैं। जो जिम्मेदारी उठा लेते हैं, उसे अन्त तक निभाते हैं। जो वादा करते हैं, पूरा करते हैं। यह सब देश का काम समझकर मुस्तैदी से कर रहे हैं। देखिए न, जेल जाने से अम्मा की आँखें

रोते-रोते खराब हो गई हैं, लेकिन वहाँ भी ठीक से बात नहीं कर पाए। चाचाजी, चाचीजी, आपकी सबकी बड़ी इज्जत करते हैं। मेरा खयाल है, जल्दी ही मिलेंगे। इधर मुलाकात हुई तो मैं जरूर पूछूँगा कि व्यस्तता का यह मतलब तो नहीं कि माँ-बाप, परिवारजनों, आत्मीयजनों के सम्बन्धों को भुला दिया जाए..."

"क्या मिलोगे, वीरेश ? एक बार मिलकर चले जाएँ। मैं तो सुनकर बहुत खुश हूँ किं वह आगे बढ़ रहे हैं, उन्नति कर रहे हैं, उनकी कद्र हो रही है, उनके जैसे योग्य और त्यागी प्रतिष्ठित नहीं होंगे तो कौन होगा ?" नम्रता अब अपने आँसू रोक नहीं सकी, जो उसके गालों पर बहने लगे, जिन्हें आँचल से पोंछती हुई वह जल्दी-जल्दी चली गई।

वीरेश के दुःख का अन्त नहीं था नम्रता को इस मनःस्थिति में कक्षा की तरफ जाते हुए देखकर। लेकिन उसकी समझ में नहीं आया कि उसकी तकलीफ कैसे दूर करे। वीरेश अब इतना छोटा नहीं कि चीजों को समझ ही न सके और विभिन्न समस्याओं पर अपना निश्चित मत न रख सके। उसका स्पष्ट सोचना है कि यदि उनके बीच कुछ है तो यह बड़ी अच्छी बात है। बी.ए. में आने पर, कैम्पस में ही घास पर बैठकर उन दोनों ने एक दिन खूब बातें की थीं बचपन के बारे में। इतनी देर तक और इतनी अधिक बातें तो उन्होंने पहले कभी नहीं की थीं। नम्रता उससे पन्द्रह दिन ही बड़ी है, लेकिन इसी से वह उसे दीदी कहता है और नम्रता भी उसे छोटा मानकर वैसा ही व्यवहार करती है।

बी.ए. में आकर देखा नम्रता ने कि वीरेश इस बीच बड़ा ही बुद्धिमान, जिम्मेदार और विचारवान हो गया है। वह छात्र संघ का सक्रिय सदस्य है और छात्र राजनीति में आगे बढ़कर भाग लेता है। छात्र समस्याओं का अच्छा जानकार है और छात्र सभाओं का प्रभावशाली वक्ता! उसने इच्छा होते हुए भी अपने पिताजी की मंजूरी के सम्बन्ध में वीरेश को कुछ नहीं बताया था, लेकिन उसका खयाल है कि उनके सम्बन्धों की समझ वीरेश को है, इसीलिए उसके सामने अपनी भावनाओं को छिपाने की कोशिश नहीं करती और वह सोचती है, वीरेश से ही नीलेश को उसके सम्बन्ध में भी खबर मिल जाया करेगी।

वीरेश की समझ में यह नहीं आया कि पढ़ाई में सदा प्रथम डिवीजन लानेवाली, साहसी, स्वाभिमानी, चरित्रवान, गरीब स्त्रियों को पढ़ानेवाली, धर्म-जाति के अन्धविश्वासों को तोड़ने का व्रत लेनेवाली लड़की के साथ ऐसा व्यवहार करने का कारण क्या है? यह तो कोई बात नहीं हुई, जबकि उसका कहना है कि नीलेश ने ही उसको ऐसी समझ दी और आगे भी उन्हीं के निर्देशन में काम करने का निश्चय किया है उसने। उसे बड़ा गुस्सा आया।

दूसरे दिन यूनिवर्सिटी क्लास खत्म होने पर वह अनिरुद्ध दास के घर जा पहुँचा। नीलेश बाहर के अपने कमरे में ही मिल गया। काम का समय न होने पर वह चारपाई पर लेटा आराम कर रहा था। वीरेश को देखकर वह उठकर बैठ गया।

"आओ वीरेश, बैठो मुझे तो फुरसत ही नहीं मिलती कि तुमसे मिल सकूँ। सुनाओ, क्या हाल है?"

"आपको फुरसत नहीं है तो इधर ही किसको है, भैया?" एक कुर्सी पर बैठकर और नीचे मुँह करके होंठ दबाते हुए कहा वीरेश ने।

"हाँ, यह तो ठीक कहते हो, वीरेश। पढ़ने में तो तुम पहले ही से अच्छे हो, यहाँ आकर खूब पढ़ रहे हो, यह तो बहुत अच्छी बात है।"

"नम्रता दीदी कभी-कभी मिल जाती हैं। बड़ा अच्छा लगता है उनसे बात करके, घर की याद आ जाती है..."

"शायद तुमने बताया था पहले कभी…

इन्हीं हथियारों से / 523

"आपने यादा किया था मिलने का... एक बार तो जरूर मिलना चाहिए था... कितना मानती-जानती हैं सबको। कहती हैं एक बार मिल लें, फिर काम में व्यस्त रहें... आपकी तरक्की से बहुत

खुश हैं..." "हाँ, वीरेश, ठीक ही कहते हो... लेकिन कसम खाता हूँ एकदम फुरसत नहीं मिलती, कुछ समय मिलता है तो बहुत थक जाता हूँ..." नीलेश ने दूसरी ओर मुँह करके गम्भीर स्वर में कहा।

"हर काम के लिए समय और अत्यन्त जरूरी शिष्टाचार निभाने के लिए समय ही नहीं!" "वीरेश ! तुम बिना कुछ सोचे-समझे जो मुँह में आता है कह जाते हो। यह वलिया का तुम्हारा घर नहीं है।" नीलेश ने सीधा मुँह करके उसे गुस्से से देखते हुए कहा।

"जानता हूँ, किन्तु गलत नहीं कह रहा हूँ, भैया। तरक्की करके अपने को इतना ऊँचा समझ लेना, जहाँ से आत्मीय जन तुच्छ, व्यर्थ और बेगाने लगें-इस दृष्टिकोण का कौन समर्थन करेगा ? मैं यह नहीं कहता कि आप जान-बूझकर ऐसा कर रहे हैं, मगर किसी अच्छे उद्देश्य के लिए मजबूरी वश भी यदि ऐसा व्यवहार हो रहा है तो अच्छा क्यों नहीं लग रहा है? यही बताने में विशेष रूप से आया हूँ।"

"क्या ?" नीलेश लगभग चिल्ला पड़ा, "तुम शुरू से ही ईष्यालु और नासमझ हो। तुमको समझाया नहीं जा सकता कि यह स्वार्थ नहीं, देश का अत्यन्त जरूरी काम है। अगर मुझसे कुछ हो सका तो इससे तुम्हीं लोगों का भला होगा, लेकिन यह बात तुम्हें कभी समझ में नहीं आएगी। पहले भी जब मैं तुम्हें समझाता था, तो अकड़ जाते थे, लाल-लाल आँखों से घूरने लगते थे और सलाह के विपरीत अवश्य करते थे। इसी स्वभाव के कारण तुम सब जानते हुए भी एक फालतू सुझाव लेकर इसलिए आए हो कि यह मुझे अपमानित करने का अच्छा अवसर है !"

वीरेश ने कुछ जवाब नहीं दिया। दोनों भाई मुँह फुला और झुकाकर कुछ क्षण चुपचाप बैठे रहे। फिर वीरेश उठकर जाने को उद्यत हो गया। छोलेर

"चाय पीकर जाओ...।"

"मैं चाय नहीं पीता...।"

"नाराज न हो, वीरेश, इस समय सचमुच फुरसत नहीं है, जहाँ थोड़ी-सी भी फुरसत मिली, मैं सबसे मिलूँगा, बार-बार मिलूँगा और देर तक बातें करूँगा। मैं ऐसा जान-बूझकर नहीं कर रहा हूँ, वीरेश, परिस्थितियाँ ही मुझसे करा रही हैं। भगवान कसम खाता हूँ, ये सभी बड़े लोग हैं, मेरा, मेरे

परिवारजनों का, तुम सभी का भला चाहते हैं। मुझे समझो, वीरेश, तुम सभी लोगों का बड़ा फायदा होगा। फिर ये सच्चे देशभक्त हैं, यहाँ आकर मालूम होता है कि कितना प्रभाव है इन लोगों का..."

या "समाजवादी पार्टी छोड़ दी आपने?" वीरेश ने सिर झुकाकर धीमे स्वर में पूछा।

"क्या मतलब?" नीलेश ने सन्देह से घूरते हुए पूछा।

"भगवान की कसम खा रहे हैं... पहले तो ऐसा कभी नहीं करते थे..."

"तुम्हारी बुद्धि कितनी छोटी और संकीर्ण है, इस सवाल से स्पष्ट है। इसीलिए छोटी-छोटी, नगण्य बातों की ओर जाती है। इसका मतलब यह हुआ कि चूँकि मैं भगवान को मानता हूँ और समाजवादी नहीं हूँ, इसलिए मैं बहुत बुरा इनसान हूँ। यही न कहना चाहते हो? खैर, तुमको बताना मेरा फर्ज बनता है कि मेरा विचार क्या है। मैं सोचता हूँ कि आज जब आजादी मिलने जा रही है तो छोटी-छोटी पार्टियों, दलबन्दियों की प्रासंगिकता समाप्त हो गई है। महत्त्व है आज देश का, उसकी एकता का, देश की मजबूती का-इसीलिए सभी पार्टियों को आजाद सरकार के हाथ मजबूत करने चाहिए। आजादी मिलने के साथ हर व्यक्ति स्वतन्त्र, राष्ट्रवादी और देशभक्त होगा, इसलिए सभी को आजाद सरकार को अपना समर्थन देकर आजादी की मजबूती के लिए काम करना चाहिए।

जहाँ तक समाजवाद का सवाल है तो यह भी सुन लो कि मैं समाजवादी था, समाजवादी हूँ और समाजवादी रहूँगा..."

"मैं चलता हूँ..."

नीलेश अपने छोटे भाई को जाते हुए आश्चर्य से देखता रह गया। पहले नमस्कार करता था, इस बार तो किया ही नहीं। क्यों? उसे अफसोस हुआ कि उसका भाई कुछ भी सोचने, समझने, सीखने की कोशिश नहीं करता। अकड़ तो पहले से था ही, अब बदतमीज और मगरूर भी हो गया है। अगर वह नम्रता से नहीं मिलता तो इसे क्यों परेशानी है ? नम्रता तो मोहल्ले की है, अपने शहर की है, उससे तो मिलना-ही-मिलना है, इसमें कोई खास बात तो है नहीं। खुद नम्रता परेशान नहीं है, लेकिन यह नाक-भौं सिकोड़े हुए है ! इतने ऊँचे और प्रभावशाली व्यक्तित्व से जुड़ाव के कारण जलन तो नहीं हो रही है उसके छोटे भाई को ? बेवकूफ !

लेकिन इसमें वीरेश का भी खास दोष नहीं है, उसने कुछ ठंडा होकर सोचा। यदि स्वयं उसने अपनी आँखों से नहीं देखा होता तो वह भी अनिरुद्ध दास के ऐसे प्रभाव की कल्पना नहीं कर सकता था। कितने सुख, सुकून, शिक्षा, विचार, ऊर्जा., महत्त्व एवं प्रतिष्ठा की प्राप्ति हो रही है उस जैसे साधारण व्यक्ति को भी यहाँ आकर ? सवेरे से ही उनसे मिलनेवालों का ताँता लग जाता है। एक-से-एक

प्रभावशाली जननेता तथा अनेक सीनियर छात्र और नवयुवक, जिन्होंने स्वातन्त्र्य आन्दोलन में आगे बढ़कर भाग लिया तथा कष्ट सहे। एक दिन मिलनेवालों की पिछली पंक्ति में सुरंजन शास्त्री को देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। जो उसे राजनीति तथा समाजवाद की शिक्षा देनेवाले पहले व्यक्ति थे, वह उससे सम्मान से बात कर रहे हैं और पुराने परिचय की याद दिलाकर जल्दी मिलाने की सिफारिश कर रहे हैं! उसे पहले शर्म-संकोच हुआ था, लेकिन बाद में नए प्रशिक्षण और समय का स्मरण करके अपने को पुराने प्रभाव से मुक्त कर लिया उसने और साहस के साथ ऐसे संक्षिप्त वाक्यों में वादा किया, जिससे सुरंजन शास्त्री को दुबारा कहने की इच्छा नहीं हुई और स्वयं उसकी छवि एक योग्य, प्रतिभाशाली सचिव तथा भावी महत्त्वपूर्ण, उच्च राष्ट्रीय पदाधिकारी के रूप में उभर आई।

जेल में भी अनिरुद्ध दास को देखकर उनके प्रभामंडल का अन्दाजा नहीं होता था। वहाँ जितने मुखर थे, बाहर अत्यन्त गम्भीर और मितभाषी। अधिक काम इशारे से या छोटी-सी स्लिप पर ही लिखकर होता। इसका एक कारण तो यही है कि हाल में हुए सांगठनिक चुनावों में उनका दल अत्यन्त प्रभावशाली होकर निकला था और वे सभी, जो शक्ति राजनीति का ककहरा ही सीख रहे हैं, उनको सहयोग देने तथा उनका सम्पर्क और स्वीकृति प्राप्त करने के लिए बेताब होकर चले आ रहे थे। दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण है सत्ता में रहकर देशसेवा का नया जीवन दर्शन। पहले से ही उनके कुछ साथी और सहयोगी थे, कुछेकों का जेलों में चुनाव किया था उन्होंने और बाहर निकलकर तेजी से अपने प्रभाव विस्तार के लिए नए-नए शिक्षित, योग्य, अच्छे घरों के देशभक्त युवकों को चुनकर महत्त्वपूर्ण पदों पर बिठा रहे थे या बिठाने की तैयारी कर रहे थे। इस व्यवस्था के साथ कि उनको किसी प्रकार की कमी न होने पाए और उनका कोई काम रुकने न पाए।

हर तरह के लोग उनके पास आ रहे थे। हर जगह उन्हें सादर निमन्त्रित किया जा रहा था मुख्य अतिथि के रूप में। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, मुंडन, विवाह का कोई भी समारोह हो, उनके पहुँचते ही लोग खड़े हो जाते। अनिरुद्ध दास का चेहरा अत्यन्त गम्भीर रहता और वह दोनों हाथ जोड़ देते। दरअसल वह हर व्यक्ति को दे रहे थे और उससे देशभक्ति का सहयोग माँग रहे थे। वह खोखला वादा करते नहीं थे और जो कह देते उसको पूरा करने की कोशिश करते। अभी देश की सत्ता हाथ में आई नहीं थी, लेकिन उन्होंने नौकरी, आर्थिक मदद, तबादला के लिए जिसको लिख दिया या कह दिया, वह पर्याप्त होता था। जहाँ कुछ नहीं हो पाता, वह निजी तौर पर आर्थिक

मदद प्रमिला दास से दिलया देते। सबसे बड़ी बात यह है कि यह अभी से योग्य पदाधिकारी, विधायक, प्रशासक, मन्त्री की फौज खड़ी कर रहे थे, जो अंग्रेजों के छोड़ने के बाद उनकी जगह ले सकें। एक दिन नीलेश ने अपने मित्र गोबर्धन को भी देखा। हर तरह के लोग देखने का अभ्यस्त

होने तथा पर्याप्त सीख और अनुभव होने के बाद किसी के भी आगमन पर आश्चर्य करने की मनःस्थिति उसकी नहीं रह गई थी, फिर भी उसे यह कतई उम्मीद नहीं थी कि बलिया जैसे पिछड़े इलाके का एक

साधारण-सा व्यापारी खद्दर के चूड़ीदार पैजामा, शेरवानी, गांधी टोपी और चमाचम काले जूते में कार से उतरकर अनिरुद्ध दास से मिलने आएगा। इसका अर्थ यह है कि इस बीच, जब यह जेल में रहा था, गोबर्धन ने व्यापारिक दृष्टि से काफी तरक्की कर ली है और आज की तारीख में अपने नए घोले में यहाँ भी हाजिर। उसे उन दिनों की बात याद आ गई, जब उसने राजनीतिक पार्टियों को चन्दा देना बंद कर दिया था और आन्दोलनकारी जनता के भोज के लिए दरी, बर्तन आदि की भी मनाही !

"अरे नीलेश, तुम यहाँ ? मुझे तो मालूम ही नहीं था। तुम आए नहीं बहुत दिनों से, तुम्हारी भाभी हमेशा याद करती रहती हैं। ऐसी बेरुखी क्यों यार? सुरंजन शास्त्री, बैकुंठ, नफीस वगैरह के साथ खूब बैठकी होती है। चलो न इस बार मेरे साथ... एक हफ्ता मेरे साथ रहो... एक बड़ा समारोह कराऊँगा... बड़े-बड़े सभी को बुलाऊँगा, सभी राजनीतिक साथी तो रहेंगे ही। मैं सदा तुम्हारे यहाँ जाकर हाल-चाल लेता रहता हूँ। बाबूजी कुछ दुबले हो गए हैं। हाँ, मैं दासजी के लिए कुछ उपहार ले आया हूँ, भीतर भेजवा देना यार और उनसे विशेष रूप से उल्लेख कर देना...हाँ यार, तुमसे क्या छिपाना, पहले वाली बात नहीं है अब, हर जगह नाचीज की भी गिनती होती है। दासजी ने बुलवाया था... खैर, तुम्हारे लिए तो कभी मना नहीं रहा, फिर भी इस समय कोई भी जरूरत हो, सभा, समारोह, चुनाव कुछ भी... नाचीज को जरूर याद करना, ऐसा बन्दोबस्त हो जाएगा कि आनन्द आ जाएगा... हाँ, तो जरा जल्दी करा देना, एक जरूरी काम से दूसरी जगह जाना भी है..."

मटकाफी कुछ मालूम होने पर भी नीलेश अपने विशेष मित्र को अचम्भे से देख रहा था, जिसे कभी मूर्ख आदर्शवादी और मूर्ख प्रेमी कहकर कई लोग खिल्ली उड़ाते थे। कैसा बदलाव आ गया है उसमें ! धीमे स्वर में अपनी थोड़ी देर की बात में उसने अनेक इशारे कर दिए थे। दोस्त तो वह सचमुच था, लेकिन कैद के समय उसके घर जाकर हाल-चाल लेता होगा, इस पर सहज विश्वास नहीं कर सका वह। अन्य बातों में भी कितनी सच्चाई है, यह निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता, लेकिन सबकुछ मिलाकर उसने अपने को इस रूप में प्रस्तुत कर दिया था कि उसकी सर्वव्यापी अनिवार्यता, पहुँच और प्रभाव का अन्दाजा तो लग ही जाता था। इसीलिए साधारण कार्यकर्ताओं और जरूरतमन्द लोगों की तरह उसके साथ निष्पक्ष बनकर लटकाने का नाटक नहीं कर सका वह। उसके कन्धे पर हाथ रखकर बात करना इस समय उपयोगी समझकर, वैसा करते हुए उसने ऐसे शब्दों में अपना उत्तर प्रस्तुत किया, जो सच्ची दोस्ती के परिचायक तो नहीं ही कहे जा सकते।

"प्यारे दोस्त, जल्दी ही आऊँगा और तुम्हारे साथ पूरा एक महीना रहूँगा। सभी काम तो मेरे ऊपर है, आदरणीय बाबूजी और सभी मुझ पर इतना विश्वास करते हैं कि पूछो मत। मेरी एक बात भी इनकार नहीं हुई आज तक। मुझे इसी चुनाव में विधायक बनाना चाहते हैं, लेकिन मैंने मना कर दिया है कि अभी सत्ता से दूर रहकर त्याग की जिन्दगी व्यतीत करते हुए देशसेवा करना चाहता हूँ, आगे अवसर आया तो मना नहीं करूँगा। तुम्हारी तो हमेशा याद आती थी जेल में, जब मैं, तुम, नफीस, दयाशंकर देश पर जीवन बलिदान करने की कसमें खाया करते थे। वैसे निःस्वार्थ लोग अब कहाँ मिलेंगे, यार? सच कहो तो घर से निश्चिन्त होकर जेल में इसी विश्वास से रह सका कि तुम्हारे जैसे भरोसेमन्द दोस्त

सबकुछ सँभाल लेंगे। यहाँ भी, मैं जहाँ भी जाता हूँ, तुम्हारी प्रशंसा सुनता हूँ। हर जगह तुम्हारी देशभक्ति की चर्चा होती है। मैं तो हमेशा सोचता हूँ

कि कैसे तुमको लाभ हो, तुम्हारी उन्नति हो, तुम्हारा यश दिग-दिगन्त फैले। मैं तुम्हारे लिए कुछ भी उठा नहीं रखूँगा...।"

कुछ क्षणों के लिए नीलेश के मन को थोड़ा आघात अवश्य लगा कि उसने अपने दोस्त के समक्ष झूठ का एक बड़ा पुलिन्दा रख दिया है, लेकिन गोवर्धन की लम्बी, कर्णस्पर्शी मुस्कुराहट से यह स्पष्ट हो गया कि वह सबकुछ समझते हुए भी मित्र की बात से खुश है, क्योंकि उसे ठीक इन्हीं चीजों की आवश्यकता भी है।

खैर, यह तो सही ही है कि अनिरुद्ध दास उसे बहुत मानते हैं, उस पर निर्भर हैं और निर्भर रहना चाहते भी हैं। यही क्यों, प्रमिला दास, प्रियादास, कुमार दास, सेवक आदि सभी परिवारजन जैसा प्रेम और आदर देते हैं। उदाहरण के लिए, प्रियादास के व्यवहार की विशेष रूप से प्रशंसा करनी पड़ेगी। दुनिया का कौन-सा सुख प्रियादास को प्राप्त नहीं है, फिर भी वह सन्तुष्ट नहीं है। महँगी-से-महँगी डिजाइनदार साड़ी, स्कर्ट, सलवार, कुर्ता, दुपट्टा, सेंडिल, घड़ी, पेन, सुगन्ध। दिन में कई बार पोशाक बदलकर, सिर हल्के-से झटककर वह शानदार तरीके से देखती है। ऐसे वक्त नाक सिकुड़ जाती है खूबसूरती से। नौकर, नौकरानियों और महाराजिन के घर में उसे काम करने की जरूरत नहीं, लेकिन उसे शौक भी नहीं इसका। काम होता भी नहीं उससे और उसको अपने लिए अपमानजनक भी समझती है, यहाँ तक कि यदि नौकर या नौकरानी ने उसकी मेज पर पुस्तकें, रजिस्टर, फाइलें, पेन वगैरह सहेजकर नहीं रखी तो वह बेहद बिगड़ जाती है और अपनी तीखी आवाज से घर-आसमान एक कर देती है।

अनिरुद्ध दास अक्सर विलायत जरूर पढ़ने की बात कहकर उसका उत्साहवर्धन करते रहते हैं, लेकिन वह पढ़ाई-लिखाई में साधारण ही है। पुस्तकें पढ़ने का भले ही शौक न हो, लेकिन यूनिवर्सिटी पुस्तकालय तथा पब्लिक लाइब्रेरी से मोटी-मोटी पुस्तकें इशू कराकर घर में मेज पर रखना उसे बहुत पसन्द है। जब से नीलेश आया है, उसको खाली देखकर, खास तरह से भोजन के बाद जब सभी आराम करते होते हैं, वह उसके कमरे में आकर दूसरी तरफ देखती हुई, आग्रह करती है, "मुझे अंग्रेजी पढ़ा दीजिए न, प्लीज।"

पहली बार नीलेश ने सिर नीचे करके कहा था, "मैं तो इंटर भी पास नहीं, आप बी.ए. फाइनल में हैं, मैं आपकी पुस्तक कैसे पढ़ा सकता हूँ।"

"मुझसे बहाना न कीजिए... बहुत योग्य हैं आप... मैं सब जानती हूँ... चलिए प्लीज..." लेकिन अंग्रेजी उसकी बहुत अच्छी थी और पढ़ाई में वह बड़ा तेज विद्यार्थी रहा था। आन्दोलन के दिनों और जेल में

भी जब उसे पुस्तकें उपलब्ध हो जातीं और समय होता तो वह पढ़ने में जुट जाता। हिन्दी और अंग्रेजी साहित्य तथा राजनीतिशास्त्र उसके प्रिय विषय थे। इन्हीं कारणों से वह तैयार भी हो गया। हाँ, अनिरुद्ध दास की भी यही मंशा थी, इससे वह कड़ाई से मना भी नहीं कर सकता था।

वह उसे लेकर ऊपरी खुली छत के एकान्त कोने में चली जाती, जहाँ एक तख्त पर दरी बिछी हुई थी। जब वह मेहनत से पढ़ाने लगता तो वह उसको एकटक देखती रहती। कभी शरारत से नाक के साथ मुस्कान भी टेढ़ी हो जाती और कभी आँखें अपने प्रफुल्लित सम्पूर्ण स्वच्छ फैलाव में उसके चेहरे को घेर लेतीं जैसे यह उसकी थाह पाने की कोशिश कर रही हो। नीलेश खीजकर किताब बन्द करके उठ जाता है।

"छोड़िए पढ़ाने की तबीयत नहीं है आपकी तो आज माकेटिंग करा दीजिए प्लीज।" "देखिए, प्रियाजी, आपका दिमाग बहुत तेज है, मेहनत कीजिए नहीं तो मेरा पढ़ाना बेकार हो जाएगा...।" नीलेश कहता उसी तरह जैसे कोई अभिभावक अपने मनबिगड़े लड़के को समझाता

"ठीक है, कल मेहनत से पढ़ूँगी, आज मार्केट ले चलिए प्लीज।"

इस तरह कई बार वह उसको मार्केटिंग कराने और कम्पनी गार्डन घुमाने ले जा चुका है। इस कार्य में भी उसे पहले बड़ा संकोच हुआ, लेकिन अनिरुद्ध दास तथा प्रमिला दास के मौन या सांकेतिक प्रोत्साहन के बाद मना या बहाना करने की हिम्मत नहीं हुई उसकी। धीरे-धीरे प्रिया की जो शरारत अच्छी नहीं लगती थी, यह भटक खुल जाने से रुचिकर लगने लगी। वह भी अब मुस्कुराने लगता। पहले वह कर्तव्यनिष्ठा की बात सोचकर रास्ते में इतिहास या किसी हिन्दी कवि अथवा स्वतन्त्रता से सम्बन्धित राजनीतिक महत्ता की कोई बात समझाना शुरू कर देता था। इस पर प्रियादास मुँह फुला लेती। एक दिन उसने कहा था :

"नीलेश, आप तो बहुत बोर करते हैं। यह गरीबी, आजादी, समाजवाद, जनतन्त्र की बातें सुनते-सुनते कान पक गए हैं। घर में, बाहर जहाँ देखो वहीं फालतू बातें। ऐसी बातें करेंगे तो हमारा झगड़ा हो जाएगा। मुझे सैर-सपाटा, जी भर की हँसी-खुशी, होटलिंग, मार्केटिंग, फिल्मी किस्से पसन्द हैं। ऐसी बातें सुनाना चाहते हों तो सुनाइए, नहीं तो मुझसे सुनिए। मुझसे भी नहीं सुनना चाहते तो चुप रहिए।"

"तुम्हीं सुनाओ...।"

इसके बाद तो नीलेश एक धैर्यवान श्रोता बनकर साथ-साथ चलने लगता। पर्यटन, पिकनिक, होटल-पार्टियों और फिल्मी कहानियों से सम्बन्धित अनुभवों की कमी नहीं थी प्रियादास के पास, जिनके मामले में तो नीलेश को निर्धन ही कहा जाएगा। प्रियादास एक असाधारण श्रोता को असाधारण

विस्तार से सुनाने लगती। कुछ बातें तो दिलचस्प थीं और अनेक अनर्गल और आत्म-प्रशंसा से बेहद असन्तुलित। लेकिन नीलेश सदा मुस्कुराता रहता। कभी-कभी 'वाह' या 'मजा आ गया' कहकर उत्साहवर्धन भी कर देता। सचमुच ऐसा प्रशंसक श्रोता उसे पहले कभी नहीं मिला था और एक दिन तो इतनी प्रसन्न हुई कि अजीब विह्वलता से उसके हाथ को अपनी मुट्ठियों में पकड़कर बोली, "कितने अच्छे हो, नीलेश, तुम !"

'आप' से 'तुम' पर आकर जल्दी ही वह नीलेश के काफी निकट आ गई। नीलेश तो जैसे पहले ही दिन से उसके लिए तैयार बैठा हो, जैसे जो कुछ हो रहा था, वह उसके आशानुकूल और इच्छानुसार। जब इतना समझ चुका है और सँभाल रहा है तो इस स्थिति में विस्तार और विकास के लिए क्या चीज जरूरी है, जिसके बिना सबकुछ खत्म हो सकता है-इतना तो वह पहले से ही जानता है। प्रिया तो अनिरुद्ध दास और प्रमिलादास को प्राणों से प्रिय थी और उसकी निकटता और खुशी के लिए क्या नहीं कर सकते थे वे।

पहले जिस चीज से हिचक और घबराहट होती थी, वही अनायास होने लगी तो वह दूने उत्साह से उस मंजिल की तरफ बढ़ने लगा, जिसको दो शब्दों 'सफलता' और 'महानता' से ही परिभाषित किया जा सकता है। अब वह स्वयं पढ़ाई, सैर-सपाटा और मार्केटिंग का नाटक करने लगा, जिसके बाद प्रियादास की भूमिका बदल गई। अब वह प्रतीक्षा करती और दूसरे को सक्रिय, सकारात्मक भूमिका का पूरा अवसर देती। वह स्वयं दिलचस्प किस्से सुनाने लगा था अविश्वसनीय अतिरंजना के साथ। कुछ तो पढ़े हुए उपन्यासों और कहानियों के विवरण थे, जिनमें नायक, नायिका और खलनायक भी थे। राजनीतिक किस्सों से भी उसे परहेज नहीं था, लेकिन प्रियादास की अभिरुचियों का ध्यान रखकर ऐसे ही किस्सों का चुनाव किया गया, जिनमें राजनीतिक नायक और नायिकाओं के स्कैंडलों की प्रमुखता थी और जो उसने आन्दोलन के दिनों या जेल में सुने थे। सभी कथाओं पर खूब चमकीली पन्नी चढ़ा दी जाती, जो प्रियादास को उसके प्रिय ख्वाबों में उड़ा ले जाती! कभी वह विदूषकत्व पर भी उतर आता, जिसमें नई कोशिश के कारण अनाड़ीपन भी था, लेकिन उतने से ही प्रियादास खिलखिलाकर हँसकर दोहरी हो जाती और उसको हाथ से हल्का प्रहार करके देह

पर गिर जाती। इसी के साथ यह इस फिराक में भी रहता कि उसके मुँह से कुछ ऐसा न निकले या हो जाए, जो अनिरुद्ध दास को नापसन्द हो। सिर्फ इसी कारण से वह पग-पग पर खरी और सच्ची बातों से डरने लगा और यदि किसी मौके पर इसकी जरूरत भी पड़ जाती और पड़ती ही रहती, तो उसमें इतनी चीनी झोंक देता कि मूल बात का पता ही न लगता। एक रात उसे नींद नहीं आई। कोई खास बात तो नहीं थी, सिर्फ यह खयाल कि अनिरुद्ध

दास उससे नाराज हैं। हुआ यह कि जब वह सवेरे नी बजे भीतर से आकर बड़े हॉल में बैठे, जहाँ दरबार लगता था, नीलेश ने पूछ लिया, 'बाबूजी, कल वाली फाइल लाऊँ, अधूरी रह गई थी।' इसका उत्तर

अनिरुद्ध दास ने दिया ही नहीं और न ही उसकी तरफ देखा ही जिससे उनकी चमकती आँखों से ही उनकी सहमति असहमति का पता लग सकता। यही नहीं, यह सिर झुकाए ही उठकर फिर भीतर चले गए। ऐसा तो कभी नहीं हुआ। बोलते तो वंह कम ही थे, लेकिन उनके संकेतों में स्पष्ट अर्थ होते थे। उससे वंचित क्यों किया गया आज उसे ? निश्चय ही, जरूर उससे कोई गलती हो गई है। वह देर रात तक अपने व्यवहार की छोटी-छोटी बातें याद करके उनमें से किसी के सम्भाव्य अनौचित्य का अन्वेषण करने लगा, और कुछ भी समझ में न आने पर बेहद घबरा गया। यह सोचकर कि यदि अनिरुद्ध दास ने उससे सम्बन्ध विच्छेद करने का निश्चय कर लिया तो उसका क्या होगा ? तब वह अचानक महानता के उस शिखर से लुढ़ककर धराशायी हो गया, जो अनिरुद्ध दास ने उसके लिए तैयार किया था। वह इतनी बड़ी दुनिया में अपने को बौना, अकेला, बेसहारा और भिखमंगे के रूप में देख रहा था, जिसके पास कुछ नहीं है, न अर्थ और न गुण। उसने स्वातन्त्र्य आन्दोलन के जमाने में अपनाए गए अहिंसा, असहयोग, स्वावलम्बन, सत्याग्रह आदि सिद्धान्तों को याद किया, लेकिन इन कुछ ही दिनों में वे उसी के अन्दर नष्ट हो चुके थे या बेहद कमजोर हो गए थे। वह अब स्वतन्त्र होकर स्वाभिमान के साथ सच्चाई के लिए संघर्ष करने की कल्पना ही नहीं कर सकता था कोशिश करने पर भी।

रात के अँधेरे में इस बढ़ती हुई निराशा की हालत में उसे प्रियादास की याद आई। उसे एक क्षीण रोशनी का आभास हुआ और इसी से उसके हृदय पर का दबाव कुछ कम हुआ। प्रिया तो उससे खुश है ही और वह उसे और भी खुश कर सकता है! अचानक उसे लगा कि वह प्रियादास को बेहद प्यार करता है। यह सोचते ही उसकी आँखों में आँसू आ गए। और कुछ मिनटों में वह प्रियादास के वियोग की पीड़ा भी महसूस करने लगा, किसी गर्भवती की झूठी प्रसव-वेदना की तरह, जो सच्ची लगती है। और वह सत्य तथा झूठ की एकता से राहत की ऐसी अनोखी मंजिल पर पहुँच गया, जहाँ सत्य सदा झूठ और झूठ सदा सत्य लगता है।

दूसरे दिन सवेरे आठ बजे प्रियादास से मुलाकात हो गई, जिसकी बेचैनी से प्रतीक्षा भी कर रहा था वह। वह नहाने के बाद चमाचम प्रेस किए हुए सफेद पैंट-कमीज पहन और बाल झाड़कर तैयार हो गया था। प्रिया उसके कमरे में पहुँचकर खड़ी हो गई और मुग्धचकित भाव से उसे एकटक देखने लगी। उसने इस पर ध्यान न देकर प्रिया को खुश करने की गरज से कहा: "प्रिया, मालूम होता है तुम मुझसे बहुत नाराज हो..."

"कैसे नीलेश ?" प्रिया यह सोचकर खुश हुई कि नीलेश उसकी नाराजगी की चिन्ता करता है।

"हाँ प्रिया, पता नहीं क्यों मुझे लगा कि तुम नाराज हो। यही सोचकर रात-भर मुझे नींद नहीं आई। मैं तो अक्सर तुम्हारे बारे में सोचता हूँ प्रिया। तुम्हारी जैसी लड़की मैंने आज तक देखी नहीं। तुम, बाबूजी, माताजी, इनमें से कोई भी नाराज हो जाएँ तो मैं चला जाऊँगा यहाँ से, एक मिनट के लिए भी अपना मुँह दिखाना पसन्द नहीं करूँगा। बड़ी ही इज्जत करता हूँ तुम लोगों की। प्रिया, बाबूजी के सामने अपनी भावनाएँ प्रकट तो नहीं कर पाता, यदि किसी गलती से वह मुझसे रुष्ट

हो जाएँ तो तुम तो जानती ही हो कि मेरे दिल में क्या है। तुम तो बाबूजी को समझा सकती हो !"
"कैसी बात करते हो, नीलेश। तुमसे नाराज होने का सवाल ही नहीं उठता। तुमसे तो सभी

बहुत खुश हैं। तुम कोई हमसे अलग थोड़े ही हो, नीलेश। अभी-अभी बाबूजी तुम्हारी बड़ी तारीफ कर रहे थे। तुम्हारे काम की, बोली की, शराफत की, तुम्हारी मुस्तैदी की। तुम्हारे खिलाफ काई बात करे तो मैं लड़ जाऊँगी। लेकिन ऐसा न कभी हुआ है और न होगा। कल बाबूजी के सिर में दर्द था, लेकिन आज एकदम ठीक हैं। तुम ऐसी बात न किया करो, प्लीज। थोड़ा हँसो..."

"अच्छा छोड़ो इन बातों को। आज शाम को सैर-सपाटे की मेरी तबीयत हो रही है। क्या तुम आज कम्पनी गार्डन तक मेरा साथ दोगी? न तबीयत हो तो कोई बात नहीं।"

"वाह नीलेश, तबीयत खुश हो गई... तुमने तो मेरे मुँह की बात छीन ली..."

शाम को अन्ततः वह घड़ी आ गई, जिसको चाहे संयोग कहें या दुर्योग, लेकिन जिसकी न इच्छा होती है और नहीं कल्पना। प्रिया हल्के-पीले मक्खनी रंग के सलवार सूट तथा उड़ते दुपट्टे में बहुत खुश थी और नीलेश उसे कुछ नए पढ़े चुटकुले सुनाकर खूब हँसा रहा था। इस खुशी के लिए, जो नीलेश दे रहा था, उसे बड़ा प्यार आ गया और एक उपयुक्त एकान्त अवसर पर वह उसकी गर्दन में दोनों बाँहें डालकर झूलती हुई बोली:

"कितने अच्छे हो, नीलेश तुम ?"

इसी समय बहुत ही अनिच्छा से नम्रता अपनी सहेलियों के साथ पार्क में आई थी। उसे वीरेश ने फिर बताया था कि नीलेश बहुत व्यस्त है और मौका मिलते ही जरूर मिलेगा उससे। नीलेश पर उसे अगाध विश्वास था, लेकिन उसका वियोग सहा नहीं जा रहा था, जबकि वे दोनों एक ही शहर में कुछ ही दूरी पर रहते हैं। वह प्यार, जो जीवन-मरण का प्रश्न बना हो और जिसकी व्याकुलता में उसके सिवाय कुछ भी अच्छा नहीं लगता, एक सहपाठिनी के जन्मदिन पर कम्पनी गार्डन में सैर-सपाटे के बाद यूनिवर्सिटी रोड पर कुछ खाने-पीने के कार्यक्रम का उत्साह भी छीन लेता है; लेकिन आश्चर्य की बात यह भी है कि कहीं भी जाने पर हताश मन में न मालूम कहाँ से यह उम्मीद उग आती है कि वहाँ नीलेश से जरूर मुलाकात हो जाएगी। वैसे नीलेश ने उसे पहले ही देख लिया था, और उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं, क्योंकि उसने तो सोचा भी नहीं था कि ऐसा हो भी सकता है ! उसने घबराहट की जल्दीबाजी में दूसरी तरफ देखते हुए कहा :

"प्रिया, मुझे एक जरूरी काम याद आ गया, फौरन लौट चलो..."

"नहीं नीलेश, थोड़ा और घूमेंगे...।"

"प्रिया, तुम कुछ समझती नहीं, बाबूजी परेशान होंगे..."

"चलती हूँ नीलेश... बस थोड़ी देर और... बाबूजी से मैं कह दूँगी..."

नीलेश की अजीब स्थिति हो गई। वह प्रिया को जबरदस्ती घसीटकर ले नहीं जा सकता था। नाराज होकर चिल्ला नहीं सकता और न छोड़कर भाग ही सकता। इसी हुज्जत में विलम्ब हो गया इतना कि नम्रता अपने दल के साथ एकदम निकट आ गई और दृष्टि पड़ते ही खुशी की उत्तेजना में उसके मुँह से आवाज निकल गई, "अरे नीलेश !"

सभी चौंक उठे, यहाँ तक कि प्रियादास भी। भीतर से डरे लेकिन ऊपर खिसियाए नीलेश का विपरीत दिशा में घूमा चेहरा तमतमाकर फूल गया।

नम्रता तेजी से उसकी तरफ बढ़ी। अब लाख चाहने पर भी वह अपना चेहरा छिपा नहीं सका। सबसे अधिक डर उसे इस बात का था कि नम्रता कोई ऐसी बात न कह दे जिससे पुराने सम्बन्धों पर रोशनी पड़ने से प्रियादास और अनिरुद्ध दास नाराज हो जाएँ। नम्रता पर उसे बड़ा गुस्सा आया, जिसने उसका बना-बनाया खेल बिगाड़ दिया था; और सभी कुछ भूलकर, अपने स्वभाव और दिए गए आश्वासनों के ठीक उल्टा, अपने घुन्ने लाल और बेहद गम्भीर चेहरे को नम्रता के सामने करते

हुए बोला :

"सभी को मैं बता चुका हूँ कि देश की आजादी से सम्बन्धित कुछ अत्यन्त जरूरी कार्यों में व्यस्त होने से किसी से मिल नहीं पा रहा हूँ, फिर भी यह बात किसी की खोपड़ी में आ नहीं रही

है। वीरेश ने क्या नहीं बताया ? जब मेरे भाई का यह हाल है तो दूसरे के लिए क्या कहूँ !" "मुझे घर ले चलो, नीलेश... ये तो यूनिवर्सिटी में जूनियर..." प्रिया ने नजदीक आकर नखरीली-सी आवाज में बोलते हुए, अप्रिय तिरछी दृष्टि से नम्रता को देखा।

"ये हमारे घर के सामने रहती हैं..." न चाहते हुए भी नीलेश के मुँह से आवाज निकली। और अन्त में, जैसे आकाश को सुना रहा हो, ऊपर देखता हुआ बोला, "काम खत्म होने के बाद मुलाकात होगी...।"

इसके पश्चात वह घूमकर 'चलो' कहकर प्रियादास के साथ चलता बना। नम्रता का चेहरा छोटा होकर काला पड़ गया। आकाश और पृथ्वी तो अपनी जगह पर स्थिर और अखंड थे, लेकिन नम्रता को ठीक उल्टा आभास हुआ। पूछने पर भी कुछ न बताते हुए वह सहेलियों के कार्यक्रम के बाद छात्रावास जाकर अपने कमरे में बंद हो गई। उस पर इतना भारी आघात किया गया था कि चोट सहसा महसूस नहीं हुई। न रो सकी और न यही सोच सकी कि उसके प्यार, उसके विचार और विश्वास को इस तरह

कुचल दिया गया है कि उसके जीवन की गरिमा, प्रतिष्ठा, आधार सबकुछ नष्ट हो गया है और उसे इस जीवन का अन्त कर लेना चाहिए। हर अहसास और संवेदना से दूर वह पत्थर बन गई।

आप दो दिन बाद यह यूनिवर्सिटी गई एकदम सुन्न, यह सोचने-समझने और आकलन करने में असमर्थ कि उसके पास क्या है और उसने क्या खो दिया है। तीसरे दिन जब फीस देने गई तो सिनेट हॉल में उसका वीरेश से सामना हो गया। वह देखकर भी न पहचानती हुई जब आगे निकल गई तो वीरेश चौंक पड़ा। वह ठिठककर उसे जाते हुए देखता रहा। पहले खयाल आया कि कोई व्यस्तता होगी, फिर सबकुछ बड़ा अस्वाभाविक सा लगा, क्योंकि इतनी स्वाभिमानी थी नम्रता कि अकारण किसी की उपेक्षा तो कर ही नहीं सकती। उसने तो कोई ऐसा व्यवहार नहीं किया, जो नाराजी का कारण बने ? इतना सब सोचकर वह तेजी से पीछे चल पड़ा, जब वह जीने से उतरकर बरगद वृक्ष की तरफ बढ़ रही थी।

"दीदी..." उसने पास पहुँचकर कहा।

वह ठिठक गई। लेकिन सिर घुमाकर देखा नहीं उसकी तरफ। वह आगे बढ़कर उसके सामने
आकर बोला :

क्या बात है दीदी... आप ऐसी क्यों हो रही हैं?" नम्रता ने सिर्फ खाली खाली आँखों से देखा उसे। 1

क्या भैया मिले थे ?"

वह उसी तरह देखती रही

कवीरेश परेशान होकर बोला, "क्या बात है, दीदी... साफ-साफ क्यों नहीं बतातीं ? नहीं मिले तो मिल जाएँगे, इसको लेकर चिन्ता न कीजिए। हाँ, अगर मिले हों और कुछ कहा हो तो बताइए.. आपके साथ कोई अन्याय मैं बरदाश्त नहीं कर सकता..."

इन बातों में जो कुछ भी हो, नम्रता की चेतना लौट आई और अचानक उसे अपनी गम्भीर चोट की दुस्सह पीड़ा महसूस होने लगी। उसके मुख पर पहले रुदन की रेखाएँ बनीं, फिर वह बिलखने लगी इन शब्दों की चीख के साथ:

"अरे वीरेश, मैं तो मर गई..." "क्या हुआ, दीदी। मैं समझ गया, यह मिले हैं और अंड-बंड बोले हैं! पता नहीं आजकल

यह बौखलाए क्यों रहते हैं। यह बरदाश्त के बाहर है। मैं अभी जाकर पूछता हूँ कि उनको क्या अधिकार है गलत व्यवहार करने का, अपमानजनक बात करने का। बड़ा अन्याय है यह तो, तीन-चार वर्ष से उनके लिए कष्ट पा रही हैं, छूटने पर रोज इन्तजार कर रही हैं, आँसू बहा रही हैं, और उन्हें हर बात के लिए तो फुरसत है, लेकिन अपने लोगों, से मिलने के लिए फुरसत नहीं है। लेकिन एक बात मैं जरूर कहूँगा-आप इस तरह धैर्य न छोड़िए। आप किसी की गुलाम नहीं हैं...मैं आज

और अभी जाकर पूछता हूँ..." "नहीं वीरेश, वह बात नहीं है, किसी दूसरी बात पर आँसू आ गए... घर के लोगों की याद आ गई। तुम कुछ न कहना..."

"साफ-साफ बताइए, घर के लोगों की याद करके इतने आँसू क्यों गिर रहे हैं ? बहुत याद आती है तो दो दिन के लिए घर चली जाइए... चलिए, मैं पहुँचा देता हूँ। आप नहीं जाना चाहतीं तो चाचाजी, चाचीजी को जाकर साथ ले आता हूँ। साफ-साफ कहिए, क्या बात है..." "बाद में बता दूँगी... इस समय तो देरी हो रही है। मैं जाती हूँ..."

किन्तु, वह कक्षा में न जाकर छात्रावास की ओर घूम गई। कुछ देर बाद अपने कमरे में लेटकर वह पूरी घटना पर सोचने लगी, तब स्पष्टता और गहराई से महसूस होने लगा कि उसके साथ क्या हो गया है। अब उसके आँसुओं का अन्त नहीं था। उसका रोना, बिलखना, सिसकना बहुत देर तक जारी रहा, यहाँ तक कि उसके आँसू सूख गए और वह इस अन्तिम फैसले पर जा पहुँची कि उसके जीने का अर्थ समाप्त हो गया है और अब एक दिन भी जिन्दा रहना नहीं चाहती।

एक दृढ़ संकल्प के साथ वह उठ बैठी, लेकिन उसी समय पिताजी और माँ की याद आई। उनके चेहरे बड़े दयनीय लगे उसे। पुराने विश्वासों को मानते हुए भी, अपनी एकलौती बेटी की खुशी के लिए जाति-पाँत का बन्धन तोड़ने का जो आश्वासन दिया था उसके पिताजी ने, वह क्रान्तिकारी विश्वासों पर चलनेवाले लोगों से बड़ा और साहसी कदम है। उसके भावी जीवन के लिए ही उन्होंने जिसको स्वीकार किया था, उसी ने जब साथ छोड़ दिया तो समर्पित जीवन पर स्वयं उसका अधिकार नहीं रहा-अब यह जीवन पिताजी का है, अम्मा का है, उनके विश्वासों का है, उनकी खुशियों का है ! और उसी समय तह एक लम्बा पत्र अपने माँ-बाप को लिखने बैठ गई।

कुछ दिन बाद ही देश में चुनाव हुए, जिनमें अनिरुद्ध दास, प्रमिला दास, नीलेश खूब व्यस्त हो गए। विशेष निजी सचिव की हैसियत से नीलेश अपने नेता के साथ कहाँ-कहाँ नहीं घूमा महानगरों, छोटे शहरों, कस्बों तथा मामूली-से-मामूली गाँवों में हर तरह के रास्तों से। वे जहाँ जाते, आम और खास, सभी भारी संख्या में हर्षोल्लास, आशा और विश्वास के साथ स्वागत करते और वे भी अहिंसा के हथियारों से आजादी हासिल करने पर लोगों को बधाई देते हुए नया, खुशहाल भारत बनाने का वादा करते।

स्वातन्त्र्य-प्रेमियों की भारी जीत के बाद केन्द्र और प्रान्तों में सरकारें बन गईं। अब स्पष्ट हो गया कि केन्द्र की अन्तरिम सरकार की सफलता के बाद शीघ्र ही जनता सरकार के हाथों वास्तविक सत्ता

अधिकार सौंपकर अंग्रेज भारत छोड़ देंगे। लेकिन सत्ता इतने निकट देखकर छीना-झपटी शुरू हो गई। अन्तरिम सरकार असफल होकर टूट गई और कई जगह विशाल पैमाने पर साम्प्रदायिक दंगे होने लगे। हत्या, लूट और अपहरण की घटनाएँ। जिन लोगों ने स्वतन्त्रता के लिए विशाल अहिंसात्मक जुलूसों का नेतृत्व किया था, वे मूक, अशक्त दर्शक मात्र बनकर रह गए। हिन्दू, मुसलमान, सिख आदि नेताओं में से कोई कुछ नहीं कर सका, सिर्फ महात्मा गांधी ही अकेले आमरण अनशन की नैतिक शक्ति के द्वारा हिंसा को रोकने की कोशिश करते रहे।

इसके बाद, दूसरे नए वाइसराय आ गए और राजनीतिक नेताओं से बातचीत के बाद, विभाजन के साथ देश को स्वतन्त्रता देने के फैसले पर समझौता हो गया।

स्वतन्त्रता की घोषणा तथा अपने राजनीतिक कद के बढ़ने की खुशी तथा विभाजन के खून-खरावे के दुःख के बीच टकराहट से नीलेश पर एक दिन भयंकर निराशा का दौरा पड़ा। शायद सभी को ऐसा अनुभव हुआ था, हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई उन सभी को, जिन्होंने आजाद हिन्दुस्तान का शानदार सपना देखा था, उसके लिए स्वातन्त्र्य आन्दोलन में शामिल हुए थे। एक ही जमीन पर और एक ही हवा-पानी में बढ़े-पले लोग क्यों ऐसी विभाजित, खतरनाक आजादी स्वीकार कर रहे हैं ? लेकिन किसी के पास इसका जवाब नहीं था। सभी जानते थे कि यह गलत हो रहा है, लोगों को बाँटने जैसा है, यह तो सदा के लिए खूनी लड़ाई लड़ने जैसा है, साम्राज्यवादियों के षड्यन्त्र और जाल में जान-बूझकर फँसने जैसा है। लेकिन कोई कुछ कर नहीं सका। शान्ति और एकता देने के लिए किसी के पास कुछ नहीं था, उन लोगों के पास भी नहीं, जिन्होंने अलगाव का समर्थन या विरोध किया। आम जनता तो कुछ समझ ही नहीं सकी।

नीलेश को एक रात की अनिद्रा के समय लगा, जैसे कोई उससे कह रहा हो, देश की इस त्रासदी के लिए तुम जिम्मेदार हो, सिर्फ तुम! वह चौंककर उठ बैठा। यह सच्चाई को खोजने लगा कि क्यों ऐसा कोई कहेगा ? और तभी उसे नम्रता की याद आई। वह व्याकुल हो उठा आत्म-धिक्कार के साथ। उसे नम्रता की एक-एक बात याद आने लगी। उसने भी अवश्य उसे प्यार किया था, जो झूठा और बनावटी भी नहीं था। वे तो बचपन के साथी भी थे। लेकिन इतने दिनों के साथ-संग के बाद भी वह नम्रता के हृदय, प्यार और प्रतिबद्धता के मूल्यों को समझ ही नहीं सका। यही मूल्य तो स्वयं उसके भी थे। नम्रता का प्यार किसी स्थूल कामना का प्रतिफल नहीं, बल्कि हार्दिक, मानसिक, वैचारिक और नैतिक एकता की इच्छा से सम्पन्न। वह उसके साथ मिलकर आम लोगों के सेवा-कार्यों द्वारा अपने प्यार का साक्षात्कार करना चाहती थी, लेकिन वह उसे समझ नहीं सका, उसकी ऊँचाई तक पहुँच न सका। उसके सच्चे, पारदर्शी, स्वाभिमानी, साहसी और स्नेही स्वभाव की गहरी संवेदना और सुरुचि से भरी एक-एक बात, उसके निश्छल एवं समर्पण के दिव्य, सघन क्षण-कैसे भूल सका वह ? क्यों ?

नहीं, वह उससे मिलेगा अवश्य और अपनी भूल को स्वीकार कर लेगा! यह सोचकर उसे खुशी हुई इस विश्वास के साथ कि नम्रता जैसी सरल, सहज, उदार और स्नेही लड़की का प्यार उसके लिए पहले जैसा होगा और पहले की तरह वह उसकी बातों से प्रभावित होकर पुनः प्रसन्न हो जाएगी।

और सचमुच दूसरे दिन सवेरे उस समय वह लड़कियों के छात्रावास के सामने खड़ा दिखाई पड़ा, जब यूनिवर्सिटी जाने का समय होता है। और उसके एक लड़की के साथ बाहर निकलने पर जल्दी-जल्दी उसके पीछे पहुँचकर बोला :

"नम्रता..."

नम्रता चौंककर घूम पड़ी, क्योंकि जब उम्मीद नहीं थी, उस समय एक जानी-पहचानी आवाज अविश्वसनीय और आश्चर्य में डालनेवाली थी।

"जरा एक मिनट...।"

नम्रता धीरे-धीरे उसके पास गई।

"मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ। पूरी स्थिति पर प्रकाश डालकर तुम्हें समझाना चाहता हूँ। इस समय तो तुम पढ़ने जा रही हो, तुमसे बहुत-सी बातें करनी हैं, अगर तुम्हें फुरसत हो तो मैं चार बजे आकर तुम्हें कम्पनी गार्डन ले जाऊँगा, वहाँ इत्मीनान से बैठकर बातें करेंगे..."

नम्रता भावहीन आँखों से उसे देख रही थी। उसने मुस्कुराकर कहा, "मैं स्वयं पहुँच जाऊँगी ठीक साढ़े चार बजे।"

इस उत्तर से नीलेश बहुत खुश होकर जल्दी-जल्दी अपने गन्तव्य की ओर बढ़ गया। अपनी एक सहेली के साथ ठीक समय पर नम्रता पहुँच गई थी। इन्हीं कुछ दिनों में अनेक

बदलाव आ गए थे नम्रता में। एक तो उसने खद्दर का परित्याग कर दिया था। बदले में रेशम की महँगी, आकर्षक डिजाइनदार साड़ी, ब्जाउज, कानों में खूबसूरत टॉप्स, नाक में नगवाली कील और हाथों में दो-दो सोने की चूड़ियों के बीच रंगीन दिलकश काँच की चूड़ियाँ। वह सहेली को एक जगह खड़ी करके नीलेश की ओर बढ़ गई।

"उधर चलते हैं, एकान्त में कुछ देर तक बात करेंगे..."

नम्रता कुछ नहीं बोली, बल्कि उसके पीछे-पीछे चल पड़ी। एक सुन्दर कटी झाड़ी के बीच एक बेंच थी। नम्रता को बैठने के लिए कहकर, वह स्वयं उसके पास उसकी तरफ मुँह करके बैठ गया। यह उसे एकटक देख रहा था, क्योंकि नए परिधान और नई सज्जा में, नम्रता अत्यन्त आकर्षक लग रही थी। पूरा विश्वास था उसे कि यदि नम्रता के हृदय में उसके लिए प्यार न होता तो यह इस गार्डन में कभी न आती और विशेष रूप विन्यास उसी के लिए है। उसने खुशी से गद्गद होकर और आगे झुककर 'नम्रता' के सम्बोधन के साथ उसका चेहरा पकड़कर अपनी तरफ खींचने के लिए दोनों हाथ बढ़ाए, परन्तु नम्रता अपने चेहरे को पीछे करती हुई बोली :

"कुछ मेरे लिए तो जगह छोड़ेंगे...।"

नीलेश कुछ भी न समझते हुए भी हतप्रभ हो गया। और लड़खड़ाती-सी आवाज में पूछा उसने, क्या कहती हो, नम्रता ?"

" पर "स्त्री तो धरती के समान है, हमेशा देने के लिए तैयार है, इसलिए निजी सुख और महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए पुरुष उस पर सम्पूर्ण अधिकार चाहता है। उसे अपना अहंकार प्यारा है, इसलिए उसे दूसरे का खयाल नहीं रहता। उसे अपना सुख चाहिए, तब यह नहीं देखता कि कहाँ क्या टूटा, क्या विभाजित हुआ। मेरे पास कुछ भी नहीं बचा है अब। मैंने तुम्हें सबकुछ दे दिया था, तुमने उसके दो टुकड़े कर दिए। मैं जैसी हूँ, वैसी ही रहने दो, मेरे और टुकड़े करने की कोशिश न करो। मैं अपने लिए जगह तलाशेंगी, टुकड़ों को जोड़ने की कोशिश करूँगी कैसे, मैं स्वयं नहीं जानती। मैं शायद अपने को जोड़ नहीं पाऊँ, लेकिन सदा ऐसा नहीं होगा। आगे जरूर कोई स्त्री होगी जो अपने को विभाजित नहीं होने देगी। तुम कभी मेरे पास न आना, न कभी बुलाना, न कुछ लिखना और न ही कोई सन्देश भेजना इसलिए कि तुम स्वयं विभाजित हो, तुम्हारे दो टुकड़े पहले ही हो

चुके हैं।" गई। इतना कहकर वह उठ खड़ी हुई और उसकी ओर बिना देखे धीरे-धीरे झाड़ी के बाहर निकल

उपसंहार

15

आकाश में बादल तो हैं, लेकिन हवा भी चल रही है, इसलिए सबकुछ बड़ा सुहावना है प्रथम स्वतन्त्रता दिवस के अवसर पर। बलिया के लोग अत्यन्त उत्साहित और खुश हैं। चौक तथा सभी

सरकारी एवं सार्वजनिक भवनों पर तिरंगा शान से लहरा रहा है। इस महान अवसर पर सायंकाल जनसभा होगी और रात में सर्वत्र रोशनी।

अगस्त महीने में ही 'भारत छोड़ो आन्दोलन' आरम्भ हुआ था और आज पाँच वर्ष बाद पन्द्रह अगस्त को देश स्वतन्त्र हो गया है। इसके पूर्व कुछ ऐसी घटनाएँ हो गई हैं, जिनका उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं। एक तो यही कि नम्रता का विवाह जून मास के अन्त में एक नामी जमींदार के परिवार में हो गया और वह डोली में बैठकर रोती हुई विदा हो गई। दामोदर ने भी मई मास में कुछ दिनों के अन्तर से अपनी दोनों बड़ी बेटियों की शादी करने में सफलता प्राप्त कर ली है। एक खुशी की बात यह भी है कि भगजोगिनी को कन्या विद्यालय में दाई की नौकरी मिल गई है और उसकी लड़की मुन्नी पाँचवीं में पढ़ रही है और छोटा लड़का गनर्वमेंट हाई स्कूल की तीसरी कक्षा में दाखिल हो गया है।

शाम की जनसभा चौक में हुई, जहाँ भीड़ ऐसी उमड़ी कि कोई जगह नहीं बची। पार्क, सड़कें तथा छतें भरी हुई। किस मोहल्ले से लोग नहीं आए हैं! बमपुलिस मोहल्ला, जापलिनगंज, विशुनीपुर, गुदड़ी बाजार, इशरतगंज, मिड्डी, काजीपुरा, बहेरी, भृगुआश्रम आदि के आम और खास उपस्थित हैं। कमकर, मजूर, दलित, अन्य गरीब तथा भिखमंगे तक काफी संख्या में हैं। उनको भी बड़ी उम्मीद है कि हालत उनकी सुधरेगी, खूब काम मिलेगा और अच्छा पैसा भी। उनके लिए पक्के मकान बनेंगे और उनके बच्चे पढ़े-लिखेंगे और सुख तथा स्वाभिमान से रहेंगे।

सभा में जन नेता भी हैं, जैसे जिला कांग्रेस अध्यक्ष, प्रेमानन्द, सदाशयव्रत, रमाशंकर, बैकुंठ, नफीस तथा हर जाति और धर्म के स्वातन्त्र्य सेनानी और छात्र तथा युवक नेता। नीलेश की कमी तो खल रही है, लेकिन वह इलाहाबाद से ही अनिरुद्ध दास के साथ कार से दिल्ली चला गया है। लेकिन वीरेश, सुरेश, अम्बिका, शम्भु, पिलपिली, चेंगन, हीरा सभी पहुँचे हैं, जिनमें कई तो बाहर पढ़ाई कर रहे हैं, लेकिन इस समारोह में शामिल होने के लिए विशेष रूप से यहाँ पहुँचे हैं। महिलाएँ भी हैं, जैसे दुलारी, धनेश्वरी, भगजोगिनी, नकलनवीसिन आदि।

सभी जन नेताओं ने अपने उद्गार प्रकट किए और बलिया के सैकड़ों शहीदों के प्रति विनम्र, आँसू-भरी श्रद्धांजलि अर्पित की। बीच-बीच में जोरदार करतल ध्वनि हो रही थी और नारे लग रहे थे। सदाशयव्रत का भाषण विशेष रूप से सराहा गया। उन्होंने कहा:

"हम बलिया के निवासी खुश हैं। हमें गर्व है अपने जिले के बहादुर लोगों पर। किसलिए भाई ? इसलिए कि आज जो आजादी मिली हैं, उसका एक लघु रूप हमने पाँच वर्ष पहले ही दिखा दिया था। याद रखिए, करीब दस दिन तक यह जिला आजाद रहा, हर जगह अंग्रेज सरकार समाप्त हो गई। इस समय भी अद्‌भुत एकता रही, कहीं कोई अपराध नहीं हुआ, आपस में बड़ा सहयोग रहा। कहीं कोई हिंसा नहीं हुई। हम इस सभा के लोग देश की आजाद सरकार से अनुरोध करते हैं कि

आगे भी वैसी ही एकता और वैसा ही आपसी सहयोग हो और लोग खुशहाल रहें।

"बलिया के हम लोग सिपाही हैं। हम बहुत बोलते नहीं हैं, काम करते हैं। हम जैसे अपने स्वाभिमान के लिए लड़ना-मरना जानते हैं, वैसे ही हम देश के आन-बान और शान के लिए बलिदान होना भी जानते हैं। हमको कुछ चाहिए-वाहिए नहीं, अगर हमारी याद आए आपको और इच्छा करे आपकी, तो इस क्षेत्र की बेहतरी के लिए कुछ कर-वर दीजिएगा। नहीं करेंगे तो भी हम खुश हैं। हाँ, यह जरूर कहते हैं कि जब देश पर संकट आए, देश को जरूरत पड़े तो आपका इशारा पाते ही बलिया के लोग संघर्ष करने में, कष्ट उठाने में और कुर्बानी देने में किसी से पीछे नहीं रहेंगे।

"इस विशेष अवसर पर खुशी तो है, लेकिन दुःख भी है। दुःख का कारण आप जानते ही हैं। वह है विभाजन की दुर्घटना। ए भाई, खून-खराबी की बातें सोचकर ठीक से नींद नहीं आती। आप साइकिल चलाते हैं, गाड़ी चलाते हैं, सड़क पर दुर्घटना सिर्फ दूसरे की ही गलती से नहीं होती। आपकी गलती भी दुर्घटना करा सकती है। दोनों की गलती हो तब तो होगी-ही-होगी। यहाँ तो एक तीसरी पार्टी भी थी, जो जी-जान से इस काम में लगी हुई थी। खैर, यह पार्टी तो चली गई विदेश, अब हमें विशेष सावधान रहने की जरूरूत है। साइकिल या गाड़ी चलाने में तो कुशल-दक्ष होना ही चाहिए, लेकिन सावधान भी हमेशा रहना चाहिए कि दूसरा दुर्घटना न करा दे। हम सावधान रहेंगे तो सड़क भी ठीक रहेगी, दायाँ-बायाँ रास्ता दिखाने का इन्तजाम भी होगा। हमारी, इस जिले की एक परम्परा है, यहाँ साम्प्रदायिक झगड़ा-वगड़ा नहीं होता। एकता की यह भावना आगे भी जारी रहनी चाहिए। इस पर कोई आँच न आवे, सब प्रेम से रहें, सब में सहयोग हो, सब मिल-जुलकर दुश्मन का मुकाबला करें, चाहे वह विदेशी हमलावर हो, गरीबी हो, बीमारी हो, एकता का विरोधी हो।

"हमने राष्ट्रीय आन्दोलन के कुछ सिद्धान्तों पर दृढ़तापूर्वक लम्बे समय तक चलकर स्वतन्त्रता प्राप्त की है। आपको, बलिया की जनता को इसका गहन अनुभव है। हमारे राष्ट्रीय जीवन के मूल्य हैं ये, जो हमेशा हमारी मदद करेंगे। स्वावलम्बन, स्वदेशी, एकता के ये मूल्य छूटने न पाएँ, नष्ट न हों, हमारी स्वतन्त्रता और उन्नति के लिए ये अत्यन्त आवश्यक हैं।

"महात्मा गांधी भारत की आम जनता की स्वाधीनता और एकता के सबसे बड़े मजबूत स्तम्भहैं। देश बँट गया, लोग बैंट गए, लेकिन गांधीजी लोगों के दिलों को जोड़ने में लगे हैं। इस देश में और भारत तथा पाकिस्तान के बीच भी लोगों के दिलों को जोड़ना बहुत जरूरी है। हवा-पानी तो एक ही है, भाषा भी एक ही है, या कई हैं तो एक जैसी हैं, संगीत, साहित्य में सांस्कृतिक एकता के तत्त्व हैं। अलग देश बन भी गए हैं तो आपस में प्रेम से रहने से ही दोनों स्वाभिमान से जिन्दा रह सकेंगे, तरक्की कर सकेंगे।

"मैं आपको बताना चाहता हूँ कि गांधीजी के शान्ति मिशन में शामिल होने के लिए कल में बलिया से दिल्ली जा रहा हूँ। मैं अपना शेष जीवन इसी कार्य में बिताना चाहता हूँ। मैं बलिया का प्रतिनिधि

बनकर ही यहाँ जा रहा हूँ, बलिया की मूक जनता का। इस कार्य में मुझे आपकी सहमति, समर्थन और आशीर्वाद चाहिए।"

जोरदार करतल ध्वनि हुई और नारे लगने लगे। भाषण देर रात तक चलते रहे स्वतन्त्रता की जगमग रोशनी के बीच, जिनकी आवाज हवा के सहारे चारों ओर फैलने लगी।

***** समाप्त ******

sjeet

भारत के स्वाधीनता संग्राम में सन बयालीस को 'भारत छोड़ो आंदोलन' मुक्तिकामों भारतीय जनता का सर्वोच्च एकीकृत प्रयास माना जाता है। इस आंदोलन का हिंदी साहित्य में कई बार संदर्भ आया है लेकिन पूर्णतः उसी पर केन्द्रित सृजनात्मक प्रयत्न कम ही हुए। उस आंदोलन में 'अंग्रेजो, भारत छोड़ो' के नारे गूंजते थे। साठ साल बाद आज' अंग्रेजो, भारत आओ' की नीति चल रही हैं। ऐसे समय में भारत छोड़ो आंदोलन की बातीय स्मृति की ओर कथा-गुरु अमरकान्त का ध्यान जाना खास अर्थ रखता है।

इन्हीं हथियारों से में शायद ही कोई बड़ा नेता दिखलाई देता है। अगर कहीं वे हैं तो बस सूचना-संदर्भ के रूप में। आंदोलन की प्रकृति के अनुरूप ही यह बहुनायक संरचना वाला उपन्यास है जिसके प्रमुख चरित्रों में नौले छात्र है, न व्यापारी, सदाशयव्रत पूर्व पहलवान डाकू, नम्रता जमींदार की बेटी, जोगी फल विक्रेता की पत्नी, रमाशंकर साधारण कार्यकर्ता, हरचरण मजदूर, गोपालराम दलित गरज यह कि समाज का कोई तबका, कोई समुदाय नहीं पंचा, जो इस आंदोलन में शरीक न हुआ हो। यह उपन्यमय इन्हीं मामूली लोगों, गुमनाम नायकों का विरुद है-उनके ग्रारित्रिक उत्कर्ष और पत के साथ-साथ

इतने नायकों वाले इस उपन्यासता है बलिया। वर्तमान पूर्वी उत्तर प्रदेश का एक पिछड़ा अलग। कुरचीन लोग इसको सांस्कृतिक पिश्डयन का प्रतीक मानते हैं। लेकिन बलिया जैसा प्रतिवादी, अतिरोधों और सामी जनपद है जो जीवन की कोमलताओं और राग-रंग से भी समृद्ध है। देश के कई जाती तर हो' भारत छोड़ो आंदोलन' के दौरान बलिया में भी आसाद सरकार का गठन हुआ था। सिद्धान्तकार चाहें तो इस उपन्यास को स्थानीय इतिहास का निम्नवर्गीय प्रसंग कह लें पर यह फैक्ट' से प्रेरित फिक्शन' ही और वह भी एक स्वाधीनता सेनानी की कलम से रचाहुआ।

अमरकान्त भविष्य में झांकने की अपनी क्षमता के लिए भी प्रसिद्ध रहे हैं। इस उपन्यास में वे उस गौरवशाली अतीत के चित्रण और विश्लेषण को लेकर उपस्थित हुए हैं जो भविष्य का पार्थय हो सकता है। उन्हों मामूली हथियारों से बनता बड़ी लड़ाई जीत लेगी, यही विश्वास इस उपन्यास का बीज-सूत्र है।

-अरुण प्रकाश

₹499